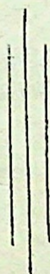
२० स्मृतियां

द्वितीय खण्ड

(सरल हिन्दी भाष्य सहित)



सम्पादक :
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन
२० स्मृतियों और १८ पुराणों
के भाष्यकार



प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब बरेली (उ० प्र०)

प्रकाशक :
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)

❋

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

❋

❋

मुद्रक :
बनवारीलाल गुप्त
विश्व भारती प्रेस
मथुरा

❋

तृतीय संस्करण
१९७१

❋

मूल्य ७)२०

दो शब्द

"बीस स्मृतियों के प्रथम-खण्ड से बची शेष दश और अन्य महत्वपूर्ण स्मृतियाँ द्वितीय-खण्ड में दी जा रही हैं। इनका विस्तृत परिचय तो प्रथम-खण्ड की भूमिका में ही दिया जा चुका है, यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त है कि स्मृति-साहित्य भारतीय धर्म का एक प्रमुख अंग है और उसी के द्वारा हमको धर्म के क्रियात्मक रूप के स्पष्ट दर्शन हो सकते हैं। धर्म का रहस्य, मूल आधार और महत्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेद, उपनिषद् आदि का अध्ययन करना आवश्यक है पर एक नवागन्तुक को उसका परिचय उसके आचार, व्यवहार से ही प्राप्त हो सकता है। स्मृतियों में प्रत्येक वर्ण, आश्रम और व्यक्ति के जो धर्म कर्त्तव्य बतलाए हैं उनसे ही पता चलता है कि एक भारतीय का रहन-सहन और चरित्र कितना शुद्ध, पवित्र और उदात्त हुआ करता था। इसी सदाचार और परोपकारमय जीवन से प्रभावित होकर अन्य देशों के यात्रियों ने भारतवासियों को 'देवता' की संज्ञा दी थी और कुछ अंशों में भी उनके आदर्श--जीवन का अनुकरण करके अपने को कृतार्थ समझा था।

धर्म का विवेचन करने वाली स्मृतियाँ आज भी उपलब्ध हैं, पर खेद है कि पाठकों ने असामायिक, अरोचक और भारस्वरूप समझ कर उनका पठन-पाठन अधिकांश में त्याग रखा है। उनको पता नहीं कि हमारे पूर्वज कैसी आदर्श दिनचर्या रखते थे और किस प्रकार प्रत्येक कार्य में धर्माचरण का ध्यान रखते हुए अपने जीवन को सार्थक बनाते थे। आज भी यदि हम इनका अध्ययन करें तो उनमें से बहुसंख्यक नियम और विधान ऐसे प्राप्त हो सकते हैं जिनसे हम भी अपने जीवन को अधिक उच्च और धर्मानुकूल बना सकते हैं। आशा है पाठक स्वयं इनका पठन-पाठन करके तथा अन्य व्यक्तियों को भी प्रेरणा देकर इस पुण्य-पथ पर अग्रसर होने का प्रयत्न करेंगे।

गायत्री तपोभूमि, —श्रीराम शर्मा आचार्य

मथुरा

द्वितीय खण्ड की स्मृति-सूची



श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
सम्यक् सङ्कल्पजः कामो धर्म्ममूलमिदं स्मृतम् ॥७
इज्याचारदमाहिंसादानं स्वाध्यायकर्म्म च ।
अयं तु परमो धर्म्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥८
चत्वारो वेदधर्म्मज्ञाः पर्षत् त्रैविद्यमेव वा ।
सा ब्रूते यं स धर्म्मः स्यादेको वाध्यात्मवित्तमः ॥९

मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, सम्वर्त्त कात्यायन, वृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शतातप, वशिष्ठ, ये सब धर्म शास्त्र के प्रयोजक हैं ॥४-५॥ समुचित देश और काल में उपाय से पूर्ण, श्रद्धा से युक्त होकर किसी भी योग्य सत्पात्र को जो द्रव्य दिया जाता है वही समस्त धर्म का लक्षण होता है ॥ ६ ॥ श्रुति और स्मृति के अनुकूल, सदाचार से पूर्ण और अपनी आत्मा का प्रिय अच्छे संकल्प से समुत्पन्न जो काम है वही धर्म का मूल कहा गया है ॥ ७ ॥ यज्ञ, आचार, दम, अहिंसा, दान, स्वाध्याय और अपना कर्त्तव्य कर्म तथा योगाभ्यास से आत्म दर्शन यह, सर्वश्रेष्ठ परम धर्म होता है ॥ ८ ॥ धर्म शास्त्र के ज्ञाता चार ब्राह्मणों की परिषत् अथवा वेद त्रयी का ज्ञाता एक भी या अध्यात्मज्ञान में निपुण जो धर्म बतलाता है वही धर्म है ॥ ९ ॥

ब्रह्मचारि प्रकरण वर्णन ।

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः ।
निषेकादि श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः ॥१०
गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात् पुरा ।
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः प्रसवे जातकर्म्म च ॥११
अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूड़ा कार्य्या यथाकुलम् ॥१२

बीस-स्मृतियां ।

याज्ञवल्क्य स्मृतिः

अथाचाराध्यायः । उपोद्‌घातप्रकरणवर्णनम् ।

योगीश्वरं याज्ञवल्क्यं सम्पूज्य मुनयोऽब्रुवन् ।
वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रूहि धर्म्मानिशेषतः ।।१
मिथिलास्थः स योगीन्द्रः क्षणं ध्यात्वाब्रवीन्मुनीन् ।
यस्मिन् देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन् धर्म्मान्निबोधत ।।२
पुराणन्यायमीमांसा धर्म्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्म्मस्य च चतुर्दश ।।३

योगीश्वर याज्ञवल्क्य की भलीभाँति पूजा करके मुनियों ने कहा—हे भगवन् ! वर्णों और आश्रमों से अतिरिक्त मनुष्यों के धर्मों को पूर्ण रूप से हम लोगों को बतलाओ ।।१।। मिथिला प्रान्त में निवास करने वाले वे योगीराज क्षण मात्र ध्यान में मग्न होकर मुनियों से बोले—जिस देश में कृष्ण मृग हो वहाँ के धर्मों को जान लो ।।२।। पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, छे अंगों से (व्याकरण-निरुक्त शिक्षादि) युक्त चारों वेद इस प्रकार ये चौदह विद्याओं और धर्म के स्थान होते हैं ।।३।।

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः ।
यमापस्तम्बसम्वर्त्ता कात्यायनवृहस्पती ।।४
पराशरव्यासशङ्खलिखिता दक्षगौ तमौ ।
शातातपो वशिष्ठश्च धर्मशास्त्र प्रयोगकाः ।।५
देशकाल उपायेन द्रव्यं श्रद्धा समन्वितम् ।
पात्रे प्रदीयते यत्तत् सकलं धर्म्मलक्षणम् ।।६

एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम् ।
तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः ॥१३
गर्भाष्टमेऽष्टमेवाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम् ॥१४
उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्व्वकम् ।
वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत् ॥१५
दिवासन्ध्यासु कर्णस्थ ब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ।
कुर्य्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥१६

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं। इसमें प्रथम तीन द्विज कहलाते हैं। गर्भाधान से लेकर श्मशान की अन्त्येष्टि क्रिया पर्यन्त इनकी सारी क्रियायें वैदिक मन्त्रों से ही सम्पन्न की जाती हैं॥ १० ॥ भार्या के ऋतु काल में गर्भाधान, स्पन्दन होने से पहिले पुंसवन, छठे या आठवें मास में सीमन्त और प्रसव हो जाने पर जातकर्म संस्कार होता है॥ ११ ॥ बालक के जन्म दिवस से ग्यारहवें दिन में नामकरण, और चौथे मास में गृह से निष्क्रमण, छटवें मास में अन्न प्राशन संस्कार होता है। चूड़ा संस्कार अपने कुलागत रीति एवं परम्परा के अनुसार जब भी होता हो तभी करना चाहिए ॥१२। इस प्रकार संस्कारों के सम्पादन से बीज गर्भ से समुत्पन्न अघ की शान्ति होती है। ये क्रियायें घर में स्त्रियों द्वारा सम्पन्न हो जाती हैं, किन्तु विवाह संस्कार मन्त्रों द्वारा विधि से किया जाता है॥ १३॥ गर्भाधान से अथवा जन्म से आठवें वर्ष ब्राह्मण वर्ण वाले बालक का, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष, तथा वैश्य का बारहवें वर्ष में उपनयन होना चाहिए। कुछ विद्वानों का मत है कि वैश्य का कुलरीति के अनुसार होता है॥ १४॥ उपनयन संस्कार करा देने के पश्चात् गुरु शिष्य को महाव्याहृतियों के साथ वेद का अध्यापन करावें और उसे शौच तथ आचारों की शिक्षा भली भाँति देवें। १५। उपवीति ब्रह्मचारी को दिन एवं सन्ध्या के समय ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) को कान पर चढ़ा

कर उत्तर को मुख करके मूत्र, मल का त्याग यदि रात्रिकाल हो तो दक्षिण दिशा की ओर त्याग करे ।। १६ ।।

गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृदभिरभ्युद्धृतैर्जलैः ।
गन्धलेपक्षयकरं कुर्य्याच्छौचमतन्द्रितः ।।१७
अन्तर्जानुः शुचौ देश उपविष्ट उदङ्मुखः ।
प्राग्वा ब्राह्मणे तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ।।१८
कनिष्ठादेशिन्यङ्गुष्ठमूल्यान्यग्रं करस्य च ।
प्रजापति पितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमाद् ।।१९
त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्यात् खान्यद्भिः समुपस्पृशेत् ।
अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ।।२०
हृत्कण्ठतालुगाभिस्तु यथा संख्यं द्विजातयः ।
शुद्धयेरन् स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्कृष्टाभिरन्ततः ।।२१
स्नानमब्दैवतंवर्मन्त्रमार्ज्जनं प्राणसंयमः ।
सूर्यस्य चाप्युपस्थान गायत्र्याः प्रत्यहं जपः ।।२२
गायत्रीं शिरसा सार्द्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम् ।
प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिरयं प्राणसंयमः ।।२३

मूत्र त्याग करके जननेन्द्रिय को मिट्टी और जल से प्रलेप एवं प्रक्षालन द्वारा शुद्ध करे । इस शुद्धि में कभी असावधानी नहीं करे क्योंकि मूत्र के कुछ भाग के लगे रहने से दुर्गन्ध का नाश पूर्ण शौच से ही होता है ।। १७ ।। द्विज किसी पवित्र स्थान में उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ जाय और दोनों घुटनों के बीच में हाथ के ब्राह्म-तीर्थ से नित्य आचमन करे ब्राह्म आदि तीर्थ अग्रिम पद्य में स्पष्ट बतलाया जायगा ।। १८ ।। दक्षिण हाथ की कनिष्ठिका और तर्जनी अंगुलि तथा अंगूठे का मूल एवं हाथ का अग्र भाग क्रम से प्रजापति तीर्थ, पितृ तीर्थ, ब्राह्म तीर्थ और देव तीर्थ कहे जाते हैं ।। १९ ।। आचमन करने की विधि यह है कि उपरोक्त रीति से हाथ में जल लेकर तीन बार जल पान करे । अंगुष्ठ के मूल से दो बार मुख का उन्मार्जन करे तथा ऊर्ध्व भाग में रहने वाले प्राणादि के छिद्रों को जल से उपस्पर्श करना चाहिए ।

आचमनादि के करने का जल पूर्णतया शुद्ध हो और उसमें फेनादि कुछ भी नहीं होवे ।। २० ।। द्विजाति क्रम से हृदय, कण्ठ और तालु तक पहुँचने वाले जल से शुद्ध होते हैं स्त्री और शूद्र एक बार ही अन्दर स्पर्श हो जाने पर शुद्ध हो जाते हैं ।। २१ ।। शास्त्रादेशानुसार प्रातःकाल में स्नान, "आपोहिष्ठादि" मन्त्रों द्वारा मार्जन, प्राणायाम, सूर्य का सौर मन्त्रों द्वारा उपस्थान और प्रतिदिन नियमपूर्वक गायत्री का जप करना चाहिए ।। २२ ।। प्राणायाम की विधि बतलाते हैं कि प्रणव के सहित तीनों महा व्याहृतियां का शिर के सहित तीन बार प्राण वायु का संयम करते हुए जप करे। ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः—ये प्रणव सहित तीन महा व्याहृतियाँ हैं। "महः, जनः, तपः, सत्य"—यह और 'आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वः' शिर कहा जाता है ।। २३ ।।

प्राणानायम्य सम्प्रोक्ष्य त्र्यृचेनाब्दैवतेन तु ।
जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात् ।।२४
सन्ध्यां प्राक् प्रातरेवं हि तिष्ठेदासूर्य्यदर्शनात् ।
अग्निकार्य्यं ततः कुर्य्यात् सन्ध्ययोरुभयोरपि ।।२५
ततोऽभिवादयेद् वृद्धानसावहमिति ब्रुवन् ।
गुरुञ्चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः ।।२६
आहूतश्चाप्यधीयीत लब्धं चास्मै निवेदयेत् ।
हितं चास्याचरेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्म्मभिः ।।२७
कृतज्ञोऽद्रोही मेधावी शुचिः कल्याणसूचकः ।
अध्याप्याः धर्म्मतः साधुशक्ताप्तज्ञानवित्तदाः ।।२८
दण्डाजिनोपवीतानि मेखलाञ्चैव धारयेत् ।
ब्राह्मणेषु चरेद्भैक्ष्यमनिन्द्येष्वात्मवृत्तये ।।२९
आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षिता ।
ब्राह्मणक्षत्त्रियविशां भैक्षचर्य्या यथाक्रमम् ।।३०

उक्त विधि से प्राणायाम करके अद्वैत आपोहिष्ठादि मन्त्रों से अपने ऊपर जल से सम्प्रोक्षण करे और पूर्व की ओर मुख करके सावित्री

का जप करे।।२४।।प्रातःकाल तारागण रहते हुए आरम्भ कर सूर्योदय तक सन्ध्योपासन करे और शाम को सूर्य रहते हुए आरम्भ कर तारकोदय पर्यन्त पश्चिमाभिमुख होकर सन्ध्या करनी चाहिए। इसके पश्चात् दोनों समय अग्निहोत्रादि करे ।। २५ ।। प्राणायाम-मार्जन, जप, सन्ध्योपासन और अग्निहोत्रादि कार्य सम्पादन करने के पश्चात् ब्रह्मचारी गुरु आदि पूज्य वृद्ध-वर्ग का अपने सगोत्र नाम का उच्चारण करते हुए अभिवादन करे और एकाग्र मन से वेदाध्ययन करने के लिए गुरु की परिचर्या करे ।। २६ ।। जब भी अध्ययन के लिए गुरु बुलावें या आदेश देवें तभी स्वाध्याय करे । स्वयं गुरु को अध्यापन के लिए प्रेरित न करे और जो भी प्राप्त किया हो वह सब गुरु से निवेदन कर दे । ब्रह्मचारी नित्य ही मन, वाणी और कर्म के द्वारा गुरु का हित करें ।। २७ ।। जो कृतज्ञ हो, कभी द्रोह न करने वाला, मेधा वाला, पवित्र, आधि-व्याधि से रहित, दोषों को प्रगट न करने वाला, कल्याण सूचक, चरित्र युक्त, सेवा परायण, हितकर्ता ज्ञान अर्थात् विद्यान्तर देने वाला और वित्त देने वाला विद्यार्थी ही शास्त्रानुसार अध्यापन के योग्य है। उक्त समस्त गुण हों या कतिपय गुण छात्र में होने चाहिए ।। २८ ।। ब्रह्मचारी स्वाध्याय काल में दण्ड, मृगछाला, यज्ञ सूत्र और मौञ्जी मेखला धारण करे । अपने जीवन निर्वाह के लिए स्वकर्मरत प्रशस्त ब्राह्मणों के यहाँ से भिक्षा कर लिया करे ।। २९ ।। ब्रह्मचारी भिक्षाचर्या करने के समय ब्राह्मण के यहाँ "भवति भिक्षां देहि", क्षत्रिय के घर पर "भिक्षां भवति देहि", और वैश्य के घर पर "भिक्षां देहि भवति",—इस क्रम से कह कर द्विजातियों से भिक्षाचर्या करे ।। ३० ।।

कृताग्निकार्य्यो भुञ्जीत वाग्यतो गुर्व्वनुज्ञया ।
आपोशानक्रियापूर्व्वं सत्कृत्यान्नमकुत्सयन् ।।३१
ब्रह्मचर्य्ये स्थितोनैकमन्नमद्यादनापदि ।
ब्राह्मणः काममश्नीयाच्छ्राद्धे व्रतमपीडयन् ।।३२
मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम् ।

भास्करालोकनाश्लीलपरिवादांश्च वर्जयेत् ॥ ३३
स गुरुर्यः क्रिया कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ।
उपनीयददद्वेदमाचार्य्यः स उदाहृतः ॥ ३४
एकादेशमुपाध्याय ऋत्विग् यज्ञकृदुच्यते ।
एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी ॥ ३५
प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा ।
ग्रहणान्तिकमित्येके केशान्तश्चैव षोडशे ॥ ३६
आ षोडशाब्द द्द्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरात् ।
ब्रह्मक्षत्रविशां काल औपनायनिकः परः ॥ ३७

भिक्षाचर्या करके गुरु की आज्ञा से अग्नि कार्यादि समाप्त कर मौन होकर 'अमृतोपस्तरणमसि' इत्यादि मन्त्र से आपोशान क्रिया अर्थात् जल गंडूष पान करके अन्न को नमस्कार करके अन्न का अभिनन्दन करते-करते भोजन करे ॥ ३१ ॥ ब्रह्मचर्य के नियम में स्थित रहने वाले को स्वस्थावस्था में एक के अन्न को नहीं खाना चाहिए । यदि कभी श्राद्ध में भोजन का अवसर आवे तो व्रतानुसार मधुमांसादि से रहित एकान्न भी खा लेना चाहिए ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचर्यावस्था में रहने वाले को मधु और मांस का भोजन, तैलादि का मर्दन, काजल लगाना, उच्छिष्ट भोजन, कठोर वाक्य, स्त्री सम्पर्क, प्राणि हिंसा, अश्लील एवं असत्य भाषण, परदोष कथन और उदय कालीन तथा अस्त कालीन सूर्य का दर्शन ये काम त्याग देने चाहिए ॥ ३३ ॥ निषेक से उपनयन पर्यन्त सारे संस्कारों की क्रिया को करके ब्रह्मचारी को जो वेद के ज्ञान को प्रदान करता है । वह गुरु होता है । उपनयन कराकर जो वेद का अध्ययन कराता है वह आचार्य कहा जाता है ॥ ३४ ॥ वेद के एक देश को अर्थात् मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग में से किसी एक भाग को अथवा वेद के छै अंगों को पढ़ाने वाला उपाध्याय कहा जाता है । ये तीनों यथा पूर्व क्रम से माननीय होते हैं । और इन सबसे अधिक बड़ी पूज्य माता होती है ॥ ३५ ॥ ब्रह्मचर्य धारण करते हुए प्रत्येक वेद का अध्ययन बारह वर्ष पर्यन्त अथवा

समयाभाव होने पर पाँच वर्ष तक करना चाहिये । कुछ आचार्यों का ऐसा मत भी है कि जब तक शाखाओं का अध्ययन पूर्ण हो तब तक वेदाध्ययन करना चाहिए। गोदानाख्य केशान्त संस्कार गर्भ काल से सोलहवें वर्ष में करना चाहिए ।। ३६ ।। अब द्विजाति के उपनयन काल की परमावधि बतलाते हैं । ब्राह्मण का सोलह वर्ष तक, क्षत्रिय का बाईस वर्ष तक और वैश्य का चौबीस वर्ष तक उपनयन संस्कार हो जाना चाहिए ।। ३७ ।।

अत ऊर्द्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः ।
सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोद्दते क्रतोः ।।३८
मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः ।।३९
यज्ञानां तपसाञ्चैव शुभानां चैव कर्मणाम् ।
वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ४०
मधुना पयसा चैव स देवांस्तर्पयेद् द्विजः ।
पितृंश्च मधुसर्पिर्भ्यामृचोऽधीते तु योऽन्वहम् ।४१
यजूंषि शक्तितोऽधीते योन्वहं स घृतामृतैः ।
प्रीणाति देवानाज्येन मधुना च पितृंस्तथा ।।४२
स तु सोमघृतैर्देवां स्तर्पयेद्योऽन्वहं पठेत् ।
सामानि तृप्ति कुर्य्याच्च पितृणां मधुसर्पिषा ।।४३
प्रद्विजः तर्पयेद्देवानथर्वाङ्गिरसः पठन् ।
पितृंश्च मधुसर्पिर्भ्यामन्वहं शक्तितो द्विजः ।।४४

उक्त काल से अधिक हो जाने पर फिर उपनयन कराने का कोई समय नहीं रहता है । उपनयन के अनधिकारी होकर सावित्री दान के योग्य नहीं रहते हैं और समस्त धर्म कार्यों से बहिष्कृत होकर होकर व्रात्य हो जाते हैं । व्रात्य स्तोम क्रतु के बिना द्विजाति का पतन हो जाता है ।। ३८ ।। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण वालों का प्रारम्भ में प्रथम जन्म तो माता के उदर से होता है और दूसरा जन्म यथा विधि मौञ्जी बन्धादि, उपनयन संस्कार के होने पर होता

है। इसीलिये ये तीनों वर्ण द्विज नाम से कहे जाते हैं ।।३९।। ज्योतिष्टोमादि श्रौत स्मार्त यज्ञों का, शारीरिक सन्तापकारी चान्द्रायणादि तपों का और उपनयनादि शुभ कर्मों का अवबोधक होने से वेद ही द्विजातियों का परम कल्याण करने वाला होता है। अतः द्विजाति को वेदाध्ययन करना नितान्तावश्यक है ।। ४० ।। जो प्रतिदिन यथा शक्ति ऋग्, यजुः, साम और अथर्ववेद का अध्ययन करता है वह द्विज प्रतिपाठ मधु, पय से देवों का तथा मधु और घृत से पितृगणों का तर्पण ही कर लेता है अर्थात् वेदाध्ययन मात्र से ही देव-पितृ की तृप्ति होजाती है ।। ४१ ।।जो द्विज यथा शक्ति नित्य प्रति यजुर्वेद का अध्ययन करता है वह घृतामृत से देवों को प्रसन्न एवं तृप्त किया करता है और घृत-मधु से पितृगण की तृप्ति का फल प्राप्त कर लेता है ।। ४२ ।। जो द्विज प्रतिदिन सामवेद का अध्ययन या पाठ करता है वह सोम घृत द्वारा देवों की तृप्ति करता है तथा मधु और घृत से पितरों को तृप्त कर देता है ।। ४३ ।। जो द्विज अथर्वांगिरस पढ़ता है वह देवों को तृप्त करता है और मधु एवं घृत से प्रति दिन पितरों की तृप्ति किया करता है ।।४४।।

वाकोवाक्यं पुराणञ्च नाराशंसीश्च गाथिकाः ।
इतिहासा स्तथा विद्यां योऽधीते शक्तितोऽन्वहम् ।।४५
दधिक्षीरौदनमधुतर्पणं स दिवौकसाम् ।
करोति तृप्तिञ्च तथा पितृणां मधुसर्पिषा ।।४६
ते तृप्तास्तर्पयन्त्येनं सर्वकामफलैः शुभैः ।
यं यं क्रतुमधीये च तस्य तस्यान्नुयात् फलम् ।।४७
त्रिर्वित्तपूर्णपृथिवीदानस्य फलमश्नुते ।
तपसश्च परस्येह नित्यं स्वाध्यायवान् द्विजः ।।४८
नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्यसन्निधौ ।
तदभावऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेऽपि वा ।।४९
अनेन विधिना देहं साधयन् विजितेन्द्रियः ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेह जायते पुनः ।।५०

जो द्विज यथा शक्ति प्रति-दिन वाकोवाक्य अर्थात् प्रश्नोत्तर रूप वेद का उपनिषद्भाग, पुराण, नाराशंसी अर्थात् रुद्रदवत्य मन्त्र, गाथिका अर्थात् इन यज्ञ गाथा, महाभारतादि इतिहास, वारुण्यादि विद्या का अध्ययन करता है वह दधि, क्षीर, ओदन और मधु से देवताओं को तृप्त कर देता है और मधु एवं घृत से पितरों की तृप्ति करता है ।।४५-४६। इस प्रकार वेदादि के अध्ययन से तृप्त एवं प्रसन्न देव और पितर समस्त इच्छित शुभ फलों से अध्येता को तृप्त किया करते हैं। जिस-जिस क्रतु (यज्ञ) के प्रतिपादक वेद के भाग का द्विज अध्ययन करता है, उस-उस क्रतु का फल प्राप्त कर लेता है ।। ४७ ।। प्रतिदिन वेदादि के स्वाध्याय करने वाला द्विज उत्कृष्ट तपश्चर्या और धन से परिपूर्ण पृथ्वी के तीन वार दान करने के फल की प्राप्ति कर लेता है ।। ४८ ।। जिसने जोवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने का सत्य संकल्प कर लिया है ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी को अपने आचार्य की सन्निधि ही में जीवन की समाप्ति तक निवास करना चाहिए। यदि आचार्य की सन्निधि का किसी कारण से अभाव हो तो उनके पुत्र के पास या पत्नी के पास करे और सभी का अभाव हो तो ब्रह्मचर्याग्नि के निकट रहे और समावर्त्तन करे ।।४९।। इस प्रकार की विधि से इन्द्रियों को जीतने वाला नैष्ठिक ब्रह्मचारी अपने देह की साधना करता हुआ अन्त में ब्रह्मलोक की प्राप्ति किया करता है और फिर वह इस संसार में आकर जन्म ग्रहण नहीं करता है ।। ५० ।।

विवाह प्रकरण वर्णन ।

गुरवे तु वरं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया ।
वेदं व्रतानि वा पारं नीत्वाप्युभयमेव वा ।।५१
अविलुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत् ।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ।।५२
अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् ।
पञ्चमात् सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ।।५३

दशपूरूषविख्याताच्छ्रोत्रियाणा महाकुलात् ।
स्फोतार्दपि न सञ्चारिरोगदोषसमन्वितात् ॥५४
एतैरेव गुर्णैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः ।
यत्नात् परीक्षितः पुंस्त्व युवा धीमान् जनप्रियः ॥५५
यदुच्यते द्विजादीनां शूद्राद्दारोपसंग्रहः ।
न तन्मम मतं यस्मात्तत्रात्मा जायते स्वयम् ॥५५
तिस्रोवर्णानुपूर्व्येण द्व तथैका यथाक्रमम् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्य्या स्वा शूद्रजन्मनः ॥५६

उक्त प्रकार से मन्त्र—ब्राह्मणात्मक वेद का तथा समस्त ब्रह्मचारी के व्रतों का अथवा दोनों प्रकार का पारगामी होकर अर्थात् नियम समाप्त करके अपने गुरु को अभिलषित दक्षिणा देकर स्नान करना चाहिए । यदि भेंट देने की शक्ति न हो तो गुरु की आज्ञा प्राप्त करके ब्रह्मचर्य समाप्ति-स्नान करना चाहिए ॥ ५१ ॥ अस्खलित ब्रह्मचर्य वाले द्विज की सुलक्षणा अपनी अवस्था और प्रणाम से छोटी, अनन्य वृत्ति वाली अर्थात् पर पुरुष के दानोपभोग से रहित और असपिण्ड एवं सुन्दरी स्त्री से विवाह करना चाहिए। स्त्री अपने तथा माता के गोत्र से भिन्न गोत्र वाली असपिण्ड कही जाती है ॥५२॥ ब्रह्मचारी जिस कन्या से विवाह करे वह रोगिणी न हो, भाइयों वाली हो और भिन्न ऋषि गोत्र में उत्पन्न होने वाली होवे । माता के पांच पुश्त से तथा पिता के सात पुश्त (पीढ़ी) से ऊपर सपिण्डता समाप्त हो जाती है ॥ ५३ ॥ दश पुरुषों (पुश्तों) से विख्यात (अर्थात् पाँच माता के और पाँच पिता के) श्रुताध्ययन से सम्पन्नों के महान् कुल से कन्या ग्रहण करनी चाहिए । यदि विशाल कुल भी सञ्चारी, श्वित्र, कुष्ठादि रोग और दोषों से युक्त हो तो उससे कन्या नहीं लेनी चाहिए ॥ ५४ ॥ इसी प्रकार उक्त गुणों से युक्त, सवर्ण (अपने ही वर्ण वाला) श्रोत्रिय वर होना चाहिए । जिसकी यत्न पूर्वक भली भाँति पुंसत्व की परीक्षा करली गई हो ऐसा, नौजवान एवं सब का प्रिय बुद्धिमान् वर होवे ॥ ५५ ॥ कुछ

विद्वानों का मत है कि द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य शूद्र की कन्या से विवाह कर सकते हैं किन्तु याज्ञवल्क्य कहते हैं कि यह कथन मुझे अभीष्ट नहीं है क्योंकि अपनी जाया में द्विजाति गर्भ रूप से स्वयं ही जाकर सन्तति के स्वरूप में उत्पन्न होता है ।। ५६ ।। ब्राह्मण तीन वर्णों की कन्या से विवाह कर सकता है, क्षत्रिय दो वर्णों की कन्या से और वैश्य अपने ही वर्ण की कन्या से विवाह कर सकता है। शूद्र केवल अपने ही वर्ण की कन्या से कर सकता है। यह क्रम भी तभी है जब अपने वर्ण की कन्या का अभाव होता है ।। ५७ ।।

ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलङ्कृता ।
तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ।।५८
यज्ञस्थऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम् ।
चतुर्दश प्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट् ।।५९
इत्युक्त्वा चरतां धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने ।
स कायः पावयत्तज्जः षट्षड् वंश्यान् सहात्मना ।।६०
आसुरो द्रविणादानाद् गान्धर्वः समयान्मिथः ।
राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात् ।।६१
पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात् क्षत्रिया शरम् ।
वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदने त्वग्रजन्मनः ।।६२
पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा ।
कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ।।६३
अप्रयच्छन् समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ ।
गम्यन्त्वभावेदातॄणां कन्या कुर्यात् स्वयम्वरम् ।।६४

जिस विवाह में सुयोग्य वर को बुला कर यथाशक्ति भूषणादि से समलंकृत कन्या का दान किया जाता है वह ब्राह्म विवाह कहलाता है और उस कन्या में समुत्पन्न होने वाला पहिलो और आगे की दश-दश पुश्तों को तथा अपने आपको पवित्र करता है ।। ५८ ।। यज्ञानुष्ठान में स्थित ऋत्विज के लिये यथाशक्ति अलंकृत कन्या का दान जिस

विवाह में किया जाता है उसको दैव विवाह कहते हैं। जिस में दो गोश्रों के साथ वर को कन्या का दान किया जाता है वह आर्ष विवाह कहलाता है । दैव विवाह सात पूर्व और सात पर ऐसे चौदह पुश्तों को पवित्र करता है तथा आर्ष छै को पवित्र करता है ।।५९।। दोनों कन्या तथा वर सद्धर्म का आचरण करो—ऐसा कहते हुए जो कन्या का दान किया जाता है वह "प्राजापत्य" विवाह कहा जाता है । उससे जो पुत्र उत्पन्न होता है वह अपने साथ छै पहिले और छै आगे के पुस्तों को पवित्र करता है ।।६०।। धन लेकर अर्थात् विक्रय करके जो कन्या दी जाती है वह 'आसुर' विवाह होता है । जो परस्पर में अनुराग के होने से विवाह होता है वह गान्धर्व के नाम से प्रसिद्ध है । युद्ध करके कन्या का अपहरण जिसमें हो वह 'राक्षस' और छल पूर्वक सोती हुई दशादि में कन्या का अपहरण किया जावे वह विवाह "पैशाच" नाम से प्रसिद्ध है । इस प्रकार आठ तरह के विवाह होते हैं । जिनमें पहिले चार श्रेष्ठ माने जाते हैं ।।६१।। चारों वर्ण वाले अपने अपने वर्ण की कन्याओं का विधिवत् पाणिग्रहण करें । यदि अग्रजन्मा क्षत्रिया के साथ विवाह करे तो शर को ग्रहण करे और वैश्या के साथ विवाह में प्रतोद ग्रहण करे ।।६२।। अब कन्या के दान करने वाले अधिकारियों को बतलाते हैं कि पिता, पितामह, भ्राता, सकुल्य बान्धव, माता और मातामहादि कन्या दान का क्रम से अधिकार रखते हैं । इनमें पहिलों के नाश या अभाव में दूसरों का अधिकार होता है किन्तु कन्या दान करने वाला उन्माद पातित्यादि दोष रहित होना चाहिये ।।६३।। उचित समय पर कन्या का वर को दान न करने पर प्रत्येक ऋतु काल में भ्रूण हत्या का पाप लगता है । यदि उपर्युक्त कन्या दान के करने वाले अधिकारियों में कोई भी न रहे तो कन्या स्वयं गमन करने के योग्य वर का वरण कर लेवे । यह स्वयम्वर कहा जाता है ।।६४।

सकृत् प्रदीयते कन्या हरंस्तां चौरदण्डभाक् ।
दत्तामपि हरेत् पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत् ।।६५

अनाख्याय ददद्दोषं दण्ड्य उत्तमसाहसम् ।
अदुष्टाञ्च त्यजन् कन्यां दूषयंश्च मृषा शतम् ॥६६
अक्षता वा क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृताः पुनः ।
स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्ण कामतः श्रयेत् ॥६७
अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया ।
सपिण्डो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्त ऋतावियात् ॥६८
आगर्भं सम्भवाद् गच्छेत् पतितस्त्वन्यथा भवेत् ।
अनेन विधिना जातः क्षेत्रजः स भवेत् सुतः ॥६९
हृताविकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम् ।
भरिभूतामध शय्यां वासयेद् व्यभिचारिणीम् ॥७०
सोमः शौचं ददौ तासां गन्धर्वश्च शुभां गिरम् ।
पावकः सर्वभक्ष्यत्वं नेध्या वै यौषितो ह्यतः ॥७१

कन्या का दान वर को एक ही बार किया जाता है । यदि कोई एक बार वर को दान की हुई कन्या का हरण कर दूसरे वर को देता है तो उसको चोर के समान दण्ड देना चाहिये । दी हुई या देने का वचन दी हुई कन्या को यदि कोई विद्या और कुलादि में अधिक श्रेष्ठ वर प्राप्त हो और कन्या उसके साथ विवाह करना स्वीकार करे तो आहरण कर लेना चाहिये ॥६५॥ जो वर को कन्या के प्रत्यक्ष दोषों को न बता कर उसका दान कर देता है, जो दोष रहित कन्या का वरण कर फिर उसे त्याग देता है और जो मिथ्या दूषण लगाता है ये तीनों उत्तम साहस सहस्र पण के दण्ड भागी होते हैं ॥६६॥ पहिले अनन्यपूर्विका कन्या के साथ विवाह की विधि बतलाई गई थी । अब अन्यपूर्विका का विचार किया जाता है। अनन्यपूर्विका दो प्रकार की होती है एक पुनर्भू और दूसरी स्वैरिणी । वैवाहिक विधि से जिसका संस्कार हो गया हो वह पुनर्भू होती है किंतु पुनर्भू भी पुरुषोपभुक्ता और अभुक्ता अर्थात् क्षता अक्षता दो तरह की होती हैं। जो कुमारावस्था वाले पति का त्याग कर किसी सवर्ण पुरुष का विवाह को विधि के बिना ही आश्रय ले लेती है वह स्वैरिणी होती है ॥६७॥ जिसने पुत्र की प्राप्ति नहीं की

हो ऐसी स्त्री से पुत्रोत्पत्ति मात्र का कामना से पिता आदि गुरुवर्ग की आज्ञा प्राप्त कर देवर, कोई सपिण्ड अथवा सगोत्र पुरुष समस्त शरीर में घृत से अभ्यग करके गर्भोत्पत्ति पर्यन्त ऋतुकाल में संग करे ॥६८॥ जब तक स्त्री गर्भ धारण करे तभी तक संग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त सग से पतित हो जाता है इस नियोग विधि से उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज हो जाता है ॥ ६९ ॥ अवैध व्यभिचार करने वाली पत्नी के, भृत्यादि के भरण के, समस्त अधिकार छीन कर अञ्जनाभ्यञ्जनादि से रहित कर मलिन वस्त्र धारण करने वाला और देह धारण मात्र के लिये अन्न खाने वाली, तिरस्कार युक्त, दुर्बल और भूमि में शयन करने वाली पत्नी को अपने घर ही में निवास दे देना चाहये ॥७०॥परिणय से पूर्व मानस व्यभिचारादि स्वल्पापराध ही कहे गये है। सोम (चन्द्र) स्त्रियों को शौच, गन्धर्व मधुर वचन और अग्नि सर्व यज्ञ करने की योग्यता देते हैं। अतएव स्त्रियाँ सर्वदा शुद्ध कही जाती हैं ॥७१॥

व्यभिचारादृतौ शुद्धिर्गर्भे त्यागो विधीयते।
गर्भभर्तृवधादौ च तथा महति पातके ॥७२
सुरापी व्याधिता धूर्त्ता वन्ध्यार्थघ्न्यप्रियम्वदा।
स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा ॥७३
अधिविन्ना तु भर्तव्या महदेनोऽन्या भवेत्।
यत्रानुकूल्यं दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्द्धते ॥७४
मृते जोवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति।
सेहकीर्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह ॥७५
आज्ञासम्पादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम्।
त्यजन् दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः ॥७६
स्त्रीभिर्भर्तृवचः कार्यमेषधर्मः परः स्त्रियाः।
आ शुद्धेः संप्रतीक्ष्यो हि महापातकदूषितः ॥७७
लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्र पौत्रप्रपौत्रकैः।
यस्मात्तस्मात् स्त्रियः सेव्या भर्तव्याश्च सुरक्षिताः ॥७८

अप्रकाशित मानस व्यभिचार से जो पाप होता है उसकी शुद्धि ऋतु काल में रजोदर्शन से स्त्रियों को हो जाती है। व्यभिचार से गर्भ धारण करने पर तथा गर्भ-वध और भर्तृवधादि महापातक करने पर स्त्री का उपभोग तथा धर्म कार्य में त्याग कर देना चाहिये ।।७२।। यदि पत्नी सुरापान करने वाली, दीर्घ रोग से ग्रस्ता, धूर्त्ता अर्थात् पति को ठगने वाली, बाँझ, धन, का अधिक व्ययादि द्वारा नाश करने वाली, निष्ठुर भाषण करने वाली, कन्याओं को ही जनने वाली अपने स्वामी से द्वेष करने वाली हो तो अधिवेदन अर्थात् दूसरी भार्या का ग्रहण कर लेना चाहिये ।।७३।। अधिविन्ना पत्नी, अर्थात्, वह पत्नी जिसका उक्त दोषादि के कारण त्याग कर दूसरी भार्या का ग्रहण किया गया है, दान-मान सत्कारादि से पहले की भाँति ही भरण करने के योग्य है । यदि इसमें त्रुटि की जाती है तो महान पाप होता है। जिस घर में दम्पति अर्थात् स्त्री पुरुषों में अनुकूलता होती है वहाँ धर्मार्थ काम की वृद्धि होती है ।।७४।। अपने पति के जीवित रहते हुए अथवा मृत हो जाने पर जो पर पुरुष के साथ कभी संग नहीं करती है वह इस संसार में कीर्ति प्राप्त करती है और परलोक में गौरी के साथ आनन्द क्रीड़ा करती है ।।७५।। पति की आज्ञा कारिणी, शीघ्र कार्य कारिणी, पुत्रवती, प्रिय वादिनी पत्नी का जो कोई त्याग कर देता है अर्थात अधिविन्न कर देता है उससे राजा के द्वारा उसके धन का तृतीय भाग दिलाना चाहिय । यदि पति निर्धन हो तो पत्नी का भरण भोजनाच्छदन का प्रबन्ध कराना चाहिए ।।७६।। पत्नी को अपने पति की आज्ञा का पालन करना चाहिए। स्त्रियों का यही सबसे बडा धर्म होता है। पति यदि किसी महा पातक से दूषित भी हो गया हो तो प्रायश्चित्तादि से जब तक शुद्धि हो तब तक भार्या को प्रतीक्षा करनी चाहिये। पति की शुद्धि होने पर पुनः उसी की परतन्त्रता में रहना चाहिए ।।७७।। अब भार्या ग्रहण का प्रयोजन बतलाते हैं। शास्त्रीय वि ग से भार्या के ग्रहण करने से पुत्र, पौत्र, प्रपौत्रादि के होने पर वंश का अविच्छेद और कल्याण तक स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इस लिय

गार्हस्थ में प्रवेश कर स्त्री का सेवन करना चाहिए और उस की पूर्णतया सुरक्षा करनी चाहिए ।।७८।।

षोडशर्त्तु निशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत् ।
ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्या श्चतस्रस्तु वजयेत् ।।७९
एवं गच्छन् स्त्रियं क्षामां मघां मूलञ्च वर्जयेत् ।
शस्त इन्दौ सकृत पुत्र लक्षण्यं जनयेत् पुमान् ।।८०
यथा कामी भवेद्वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन् ।
स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृताः ।।८१
भर्तृ भ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरः ।
बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।।८२
संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ् मुखी ।
कुर्याच्छ्वशुरयोः पादवन्दनं भर्तृतत्परा ।।८३
क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् ।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषितभर्तृका ।।८४
रक्षेत् कन्यां पिता विन्नां पतिः पुत्रास्तु वार्द्धके ।
अभावे ज्ञातयस्तेषां न स्वातन्त्र्यं क्वचित् स्त्रियाः ।।८५

पुत्रोत्पत्ति के लिए स्त्री के सेवन का विधान है । स्त्रियों का गर्भ धारण के योग्य समय ऋतु-काल ही होता है और वह जो दर्शन से लेकर सोलह दिन तक ही रहता है । उसी समय में सम रात्रियों में पुत्रोत्पत्ति के लिये स्त्री-सङ्ग करना चाहिये किन्तु आदि के चार दिन और पर्व दिन अर्थात् अष्टमी, अमावस्या, चतुर्दशी तथा पूर्णिमा के दिन ब्रह्मचर्य से ही रहकर सङ्ग नहीं करना चाहिए ।।७९।। इस प्रकार मघा और मूल नक्षत्रों को वर्जित करके क्षामा स्त्री का गमन करना चाहिए। क्षामता रजस्वला व्रत से ही होती है । यदि क्षामता उत्पन्न न हो तो स्वल्प और अस्निग्ध भोजन से वह करनी चाहिए। शुभ चन्द्र जिस दिन हो उस दिन गमन से एक ही रात्री में सुलक्षण पुत्र उत्पन्न होता है अर्थात् एक ही वार में गर्भ धारण कराकर पुत्र पैदा करता है ।।८०।। भार्या की इच्छा हो तो ऋतु काल के विना भी इन्द्र के दिये वर का स्मरण

करते हुये अपनी स्त्री से रमण करे क्योंकि स्त्रियों की रक्षा करना कर्त्तव्य बतलाया गया है। स्त्रियों को इन्द्र देव ने वरदान दिया था कि जो तुम्हारी कामना का हनन करता है वह पातकी होता है ।।८१।। भर्त्ता, भ्राता, पिता, ज्ञाति, सास, श्वसुर, देवर और बन्धुओं के द्वारा साध्वी स्त्रियों का सर्वदा यथा शक्ति वस्त्रालङ्कार, भोजनादि से सम्मान करना चाहिए क्योंकि सम्मानित स्त्रियों में ही धर्मार्थ काम का सम्वर्धन होता है ।। ८२।। अब स्त्रियों के कर्त्तव्य का वर्णन करते हैं कि स्त्रियों को अपने घर में सदा समस्त वस्तुयें यथोचित स्थान पर करीने से रखनी चाहिए और कार्य कुशल, परम प्रसन्न हो कर अधिक व्यय नहीं करना चाहिए। स्त्री को अपने पति की पूर्ण भक्ति रखते हुए नित्य सास श्वसुर की वन्दना करनी चाहिये ।।८३।। जब पतिव्रता साध्वी स्त्री का पति कार्यवश घर से बाहिर प्रदेश में चला गया हो तो उसे कन्दुक, अक्षादि की क्रीड़ा, अपने शरीर का उद्वर्तनादि विशेष संस्कार, समाज मे होने वाले उत्सवों को देखना, हास्य-विलास और पराय घर में जाना त्याग देना चाहिये ।।८४।। पाणिग्रहण संस्कार होने के पूर्व अकार्य करने से कन्या की पिता को रक्षा करनी चाहिए। इसके पश्चात् विवाह हो जाने पर स्त्री की रक्षा पति करे और बुढ़ापे में पुत्रों को रक्षा करनी चाहिए। यदि कोई भी न हो तो ज्ञाति-जन रक्षा करें। तात्पर्य यह है कि स्त्री को स्वतन्त्रता किसी भी अवस्था में स्वेच्छाचार करने की नहीं होती है ।।८५।।

पितृमातृसुतभ्रातृश्वश्रूश्वशुरमातुलैः।
हीना न स्याद्विना भर्त्रा गर्हणायान्यथा भवेत् ।।८६
पतिप्रियहिते युक्ता स्वाचारा संयतेन्द्रिया।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुपमं सुखम् ।।८७
सत्यामान्या सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत्।
सवर्णासु विधौ धर्मे ज्येष्ठा न विनेतराः ।।८८
दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः।
आहरेद्विधिवद्दाहानग्नीं चैवाविलम्बयन् ।।८९

पति वियुक्ता स्त्री पिता, माता, पुत्र भाई, सास, श्वसुर, मामा आदि से हीन नहीं रहनी चाहिए । उक्त जनों में से किसी भी एक के रक्षण में स्त्री का रहना आवश्यक है अन्यथा वह एकाकिनी रहने वाली निंदित हो जाती है ।। ८६ ।। अपने पति के मन के अनुकूल और हित में सदा तत्पर रहने वाली सुन्दर शोभनीय आचार वाली, अपनी समस्त इन्द्रियों पर संयम रखने वाली स्त्री इस संसार में परम यश की भागिनी होती है और मरने के पश्चात् भी अनुपम सुख प्राप्त किया करती है ।। ८७ ।। सवर्ण पत्नी के रहते हुए अन्य असवर्ण स्त्री के साथ कोई भी धर्माचरण का कार्य नहीं करना चाहिए । सवर्ण भी यदि कई स्त्रियाँ हों तो धर्म कार्य की विधि में सर्वदा ज्येष्ठ जो हो उसी के साथ करना उचित है अन्य मध्यमा और कनिष्ठाओं के साथ कभी न करे । ।। ८८ ।। सदाचारिणी भार्या के मृत हो जाने पर श्रौत तथा स्मार्त अग्नि से दाह कराकर पति को पुत्रोत्पत्ति न होने पर तथा यज्ञादि कर्म पूर्ण न होने पर पुनः शीघ्र ही अग्नि और भार्या का आहरण करना चाहिए । क्योंकि अन्याश्रम में प्रवेश करने का अधिकार नहीं रहता है । ८९ ।।

अथ वर्णजाति विवेक वर्णनम् ।

सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते वै सजातयः ।
अनिन्द्येषु विवाहेषु पुत्राः सन्तानवर्द्धनाः ।।९०
विप्रान्मूर्द्धाभिषिक्तो हि क्षत्रियाणां विशः स्त्रियाम् ।
अम्बष्ठः शूद्रां निषादो जातः पारशवोऽपि वा ।।९१
वैश्याशूद्रोस्तु राजन्यान्माहिष्योग्रौ सुतौ स्मृतौ ।
वैश्यात्तु करणः शूद्रां विन्नास्वेषविधिः स्मृतः ।।९२
ब्राह्मण्यां क्षत्रियात् सूतो वैश्याद्वैदेहकस्तथा ।
शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः सर्वधर्मवहिष्कृतः ।।९३
क्षत्रिया मागधं वैश्याच्छूद्रात् क्षत्तारमेव तु ।
शूद्रादायोगवं वैश्या जनयामास वै सुतम् ।।९४

माहिष्येण करण्यान्तु रथकारः प्रजायते ।
असत्सन्तस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः ।।९५
जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः सप्तमे पञ्चमेऽपि वा ।
व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चोत्तराधरम् ।।९६

सवर्ण ब्राह्मण आदि से सवर्ण ब्राह्मण्यादि में समुत्पन्न पुत्रादि सजातीय होते हैं । ब्राह्मण चारों वर्ण को स्त्रियों से, क्षत्रिय तीन वर्णों की स्त्रियों से, वैश्य दो वर्णों की से—ये सब विवाह अनिन्द्य नहीं कहे जाते हैं। अनिन्द्य विवाह वही है जो अपनी वर्ण की स्त्री से विधि पूर्वक विवाह किया जाता है । अतः अनिन्द्य विवाहों से जो पुत्र उत्पन्न होते हैं वे ही वंश की सन्तान बढाने वाले होते हैं ।।९०।। अब अनुलोमों का वर्णन किया जाता है । ब्राह्मण से क्षत्रिय वर्ण की विन्ना अर्थात् विवाहित स्त्री में उत्पन्न पुत्र मूर्धाविसिक्त नाम वाला कहा जाता है । ब्राह्मण से वैश्य वर्ण की विन्ना कन्या में समुत्पन्न पुत्र अम्बष्ठ और ब्राह्मण से विन्ना शूद्रवर्ण की कन्या में उत्पन्न पुत्र पारशव (निषाद) कहा जाता है । ब्राह्मण से क्षत्रिय वर्ण की कन्या में उत्पन्न पुत्र क्षत्रिय वर्ण ही होता है। ऐसे ही अन्य वर्णों की कन्याओं से भी समझना चाहिये ।। ९१ ।। क्षत्रिय वर्ण के पुरुष से वैश्य वर्ण की विन्ना अर्थात् विवाहित कन्या से उत्पन्न पुत्र माहिष्य नाम वाला कहा जाता है और शूद्र विन्ना कन्या से पैदा होने वाला पुत्र उग्र नाम वाला होता है। इसी प्रकार वैश्य वर्ण के पुरुष से विवाहित शूद्रा कन्या में उत्पन्न पुत्र करण नाम वाला कहलाता है ।। ९२ ।। अब विलोम विवाहोत्पन्न सन्तति का वर्णन किया जाता है । ब्राह्मणी में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण के पुरुषों से उत्पन्न हुए पुत्रों को क्रम से सूत, वैदेहक और चाण्डाल नाम वाला कहा जाता है । चाण्डाल सभी प्रकार के धर्मों से बहिष्कृत होता है ।। ९३ ।। क्षत्रिय वर्ण की स्त्री से वैश्य वर्ण के पुरुष द्वारा पैदा हुआ पुत्र मागध शूद्र वर्ण के पुरुष से उत्पन्न क्षत्तार और वैश्या में शूद्र वर्ण के पुरुष से आयोगव संज्ञक कहे जाते हैं ।।९४।।

अब तक सूत, वैदेहक, चाण्डाल, मागध, क्षत्तार और आयोगव ये छ प्रतिलोमज सन्तान बतायी गयी हैं । अब वर्णशङ्कर सन्तति बतलाते हैं । माहिष्य से करणी स्त्री में उत्पन्न रथकार कहा जाता है। मूर्धावसिक्तादि अनुलोमज सन्तति सूतादिक प्रतिलोमज सन्तति से उत्कृष्ट मानी जाती है क्योंकि मूर्धावसिक्तादिक का तो माता के वर्ण में होने वाले समस्त कर्मों पर पूरा अधिकार होता है। सूतादिक का वह भी नहीं होता है अत: ये उनसे अपकृष्ट माने जाते हैं ॥ ९५ ॥ उपर्युक्त मूर्धावसिक्त जातियों का उत्कर्ष पञ्चम, षष्ठ या सप्तम जन्म में ही होता है । इसी प्रकार जीवन वृत्ति के कर्मों से व्यत्यय होने पर, पञ्चम, छठे और सातवें जन्म में हीन वर्ण के कर्म से जीवन करके रहने पर जाति का साम्य भी हो जाता है । स्पष्टार्थ यह है कि मूर्धावसिक्त कन्या का ब्राह्मण से विवाह हो जावे और उससे भी कन्या हो, उसका भी ब्राह्मण वर्ण के पुरुष से विवाह होने पर जन्मान्तर में जाति का उत्कर्ष हो जाता है। यदि मूर्धावसिक्त कन्या में क्षत्रियादि वर्णों के पुरुषों से उत्पन्न संतति हो तो पूर्ववत अधर एवं उत्तर कही जाती है ॥ ९६ ॥

गृहस्थ धर्म प्रकरण वर्णनम्

कर्म स्मार्त्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही ।
दायकालाहृते वाऽपि श्रौत वैतानिकाग्निषु ॥ ९७
शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिर्द्विजः ।
प्रातः सन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ९८
हुत्वाग्नीन् सूर्यदैवत्यान् जपेन्मन्त्रान् समाहितः ।
वेदार्थानधिगच्छेत शास्त्राणि विविधानि च । ९९
उपेयादीश्वरञ्चैव योगक्षेमार्थसिद्धये ।
स्नात्वा देवान् पितृंश्चैव तर्पयेदर्चयेत्तथा ॥ १००
वेदाथर्वपुराणानि सेतिहासानि शक्तितः ।
जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थं विद्याञ्चाध्यात्मिकीं जपेत् ॥ १०१

बलिकर्म स्वधाहोमस्त्वाध्यायातिथिसत्क्रियाः ।
भूतपित्रपरब्रह्ममनुष्याणां महामखाः ॥१०२
देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेषाद् भूतबलिं हरेत् ।
अन्नं भूमौ श्वचाण्डालवायोभ्यश्चैव निक्षिपेत् ।

गृहस्थ को प्रतिदिन स्मृति से प्रतिपादित वैश्व देवादिक कर्म तथा पाक लक्षण लौकिक कर्म विवाह समय में गृहीत अग्नि में अथवा दाय काल में गृहीत अग्नि में करना चाहिए । श्रौत अर्थात् श्रुति में उक्त अग्नि होत्रादि कर्म आहवनीयाग्नि में करना चाहिए ॥ ९७ ॥ शरीर की आवश्यक क्रिया से निवृत्त होकर दन्तधावनादि करके शास्त्रोक्त विधि से शुद्धि करके द्विज को नित्य प्रातःकाल में सन्ध्योपासन करना चाहिए ॥ ९८ ॥ प्रातःकालीन सन्ध्योपासन करने के पश्चात् यथाविधि आहवनीय अग्नि में हवन करके एकाग्रचित होकर सूर्य दैवत्य मंत्रों का जप करना चाहिए । इसके अनन्तर वेदार्थ, निरुक्त व्याकरणादि और मीमांसादि विविध शास्त्रों का गृही द्विज को अध्ययन करना चाहिए ॥ ९९ ॥ द्विज को प्रतिदिन अपने योग क्षम और अर्थ सिद्धि के लिए ईश्वर की उपासना करनी चाहिए । मध्यान्ह में नदी आदि में स्नान कर देव, पितर और ऋषियों का तर्पण करना चाहिए ॥ १०० ॥ तदन्तर अथर्ववेद इतिहास और पुराणों में एक-एक करके या सबको, और जप यज्ञ की सिद्धि के लिए अध्यात्मिकी विद्या को तथा विधि जप करे ॥ १०१ ॥ गृही द्विज को नित्य भूत यज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, स्वाध्याय अर्थात् ब्रह्मयज्ञ और अतिथि-सत्कार अर्थात् मनुष्य यज्ञ—ये पांच महायज्ञ, पावन होने के लिये अवश्य करने चाहिये ॥ १०२ ॥ स्वगृहोक्त विधि से वैश्व देव होम करके उससे अवशिष्ट अन्न से भूत बलि करे और यथा शक्ति भूमि पर कुत्ता, चाण्डाल और कौओं के लिए अन्न डाल दे ॥ १०३ ॥

अन्नं पितृमनुष्येभ्यो देयमप्यन्वहं जलम् ।
स्वाध्यायमन्वहं कुर्यात् न पचेदन्नमात्मनः ॥१०४

बालं सु [स्व] वासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः ।
सम्भोज्यातिथिभृत्यांश्च दम्पत्योः शेषभोजनम् ॥१०५
आपोशानेनोपरिष्टादधस्तादश्नता तथा ।
अनग्नममृतञ्चैव कार्यमन्नं द्विजन्मना ॥१०६
अतिथित्वेऽपि वर्णेभ्यो देयं शक्त्यानुपूर्वशः ।
अप्रणोद्योऽतिथिः सायमपि वाग्भूतृणोदकैः ॥१०७
सत्कृत्य भिक्षवे भिक्षा दातव्या सुव्रताय च ।
भोजयेच्चागतान् काले सखिसम्बन्धिबान्धवान् ॥१०८
महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत् ।
सत्क्रियाञ्चासनं स्वादु भोजनं सूनृतं वचः ॥१०९
प्रतिसम्वत्सरं त्वर्घ्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः ।
प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञं प्रत्यृत्विजः पुनः ॥११०

प्रति दिन पितृगण और मनुष्यों के लिये अन्न देना चाहिए । यदि अन्न का अभाव हो तो जल ही देवे । नित्य स्वाध्याय अविस्मृति के लिए करना चाहिए । केवल अपने ही लिए अन्न का पाक न करें ॥ १०४ ॥ गृहस्थाश्रमी बालक, स्ववासिनी अर्थात् परिणय हो जाने पर पिता के घर में स्थिता, बृद्ध, गर्भिणी, रोगयुक्त और कन्या तथा अतिथि और भृत्यों को भोजन कराकर पीछे शेष को स्वयं खावे ॥ २०५ ॥ द्विजन्मा के द्वारा भोजन करने के समय आपोशान नाम वाले कर्म से अन्न को अनग्न और अमृत अवश्य ही करना चाहिए । भोजन के आरम्भ में "अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा"—इस मन्त्र से जलाचमन करने तथा भोजन के अन्त में "अमृत पिधानमसि स्वाहा"—जलचुलक पान करने को आपोशन कर्म कहते हैं । १०६ ॥ अतिथि रूप से आए हुए ब्राह्मादि वर्णों को यथा शक्ति अन्न देना चाहिए । सायंकाल में भी यदि अतिथि आ जावे तो उसका तिरस्कार न कर सत्कार करना चाहिए । यदि भोज्य वस्तु न भी हो तो भी वाणी, भूमि और आसन जलादि के द्वारा आतिथ्य करे ॥ १०७ ॥ भिक्षार्थी को साधारण रूप से भिक्षा दे ।

यदि भिक्षार्थी कोई सुव्रतधारी ब्रह्मचारी अथवा सन्यासी हो तो जल हाथ में लेकर स्वस्ति वाच्य पूर्वक सत्कार करके भिक्षा देनी चाहिए। भोजन के समय पर आए हुए मित्र और बान्धवों को भोजन कराना चाहिए ॥ १०८ ॥ श्रोत्रिय ब्राह्मण को सत्कार पूर्वक आसन देकर स्वादिष्ट भोजन करावे और आज आपके आगमन से हम धन्य हुए —ऐसे प्रिय वचन बोले ॥ १०९ ॥ घर पर आने पर प्रतिवर्ष विद्याव्रत स्नातक अर्थात् जिसने व्रत और वेद को समाप्त कर समावर्त्तन किया है। वह आचार्य राजा, मित्र और जामातादि की मधुपर्क द्वारा पूजा करनी चाहिए। ऋतिज्व की पूजा तो वर्ष के मध्य में भी प्रति यज्ञ करनी चाहिए ॥ २१० ॥

अध्वनीनोऽतिथिर्ज्ञेयः श्रोत्रियो वेदपारगः।
मान्यावेतौ गृहस्थस्य ब्रह्मलोकमभीप्सतः ॥१११
परपाकरुचिर्न स्यादनिन्द्यामन्त्रणादृते।
वाक्पाणिपादचापल्यं वर्जयेच्चातिभोजनम् ॥११२
अतिथि श्रोत्रियं तृप्तमासीमान्तादनुव्रजेत्।
अहः शेषं सहासीत शिष्टैरिष्टैश्च बन्धुभिः ॥११३
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां हुत्वाग्नीं स्तानुपास्य च।
भृत्यैः परिवृतो भुक्त्वा नातितृप्योऽथ संविशेत् ॥११४
ब्राह्मे मुहूर्तं उत्थाय चिन्तयेदात्मनोहितम्।
धर्मार्थकामान् स्वे काले यथाशक्तिन हापयत् ॥११५
विद्याकर्मवयोबन्धुवित्तैर्मान्या यथाक्रमम्।
एतैः प्रभूतैः शूद्रोऽपि वार्द्धक्ये मानमर्हति ॥११६
वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगिवरचक्रिणाम्।
पन्थादेयोनृपस्तेषां मान्यः स्नातस्तु भूपतेः ॥११७

मार्ग में वर्त्तमान अतिथि होता है। समस्त वेद का पारगामी श्रोत्रिय ब्रह्म लोक की कामना वाले गृहस्थ के ये दोनों मान्य अतिथि होते हैं ॥ १११ ॥ अनिन्द्य अर्थात् प्रशस्त आमन्त्रण के बिना पराए के द्वारा बनाए हुए भोजन में रुचि वाला नहीं होवे। वाणी, पैर, हाथ आदि

की चपलता और अधिक भोजन करना त्याग देना चाहिए । वाक् चापल्य से मिथ्याभाषणादि, पाणिचापलस्य से परदार द्रव्यादि का ग्रहण और पादचापल्य से निर्माल्य लङ्घनादि समझना चाहिए। 'च' से शिश्न नेत्रादि भी ग्रहण किए जाते हैं ।। १११ ।। श्रोत्रित यदि अतिथि हो तो उसको तृप्ति पूर्वक भोजन करा कर अपने ग्राम की सीमा तक जाकर उसे विदा करना चाहिए । शिष्ट पुरूष अर्थात् इतिहास पुराणादि के ज्ञाता, काव्यकथादि के विद्वान और बन्धुओं के साथ दिवसान्त तक बैठना चाहिए ।। ११३ ।। सायंकाल के समय भी पूर्वोक्त विधि से सन्ध्योपासन करके हवनीयादि से अग्नि में हवन करके और उनका उपस्थान करने के पश्चात् भृत्यादि पूर्वोक्त सब के साथ यथाविधि अत्यन्त तृप्ति से भोजन न करे और दाय व्ययादि गृह चिन्ताओं से निवृत्त होकर शयन करे ।। ११४ ।। रात्रि के पिछले प्रहर के अर्ध भाग के समाप्त होने पर ब्रह्ममुहुर्त में प्रातः काल उठ कर अपने हित तथा वेदार्थ के संयमों का चिंतन करना चाहिए और अपने समुचित समय पर यथाशक्ति धर्मार्थ कामों का त्याग नहीं करे ।। ११५ ।। श्रौत एव स्मार्त कर्म वाले, अधिक वय वाले अर्थात् सत्तर वर्ष से अधिक आयु वाले, बन्धु और ग्राम रत्नादि से युक्तों का क्रम से सम्मान करना चाहिए। उक्त प्रभूत गुणों से युक्त शूद्र भी वार्धक्य में मान करने योग्य होता है ।। ११६ ।। वृद्ध, भार (बोझा) वाले, राजा विद्या व्रत स्नातक तथा स्नान किए हुए, स्त्री, रोग युक्त, वर अर्थात् विवाहोद्यत और गाडी वाले को मार्ग दे देना चाहिए । उक्त लोग सामने आते हों तो स्वयं मार्ग छोड़ देना चाहिए। वृद्धादि के साथ में राजा मान्य होता है और राजा से भी अधिक स्नातक मान्य होता है ।। ११७ ।।

इज्जाध्ययनदानादि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च ।
प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा ।।११८
प्रधानं क्षत्रिये कर्म प्रजानां परिपालनम् ।
कुसीदकृषिवाणिज्यं पशुपाल्यं विशः स्मृतम् ।।११९

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तयाऽजीवन् वणिग्भवेत् ।
शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेद्द्विजातिहितमाचरन् ॥१२०
भार्यारतिः शुचिर्भृत्यभर्ता श्राद्धक्रियारतः ।
नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान् न हापयेत् ॥१२१
अहिंसा सत्यमस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
दानं दया दमः क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥१२२
वयोबुद्ध्यर्थवा वेषश्रुताभिजनकर्मणाम्
आचरेत् सदृशीं वृत्तिमजिह्मामशठां तथा ॥१२३
त्रैवार्षिकाधिकान्नो यः स तु सोमं पिवेद्द्विजः ।
प्राक्सौमिकाः क्रियाः कुर्याद्यस्यान्नं वार्षिकं भवेत् ॥१२४

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के याग, अध्ययन और दानादि के साधारण कर्म होते हैं। ब्राह्मण के दान लेना, यागादि कराना, अध्यापन कराना ये विशेष कर्म होते हैं ॥ ११८ ॥ क्षत्रिय का चौरादि से प्रजा का संरक्षण और दीन दरिद्रों के लिए वृत्ति (रोजी) देना मुख्य कर्म हैं वैश्य के व्याज द्वारा धन की वृद्धि अर्थात् देन-लेन करना और वाणिज्य करना तथा पशु पालन करना कर्म होता है ॥ ११९ ॥ शूद्र के धर्म और वृत्ति के लिए द्विजाति की सेवा करना मुख्य कर्म हैं । जिसमें ब्राह्मण की शुश्रूषा करना परम धर्म होता है यदि सेवा वृत्ति से जीवन निर्वाह न हो तो वणिग्वृत्ति या अन्य अनेक प्रकार के शिल्प (हस्तकारी) कर्मों का द्विजाति के लिए करते हुए जीवन निर्वाह करे ॥ ११० ॥ अपनी भार्या में रति वाला, भृत्यादि का भरण करने वाला, श्राद्ध क्रिया अर्थात् नित्य नैमित्तिक काम्य कर्मों से अनुराग रखने वाला शूद्र 'नमस्कार''—इन मंत्र से पूर्वोक्त पाँच महायज्ञों का कभी त्याग न करे ॥ १२१ ॥ अब समस्त वर्णों के साधारण धर्म बतलाते हैं । अहिंसा, सत्यभाषण, चोरी न करना, बाह्य और आन्तरिक शुद्धि, इन्द्रियों को वश में रखना, दान देना, प्राणि मात्र पर दया करना, अन्तःकरण का संयम, अपकार करने पर भी चित्त में विकार न करना —ये सब धर्म साधन

होते हैं ॥ १२२ ॥ बाल्ययौवनादि अवस्था, लौकिक वैदिक व्यवहारों में स्वाभाविक बुद्धि, गृहक्षेत्रादि अर्थ कथन, वेष अर्थात् वस्त्रमाल्यादि धारण शास्त्र-श्रवण, कुल, अपनी रोजी के लिए कर्म के अनुसार ही सरल कपटादि से रहित और मात्सर्यविहीन वृत्ति का आचरण करना चाहिए और उपर्युक्त के विपरीत कुछ भी न करे ॥ १२३ ॥ अब स्मार्तकर्म कहने के पश्चात् श्रौत कर्म बतलाते हैं। तीन वर्ष तक निर्वाह करने लायक अन्न जिसके पास हो सोमयाग वही करे। अल्प धन वाला सोम पान करने का प्रयास न करे। जो द्विज एक वर्ष पर्यन्त निर्वाह योग्य अन्न रखता हो उसे सोमयाग से पूर्व होने वाले अग्नि होत्र दर्श पूर्णमासादि कर्म ही करने चाहिए ॥ १२४ ॥

प्रतिसम्वत्सरं सोमः पशुः प्रत्ययनं तथा।
कर्तव्याग्रयेणेष्टिश्च चातुर्मास्यानि चैव हि ॥१२५
एषामसम्भवे कुर्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः।
हीनकल्पं न कुर्वीत सति द्रव्ये फलप्रदम् ॥१२६
चाण्डालो जायते यज्ञकारणाच्छूद्रभिक्षिता।
यज्ञार्थं लब्धमददद्भासः काकोऽपि जायते ॥१२७
कुशूल कुम्भीधान्यो वा त्र्यैहिकोऽश्वस्तनोपि वा।
जीवेद्वापि शिलोञ्छेन श्रेयानेषां परः परः ॥१२८

प्रत्येक सम्वत्सर में सोम याग करना चाहिए और प्रत्येक दक्षिणोत्तर अयन में पशुओं सम्बन्धी याग करना चाहिये। सस्योत्पत्ति के समय आग्रत्तिणेष्टि करनी चाहिए तथा चातुर्मास्य प्रति वर्ष करने चाहिये ॥ १२५ ॥ यदि उपर्युक्त सोम यागादि करना सम्भव न हो तो उस समय द्विज को वैश्वानरी इष्टि करनी चाहिए। द्रव्य के होने पर ही समर्थ को मुख्य-कर्म फलप्रद होता है, हीन कल्प को कभी नहीं होता है ॥ १२६ ॥ शूद्र से याचना कर प्राप्त किये हुए धन से यज्ञ करने पर जन्मान्तर में चाण्डाल होता है। यज्ञ के लिए त्रिवर्ण से प्राप्त धन का यज्ञ में पूर्ण तया विनियोग न करने वाला द्विज दूसरे जन्म में वनमुर्गा या कौआ होता है ॥ १२७ ॥

जिसके पास बारह दिन तक कुटुम्ब के भरण भोग्य धान्य होता है वह कुशूल कहलाता है, छः दिन पर्यन्त भरणभोग्य धान्य वाला कुम्भी कहा जाता है, तीन दिन तक भरणयोग्य धान वाला त्र्याहिक और जिसके पास कल सुवह योग्य धान्य न हो वह अश्वस्तन कहा गया है। इस तरह चार प्रकार के गृहस्थ शिलोग्रह वृत्ति से जीवन यापन करें। इनमें उत्तरोत्तर प्रशस्त होता है ॥ १२८ ॥

स्नातक धर्म प्रकरण वर्णनम्

न स्वाध्याय विरोध्यर्थमीहेत न यतस्ततः ।
न विरुद्ध प्रसङ्गेन सन्तोषी च सदा भवेत् ॥१२६
राजान्तेवासियाज्येभ्यः सीदन्निच्छेद्धन क्षुधा ।
दम्भिहैतुकपाषण्डिबकवृत्तींश्च वर्जयेत् ॥१३०
शुक्लाम्बरधरो नीचकेशश्मश्रु नखः शुचीः ।
न भार्य्यादर्शनेऽश्नीयान्नैकवासा नसंस्थितः ॥१३१
न संशयं प्रपद्येत नाकस्मादप्रियं वदेत् ।
नाहितं नानृतं चंव न स्तेनः स्यान्नवार्द्धुषिः ॥१३२
दाक्षायणीं ब्रह्मसूत्री वेणुमान् सकण्मडलुः ।
कुर्य्यात्प्रदक्षिणां देवमृद्गो विप्रवनस्पतीन् ॥१३३
न तु मेहेन्नदीच्छायावत्मंगोष्ठाम्बुभस्मसु ।
न प्रत्यर्काग्निगोसोमसन्ध्याम्बु स्त्रीं द्विजन्मनः ॥१३४
नेक्षेतार्कं न नग्नां स्त्रीं न च संस्पृष्टमैथुनान् ।
नच मूत्रपुरीषं चा नाशुचीराहुतारकाः ॥१३५

अब विद्या स्नातक, व्रतस्नातक और विद्याव्रत स्नातकों की विधि निषेध स्वरूप धर्मों का वर्णन करते हैं। अप्रतिषिद्ध भी धन यदि स्वाध्याय का विरोधी हो तो स्नातक को उसकी इच्छा नहीं करनी चाहिए। अविदित आचार वाले पतित आदि से धन प्राप्त करने की इच्छा न करे। धूतादि के विपरीत प्रसग से भी अर्थ की इच्छा नहीं करनी चाहिए और सर्वदत संतोष वाला होकर ही रहे ॥ १२६ ॥ क्षुधा से पीड़ित

स्नातक को राजा, अपना अन्तेवासी अर्थात् छात्र और यजन कराने की योग्यता वाले से धन प्राप्त करने की इच्छा करनी चाहिए। वैदिक एवं लौकिक समस्त कार्यों में स्नातक को संसार को ठगने के लिए कर्मानुष्ठान करने वाले दम्भी, कुयुक्ति से वैदिककर्म में संशय उत्पन्न करने वाले हैतुक, त्रैविद्य विरुद्ध आश्रम ग्रहण करने वाले पाखण्डो और नीच को दृष्टि कर सदा स्वार्थ साधन में परायण मिथ्या नम्रता वाले वक वृत्ति तथा विकर्मस्थ प्रतिषिद्ध वस्तुओं का सेवन वाले वैडाल वृत्तिक शठों का त्याग कर देना चाहिए ॥ १३० ॥ स्नातक को सदा धौत वस्त्र धारण करने वाला रहना चाहिए और कटे हुए केश श्मश्रु नाखून वाला, सदा बाह्य और आभ्यान्तर शुद्धि वाला रहे। अपनी भार्या के सामने स्थित होते हुए कभी भोजन न करे। कभी एक वस्त्र धारण करके तथा खड़ा होकर नहीं भोजन करना चाहिए॥ १३१ ॥ किसी समय भी प्राणों को विपत्ति देने वाला सँशय युक्त नहीं करे। बिना किसी खास कारण के अकस्मात् किसी भी पुरुष अथवा स्त्री से उद्वेग उत्पन्न करने वाले अप्रिय वचन न बोले तथा अहित एवं अमृत प्रिय वचन भी नहीं बोलना चाहिए। स्नातक चौर कर्म वाला और प्रतिषिद्ध वृत्ति से जीवन निर्वाह करने वाला न वने। १३२ ॥ सुवर्ण के कुण्डल, यज्ञोपवीत, बांस का दण्ड और जल सहित कमण्डल धारण करने वाला रहे। देवता, तीर्थ से उद्धृत मृत्तिका, गौ, ब्राह्मण और अश्वत्थ आदि को अपने से दाहिने भाग में रखकर चलना चाहिए॥ १३३ ॥ नदी का तट, पथिकों को सुख देने वाली छाया, मार्ग गौ आदि के रहने का स्थान, जल और भस्म में कभी मूत्र एवं मल का त्याग नहीं करना चाहिए और सूर्य, अग्नि, गौ, चन्द्रमा, सन्ध्याम्बु, स्त्री और द्विज के समक्ष मूत्र-मल का कभी उत्सर्ग नहीं करे ॥ १३४ ॥ उदयास्त समय में, राहुग्रस्त समय में, जल में प्रतिबिम्बित और मध्यान्हवर्त्ती सूर्य को न देखे। उपभोग से अतिरिक्त समय में नग्न स्त्री को तथा उपभोग की हुई स्त्री को नहीं देखना चाहिए। मल एवं मूत्र को न

देखे और अशुचि राहुतारका को एवं जल में अपनी परछाई नहीं देखना चाहिए ॥ १३५ ॥

अयं मे वज्र इत्येवं सर्वमन्त्रमुदीरयन् ।
वर्षत्यप्रावृतो गच्छेत् स्वप्यात् प्रत्यकशिरा न च ॥१२६
ष्ठीवनासृकशकृन्मूत्ररेत्तांस्यप्सु न निक्षिपेत् ।
पादौ प्रतापयेन्नाग्नौ न चैनमभिलंघयेत् ॥१३७
जलं पिवेन्नाञ्जलिना शयानं न प्रबोधयेत् ।
नाक्षैः क्रीड़ेन्न धर्म्मघ्नैर्व्याधितैर्व्वा न संविशेत् ॥१३८
विरुद्धं वर्जयेत् कर्म्म प्रेतधूम नदीतरम् ।
केशप्रस्म तुषाङ्गार कपालेषु च सस्थितम् ॥१३९
नाचक्षीत धयन्तीं गां नाद्वारेण विशेत् क्वचित् ।
न राज्ञः प्रतिगृह्णीयाल्लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥१४०
प्रतिग्रहे सूनिचक्रिध्वजिवेश्या नराधिपाः ।
दुष्टा दशगुणं पूर्व्वात् पूर्व्वादिते यथोत्तरम् ॥१४१
अध्यायानामुपाकर्म्म श्रावण्यां श्रवणेन वा ।
हस्तेनौषधिभावे वा पञ्चम्यां श्रावणस्य तु ॥१४२

मेघ के बरसने के समय में "अयं में वज्रः पा मानमयहन्तु"—इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए बिना किसी आच्छादन के जाना चाहिए किन्तु दौड़ना नहीं चाहिए । पश्चिम तथा उत्तर को ओर सिर करके कभी शयन नहीं करे ॥ १३६ ॥ थूक, रक्त, मल, मूत्र, रेतस (वीर्य) आदि को कभी जल में न डाले, अग्नि में पैरों को न तपाये और न अग्नि को लांघे ॥ १२७ ॥ जल आदि किसी भी पाने योग्य वस्तु को दोनों हाथों की अञ्जलि से नहीं पीना चाहिए । सोते हुए को न जगावे और पाशों से धूतादि क्रीड़ा न करे । धर्म के नाशक पशुलम्भनादि न खेले और पतित तथा व्याधिग्रस्त के साथ शयन नहीं करे ॥ १३८ ॥ जनपद, ग्राम कुलाचार के विरुद्ध कर्म को वर्जित कर देना चाहिए । प्रेतधूम और नदी का तैरना भी त्याग देना चाहिए । केश, भस्म, तुष, अंगार और कपाल में कभी अवस्थान नहीं

करना चाहिए ।। १३९ ।। अपने वत्स को दूध पिलाये हुई गौ को कभी दूसरे को नहीं बताना चाहिए और नहीं हटाना चाहिए। बिना द्वार के मार्ग या पथ से किसी भी नगर, ग्राम या मन्दिर में प्रवेश नहीं करे। अत्यन्त कंजूस और शास्त्रों की मर्यादा विधि के अतिक्रमण करने वाले राजा से प्रतिग्रह नहीं लेवे ।। १४० ।। प्रतिग्रह (दान) ग्रहण करने के समय में विचार कर लेना चाहिए। सूनी-प्राणियों की हिंसा में परायण चक्री अर्थात् तेली, ध्वजी अर्थात् सुरा विक्रय करने वाला वेश्या और राजा—इन पाँचों में उत्तरोत्तर दश गुण दोष युक्त होते हैं अर्थात् सूनी से दशगुना दुष्ट चक्री और अन्य इसी क्रम से हैं ।। १४२ ।। वेदों के उपाक्रम अर्थात् वेदों के संस्कार करने वाला कर्म श्रावण मास की पौर्णमासी में अथवा श्रवण नक्षत्र से युक्त दिन में या श्रावण की हस्त नक्षत्र से युक्त पञ्चमी में स्वगृह्योक्त विधि से करना चाहिए। श्रावण मास में वर्षा के अभाव वश यदि औषधियों का प्रादुर्भाव न हो तो भाद्रपद में श्रवण नक्षत्र में करे ।। १४२ ।।

पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा ।
छलान्तेच्छन्दसां कुर्य्यात्तदुत्सर्गं विधिं वहिः ।।१४३
त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु ।
उपाकर्म्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये मृते ।।१४४
सन्ध्यागर्जितनिर्घात भूकम्पोल्कानिपातने ।
समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च ।।१४५
पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके ।
ऋतुसन्धिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ।।१४६
पशुमण्डूक नकुलमार्जारश्वाहि मूषिकैः ।
कृतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये ।।१४७
श्वक्रोष्टु गर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने ।
अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके ।।१४८
देशेऽशुचावात्मनि च विद्युत्स्तनितसंप्लवे ।
भुक्त्वाऽर्द्रपाणिरम्भोऽन्तरर्द्धरात्रेऽतिमारुते ।।१४९

पांशुवर्षे दिशां दाहे सन्ध्यानीहारभीतिषु ।
धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते । १५०
खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे ।
सप्तत्रिंशदध्यायनेतां स्तात्कालिकान् विदुः ।।१५१

पौषमास के शुक्ल पक्ष में रोहिणी नक्षत्र में अथवा पौषमास की कृष्णाअष्टमी तिथि में ग्राम से बाहिर जल के समीप वेदों का स्वगृह्योक्त विधि से अध्ययन परित्याग स्वरूप उत्सर्ग करे ।। १४३ ।। उपाकर्म के उत्सर्ग त्याग) करने पर शिष्य, ऋत्विग्, गुरु और बन्धु के मृत हो जाने पर तथा स्वशाखा ध्यायी श्रोत्रिय के मृत होने पर, आकाश में तीन दिन का अनध्याय होता है ।। १४४ ।। प्रातः सन्ध्या के समय मेघ की गर्जना होने पर, आकाश में किसी उत्पात की ध्वनि होने पर, भूमि के कम्प होने पर, उल्कापात होने पर मन्त्रभाग या ब्राह्मण भाग की समाप्ति में तथा कारण्यकोपनिषद् के अध्ययन में एक दिन रात का अनध्याय होता है ।। १४५ ।। अमावस्या में, पौर्णमासी में चतुर्दशी में अष्टमी तिथि में चन्द्र सूर्य ग्रहण में, वसन्तादि ऋतुओं की सन्धि में प्रति—पदातिथि में और श्राद्धिक भोजन करने में या उसका प्रतिग्रह लेने पर एक दिन रात का अनध्याय होता है ।। १.६ ।। वेदाध्येता को पशु, मेंढ़क, न्योला, कुत्ता, सर्प, बिल्ली और चूहादि का अन्तरागमन हो जाने पर, इन्द्रध्वज के आरोपण करने के समय तथा ध्वज के उच्छ्रय दिवस में एक दिन और रात का अनध्याय होता है ।।१४७।। अब तात्कालिक वेदानध्यायों का वर्णन किया जाता है । कुत्ता, शृगाल, गधा, उल्लू, सामगान, सात तात वाली वीणा-विशेष और शोकादि से पीडित की रोदन ध्वनि होने पर, मूत्रादि अपवित्र, शव, शूद्र शूद्र से भी निकृष्ट, श्मशान और पातकी—इत छै के सन्निकट होने पर, अध्ययन के लिए अभिमत स्थान के अपवित्र हो जाने पर, अध्येता के अशुक्ति होने पर, विद्युत के बार-बार चमकने पर, मेघ गर्जन के उत्पन्न ह ने पर, भोजन करके गीले हाथ धोने पर, जल के मध्य में अर्धरात्रि में अत्यन्त तेजी से वायु के चलने पर, धूलि वर्षा के उत्पात पर, दिशाओं

के दाह होने पर, मदिरादि की दुर्गन्ध में, किसी शिष्ट पुरुष के घर में आने पर, गधा, ऊंट, रथादियान, हाथी, घोड़ा, नौका, ऊसर या मरुभूमि, वृक्ष के आरोहण या आक्रमण में अनध्याय होता है। ये कुल सैंतीस तात्कालिक अनाध्याय हैं जो निमित्त काल ही तक ही होते हैं ।। १४८—१५१ ।।

देवर्त्विकस्नातकाचार्य्यराज्ञां छायां परस्त्रियाः ।
नाक्रामेद्रक्त विण्मूत्रष्ठीवनोद्वर्तनादि च ॥१५२
विप्राहिक्षत्रियात्मानौ नावलयाः कदाचन ।
आमृत्योः श्रियमाकाक्षेन्न कञ्चिन्मर्म्मणि स्पृशेत् ॥१५३,
दूरादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि समुत्सृजेत् ।
श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक् नित्यमाचारमाचरेत् ॥१५४
गोब्राह्मणानलान्नानि नोच्छिष्टानि पदास्पृशेत् ।
न निन्दा ताड़ने कुर्य्यात्सुतं शिष्तञ्च ताड़येत् ॥१५५
कर्म्मणा मनसा वाचा यत्नाद्धर्म्मं समाचरेत् ।
अस्वर्ग्यं, लोकविद्विष्टं धर्म्ममप्याचरेन्न तु ॥१५६

देव प्रतिमा, ऋत्विक् स्नातक, आचार्य, राजा और पर स्त्री की छाया तथा रुधिर, विष्ठा, मूत्र, ष्ठीवन (थूक) उद्वर्तन (उबटनादिव्य) को कभी न लांघे ।। १५३ ।। बहुश्रुत ब्राह्मण, सर्प, राजा और स्वयं अपनी आत्मा की कभी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। जब तक जीवित रहे तब तक श्री की इच्छा करे और किसी को भी मार्मिक वेदना न दे अर्थात् किसी के दुश्चरित को प्रकट न करे ।। १५३ ।। भोजन से बचा हुआ उच्छिष्ट, विष्ठा, मूत्र जिससे पैर धोये गये हों वह जल घर से दूर डालना चाहिए। श्रुति एवं स्मृति के द्वारा प्रतिपादित आचार को नित्य ही भली भाँति करना चाहिए ।। १५४.। गौ, ब्राह्मण, अग्नि और खाने के योग्य अन्न को अशुचि अवस्था में स्पर्श न करे और शुचि अवस्था में भी पैर से कभी न स्पर्श करे। आपस में निन्दा तथा ताड़ना कभी न करे। पुत्र और शिष्य को शिक्षा देने के लिये ताड़ना करे ।। १५५ ।। यथाशक्ति शरीर से धर्म का आचरण करे,

मन से ध्यान करें और वाणी से धर्म चर्चा करें। धर्मानुसार विहित भी ऐसा कोई कर्म न करे जो लोकाचार के विपरीत हो चाहे वह धर्म कृत्य स्वर्ग प्रदान करने वाला ही क्यों न हो ॥ १५६ ॥

मातृपित्रतिथिभ्रातृज्ञातिसम्बन्धि मातुलः।
वृद्धबालातुराचार्य्यवैद्यसंश्रितबान्धवैः ॥१५७॥
ऋत्विक्पुरोहितापत्य भार्य्यादास सनाभिभिः।
विवादं वर्जयित्वा तु सर्वा लोकाञ्जयेद् गृही ॥१५८
पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात् परवारिषु च ॥
स्नायान्नदी देवखातगर्त्ते प्रस्रवणेषु च ॥१५९
परशय्यासनोद्यानगृहयानानि वर्जयेत्।
अदत्तान्याग्निहीनस्य नान्नमद्यादनापदि ॥१६०
कदर्य्यवद्धचौराणां क्लीवरङ्गवतारिणाम्।
वैणाभिशक्तवार्द्धूषिगणिकागणदीक्षिणाम् ॥१६१
चिकित्सकातुरक्रुद्धपुंश्चलीमत्तविद्विषाम् ॥
क्रूरोग्रपतितव्रात्यदाम्भिकोच्छिष्टभोजिनाम् ॥१६२
अवीरस्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनाम्।
शस्त्रविक्रयिकर्म्मारतुन्नवायश्वजीविनाम् ॥१६३

माता, पिता, अतिथि, भाई, भगिनी आदि सुहागिन स्त्रियाँ, जामाता आदि, मामा, सोलह वर्ष से छोटा बालक, रोगी उपनयन कराने वाला आचार्य, वैद्य, वृद्ध, जो सत्तर वर्ष से अधिक उम्र वाला हो, जीविका देने वाला, माता पिता के पक्ष वाले बान्धव, याजक, पुरोहित, पुत्रादि सन्तति, भार्या, दास, सहोदर भाई के साथ वाक् कलह त्याग कर गृहस्थ प्राजापत्यादि समस्त लोकों की प्राप्ति करने का अधिकारी होता है ॥ १५७ - १५८ ॥ दूसरों के द्वारा बनाये हुए तडागादि में पाँच मिट्टी के पिण्डों को बाहिर डाले बिना स्नान नहीं करना चाहिए। नदी, पुष्करिणी, ह्रद, पर्वत से निकले हुए झरना में पंच पिण्डों के उद्धरण के बिना भी स्नान कर लेवे ॥ १५९ ॥ दूसरे की शैया, आसन, उद्यान, गृह और रथादि यान का बिना स्वामी की अनुमति के उपभोग

नहीं करना चाहिए। आपत्ति काल के अतिरिक्त समय में श्रौत-स्मरण अग्नि के अधिकार से रहित शूद्र और प्रतिलोमज के अन्न को नहीं खाना चाहिए ।। १६० ।। धर्म कृत्य को त्याग कर अपने आप को भार्या पुत्रादि को पीड़ा देकर अर्थ संग्रह करने वाले का, निगड़ादि से बद्ध का, चोर का, नपुंसक का, नट चारण लल्लादि का, बाँस काटकर रोजी कमाने वाले का, पातकों के कारण अभियुक्त का, निषिद्ध वृत्ति वाले का वेश्या का, बहुयाजक का अन्न नहीं खावे ।। १६१ ।। भिषिग्वृत्ति करने वाला, महान् रोग वाला, अत्यन्त क्रोधी, व्यभिचारिणी विद्यादि के कारण गर्वित, शत्रु, क्रूर, वाणी आदि से उद्वेग उत्पन्न कर देने वाला, पतित, व्रात्य अर्थात् सावित्री के अधिकार से हीन, वञ्चक और उच्छिष्ट भोजन करने वाला—इनका अन्न कभी नहीं खाना चाहिए ।। १६२ ।। पुत्र पुत्रादि से रहित से स्वतन्त्र स्त्री सुनार, स्त्री के वश में रहने वाला, ग्राम याजी अर्थात् बहुतों का उपनयन कराने वाला, शास्त्र विक्रय करने वाला, लुहार, बढ़ई, कपड़े धुनने वाला, दर्जी और श्ववृत्ति वाला—इनका भी अन्न नहीं खाना चाहिए ।। १६३ ।।

नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम् ।
चैलधावसुराजीविसहोपपतिवेश्मनाम् ।।१६४
पिशुनानृतिनोश्चैव तथा चाक्रिकवन्दिनाम् ।
एषामन्नं न भोक्तव्यं सोमविक्रयिणस्तथा ।।१६५
अनर्चितम् वृथामांसं केशकीटसमन्वितम् ।
शुक्तं पर्य्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितेक्षितम् ।।१६६
उदक्यास्पृष्टसंघुष्टं पर्य्यायान्नञ्च वर्जयेत् ।
गाघ्रातं शकुनोच्छिष्टं पद स्पृष्टञ्च कामतः । १६७
शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्द्ध सीरिणः ।
भोज्यान्नानापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत् ।।१६८
अन्नं पर्युंषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंस्थितम् ।
अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरस विक्रियाः ।।१६९

सन्धिन्यनिर्दशाऽवत्सगोः पयः परिवर्जयेत् ।
औष्ट्रमैकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम् ॥१७०॥१८१

निर्दय, राजा, धोबी, कृतघ्न, प्राणियों के वध से रोजी कमाने वाला, वस्त्र निर्णेजन करने वाला, मद्य बेचने वाला, परदार प्रेमी, उपपति के साथ घर वाला—इनका भी अन्न कभी नहीं खाना चाहिए ॥ १६४ ॥ दूसरों के दोषों का उद्घाटन करने वाला, मिथ्यावादी, तेली, बन्दी अर्थात् स्तवन करने वाला और सोमलता का विक्रय करने वाला—इनका अन्न नहीं खाना चाहिए ॥ १६५ ॥ गर्भदास गौओं का पालन करने वाला, पिता पितामहादि के क्रम से चले आना वाला कुल का मित्र, खेती में साझी, नाई और जो मन वाणी तथा शरीर द्वारा अपने आप को निवेदन कर चुका हो—शूद्र होते हुए भी इन छै का अन्न खाने योग्य होता है। बिना सत्कार के दिया हुआ, वृथा माँस, केश एव कीड़ों से युक्त, द्रव्यादि के संयोग से अम्ल, वासी, उच्छिष्ट अर्थात् खाने से बचा हुआ, कुत्ते से स्पर्श किया हुआ, पतित की दृष्टि से देखा हुआ, रजस्वला स्त्री द्वारा स्पर्श किया हुआ कोई भोजन करने वाला है—इम तरह घोषणा कर दिया हुआ और अन्य के बहाने से दिया हुआ अन्न त्याग देना चाहिए। गौ द्वारा सूँघा हुआ काकादि के द्वारा उच्छिष्ट किया हुआ और जान-बूझकर पैर से स्पर्श किया हुआ अन्न खाने को वर्जित होता है ॥ १६६—१६८ ॥ पर्युषित अर्थात् वासी अन्न वर्जित है किन्तु वह यदि घृतादि स्नेह से युक्त हो तो अधिक समय का भी खाने के योग्य होता है। गोधूम अर्थात् गेहूं, जौ और गोरस के विक्रिया प्राप्त भी मण्ड सत्तू आदि घृतादि चिकनाई के बिना भी भोजन के योग्य होते हैं ॥ १६९ ॥ सन्धिनी अर्थात् वृषा कान्ता गौ, (जो एक बार ही दुह जावे तो दूसरे बछड़े से सन्धोभान हो वह भी सन्धिनी गौ होती है)तथा व्याई हुई जिसके प्रसव को दस दिन न हुए हों, बिना बछड़े वाली गौ—ऐसी गौओं का दूध वर्जित होता है। ऊँटनी, एक शफ वाली घोड़ी आदि, स्त्री अर्थात् बकरी के अतिरिक्त समस्त दो स्तन

वाली, वन में उत्पन्न होने वाली भैंस को छोड़कर समस्त पशु और रजो-
धर्म वाली का दूध वर्जित है ।। १७०-१८१ ।।

अथ द्रव्यशुद्धिप्रकरणवर्णनम्

सौवर्णराजताब्जानामूर्द्ध्वंपात्रग्रहाश्मनाम् ।
शाकरज्जुमूलफलवासोविदलचर्म्मणाम् ।।१८२
पात्राणाञ्चमसानाञ्च वारिणा शुद्धिरिष्यते ।
चरुस्रुक्स्रुवसस्नेह पात्रण्युष्णेन वारिणा ।।१८३
स्फ्यशूर्पाजिनधान्यानां मुखलोदूखलानसाम् ।
प्रोक्षणं संहतानाञ्च वहूनां चैव वाससाम् ।।१८४
तक्षणं दारुशृङ्गास्थ्नां गोवालैः फलसम्भुवाम् ।
मार्ज्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्म्मणि ।।१८५
सोषैरुदक गोमूत्रैः शुद्धत्याविककौशिकम् ।
सश्रीफलैरंशुपट्ट सारिष्टैः कुतपन्तथा ।।१८६
सगौरसर्षपैः क्षौमं पुनः पाकात् महीमयम् ।
कारुहस्त शुचिः पण्यं भैक्षं योषिन्मुखस्तथा ।।१८७
भूशुद्धिर्मार्जनाद्दाहात् कालाद् गोक्रमणात्तथा ।
सेकादुल्लेखनाल्लेपात्गृहं मार्जनलेपनात् ।।१८-

अब विभिन्न प्रकार के यज्ञ सम्बन्धी पात्रों की शुद्धि का वर्णन किया जाता है । स्वर्ण, चाँदी के निमित पात्र, मुक्ताफल शङ्ख शुक्ति आदि यज्ञ के द्रोण कलश उलूखलादि, षोड़शी आदि यज्ञीय पात्र, पाषाण वास्तूक (वथुआ) आदि शाक, रज्जु, अदरक आदि मूल, आम्रादि फल, वस्त्र वाँसादि तथा बांस से बनाये हुए भस्त्रा आदि, अजादि का चर्म, चमस— इन सब के उच्छिष्ट हो जाने पर केवल जल से इनकी शुद्धि हो जाती है । स्थाली, स्रुक् और घृतादि की चिकनाई से लिप्त पात्रों की गर्म जल से क्षालन करने पर शुद्धि होती है ।। १८२-१८३ ।। खदिर खड्ग-शूर्प-चर्म-व्रीही आदि धान्य-मूस-

लोलूखल और समूह में अधिक धान्य तथा वस्त्रों की जलके मोक्षण मात्र से ही शुद्धि हो जाती है ।। १८४ ।। काष्ठ, मेष, महिषादि का सींग तथा हाथी आदि के दाँतों की शुद्धि जिस भाग में मूत्रादि का स्पृश हुआ है उस भाग के उपनयन से हो जाती है । विल्वादि फलों से निष्पन्न पात्रों की गाय के पूँछ के बालों से घर्षण कर देने पर शुद्धि होती है । यज्ञ कर्म में उपयोग में लाये जाने वाले पात्रों का हाथ से मार्जन कर गर्म जल से धोने से शुद्धि होती है ।। १८५ ।। ऊन तथा रेशमी वस्त्रों को क्षार वाली मिट्टी से युक्त जल अथवा गोमूत्र से क्षालन करने से शुद्धि होती है । वल्कल के तन्तुओं से बने हुए वस्त्रा की विल्व फल से अथवा गोमूत्र से शुद्धि होती है । छाग के लोमों से वने हुए कम्बल की शुद्धि रीठा फल से बने युक्त जल अथवा गोमूत्र से होती है ।। १८६ ।। अतसी के सूत्रों से वने हुए क्षौम वस्त्र की शुद्धि श्वेत सरसों से युक्त जल गोमूत्र से क्षालन करने पर होती है । मिट्टी के पात्र पुनः अग्नि में पकाने से शुद्ध हो जाते हैं । शिल्पी के हाथ शुद्ध होते हैं, बाजार में विक्रय के लिये फैलाये हुए जो चावल आदि अशुचि द्वारा स्पर्श किये जाने पर भी शुद्ध होते हैं। अपनी भार्या का मुख रतिकाल में शुद्ध होता है ।। १८७ ।। बुहारी से कूड़ा हटा देने से, चारों ओर अग्नि जला देने से अपवित्रता करने के कारण का क्षय हो जाने के समय से, गौओं के पैरो द्वारा खुदने से, वृद्धि के जल द्वारा भीग जाने से, भूमि के ऊपरी भाग को खोद देने से तथा लीपने से भूमि की शुद्धि हो जाती है । घर की शुद्धि लीपने तथा नित्य मार्जनी से बुहार देने पर होती है ।। १८८ ।।

गोघ्रातेऽन्ने तथा कीटमक्षिकाकेशदूषिते ।
सलिलं भस्म मृद्वारि प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये ॥१८९
त्रपुसीकताम्राणां क्षाराम्लोदकवारिभिः ।
भस्माद्भिः कांस्यलाहानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च ॥१९०

अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैः शुद्धिर्गन्धापकर्षणात् ।
वाक्शस्तमम्बुनिर्णिक्तमज्ञातञ्च सदाशुचि ॥१९१

शुचि गोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ।
तथा मांसं श्वचण्डालक्रव्यादादिनिपातितम् ॥१९२

रश्मिरग्नी रजच्छाया गौरश्वो वसुधानिलः ।
विप्रुषोमक्षिका स्पर्शे वत्सः प्रस्रवणे शुचिः । १९३

अजाश्वं मुखतो मेध्यं न गौर्न्न नरजामलाः ।
पन्थानश्च विशुद्ध्यन्ति सोमसूर्य्यांशुमारुतैः ॥१९४

मुखजा विप्रुषोमेध्यास्तथाचमनविन्दवः ।
श्मश्रु चास्यगतं दन्तसक्तं मुक्ता ततः शुचिः ॥१९५

स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्ते रथ्योपसर्पणे ।
आचान्तः पुनराचामेद्वासोविपरिधाय च ॥१९६

रथ्याकर्द्दमतोयानि स्पृष्टन्यन्त्यश्ववायसैः ।
मारुतेनैव शुध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च ॥१९७

भोज्यान्न को यदि गाय सूंघ ले तथा बाल, मक्खी और कीड़े से खाने का अन्न दूषित हो जावे तो मिट्टी या भस्म जल में मिलाकर शुद्धि के लिए जितना भी सम्भव हो उस पर डालना चाहिए ॥ १८९ ॥ राँगा, सीसा और ताम्र के पात्रों की शुद्धि क्षार और खटाइ से युक्त जल से होती है । काँसे के पात्रों की शुद्धि भस्म से युक्त जल से होती है घृतादि द्रव पदार्थों का यदि एक प्रस्थ प्रमाण तक हो और कुत्ते कौए आदि के स्पर्श से अशुद्ध हो गये हों तो तपाकर उसी प्रकार का अन्य पदार्थ मिलाकर बरतन में भरे जब वह पात्र से बाहिर निकलने लगे तो शुद्धि हो जाती है ॥ १९० ॥ शरीरज वसा, रक्त, अश्रु और शुक्रादि जो बारह मल हैं उन अमेध्य अर्थात् अपवित्र पदार्था से पात्र या शरीर लिप्त हो जावे तो उसकी शुद्धि मिट्टी और जल से होती है । जब तक अमेध्य पदार्थों की गन्ध का नाश न हो तब तक मृत्तिका जल से शुद्ध करे । ब्राह्मण के "शुद्धि भवत्विद" ऐसे वचन से भी शुद्धि होती है, जहाँ कोई शुद्धि का विधान नहीं कहा गया है

वहाँ जल के क्षालन अथवा प्रोक्षण मात्र से शुद्धि हो जाती है। जिस अशुद्धि का ज्ञान ही नहीं हुआ हो वहाँ वह अशुचि पदार्थ भी सदा शुद्ध हो जाता है ।। १६१ ।। भूमि में रहने वाला, जितने से गौ की तृप्ति हो सके इतने परिमाण वाला जल शुद्ध एवं पवित्र होता है। किन्तु वह चाण्डालादि द्वारा स्पर्श किया न हो और उसमें कोई रूप रस गन्धादि न होकर प्रकृतिस्थ हो, अर्थात स्वभाविक स्वरूप में भूमिगत होना चाहिए। कुत्ता चाण्डाल और गिद्धादि के द्वारा गिराया हुआ पदार्थ दूषित नहीं होता। इसका तात्पर्य यह है कि उसके गिरा देने पर कोई अपवित्रता नही होती है ।। १६२ ।। सूर्यादि की किरण, अग्नि, रज, छाया, गौ, अश्व, पृथ्वी, वायु, अवश्याय बिन्दु, मक्खी—ये चाण्डालादि के द्वारा स्पर्श किये जाने पर भी शुद्ध होते हैं। दुहने के समय गौ का वछड़ा शुद्ध होता है ।। १६३ ।। बकरी और घोड़ा का मुख शुद्ध होता है। गौ मुख शुद्ध नहीं होता है। और मनुष्यों के शरीर से उत्पन्न मल तो सभी अपवित्र होते हैं मार्गों की शुद्धि चन्द्रमा, सूर्य और वायु द्वारा होती रहती है ।। १६४ ।। मुख से श्लेष्मा की उत्पन्न बिन्दु यदि अंग में न पड़कर भूमि पर पड़ें तो अमेध्य नहीं होती हैं अर्थात् उच्छिष्ठ नहीं करती हैं, इसी प्रकार आचमन की जल की बूंदे भी यदि पैरों का स्पर्श करती हैं तो पवित्र होती हैं। मुख में प्रविष्ट स्मश्रु (मूंछ) उच्छिष्ट नहीं करतीं और दाँत में लगा हुआ अन्नादि यदि स्वयं ही गिर जाता है तो शुचि होता है ।। १६५ ।। स्नान करके, सोकर कुछ खाकर, पीकर, भोजन करके, राजमार्ग में गमन करके तथा रुदन करके दो बार आचमन करे और अधोवस्त्र के पहिनने पर भी दो बार आचमन करना चाहिए ।। १६६ ।। मार्ग में कीच तथा पड़ा हुआ जल, जिसका स्पर्श अन्त्यज तथा कुत्ते आदि कर लेते हैं, वायु से ही शुद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार पकी हुई ईंटों से बने हुए प्रासाद एवं भव्य गृहादि भी अस्पृश्यों द्वारा स्पर्श करने पर भी वायु से शुद्ध हो जाते हैं ।। १६७ ।।

अथ दानप्रकरणवर्णनम्

तपस्तप्त्वाऽसृजद्ब्रह्मा ब्राह्मणान् वेदगुप्तये ।
तृप्त्यर्थं पितृदेवानां धर्म्मसंरक्षणाय च ॥१९८
सर्वस्य प्रभवो विप्राः श्रुताध्ययनशालिनः ।
तेभ्यः क्रियापराः श्रेष्ठास्तेभ्योऽप्यध्यात्मवित्तमाः ॥१९९
न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता ।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्तितम् ॥२००
गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्च्चितम् ।
नापात्रे विदुषा किञ्चिदात्मनः श्रेय इच्छता ॥२०१
विद्यातपोभ्यां हीनेन नतु ग्राह्यः प्रतिग्रहः ।
गृह्णन् प्रदातारमधोनयत्यात्मानमेव च ॥२०२
दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः ।
याचितेनापि दातव्यं श्रद्धापूतञ्च शक्तितः ॥२०३
हेमश्रृङ्गी शफैरौप्यैः सुशोला वस्त्रसंयुता ।
सकांस्यपात्रा दातव्या क्षोरिणी गौः सदक्षिणा ॥२०४

सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी ने तप करके तथा ध्यान करके वेदों की रक्षा के लिये, पितृगण तथा देववृन्दों की तृप्ति के लिये अनुष्ठान एवं उपदेश द्वारा धर्म के संरक्षण के लिये ब्राह्मणों की सृष्टि की इसी लिये ब्राह्मणों को दिया हुआ दान अक्षय फलप्रद होता है ॥ १९८ ॥ क्षत्रि-यादि अन्य वर्णों से ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं क्योंकि ब्राह्मण श्रुताध्ययन के स्वभाव वाले, सदा धार्मिकानुष्ठान के कर्मों से परायण और शमदमादि द्वारा आत्मज्ञान में रत रहने वाले होते हैं ॥ १९९ ॥ ब्राह्मण में पूर्ण पात्रता केवल विद्याध्ययन और अनुष्ठानादि की तपश्चर्या मात्र से हींनहोती है किन्तु जिसमें सच्चरित्रता के साथ २ विद्या और तप ये दोनों विद्यमान होते हैं वही पूर्ण सत्पात्र होता है ॥ २०० ॥ गो, भूमि तिल और सुव-र्णादि का दान शास्त्रोक्त विधि से अर्चना करके पात्र को ही देना चाहिए। अपना कल्याण चाहने वाले विद्वान् को अपात्र को दान कभी

नहीं देना चाहिए । २०१ ।। विद्या, तप और सच्चरित्रता से हीन पुरुष को कभी भी दान नहीं ग्रहण करना चाहिए । यदि अपात्र व्यक्ति चाहे वह ब्राह्मण ही जाति से क्यों न हो दान ले लेता है तो दान देने वाले को और अपने आपको भी नरक में ले जाता है ।। २०२ ।। प्रतिदिन स्वकुटुम्ब के विरोध को बचाते हुए यथाशक्ति कुछ विधिपूर्वक दान अवश्य ही करना चाहिए । संक्रान्ति आदि विशेष पर्वों पर विशेष रूप से दान देना चाहिए । अयाचित दान का फल बहुत बड़ा होता है तो भी यदि कोई याचना करे तो श्रद्धापूर्वक अवश्य ही दान देना चाहिए ।।२०३।। सुवर्ण के द्वारा मढ़े हुए सींगों वाली, चाँदी से मण्डित खुरों वाली सुन्दर वस्त्र से आच्छादित, सुन्दर स्वभाव वाली और दूध देने वाली गौ काँसे के पात्र तथा दक्षिणा के सहित दान में देनी चाहिए ।। २०४ ।।

दातास्या. स्वर्गमाप्नोति वत्सराल्लोमसम्मितान् ।
कपिला चेत्तारयति भूयश्चा सप्तम कुलम् ।।२०५
स वत्सरोमतुल्लानि युगान्युभयतोमुखीम् ।
दातास्याः स्वर्गमाप्नोति पूर्णेन विधिना ददत् ।।२०६
यावद्वत्सस्य पादौ द्वौ मुखं योनौ च दृश्यते ।
तावद् गौ पृथिवी ज्ञेया यावद् गर्भं न मुञ्चति ।।२०७
यथाकथञ्चिद्दत्त्वा गां धेनुं वाऽधेनुमेव वा ।
अरोगामपरिक्लिष्टां दाता स्वर्गे महीयते ।।२०८
श्रान्तसम्वाहनं रोगि परिचर्या सुराच्चनम् ।
पादशौचं द्विजोच्छिष्टमाजनं गोप्रदानवत् ।।१०९
भूदीपाश्वान्न वस्त्राम्भस्तिलसर्पिः प्रतिश्रयान् ।
नैवेशिकं स्वर्णधुर्य्यं दत्त्वा स्वर्गं महीयते ।।२२०
गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्लानुलेपनम् ।
यानं वृक्षं प्रियं (जलं) शय्यां दत्त्वात्यन्तं सुखी भवेत् ।।२११

उपर्युक्त विशेषताओं वाली दान दी हुई गौ का दाता गाय का जितने शरीर पर रोम होते हैं उतने वर्षों तक स्वर्ग में वास करता है ।

यदि उक्त गुण युक्त कपिला गौ का दान दिया जावे तो वह दाता को स्वर्ग वास के अतिरिक्त उसके सात कुलों का भी उद्धार कर देती है ॥ २०५ ॥ शास्त्रोक्त विधि के अनुसार उभयतोमुखी गौ का दान करने वाला वत्स के सहित गौ के रोमावली की संख्या के तुल्य सतयुग त्रेतादि युग पर्यन्त स्वर्ग के निवास करने वाला हो जाता है ॥ २०६ ॥ जब तक बछड़े के पैर और मुख गौ के योनि में ही दिखलाई देते हैं तब तक वह गौ पृथ्वी के तुल्य होती है। अतः ऐसी उभयतो मुखी का दान पृथ्वी के दान के समान ही फल देने वाला होता है। जब तक गौ गर्भ त्याग नहीं करती है उसके दान का महान् फल है ॥ २०७ ॥ हेमशृङ्ग-त्वादि से युक्त दूध देने वाली या न देने वाली रोग रहित और दुर्बलता से हीन गौ का यथा विधि किसी प्रकार से दान करने वाला पुरुष स्वर्ग लोक में पूजित होता है ॥ २०८ ॥ थके हुए को आसन शय्यादि प्रदान कर श्रान्ति दूर करने, रोग ग्रस्त पुरुषों की परिचर्या औषधादि देकर सेवा करने, हरि हरादि देवों की अर्चना करने और ब्राह्मण के पैर धोने तथा उनकी झूठन के उठाने का गो दान के समान ही फल होता है ॥ २०९ ॥ फल देने वाली भूमि, देवायतनादि में दीपक जलना, प्रवासियों को ठहरने का आश्रय देना, अन्न, वस्त्र जल, तिल, घृत, गृहस्थाश्रम कलन करने के लिये कन्या, सुवर्ण और भारवहन में समर्थ बलीवर्द के दान देने वाला व्यक्ति भी स्वर्ग में महत्त्व प्राप्त करता है ॥ २१० ॥ घर अर्थात् बना हुआ मकान, शाली, गोधूमादि धान्य, भय मिटा देने वाला अभय धन, जूते, छाता सुगन्धित माला, कुङ्कुम चन्दनादि प्रलेपन, रथादि यान, आम्रादि के रोजी देने वाले वृक्ष, शय्या और जो प्रिय वस्तु कृत धर्मादिक दान देकर दान देने वाला अत्यन्त सुखी होता है ॥ १११ ॥

सर्वदानमयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकं यतः ।
तद्ददत् समवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतम् ॥२१२
प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम् ।
ये लोका दानशीलानां स तानाप्नोति पुष्कलान् ॥२१३

कुशाः शाकं पयो मत्स्यागन्धाः पुष्पं दधि क्षितिः ।
मांसं शय्यासनं धानाः प्रत्याख्येयं न वारि च ॥२१४
अयाचिता हृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः ।
अन्यत्र कुलटाषण्डपतितेभ्यस्तथा द्विषः ॥२१५
देवातिथ्यर्च्चनकृते गुरुभृत्यादिवृत्तये ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयादात्मवृत्तार्थमेव च ॥२१५

पूर्वोक्त समस्त अनेक प्रकार के दानों में ब्रह्मदान सबसे बड़ा दान है । इस दान के अन्दर सभी दानों का समावेश हो जाता है । अध्यापन या उपदेश द्वारा ब्रह्म का ज्ञान करा देने वाला विद्यादाता अक्षय काल तक ब्रह्म लोक स्थित रहता है । ब्रह्मदान ही ऐसा दान है जिसमें परस्व-त्वा पादन तो होता है किन्तु अन्य दानों की भाँति स्वत्व निवृत्ति होती है ॥ २१२ ॥ विद्या तप और वृत्तादि की पूर्ण सत्पात्रता के कारण प्रतिगृह लेने का समुचित अधिकारी होते हुए भी जो किसी भी दाता के दान को स्वीकार नही करता है अर्थात् प्रतिग्रह नहीं लेता है उसे जिनके दान देने से दाता को जो लोक प्राप्त होने का फल होना चाहिये वही फल उसे मिलता है ॥ २१३ ॥ कुशा, शाक दूध, गन्ध पुष्प, दधि, मृत्तिका, शय्या, माष, आसन और भ्रष्ट यव तथा जल से तेरह वस्तु दुष्कृत कर्म वाले को बिना याचना किये हुए यदि प्राप्त हो तो अस्वीकार नहीं करना चाहिए ॥ २१४ ॥ कुलटा अथवा व्यभिना-रिणी स्त्री नपुंसक, पतित अर्थात ब्रह्म इत्यादि करने वाला और शत्रु को छोड़कर किसी बुरा कर्म करने वाले के भी द्वारा बिना याचना किये प्राप्त होवें तो कुशादिक को ग्रहण कर लेना चाहिए ॥ २१५ ॥ देवाचर्नन, अतिथि सत्कार, गुरु मातापितादि तथा भृत्यवर्ग के हित और अपनी वृत्ति के लिये पतितादि जो अत्यन्त कुत्सित कहे गये हैं इन्हें छोड़कर सभी से प्रतिग्रह स्वीकार कर लेना चाहिए ॥ २१६ ॥

———

श्राद्ध प्रकरणं वर्णनम्

अमावस्याष्टकाः वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम् ।
द्रव्यं ब्राह्मणसम्मत्तिर्विषुवत् सूयसंक्रमः ॥२१७
व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ।
श्राद्धं प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ॥२१८
अग्याः सर्वेषु वेदेषु श्रोत्रियो ब्रह्मविद्युवा ।
वेदार्थविज्ज्येष्ठसामा त्रिमधु स्त्रिसुपर्णकः ॥२१९
ऋत्विक् स्वस्रीयजामातृयाज्यश्वशुरमातुलाः ।
तृणाचिकेत दौहित्र शिष्यसम्बन्धिबान्धवाः ।
कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः पञ्चाग्निब्रह्मचारिणः ।
पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धसम्पदः ॥२२१
रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः काणः पौनर्भवस्तथा ।
अवकीर्णि कुण्डगोलौ कुनखी श्यावदन्तकः ॥२२२
भृतकाध्यापकः (क्रूरः) क्लीबः कन्यादूष्यभिशस्तकः ।
मित्रध्रुक पिशुनः सोमविक्रयी च विनिन्दकः ॥२२३

भोज्य वस्तु तथा स्थानीय द्रव्य का प्रेत के उद्देश्य से जो श्रद्धा भाव से त्याग किया जाता है वह श्राद्ध कहलाता है। वह तीन पुरुषों के उद्देश्य से जो किया जाता है वह पार्वण और जा एक पुरुषोद्देश्य से किया जाता है वह एकोद्दिष्ट कहलाता है। अब श्राद्ध के काल बतलाते हैं। अमावस्या, पौष-माघ-फाल्गुन और आश्विन मास की कृष्णाष्टमी, पुत्रादि के जन्म के समय, सभी मासों का कृष्ण पक्ष, उत्तरायण तथा दक्षिणायन की संक्रान्ति का दिन, मेष तुला की संक्राति का दिवस श्राद्धीय द्रव्य तथा योग्य ब्राह्मणों का लाभ जब हो वह समय व्यतीपात योग, गज छाया याग, सूय अथवा चन्द्र के ग्रहण का समय और जब भी श्राद्ध करने की रुचि हो जावे—ये श्राद्ध करने के काल होते हैं ॥२१७-२१८॥ समस्त वेदों के अध्ययन में पूर्णता प्राप्त करने वाले, श्रोत्रिय, आत्म तत्व के ज्ञाता, युवावस्था वाला, वेदाथ का वेत्ता, ज्येष्ठसाम से युक्त, मधु

नामक वेद के एक देश का अध्येता, ऋग्यजु के एक देश का अध्येता, भानजा, ऋत्विज, दुहिता का पति, याज्य, त्रिणाचिकेता, वेदभाग का अध्येता, श्वसुर, मामा, दौहित्र, शिष्य मातामहादिक, बान्धव मातृस्व-स्तेयादि, नित्य नैमित्तिक कर्म परायणता, चान्द्रायणादि के आचरणशील, पंचाग्नि वाला, ब्रह्मचारी और माता–पिता के परम भक्त ब्राह्मण ही श्राद्ध की सम्पत्ति कहे जाते हैं और इसमें पितरों को अक्षय तृप्ति होती है ।। २१९—२२०—२२१ ।। श्राद्ध में वर्जित ब्राह्मणों को बतलाते हैं जो महान् रोग से ग्रस्त हो, हीन या अधिक अङ्ग वाला, काना द्विरूढ़ा स्त्री से उत्पन्न स्खलित, ब्रह्मचर्य वाला, कुण्ड अर्थात् पर स्त्री से उसके पति के जीवित रहते हुए उत्पन्न, गोलक अर्थात् पति के मर जाने के बाद पर—पुरुष से उत्पन्न, कुत्सित नाखून वाला, काले दांतों वाला पुरुष श्राद्ध में निन्दित होते हैं ।। २२२ ।। वेतन ग्रहण कर अध्यापन करने वाला, अपुंसक, सम्भोगादि से कन्या को दूषित करने वाला, ब्रह्महत्यादि, अपराध में जो अभियुक्त हो, मित्रो से द्रोह करने वाला, पर दोषों के कहने के स्वभाव वाला, यज्ञ में सोम को विक्रय करने वाला और परनिन्दक अर्थात् अपने से बड़े के द्वारा तथा अग्नि के ग्रहण करने के पहिले ही दारादि का ग्रहण करने वाला पुरुष श्राद्ध कर्म में वर्जित होता है ।। २२३ ।।

मातापितृ गुरुत्यागी कुण्डाशी वृषलात्मजः ।
परपूर्वापतिः स्तेनः कर्मदुष्टाश्च निन्दिता ।।२२४
निमन्त्रयीत पूर्वेद्युर्ब्राह्मणात्मवान् शुचिः ।
तैश्चापि संयतर्भाव्यं मनोवाक्यायकर्मभिः । २२५
अपराह्णे समभ्यच्च स्वागतेनागतांस्तु तान् ।
पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् ।।२२६
युग्मान् दैवे यथाशक्ति पित्र्येऽयुग्मांस्तथैव च ।
परिश्रिते शुचौ देशे दक्षिणाप्लवने तथा ।।२२७
द्वौ दैवे प्राक्त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा ।
मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ।।२२८

पाणिप्रक्षालनं दत्वा विष्टरार्थं कुशानपि ।
आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा ॥२२९

बिना ही कारण के माता पिता तथा गुरु का त्याग करने वाला, उपर्युक्त कुण्ड तथा गोलक के अन्न को खाने वाला, धर्म हीन का पुत्र, दूसरे की स्त्री से विवाह करने वाला, चोरी करने वाला और निषिद्ध कर्म करने वाला ब्राह्मण श्राद्ध कर्म में वर्जित होता है ॥ २२४ ॥ क्रोधादि से रहित होकर पवित्रता वाला श्राद्ध कर्म के दिन पूर्व ब्राह्मणों को निमन्त्रण देवे और उन निमन्त्रित ब्राह्मणों को भी मन, वाणी और कर्म से संयमशील अर्थात् श्राद्ध में निहिद्ध आचरण से बचकर रहना चाहिए ॥ २२५ ॥ अपरान्हकाल में अर्थात् तीसरे प्रहर में श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मणों को बुलाकर स्वागत वचनादि से सत्कार करके अर्चन करे और जल से पैर धोकर तथा उनके हाथ धुना कर उपकल्पित आसनों पर उन्हें विठावे ॥ २२३ ॥ वैश्वदेव श्राद्ध में अयुग्म संख्या अर्थात् विषम संख्या वाले ब्राह्मणों को सब ओर से प्रच्छादित एवं गोमयादि से लिपे पवित्र दक्षिणावनत स्थान में बिठाकर श्राद्ध कर्म करना चाहिए । ॥ २२७ ॥ दैव अर्थात् वैश्वदेव श्राद्ध में दो ब्राह्मणों को पूर्व की ओर मुख कराकर बिठावे । इसी प्रकार मातामहादि के में भी करना चाहिए यदि दो ही ब्राह्मण उपलब्ध हों तो दोनों श्राद्धों में एक-एक ब्राह्मण को नियुक्त कर देवे ॥ २२८ ॥ इसके अनंतर पादप्रक्षालन देकर विश्वदेव तथा पितादि के आसन के लिए कुशाओं को बिछा देवे और फिर अनुज्ञा प्राप्त करके श्राद्ध करने वाला 'विश्वदेवा स आगत' इत्यादि ऋचा से आवाहन करे ॥ २२९॥

यवैरन्कीर्यथ भाजने सपवित्रके ।
शन्नो देव्या पयः क्षिप्त्वा यवोऽसाति यवां स्तथा ॥२३०
या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिःक्षिपेत् ।
दत्वोदकं गन्धमाल्यं धूप वासः सदोपकम् ॥२३१
तथाच्छादनदानञ्च कारशौचार्थमम्बु च ।

अपसव्यं ततः कृत्वा पितृणामप्रदक्षिणम् ।।
द्विगुणांस्तु कुशान् दत्वा ह्युशन्तस्त्वेत्यृचा पितृन् ।।२३२
आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायान्तु नस्ततः ।
यवार्थास्तु तिलैः कार्याः कुर्यादर्घ्यादिपूर्ववत् ।।२३३
दत्त्वार्घ्यंसंस्रवाँस्तेषां पात्र कृत्वा विधानतः ।
पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः ।।२३४
अग्नौ करिष्यन्नादाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् ।
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो हुत्वाग्नौ पितृयज्ञवत् ।।२३५
हुतशेषं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितः ।
यथा लोभोपपन्नेषु रौष्येषु तु विशेषतः ।।२३६
दत्वान्नं पृथिवी पात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम् ।
कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्टं निवेशयेत् ।।२३७

आवाहन के अनन्तर देव श्राद्ध भूमि में ब्राह्मण के समीप यवों का अवकीर्ण करे, फिर पवित्रीयुक्त अर्घ्य पान में "शन्नोदेव्या' इत्यादि ऋचा से जल डालकर "यवोसि धान्य राजोवा" इत्यादि मन्त्र से जो डालकर "या दिव्या आप- पयस" इत्यादि मन्त्र से ब्राह्मण के हाथ में अर्घ्य छोड़ देवे । इसके पश्चात् कर शुद्धि के लिये जल देकर यथाक्रम गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और आच्छादन वस्त्र दान करे । इसके पश्चात् दैव कर्म करके अपसव्य हो जावे । द्विगुण मोटित् कुशाग्रों को पितृगण के आसन के लिये देकर "उशन्त सत्वा निधिमहि" इत्यादि ऋचा से पितृगण का आवाहन कर अनुज्ञात होकर "आयन्तु नः पितरः" इत्यादि मन्त्र का जप करे ।।२३०-२३१ २३२-२३३ ।। दैव श्राद्ध में जो क्रिया यवों से की जाती हैं वह समस्त क्रिया पितृ श्राद्ध में तिलों से पूर्ववत् सविधि करनी चाहिए । 'अपहता असुरा रक्षांसि' इस मन्त्र से जौ के स्थान में तिलों को चारों ओर विकीर्ण करे ।। २३४ ।। पिता, पितामह और प्रपितामह के तीन पात्र रक्खे और पिता को अर्घ्य देकर शेष जल को पितामहादि के पात्रों में करके "पितृभ्यः स्थनामसि" इत्यादि मन्त्र से पात्र को

नीचे की ओर टेढ़ा करदे ।। २३५ ।। श्राद्धीय घृताक्त अन्न को लेकर 'अग्नौ करिष्ये' —इस वचन को कहकर पितृ स्थानीय ब्राह्मण को पूछे और 'कुरुष्व'—इस प्रकार ब्राह्मण के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने पर पितृ यज्ञ की भाँति अग्नि में हवन करके कुल शेष अन्न को अनन्य चित्त होता हुआ पात्रों में परिवेषण करे । पात्र परिवेषण के लिये जो भी प्राप्त हों उन्हें लेवे । अतिशय फल प्राप्ति के लिये चाँदी के पात्र होते हैं ।। २३६–२३७ ।।

सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इतित्यृचम् ।
जप्त्वा यथा सुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽहि वाग्यताः ।।२३८
अन्नमिष्टं हविष्यञ्च दद्याक्रोधनोऽत्वरः ।
आतृप्तेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वंजपन्तथा ।।२३९
अन्नमादाय तृप्ताः स्थ शेषं चैवानुमन्य च ।
तदन्नं विकिरेद् भूमौ दद्याच्चापः सकृत सकृत् ।।२४०
सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः
उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान् प्रदद्यात् पितृयज्ञवत् ।।२४१
मातामहानामप्येवं दद्याच्चमनं ततः ।
स्वस्ति वाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च ।।२४२
दत्वा तु दक्षिणं शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत् ।
वाच्यतामित्यनुज्ञातः प्रकृतेभ्यः स्वधोच्यताम् ।।२४३
ब्रूयुरस्तु स्वधेत्येवं भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम् ।
विश्वदेवाश्च प्रीयन्तां विप्रैश्चोक्त इदं जपेत् ।।२४४

हवन करने के बाद जो शेष मोदक सूप पायसादि अन्न को जो कि पुरुष की तृप्ति के योग्य हो, "पृथिवी ते पात्रम्" इत्यादि मन्त्र से पहले पात्रों को अभिमन्त्रित करके फिर परिवेषण करे । "इदं विष्णु-र्विचक्रमे" इस मन्त्र से उस अन्न में ब्राह्मण का अंगूठा रखवावे ।। २३८ ।। आपोशन देकर तीन महाव्याहृतियों के सहित सावित्री "मधुवाता" ईस ऋचा को तीन बार जप कर 'यथासुख भोजन करिये'—इस प्रकार प्रार्थना करे । श्राद्धीय ब्राह्मणों को भी मौन

होकर भोजन करना चाहिए ।। २३९ ।। जो श्राद्धीय अन्न अपने तथा ब्राह्मण को प्रिय हो उसे क्रोध और शीघ्रता से रहित होकर ब्राह्मण को भोजन करने के लिये देवे। जब तक तृप्ति पूर्वक ब्राह्मण भोजन करे व्याहृतियों के सहित गायत्री तथा पुरुष सूक्त आदि पवित्र मन्त्रों का जप करता रहे ।। २४० ।। जब श्राद्धीय भोजन करने वाले ब्राह्मण 'हम खूब तृप्त हो गये हैं,' ऐसा कह दें तब शेष समस्त अन्न को पितृ स्थानीय ब्राह्मणों के आगे रखकर पूछे इस बचे हुए का क्या करें ? जब वे कहें कि इसे इष्ट मित्रों के साथ तुम भोजन करो इस प्रकार उनकी आज्ञा प्राप्त कर "अग्नि दग्धा" इत्यादि ऋचा से तिलोदक का प्रक्षेप करे और ब्राह्मणों को गण्डूष के लिए एक-एक बार जल देवे ।।२४२ ।। मातामहादिक के श्राद्ध में भी इसी उक्त विधि के अनुसार 'विश्वेदेवा वाहनादि' पिण्डदान पर्यन्त समस्त कर्म करना चाहिए । ब्राह्मणों को गण्डूष (कुरली) कराने के पश्चात् आचमन देवे फिर ब्राह्मणों के द्वारा 'स्वस्ति' शब्द को कहलवावे फिर 'उदकमक्षय्यमस्तु'—ऐसा बोले और ब्राह्मणों के हाथ में उदक दान करे ।। २४३ ।। इसके अनन्तर यथा-हिरण्य रजतादि दक्षिणा देवे । "स्वधां वाचयिष्ये" यह कहे और ब्राह्मणों के द्वारा अनुज्ञा प्राप्त कर पित्रादि के लिए स्वधाकार का उदाहरण करे ।। २४४ ।।

दातारो नोऽभिवर्द्धन्त वेदाः सन्ततिरेव च ।
श्रद्धा च नो माव्यपमद्बहु देयञ्च नोऽस्त्विति ।।२४५
अन्नञ्च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ।
याचितारश्च न सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन ।।२४६
इत्युक्त्वा तु प्रिया वाचः प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।
वाजे वाजे इति प्रीतः पितृपूर्वमर्घ्यं विसर्जनम् ।।२४७
यस्मिस्ते संस्रवाः पूर्वमर्घ्यपात्रे निवेशिताः ।
पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान् विसर्जयेत् ।।२४८
प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुञ्जीत पितृसेविनम् ।
ब्रह्मचारी भवेत्तान्तु रजनीं ब्राह्मणः सह ।।२४९

एवं प्रदक्षिणं कृत्वा वृद्धौ नान्दीमुखान् पितॄन् ।
एजेत् दधिकर्कन्धूमिश्रान् पिण्डान् यवैः क्रिया ॥२५०
एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घ्यपवित्रकम् ।
आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ॥२५१

ब्राह्मणों को 'स्वधा अस्तु' ऐसा बोलना चाहिए । फिर कमण्डलु से जल लेकर भूमि पर डालें । "ब्राह्मण विश्वेदेवाः प्रयिन्ताभ" ऐसा कहें । इसके वाद श्राद्धकर्त्ता भी उसका स्वयं जप करे ॥२४५ ॥ बाह्मण प्रार्थना करें कि हमको हिरण्यादि के दान देने वालों को कुल में बहुत से ऐसे ही दाता बढ़ें और वेदों की अध्यापनादि के द्वारा वृद्धि हो, पुत्र पौत्रादि द्वारा सन्तति की वृद्धि हो, पितृ कर्म में श्रद्धा का नाश न हो और हिरण्यादि की बहुत वृद्धि हो जिसका दान हमारे लिए हो ॥२४६॥ इस प्रकार प्रार्थना करके 'आपने कृपा कर हमको तथा पदार्पण द्वारा हमारे घर को पवित्र किया है"—ऐसी प्रिय वाणी कहे और प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करके विसर्जन करे । फिर वाजे वजे इति" इत्यादि ऋचा के द्वारा प्रसन्नतापूर्वक पितृगण का विसर्जन करना चाहिए ॥ २४७ ॥ विप्रों के विसर्जन करने के पूर्व अर्घ्य पात्र में जो संस्रव जल था उसे पितृ पात्र को उत्तान करके फिर ब्राह्मणों का विसर्जन करना चाहिए इसी प्रकार पितामहादि तथा मातामहादि के पात्रों का भी उत्तानीकरण करे ॥ २४८ ॥ विर्सजित ब्राह्मणों के साथ पीछे-पीछे सीमान्त प्रदेश तक जावे और उनकी आज्ञा प्राप्त कर प्रदक्षिणा करके वापिस लौटना चाहिए और फिर पितृ सेवित श्राद्धान के अवशिष्ट भाग का उपभोग करे । जिस दिन श्राद्ध करे उस दिन की रात्रि में भोक्ता ब्राह्मणों के साथ ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिए ॥ २४९ ॥ इस प्रकार पुत्रोत्पति तथा कन्या के विवाह आदि शुभ समय में भी प्रदक्षिणा के अनुक्रम वाला यजमान नान्दी मुख पितृगणों का यजन करे । दही और बेरों से मिश्रित पिण्ड बनावे । तिलों से साध्य कर्म को जौ से सम्पन्न करे ॥ २५० ॥ जिसमें एक ही कर्म के उद्देश्य का विषय होता है वह एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता है । इसमें विश्वेदेव नहीं होते हैं और एक ही

अर्घ्य पात्र तथा एक दर्भ पवित्री होते हैं। आवाहन से अग्नि में होम से भी रहित होता है और अपसव्यादि पार्वण धर्म से युक्त होता है। शेष सभी क्रिया पूर्वोक्त के अनुसार होती हैं॥ २५१॥

उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्र विसर्जने।
अभिरम्यतामित वदेद् ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह ॥२५२
गन्धोदकतिलर्युक्तं कुर्यात्पात्र चतुष्टयम्।
अर्ध्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥२५३
ये समाना इतिद्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत्।
एतत् सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥२५४
अर्वाक् सपिण्डीकरणं यस्य सन्वत्सराद्भवेत्।
तस्याप्यन्न सोदकुम्भं दद्यात् सम्वत्सरं द्विजे ॥२५५
मृताहनि तु कर्त्तव्यं प्रतिमासन्तु वत्सरम्।
प्रतिसम्वत्सरञ्चैव आद्यमेकादशेऽहनि ॥२५६
पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपिवा।
प्रक्षिपेत् सत्सु विप्रेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत् ॥२५७

एकोद्दिष्ट श्राद्ध में अक्षय्य स्थान में 'उपतिष्ठताम्' ऐसा बोलना चाहिए और विप्र विसर्जन के स्थान में 'अभिरम्यताम्' यह कहना चाहिए और ब्राह्मणों को 'वयर्ताभरताः स्म' यह बोलना चाहिऐ। अब सपिण्डीकरण के विषय में बतलाते हैं। इसमें अर्घ्य सिद्धि के लिये गन्धोदक तिलों से युक्त पूर्वोक्त विधि से चार पात्र रक्खे। उन चारों पात्रों में पितृगण में से जिन के साथ प्रेत की सपिण्डीकरण करना है। उनके संस्रव वाले पात्रों में प्रेत पात्र के संस्रव को को 'ये समानाः समनसः" इन दो मन्त्रों से पितृ पात्रों में प्रसेचन करे। शेष सभी क्रिया कलाप पूर्ववत करे। यह श्राद्ध स्त्री का भी अर्थात् माता का भी करना चाहिए। यह सपिण्डीकरण एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता है ॥ २५३-२५४॥ यदि सपिण्डीकरण जिसका सम्वत्सर से अर्वाक् (पूर्व) करे तो उसके उद्देश्य से प्रति दिवस, प्रतिमास पूरे वर्ष का शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों

के लिये जलकुम्भ तथा अन्न देना चाहिए ।। २५५ ।। मृत व्यक्ति की जिस तिथि में मृत्यु हुई हो उस तिथि में वर्ष भर प्रतिमास तथा बाद में दाह तिथि को प्रति वर्ष श्राद्ध करना चाहिए । प्रथम श्राद्ध मृत्यु के ग्यारहवें दिन करना चाहिए ।। २५६ ।। श्राद्धीय पिण्डों को गो, बकरी अथवा ब्राह्मणों को दे देना चाहिए अथवा अग्नि या जल में डाल देवे । श्राद्ध के निमित्त आमन्त्रित ब्राह्मणों के विद्यमान रहते हुए श्राद्ध स्थल में से द्विजों के उच्छिष्ट को नहीं हटाना चाहिए ।। २५७ ।।

प्रतिपत्प्रभृतिष्वेताम् वर्जयित्वा चतुर्द्दशीम् ।
शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते ।।२५८
स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा ।
पुत्रान् श्रेष्ठ्यञ्च सौभाग्यं समृद्धि मुख्यतां शुभम् ।।२५९
प्रवृत्तचक्रतांश्चैव वाणिज्यं प्रभुतां तथा ।
अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम् ।।२६०
धनं विद्यां भिषक्सिद्धि कुप्यं गा अप्यजाविकम् ।
अश्वानायुश्च विधिवद् यः श्राद्धं सम्प्रयच्छति ।।
कृत्तिकादिभरेण्यन्तं स कामांनाप्नुयादिमान् ।
आस्तिकः श्रद्दधानश्च व्यपेतपदमत्सरः ।।
वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः ।
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितृन् श्राद्धेन तर्पिताः ।।
आयुः प्रज्ञां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ।।२६१–२७०

गया में जाकर पितृगण के श्राद्ध में जो कुछ भी शाकादिक दिया जाता है तो उसका अनन्त फल होता है । चकार से गङ्गाद्वारादि का भी गया के समान फल होता है । भाद्र कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि में विशेष रूप से मघा नक्षत्र से युक्त में जो कुछ भी श्राद्ध में दिया जाता है उसका भी अनन्त फल होता है । वेद की प्रामाणिकता को मानने वाला आस्तिक, श्रद्धालु और गर्व तथा ईर्ष्या को त्यागने वाला पुरुष कृत्तिका से भरणी पर्यन्त नक्षत्रों में शास्त्रोक्त विधि के अनुसार श्राद्ध करता है

वह स्वर्ग, सन्तति, ओज, शौर्य, बल युक्त भूमि, बल, गुणवान् पुत्र, समाज में श्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रमुखता, शुभता अर्थात् मंगल अप्रतिहत, आज्ञा वाला पद, वाणिज्यादि व्यवसाय सिद्धि, आरोग्यता, यश, अपने इष्ट मित्र बन्धुओं के वियोग से उत्पन्न दुःख का अभाव, ब्रह्मलोक प्राप्ति, धन वेदज्ञान, औषध के फल की प्राप्ति, ताम्रादि धातु, गौ, अजा, घोड़ा और दीर्घजीवन आदि समस्त कामनाओं की प्राप्ति करता है। श्राद्ध के अधिष्ठातृ देवता वसु, रुद्र और आदित्य होते हैं। इनके साथ ही पितृगण का ध्यान करना चाहिए। अतएव ये उक्त देव स्वपित्रादि रूप से कल्पित होते हुए श्राद्ध कर्म से कम तृप्त होते हैं और मनुष्यों के पितरों को प्रसन्न करते हैं। वस्वादिक देवों के प्रसन्न एवं तृप्त होने पर ही मनुष्यों के पितर सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होकर आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष और इच्छित सुख तथा राज्य प्रदान करते हैं ॥ २५८-२७० ॥

अथविनायकादिकल्पप्रकरणम् ।

विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः ।
गणनामाधिपत्याय रुद्रेण ब्राह्मणा तथा ॥२७१
तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत ।
स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति ॥२७२
काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति ।
अन्त्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैः सहैकत्रावतिष्ठते ॥२७३
व्रजन्तञ्च तथात्मानं मन्यतेऽनुगतं परः ।
विमना विफलारम्भः संसदत्यनिमित्ततः ॥२७४
तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः ।
कुमारी न च भर्त्तारमपत्यं नच गर्भिणी ॥२७५
आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा ।
वणिग्लाभं नाचाप्नोति कृषिञ्चैव कृषीबलः । २७६
स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।
गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितस्य च ॥२७७

सर्वौषधैः सर्वगन्धैः प्रलिप्तशिरसस्तथा ।
भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्या द्विजाः शुभाः ॥२७८

विघ्नों के स्वामी विनायक की प्रीति के बिना महादानादि की सफलता सम्भव नहीं है। अतः इनकी अर्चना परमावश्यक है। पहिले विघ्नों की निष्पत्ति के लिये, ब्रह्मा, विष्णु और महेश के द्वारा पुष्र दन्तादि गणों का स्वामी विनायक को बनाया है कि वह विनायकादि ग्रहों के पूजन न करने वाले प्राणियों के कर्म में विघ्न करके अनिष्ट करे और पूजकों का अभीष्ट सिद्ध करे। विनायक जब अप्रसन्न हों तो उस अप्रसन्नता के लक्षणों को जान लेना चाहिए। वे लक्षण ये हैं—स्वप्नावस्था में जल का अत्यन्त अवगाहन करना, जल स्रोत में बह जाना, या डूब जाना, मुण्डित शिर वाले मनुष्यों का देखना, गेरुआ तथा लाल, नीले वस्त्र धारण किए हुए पुरुषों का देखना, कच्चा मांस खाने वाले सिद्ध आदि पक्षियों का पशुओं पर सवार होना, चाण्डाल, गधा, ऊँटों के साथ एक जगह बैठना, ये स्वप्न-लक्षण हैं, अब जाग्रतावस्था के लक्षण कहते हैं। जाते हुये पीछे से शत्रुओं के द्वारा अनुगम्यमान मानना, विक्षिप्त चित्त होना, कृत कर्म में विफल होना, विना किसी कारण के दीनता का प्राप्त होना ये सब गणेश की अप्रीति के स्पष्ट, ज्ञापक लक्षण होते हैं। विनायक के द्वारा उपसृष्ट राजपुत्र भी राज्य की प्राप्ति नहीं करता है, रूप लक्षण कुलादि से युक्त कुमारी भी इच्छित स्वामी का लाभ नहीं करता है। गर्भिणी स्त्री सन्तान तथा अङ्गना गर्भ उपसृष्टा होकर नहीं पाती है। श्रोत्रिय आचार्यत्व को तथा शिष्य अध्ययन को प्राप्त नहीं करता है। वाणिज्य करने बाला वैश्य लाभ तथा किसान खेती का समुचित फल विनायक की अप्रसन्नता के कारण नहीं प्राप्त करता है ॥२७१-२७६॥ अब विनायकोपसर्ग के हटने के लिये कर्मों का विधान बतलाते हैं। शुभ चन्द्रमा तथा नक्षत्रादि से युक्त किसी पुण्य दिन में शास्त्रोक्त विधि से विनायकोपसृष्ट का अभिषेक करना चाहिए। स्नपन की विधि यह है कि घृत से युक्त श्वेत सरसों के कल्क (चूर्ण) से अङ्गों पर उद्वर्त्तन (उबटन) किये हुए तथा प्रियंगु नागकेशरादि सर्वौषधि और चन्दन,

गूगल, कस्तूरी आदि सर्व गन्धों से शिर का लेपन करे हुए तथा भद्रासन पर बैठे हुए पुरुष के आगे स्थित श्रुताध्ययन तथा सच्चरित्रता से सम्पन्न सौम्याकृति वाले चार ब्राह्मणों से यह कहे "आप स्वस्ति बोले" और इस समय गृह्योक्त विधि से पुण्याहवाचन करना चाहिए ।।२७१-२७८।।

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात् सङ्गमाद्ध्रदात् ।
मृत्तिकां रोचनां गन्धान् गुग्गुलुञ्चाप्सु निक्षिपेत् ।।२७९
या आहृताएकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्हृदात् ।
चर्मण्यानडुहे रक्ते स्थाप्यं भद्रासनं तथा ।।२८०
सहस्राक्षं शतं धारमृषिभिः पावनं कृतम् ।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते ।।२८१
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः ।
भगमन्त्रश्च वयुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ।।२८२
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सोमन्ते यच्च मूर्द्धनि ।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु ते सदा ।।२८३
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण च ।
जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान् सव्येन परिगृह्य च ।।२८४
मितश्चा संमितश्चैव तथा सालकटङ्कटः ।
कूष्माण्डो राजपुत्रश्च जपेत् स्वाहासमन्वितैः ।।२८५

समान वर्ण वाले चार कलशों द्वारा नदी के संगम या सूखने वाले ह्रद से जल लावे और उस जल में अश्वस्थान, गज स्थान, वल्मीक, सरित्संगम तथा अक्षोभ्य ह्रद से पाँच प्रकार की लाई हुई मिट्टी, गोरोचन और चन्दन कुंकुमादि गन्धों को तथा गूगल को डाले । बैल के रक्त चर्म पर श्रीपर्णी निमित्त भद्रासन स्थापित करना चाहिए । इसी भद्रासन पर बैठ कर स्वस्ति वाचन कराना चाहिए । भद्रासन पर श्वेत वस्त्र बिछाकर बैठना चाहिए । चारों कलश आम्र पल्लव आदि से शोभित तथा माला, चन्दनादि से चर्चित कर चारों दिशाओं में रक्खे और निम्नार्थ वाले तीन मन्त्रों द्वारा प्रत्येक कलश से जल लेकर गुरु स्नान करावे । सहस्राक्षादि तीन मन्त्रों का अर्थ निम्न है—सहस्र शक्ति वाले,

शतधार जल ऋषियों के द्वारा पावन किये गये हैं। उनसे विनायकपसृष्टो तुह्मारी शान्ति के लिए अभिषेक करते हैं। पावन किये गये ये जल तुमको पवित्र करें ॥२७९-२८०॥ तेरा कल्याण राजावरुण, सूर्य, बृहस्पति इन्द्र, वायु और सप्तर्षि तुझे प्रदान करें। तेरे केशों में, सीमन्त में, माथे में, ललाट में, कानों में और आँखों में जो दौर्भाग्य है उससब का ये जल सर्वदा के लिये नाश करें ॥२८१-२८२॥ उक्त विधि से अभिषिक्त के माथे पर सव्य हाथ में कुशा लेकर गूलर की लकड़ी से निर्मित-स्रुवा से सरसों के तेल का मित, संमित, शाल, कटकट और राजपुत्र—इन छै विनायक के नामों से प्रत्येक नाम के आदि में प्रणव और चतुर्थ्यन्त विभक्त वाले नाम के आगे स्वाहा लगा कर हवन करे। यथा'ॐ मिताय स्वाहा इसी प्रकार अन्य नामों को भी बोले ॥२८३-२८५॥

नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कार समन्वितैः।
दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वतः ॥२८६
दध्यन्नं पायसञ्चैव गुडपिष्टं समोदकम्।
एतान् सर्वानुमाहृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिरः ॥२८७-२८९
विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम्।
दूर्वासर्षप पुष्पाणां दत्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिम् ॥२९०
रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भगवति! देहि मे।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे ॥२९१
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः।
ब्राह्मणान् भोजयेद्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ॥२९२
एवं विनायकं पूज्यं ग्रहांश्चव विधानतः।
कर्मणां फलमाप्नोति श्रियञ्चाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥२९३
आदित्यस्य सदा पूजां तिलकस्वामिनस्तथा।
महागणपतेश्चैव कुर्वन सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२९४

इसके अनन्तर प्रणव तथा नमस्कार से युक्त इन्द्रादि दोनों के नाम के आगे चतुर्थी विभक्ति लगाकर मन्त्रों के द्वारा हुत से शेष की बलि शूर्प में कुशा बिछाकर चतुष्पथ में देवे ॥२८६॥ इसी प्रकार दधि, अन्न, पायस,

गुड़पिष्ट मोदकादि को विनायक तथा उसकी माता अम्बिका को मन्त्र पूर्वक भेंटकर भूमि में शिर लगा कर दूर्वा और सरसों से पुष्पों की अर्घ्य देते हुए पुष्पाञ्जलि देवे और प्रर्थना करे हे भगवति ! मुझे रूप, यश, भाग्य, पुत्र, धन और समस्त मनोरथ प्रदान करो ॥२८७—२९१॥ इसके पश्चात् यजमान शुक्ल वस्त्र तथा मालादि धारण कर ब्राह्मणों को भोजन करावे और गुरु को दो वस्त्र तथा दक्षिणा देवे ॥२९२॥ इस तरह विधिपूर्वक विनायक तथा ग्रहों का पूजन करके विघ्नों का उपशम होने से समस्त कर्मों का फल तथा उत्तम श्री की प्राप्ति होती है ॥२९३॥ प्रतिदिन सूर्य, स्वामी कात्तिकेय और महागणपति की पूजा करने वाला अभिलषित सिद्धि को प्राप्त करता है ॥२९४॥

———

अथ ग्रहशान्तिप्रकरणम् ।

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत् ।
वृष्टयायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्नरीन् ॥२९५
सूर्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो बृहस्पतिः ।
शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः ॥ २९६
ताम्रिकात् स्फटिकाद्रक्तचन्दनात् स्वर्णकादुभौ ।
रजतादयसः सीसात् कांस्यात् कार्यग्रहाः क्रमात् ॥२९७
स्ववर्णैर्वा पटे लेख्या गन्धमण्डलकेषु वा ।
यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ॥२९८
गन्धाश्च बलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलुः ।
कर्तव्या मन्त्रवन्तश्च चरवः प्रतिदैवतम् ॥२९९
आकृष्णेन इमं देवा अग्निमूर्द्धा दिवः ककुत् ।
उद्बुध्यस्वेति च ऋचो यथासंख्यं प्रकीर्तिताः । ३००
बृहस्पते अतिअदर्य्यस्तथैवान्नात् परिश्रुतः ।
शन्नो देवीस्तथा काण्डात् केतुं कृण्वन्निमाः क्रमात् ॥३०१

लक्ष्मी की प्राप्ति की कामना वाला, आपत्तियों की शान्ति करने की इच्छा वाला, वृष्टि आयु और शरीर पुष्टि के मनोरथ वाला-पुरुष तथा

अभिचार की इच्छा रखने वाला पुरुष ग्रहों की पूजा करे ।।२९५।। सूर्य चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु ये सब ग्रह कहे जाते हैं ।।२९६।। उपर्युक्त नवग्रहों की प्रतिमा क्रम से ताम्र, स्फटिक रक्तचन्दन, स्वर्ण से दोनों चाँदी लोहा, सीसा और कांसे से बनानी चाहिए । अथवा वस्त्र पर अपने-अपने वर्ण वाले चन्दनादि द्वारा सुसंस्कृत भू-भाग पर लिखनी चाहिए और उनके वर्णों के अनुसार ही उन्हें वस्त्र और पुष्प देवे ।।२९७-२९८।। प्रत्येक ग्रह को गन्ध, बलि और गुग्गुलधूप देवे तथा मन्त्रों द्वारा चरु देना चाहिए । बलि का तात्पर्य नैवेद्यादि है । चरु प्रति देव को चार मुष्टि परिमित होना चाहिए ।२९९। नवग्रहों के भिन्न मन्त्र हैं । आकृष्णेन रजसा, 'इमं देवा', 'अग्नि मूर्द्धा दिवः ककुत, उद्बुध्यस्वाग्ने, बृहस्पते अति यदर्य्य, अन्नात्य-परिस्रुतो रसम्, शन्नो देवी रभिष्टय, काण्डात्काण्डात्पुरोहन्ती, केतु कृण्वन्नितीमा— ये सूर्यादि ग्रहों के यथा क्रम मन्त्र हैं ।।३००-३०१।।

अर्कः पलाशखदिरावपामार्गोऽथ पिप्पलः ।
उदुम्बरः शमी दूर्वा कशाश्च समिधः क्रमात् ।।३०२
एकैकस्य त्वष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा ।
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरेण वा युता ।।३०३
गुलौदनं पायसञ्च हविश्यं क्षीरषाष्टिकम् ।
दध्योदनं हविश्चूर्णं माष चित्रान्नमेव च ।।३०४
दद्याद् ग्रहक्रमादेतद् द्विजेभ्यो भोजन बुधः ।
शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ।।३०५
धेनुः शङ्खस्तथानड्वान् हेम वासो हयस्तथा ।
कृष्णा गौरायसं छाग एता वै दक्षिणाः क्रमात् ।।३०६
यश्च यस्य यदा दुःस्थः स तं यत्नेन पूजयेत् ।
ब्रह्मणैषां वरो दत्तः पूजिता पूजयिष्यथ ।।३०७
ग्रहाधीना नरेन्द्राणा मुच्छ्रयाः पतनानि च ।
भावाभावौ च जगतस्तस्मात् पूज्यतमाः स्मृताः ।।३०८

सूर्यादि नवग्रहों के यथा क्रम भिन्न-भिन्न समिधा हैं। अर्क, पलाश, खदिर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुशा—ये क्रम से समिधा हैं। इनसे मधु, घृत, दही या दूध से युक्त प्रत्येक के अष्टोत्तर शत, अट्ठाईश या आठ आहुतियाँ देवे ॥२०२-२०३॥ इसके अनन्तर सहस्र अष्टोत्तर शक्ति के अनुसार यथाक्रम गुडोदन, पायस, हविष्यान्न, क्षीरमिश्रित षष्टिकौन, दध्यादन, घृतौदन दि समस्त ग्रहों का बलि रूप में निवेदन कर ब्राह्मणों का भोजन करावे। यदि भिन्न-भिन्न न हो सके यथा लाभ एक प्रकार का ही सत्कार एवं विधि के साथ भोजन कराना चाहिये ॥२०४-२०५॥ प्रत्येक ग्रह के उद्देश्य से यथाक्रम धेनु, शख, बैल, सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, श्यामा गौ, लोहा, बकरी, ब्राह्मणों को दक्षिणा देवे ॥२०६॥ जो ग्रह जिसका जिस समय अष्टमादि स्थान में हो उसको यत्नपूर्वक विशेष रूप से पूजना चाहिए और अन्य ग्रहों की साधारण पूजा करे। ब्रह्मा ने इनको वरदान दिया है कि पूजित होकर ये पूजा करने वाले की अभीष्ट सिद्ध करें ॥२०७॥ राजाओं का भी उत्थान और पतन ग्रहों के आधीन होता है। उनके द्वारा परिपालनीय लोक समूह का जन्म और मरण भी ग्रहों के ही आधीन होता है। इसलिये अपने तथा सबके योगक्षेम के लिये ग्रह राजा के पूजने के योग्य हैं ॥२०८॥

———

अथ राजधर्मप्रकरण वर्णनम् ॥

महोत्साहः स्थूललक्ष्यः कृतज्ञो वृद्धसेवकः।
विनीतः सत्वसम्पन्नः कुलीनः सत्यवाक् शुचि ॥३०९
अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रोऽपरुषस्तथा।
धार्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित् ॥३१०
स्वरन्ध्रगोप्तान्वीक्षिक्यां दण्डनीत्यां तथैव च।
विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्याञ्चैव नराधिपाः ॥३११
स मन्त्रिणः प्रकुर्वीत प्राज्ञान् मौलान् स्थिरान् शुचीन्।
तैः सार्द्धं चिन्तयेद्राज्यं विप्रेणाथ ततः स्वयम् ॥३१२

पुरोहितञ्च कुर्वीत दैवज्ञमुदितोदितम् ।
दण्डनीत्याञ्च कुशलमथर्वाङ्गिरसे तथा ॥३१३
श्रौतस्मार्त्तक्रियाहेतोर्वृणुयादृत्विजस्तथा ।
यज्ञांश्चैव प्रकुर्वीत विधिवद् भूरिदक्षिणान् ॥३१४
भोगांश्च दद्याद्विप्रेभ्यो वसूनि विविधानि च ।
अक्षयोऽयं निधी राज्ञां यद्विप्रेषूपपादितम् ३१५

राज्याभिषेकादि गुणों से युक्त गृहस्थ के विशेष धर्म बतलाते हैं। राजा कुलीन, स्थूल लक्ष वाला, कृतज्ञ, वयोवृद्ध तथा ज्ञान एवं तप से वृद्धों की सेवा करने वाला, नम्रतायुक्त, हर्ष शोकादि के अभाव वाला सत्य भाषण करने वाला, पतिव्रता से रहने वाला, दीर्घसूत्रता के दोष से रहित, स्मृति रखने वाला, सद्गुणों से द्वेष न करने वाला, दूसरों के दोष न कहने वाला, धार्मिक, व्यसनों से रहित, प्राज्ञ, शूर, मन्त्रणा में चतुर, सात अङ्ग वाले राज्य के पर प्रवेश द्वार को आच्छादित करने वाला, तर्क विद्या तथा अर्थ विद्या का और वेदत्रयी का ज्ञाता नराधिप होना चाहिए ॥ ३०९-३११ ॥ राजा स्वयं उपर्युक्त गुणों से विशिष्ट होता हुआ भी विवेक कुशल, कुल क्रम से सेवा करने वाले, कभी भी पराया आश्रय न देने वाले, स्थिर, ब्राह्याभ्यन्तर शुद्धि वाले मन्त्रियों को नियुक्त करे और सन्धि विग्रहादि राज्योपयोगी कार्यों का चिन्तन करे तथा फिर सकल शास्त्र तत्व ज्ञाता पुरोहित के साथ विचार करे और इसके पश्चात् स्वयं अपनी बुद्धि से चिन्तन करे ॥ ३१२ ॥ राजा को ग्रहोत्पात तथा उनको शान्ति आदि का ज्ञाता, शास्त्रोक्त अध्ययनानुष्ठानादि से अभ्युदयशाली, दण्डनीति तथा अभिचार शान्ति प्रधान आङ्गिरस शास्त्र में कुशल पुरोहित बनाना चाहिए ॥ ३१३ ॥ श्रौत अग्निहोत्रादि और स्मार्त महादानादि स्वरूप क्रियाओं के सम्पादन करते के लिये ऋत्विजों का वरण राजा को करना चाहिए ॥ ३१४ ॥ गृह शय्या सुवर्णादि भोग के योग्य वस्तुओं का दान राजा को ब्राह्मणों के लिए देना चाहिए । जो भी कुछ ब्राह्मणों को दान स्वरूप दिया जाता है यह अभिलाषितार्थ प्रदान करने वाली राजाओं की अक्षय विधि है ॥ ३१५ ॥

अस्कन्नमव्ययश्चैव प्रायश्चितैरदूषितम् ।
अग्नेः सकाशाद्विप्रास्यं पूतं श्रेष्ठमिहोच्यते ॥३१६
धर्मेण लब्धुमीहेत लब्धं यत्नेन पालयेत् ।
पालितं वद्धयेन्नीत्या वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥३१७
दद्याद् भूमि निबन्धं वा कृत्वा लेख्यञ्च कारयेत् ।
आगामिभद्रनृपति परिज्ञानाय पार्थिवः ॥३१८
पटे वा ताम्रपट्टे वा स्वमुद्रोपरिचिह्नतम् ।
अभिलेख्यात्मनो वंश्यानात्मानञ्च महीपतिः ॥३१९
प्रतिग्रहपरीमाणं दानाच्छेदोपवर्णनम् ।
स्वहस्तकालसम्पन्नं शासनं कारयेत् स्थिरम् ॥३२०
रम्यं पशव्यमाजीव्यं जाङ्गलं देशपावसेत् ।
तत्र दुर्गाणि कुर्वीत जनकोषात्मगुप्तये ॥३२१
तत्र तत्र निष्णातानध्यक्षान् शुचीन् ।
प्रकुर्यादायकर्मान्तव्ययकर्मसु चोद्यतान् ॥३२२

राजा के द्वारा राजसूयादि यज्ञ किये जाते हैं, उनमें बहुत बड़ी दक्षिणा दी जाती है और अग्नि में हवन किया जाता है किन्तु उस हवन से विप्र रूपी अग्नि में हवन करना अर्थात् दानादि का देना अधिक श्रेष्ठ हैं जो क्षरण रहित, अपशुष्यमान और प्रायाश्चित्तादि के क्लेश से भी अदूषित होता हे ॥ ३१६ ॥ धर्मोपायों द्वारा धन की प्राप्ति की चेष्टा करनी चाहिए और जब धन प्राप्त हो जावे तो उसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए । सुरक्षित धन को वृद्धि शास्त्रों से अविरुद्ध नीति वाणिज्यादि द्वारा करे और जब वह धन पर्याप्त रूप से बढ़ जाते तो सत्पात्र ब्राह्मणों के हितार्थ उसका विनियोग करना चाहिए अर्थात् ब्राह्मणों को दानादि रूप में देवे ॥ ३१७ ॥ राजा को ब्राह्मणों को भूमि दान देकर इस भूमि का इतना कर होगा, ऐसी व्यवस्था करके आगे भविष्य में होने वाले राजाओं के ज्ञान के लिये वस्त्र अथवा ताम्र पत्र में दानादि का प्रतिपादक लेख लिख देना चाहिए। उसके ऊर्ध्व भाग में अपने नामादेश की मुद्रा लगानी चाहिए। उस लेख में अपने

पूर्वजों के नाम, भूमि का परिमाण और दी हुई भूमि के चारों ओर की सीमा तथा नदी मार्गादि का स्पष्ट उल्लेख करके देना चाहिए। उस पर अपने हस्ताक्षर तथा समयादि लिखते हुए भविष्य में उसके पालन के लिये दृढ़ शासन का उल्लेख करे ॥ ३१८-३२० ॥ राजा को सुन्दर, पशु के लिये हितकर, कन्दमूल, फलादि युक्त स्थान जो प्रजा के लिए जीवन चलाने वाला हो, जल और वृक्षों से समन्वित जल की ऊंची भूमि में निवास स्थान बनाना चाहिए और वहीं पर प्रजा, खजाना और अपनी आत्म रक्षा के लिये दुर्ग का निर्माण करे ॥ ३२१ ॥ धर्मार्थकामादि सम्पन्न करने वाले विभिन्न स्थानों में सुयोग्य अधिकारियों को नियुक्ति करे जो अनन्य होकर अपने काम को करने वाले, कुशल, पवित्राचरण वाले, आय तथा व्यय के कामों में आलस्य न करने वाले, हों ऐसे ही व्यक्तियों को उचित अधिकार पद पर रक्खे ॥ ३२२ ॥

नातः परतरो धर्मो नृपाणां यदुपार्जितम् ।
विप्रेभ्यो दीयते द्रव्यं प्रजाभ्यश्चाभयं तथा ॥३२३
य आहवेषु वध्यन्ते भूम्यर्थमपराङ्मुखाः ।
अकूटैरायुधैर्यान्ति ते स्वर्गं योगिनो यथा ॥३२४
पदानि क्रतुतुल्यानि भग्नेष्वविनिवर्त्तिनाम् ।
राजा सुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनाम् ॥३२५
तवाहं वादिनं क्लीबं निर्हेतिं परसङ्गताम् ।
न हन्याद्विनिवृत्तञ्च युद्धप्रेक्षणकादिकम् ॥३२६
कृतरक्षः सदोत्थाय पश्येदायव्ययौ स्वयम् ।
व्यवहारांस्ततो दृष्ट्वा स्नात्वा भुञ्जीत कामतः ॥३२७
हिरण्यं व्यापृतानीत भाण्डागारेषु निःक्षिपेत् ।
पश्येच्चारांस्ततो दूतान् प्रेरयेन्मन्त्रिसंयुतः ॥३२८
ततः स्वैरविहारी स्यान्मन्त्रिभिर्वा समागतः ।
बलानां दर्शनं कृत्वा सेनान्या सह चिन्तयेत् ॥३२९

युद्ध में विजय प्राप्त कर कमाया हुआ समस्त धन ब्राह्मणों को दान रूप में देने और सर्वदा अभय देकर प्रजा की सुरक्षा करने से बड़ा

राजाओं का कोई धर्म नहीं होता है। अर्थात् यही सबसे श्रेष्ठ धर्म है ।। ३२३ ।। जो क्षत्रिय राजा भूमि के लिए सम्मुख जाकर लड़ते हुए युद्धों में अविषदिग्ध आयुधों से मारे जाते हैं वे योगियों की भाँति स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। अपने सैनिकों तथा गजाश्वरथादि के भग्न हो जाने पर भी जो बराबर शत्रु के सामने आगे की ओर बढ़ते चले जाते हैं उनके एक-एक कदम एक-एक यज्ञ के तुल्य फल देने वाले होते हैं । जो चोट खाकर पीछे की ओर मुड़ जाते हैं उनका सुकृत राजा ले लेता है ।। ३२४-३२५ ।। युद्ध भूमि में जो 'मैं तुम्हारा हूँ—ऐसा कहे उसे, नपुंसक को, हथियार रहित निहत्थे को, दूसरे से युद्ध करने वाले को, युद्ध छोड़कर वापिस लौटने वाले को और केवल युद्ध के देखने भर के लिये दर्शक रूप से आये हों अथवा अन्य किसी कार्यवश वहाँ हों उन्हें कभी नहीं मारना चाहिए ।। ३२६ ।। अपनी सुरक्षा का पूर्ण उपाय करके सावधान होकर स्वयं राजा आमदनी और खर्च को देखे। इसके अनन्तर व्यवहारों को देखकर स्नान करे और दिन के मध्य में यथा रुचि भोजन करे ।। ३२७ ।। सुवर्ण आदि द्रव्य लाने के कार्य में नियुक्त अधिकारियों के द्वारा लाये हुए धन को स्वयं देख कर खजाने में रक्खे। इसके पश्चात गुप्तचरों से प्रच्छन्न वार्तालाप करे और फिर मन्त्रियों के परामर्श से दूतों को भेजे ।। ३२८ ।। इस उक्त कर्म के अनन्तर अन्त: पुर में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा-विहार आदि एकांकी करे अथवा मन्त्रियों के साथ मनोविनोद करे। अपने हाथी, घोड़े आदि को देखकर सेनापति के साथ सेना-संरक्षणादि देश कालोचित का विचार करे ।। ३२९ ।।

सन्ध्यामुपास्य शृणुयाच्चाराणां गूढ़भाषितम् ।
गीतनर्त्यैश्च भुञ्जीत पठेत् स्वाध्यायमेव च ।।३३०
संविशेत्तूर्य्यघोषेण प्रतिबुध्येत्तथैव च ।
शास्त्राणि चिन्तयेद्बुद्ध्या सर्वकर्त्तव्यतोन्तथा ।।३३१
प्रेषयेच्च ततश्चारान् स्वेषु चान्येषु सादरम् ।
ऋत्विक्पुरोहिताचार्य्यैराशीर्भिरभिनन्दित। ।।३३२
दृष्ट्वा ज्योतिर्विदो वैद्यान् दद्याद् गां काञ्चनं महीम् ।

नैवेशिकानि च तथा श्रोत्रियाणां गृहाणि च ॥३३३
ब्राह्मणेषु क्षमी स्निग्धेष्वजिम्भः क्रोधनोऽरिषु।
स्याद्राजा भृत्यवर्गेषु प्रजासु च यथा पिता ॥३३४
पुण्यात् षड्भागमादत्त न्यायेन परिपालयन्।
सर्वदानाधिकं यस्मात् प्रजानां परिपालनम् ॥३३५
चाटुतस्करदुर्वृत्त महासाहसिकादिभिः।
पीडयमानाः प्रजा रक्षेत् कायस्थैश्च विशेषतः ॥३३६

सायङ्काल में सन्ध्योपासन करके अपराह्न में आये हुए दूतों के गुप्त कथन करे सुने फिर गान नृत्यादि से युक्त होकर भोजन करे और वेद को अभ्यास के लिये पढ़ाना चाहिए ॥ ३३० ॥ रात्रि में राजा को पूर्य शंखध्वनि के साथ शयन करना चाहिये तथा उसी प्रकार वाद्य ध्वनि के साथ प्रातः उठना चाहिए। उठकर शास्त्रों का तथा शास्त्रानुसार समस्त कर्त्तव्य समुदाय का विचार एवं चिन्तन करे ॥ ३३१ ॥ इसके अनन्तर दूतों को दानमानादि पुरष्कार पूर्वक अन्तःपुरादि में तथा परराष्ट्रों में भेजे। ऋत्विग्, पुरोहित और आचार्य के द्वारा प्राप्त आशोर्वाद से अभिनन्दित होवे ॥ ३३२ ॥ प्रातःकाल में ज्योतिषियों को बुलाकर उनसे अपनी ग्रहादि की स्थिति पूछकर शान्ति कर्म के लिये पुरोहित को आदेश देना चाहिए। वैद्यों से स्वशरीर की स्थिति को बतलाकर उसका प्रतिविधान की व्यवस्था करे वेदाध्ययन करने वाले ब्राह्मणों को गौ, सुवर्ण, भूमि तथा विवाह के उपयुक्त कन्यालङ्कारादि और घर को दान देवे ॥ ३३३ ॥ राजा को ब्राह्मणों के द्वारा अपराध बन जाने पर भी क्षमा वाला होना चाहिए मित्र, ज्ञाति आदि पर कुटिलता रहित होवे, शत्रुओं पर क्रोध के स्वभाव वाला रहे, भृत्य वर्गों पर और प्रजाओं पर तथा शरणागत व्यक्तियों पर पिता की भाँति दया वाला और हिताचरण करने वाला होना चाहिए ॥३३४॥ राजा शास्त्रोक्त न्याय के अनुसार सब प्रकार से भली भाँति प्रजा का पालन करता हुआ परिपालित प्रजा के द्वारा उपार्जित पुण्य का छठा भाग प्राप्त किया करता है, अतःएव समस्त दानों से अधिक फल प्रदान करने वाला प्रजा का

पालन होता है। वंचना करके दूसरों का धन लेने वाले, चोर द्यूतादि क्रीड़ा करने वाले दुराचारी, महान् साहस से बलात् हरण करने वाले से सताई हुई प्रजा की रक्षा करे तथा विशेष रूप से राजा राजाधिकृत लेखकों के द्वारा पीड़ित की प्रजा की रक्षा करनी चाहिए ।।३३५-३६।।

अरक्ष्यमाणाः कुर्वन्ति यत् किञ्चित् किल्विषं प्रजाः ।
तस्माच्च नृपतेरर्द्धं यस्माद् गृह्णात्यसौ करान् ।।३३७
ये राष्ट्राधिकृता स्तेषां चारैर्ज्ञात्वा विचेष्टितम् ।
साधून् सम्पालयेद्राजा विपरीतांस्तु घातयेत् ।।३३८
उत्कोचजीविनो द्रव्यहीनान् कृत्वा प्रवासयेत् सदा ।
सम्मानदानसत्कारैः श्रोत्रियान् वासयेत् सदा ।।३३९
अन्यायेन नृपो राष्ट्रात् स्वकोषं योऽभिवर्द्धयेत् ।
सोऽचिराद्विगतश्रीको नाशमेति सबान्धवः ।।३४०
प्रजापीड़नसन्तापसमुद्भूतो हुताशनः ।
राज्ञः कुलं श्रियं प्राणान् नादग्धा विनिवर्त्तते ।।३४१
य एव धर्म्मो नृपतेः स्वराष्ट्रपरिपालते ।
तमेव कृत्स्नमाप्नोति पर राष्ट्रं वशं नयन ।।३४२
यस्मिन् देशे य आचारो व्यवहारः कुलस्थितिः ।
तथैव परिपाल्योऽसौ यदा वशमुपागतः ।।३४३

राजा के द्वारा अरक्षित प्रजा जो कुछ भी चोरी आदि पाप-कर्म करती है उसका आधा पाप राजा को लगता है क्योंकि वह प्रजा से रक्षण करने के लिये करों को ग्रहण करता है। जो राष्ट्र में राजा के कर ग्रहण करने के कार्य में अधिकृत हैं उनकी सभी चेष्टाओं का दूतों द्वारा ज्ञान प्राप्त करके जो भले चरित्रवान् हैं उनका दान एवं पुरस्कारादि सत्कार से सम्मान करना चाहिये और जो असाधु हों उनको दण्ड देना। रिश्वत लेकर जीविकोपार्जन करने वालों को उनका सारा धन छीन कर अपने राष्ट्र से निकाल देवे। अच्छा दान, मान और सत्कार से वेदाध्येताओं को सदा राष्ट्र में बसाना चाहिये। जो राजा अन्याय से अर्थात् अदण्डय व्यक्तियों को दण्डित करके राष्ट्र से अपने कोष को

भरता है वह शीघ्र ही पुत्रादि बान्धवों सहित भ्रष्ट राज्य वाला होकर नष्ट हो जाता है। प्रजा के उत्पीड़न से उत्पन्न सन्ताप से जो अग्नि पैदा होती है। वह राजा की लक्ष्मी कुल और प्राणों को जलाये बिना अर्थात् नष्ट किये बिना कभी शान्त नहीं होती है। अपने राष्ट्र के परिपालन करने में राजा का जो धर्म होता है वही पर राष्ट्र को आत्मसात् करते हुये राजा को धर्म का छठा भाग प्राप्त होता है। पर-राष्ट्र को वश में करने के लिये जो उस समय प्रजा का पीडन होता है वह निषिद्ध नहीं होता है। पर-राष्ट्र के अपने वश में आ जाने पर भी वहाँ पहिले जैसा भी कुछ आचार हो, जैसा मातुली कन्या से परिणयादि करना और जो करग्रहणादि रूप व्यवहार तथा कुल परम्परा के अनुसार जो भी स्थिति हो उसको उसी प्रकार से राजा को पालन करना चाहिये ॥३३७-३४३॥

मन्त्रमूलं यतो राज्यमतो मन्त्रं सुरक्षितम् ।
कुर्य्याद्यथान्ये न विदुः कर्म्मणामाफलोदयात् ॥३४४
अरिर्मित्रमुदासीनोऽनन्तरस्तत् परः परः परः ।
क्रमशो मण्डलं चिन्त्यं सामादिभिरनुक्रमैः ॥३४५
उपायाः सामः दानञ्च भेदो दण्डस्तथैव च ।
सम्यक युक्ताः सिद्धे युर्दण्डस्त्वगतिका गतिः ॥३४६
सन्धिञ्च विग्रहं यानमासनं संश्रयं तथा ।
द्वैधीभावं गुणानेतान् यथावत् परिकल्पयेत् ॥३४७
यदा सम्यग्गुणोपेतं पराष्ट्रं तदा व्रजेत् ।
परश्च हीन आत्मा च हृष्टवाहनपूरुषः ॥३४८
देवे पुरुषकारे च कर्म्मसिद्धिर्व्यवस्थिता ।
तत्र दैवमभिव्यक्तं पौरुषं पौर्वदेहिकम् ।३४९
केचिद्दैवात् स्वभावाच्च कालात् पुरुषकारतः ।
संयोगे केचिदिच्छन्ति फलं कुशलबुद्धयः ॥३५०
यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत् ।
एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति ॥३५१

हिरण्यभूमिलाभेभ्यो मित्रलब्धिर्वरा यतः ।
अतो यतेय तत् प्राप्तौ रक्षेत् सत्यं समाहितः ।।३५२

राजा का मूल मन्त्र ही होता है इसलिऐ मन्त्र को भली प्रकार गुप्त रखना चाहिऐ । जिससे राजा के सन्धि विग्रहादि कार्यों का फल जब तक सामने न हो तब तक अन्य लोग मन्त्रणा को नहीं जान पावें ।।३४४।। अपने राज्य से लगे हुये देश का राजा अरि होता है और उस देश से लगे हुये देश से लगे हुए देश का स्वामी मित्र होता है तथा उससे आगे वाले देश का राजा उदासीन होता है । इस प्रकार चारों दिशाओं में शत्रु मित्र और उदासीनों का बारहों का एक मण्डल हो जाता है । अतः क्रम से सामादि उपायों द्वारा उनसे अपना अपकार न हो—ऐसा चिन्तन करते रहना चाहिये । यही अवधारण मन्त्र कहा जाता है ।।३४५।। साम, दान, भेद और दण्ड ये उपाय हैं । मधुर एवं प्रिय भाषण कर कार्य सिद्ध करना साम होता है । सुवर्णादि धन देकर काम बना लेना दान कहलाता है । सामन्तादि में परस्पर वैर उत्पन्न कर अपनी सिद्धि करना भेद नाम से प्रसिद्ध है । धन का अपहरणादि वध पर्यन्त अपकार करना दण्ड कहा जाता है । ये चारों उपाय देश काल के अनुसार भली भांति प्रयुक्त होने पर कार्य में सफलता दिलाते हैं किन्तु दण्ड तभी काम में लाना चाहिऐ जब कोई भी उपाय काम न करे ओह बाध्यता उपस्थित हो जावे । ये सभी उपाय लोकव्यवहार में प्रयुक्त होते हैं ।।३४६।। सन्धि, विग्रह, यान,, आसन, संश्रय और द्वैधी भाव—ये छै गुण नाम से प्रसिद्ध हैं । हम दोनों एक दूसरे का आपस में अपकार नहीं करेंगे—ऐसी व्यवस्था कर लेने को सन्धि कहते हैं । विग्रह युद्ध करने को कहा जाता है । शत्रु के ऊपर चढ़ाई कर देने को यान कहते है । उपेक्षा करके ढोला छोड़ देने को आसन और किसी बलवान् राजा का सहारा लेने को संश्रय कहते हैं । अपने बल को पृथक्-पृथक् भागों में बाँट देने को द्वैधी भाव कहा जाता है । देश काल शक्ति मित्र आदि के अधीन जब जैसा भी ठीक हो इनको उपयोग में लाना चाहिये ।।३४७।। जब पर-राष्ट्र व्रीहि आदि

की फसल से तथा जल-ईंधनादि गुणों से समन्वित हो पर-राष्ट्र वाहनादि से हीन हो तथा स्वयं वाहन तथा पुरुषादि के उत्साह एवं हृष्टता से युक्त हो तभी परराष्ट्र को अपने अधीन तथा वश में करने के लिए जाना चाहिए ।।३ ८।। कर्म के फल की सिद्धि दैव और पुरुषार्थ में व्यवस्थित रहती है । पूर्व देह से उपार्जित अदृष्ट विशेष को दैव कहते हैं और पौरुष तो इसी देह से किया जाता हैं अतः प्रत्यक्ष ही है ।।३४९।। कुछ लोग कर्म फल सिद्धि दैव से मानते हैं, कुछ स्वभाव से किसी कारण के बिना ही फल चाहते हैं कुछ लोग काल अर्थात् अनुकूल समय से फल चाहते हैं, कुछ पुरुषार्थ करने पर ही फल सिद्धि मानते हैं, कुछ काल पुरुषार्थ तथा दैव सब के संयोग से फल चाहते हैं । ये कुशल बुद्धि वाले होते हैं क्योंकि इनने सभी को अंगीकार कर लिया है ।।३५०।। सिद्धान्त की बात यह है कि जिस प्रकार एक पहिये से रथ की गति नहीं होती है इसी तरह पुरुषार्थ के बिना केवल दैव के सहारे पर कर्म के फल की सिद्धि कभी नहीं है ।।३५१।। हिरण्य का लाभ और भूमि का लाभ —इन दोनों लाभों से श्रेष्ठ मित्र का लाभ होता है । अतएव मित्र की प्राप्ति के लिऐ यत्न करना चाहिए । सन्मित्र की प्राप्ति का उपाय केवल सत्य वचन ही होता है । अत: सावधान होकर सत्य की रक्षा करनी चाहिऐ ।।३५२।।

स्वाम्यमात्यो जनोदुर्ग कोषो दण्डस्तथैव च ।
मित्राण्येताः प्रकृतयो राज्यं सप्तांगमुच्यते ।।३५३
तदवाप्य नृपो दण्डं दुर्वृत्तेषु निपातयेत् ।
धर्मो हि दण्डरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा ।।३५४
स नेतु न्यायतोऽशक्यो लुब्धेनाकृतबुद्धिना ।।
सत्यसन्धेन शुचिना सुसहायेन धीमता ।।३५५
यथाशास्त्रं प्रयुक्तः सन् सदेवासुरमानुषम् ।
जगदानन्दयेत् सर्वमन्यथा तु प्रकोपयेत् ।।३५६
अधर्म्मदण्डनं स्वर्गं कीर्त्ति लोकविनाशनम् ।
सम्यक् च द डनं राज्ञः स्वर्गं कीर्त्ति जयावहम् ।।३५७

अपि भ्राता सुतोऽर्घ्यो वा श्वशुरो मातुलोऽपि वा ।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति धर्म्माद्विचलितः स्वकात् ।।३५८
यो दण्ड्यान् दण्डयेद्राजा सम्यग्वध्यांश्च घातयेत् ।
इष्टं स्यात् क्रतुभिस्तेन सहस्रशतदक्षिणैः ।।३५९
इति संचिन्त्य नृपतिः क्रतुतुल्य फलं पृथक् ।
व्यवहारान् स्वयं पश्येत् सभ्यः परिवृतोऽन्वहम् ।।३६०

पूर्ण उत्साह आदि विशेषणों से युक्त राजा, मन्त्री और पुरोहित आदि, प्रजा वर्ग अर्थात् राष्ट्र, दुर्ग, कोष हाथी, घोड़े आदि मित्र अर्थात् सहज प्राकृत अकृत्रिम दोस्त—राज्य के मूल कारण स्वरूप होते हैं । इन सप्त प्रकृतियों से युक्त राज्य सप्तांग कहा जाता है ।।३५३।। ऐसे सप्तांगसम्मन्वित राज्य को पाकर राजा को दुष्ट चरित्र वालों को दंड देकर धर्म की रक्षा करनी चाहिऐ पहिले ब्रह्मा ने दण्ड रूप से ही धर्म को बनाया है ।।३५४।। पूर्वोक्त दण्ड न्यायानुसार शास्त्राज्ञा के अनुकूल लोभ रहित, स्थिर बुद्धि वाले, यथार्थ प्रतिज्ञा वाले, पवित्र अर्थात् अरिषडर्ग काम क्रोधादि को जीतने वाले, अच्छे अमात्यादि वाले और बुद्धिमान् राजा के द्वारा प्रयुक्त किया गया देव असुर और मनुष्यों के सहित समस्त जगत् को आनन्दित करता है । जो शास्त्र के विपरीत दण्ड किया जाता है वह जगत् को प्रकुपित कर देता है । अधर्म पूर्वक किया हुआ दण्ड स्वर्ग कीर्ति और लोक का नाश करने वाला होता है । शास्त्रोक्त न्याय से किया हुआ वही दण्ड स्वर्ग, यश और जय को देता है ।।३५५-३५६-३५७।। पूजा के योग्य आचार्यादि, पितृ मातृ आदि, भाई, पुत्र, श्वशुर और मामा भी यदि अपने धर्म से च्युत हो जावें तो राजा के यहाँ कोई भी अदण्डय नहीं होता है । अर्थात् न्याय परायण राजा चाहे कोई उक्त सम्बन्ध वाला भी क्यों न हो अपराध करने पर सभी को दण्ड देवे ।।३५८।। जो राजा दण्ड देने योग्य व्यक्तियों को दण्ड देता है और वध के योग्यों का वध कराता है वह विशेष दक्षिणा वाले यज्ञ का फल प्राप्त करता है । क्रतु तुल्य का निश्चय करके सभ्य पुरुषों के साथ स्वयं राजा दुष्टों

केदोषों का परिज्ञान करने के लिए पृथक् पृथक् वर्णादि क्रम से व्यवहारों को देखे जिससे किसी दण्ड न देने योग्य को दण्ड न दे दिया जावे ॥ ३५९–३६०॥

कुलानि: जाती: श्रेणीश्च गणान् जानपदांस्तथा ।
स्वधर्म्म चलितान् राजा विनीय स्थापयेत् पथि ॥३६१
जालसूर्य्यमरीचिस्थं त्रसरेणू रजः स्मृतम् ।
तेऽष्टौ लिक्षा तु तास्तिस्रो राजसर्षप उच्यते ॥३६२
गौरस्तु ते त्रयः षट ते यवो मध्यस्तु ते त्रयः ।
कृष्णलः पञ्च ते माषस्ते सुवर्णास्तु षोडश ॥३६३
पलं सुवर्णाश्चत्वारः पञ्च वाऽपि प्रकीर्तितम् ।
द्वे कृष्णले रूपप्यमाषोधरणं षौडशैव ते ॥३६४
शतमानस्तु दशभिर्धरणैः पलमेव च ।
निष्कः सुवर्णाश्चत्वारः कार्षिकस्ताम्रिकः पणः ॥३६५
साशीतिः पणसाहस्री दण्ड उत्तमसाहसः ।
तदर्द्धं मध्यमः प्रोक्तस्तदर्द्धमधमः स्मृतः ॥३६६
धिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डो धनदण्डो बधस्तथा ।
योज्या व्यस्ताः समस्ता वा अपराधवशादिमे ॥३६७
ज्ञात्वापराधं देशश्च काल बलमथापि वा ।
वयः कर्म्मं च वित्तञ्च दण्डं दण्डेषु पातयेत् ॥३६८

राजा को चाहिए कि वह ब्राह्मणादि के समूह को मूर्द्धाभिषिक्तादि वर्ण सङ्करों की, नरादि समुदाय को और कर्षकारु आदि को तथा अन्य अपने राज्य में रहने वाले लोगों को अपने धर्म से विचलित हो जाने पर उनके अपराध के अनुसार दण्ड देकर पुनः अपने धर्म मार्ग में स्थित करे ॥३६१॥ अब अर्थ दण्ड के विषय में विभिन्न परिमाणों को बताते हैं जिससे तुल्यापराध में तुल्य ही सर्वत्र दण्ड दिया जा सके। जल के अन्दर प्रविष्ट सूर्य किरणों में जो रज के कण दिखाई देते हैं उसे त्रसरेणु कहते हैं। आठ त्रसरेणुओं का एक लिक्षा होता है। तीन लिक्षा का एक राजसर्षप होता है, तीन राजसर्षपों का एक गौर

सर्षप होता है, छै गौर सर्षपों का एक मध्य यव होता है, तीन मध्यमयवों का एक कृष्णल होता है, पाँच कृष्णलों का एक माष होता है, और सोलह माषों का एक सुवर्ण होता है ।।३६२-३६३।।

पूर्वोक्त दो कृष्णलों का चाँदी का मासा होता है और ऐसे सोलह चाँदी के मासों को एक धरण कहते हैं। दश धरण का एक शतमान होता है जिसको प्रायः 'पल' के नाम से कहा जाता है। चार सुवर्ण का भी चाँदी का मासा माना जाता है। पल का चौथाई भाग लोक में कर्ष के नाम से प्रसिद्ध है कर्ष भर को 'पण' के नाम से भी पुकारते हैं। एक सुवर्ण का एक निष्क माना गया है। अब राजा द्वारा दण्ड दिये जाते समय १०८० 'पण' उत्तम साहस अथवा बड़े अपराधों के लिए दिया जाना उचित है। इससे आधा मध्यम और इसका भी आधा अधम साहस माना गया है। इस प्रकार के जुर्माने के अलावा राजा अपराध की गुरुता के अनुसार धिग्दण्ड, वाग्दण्ड, धन दण्ड और वध दण्ड भी दे सकता है। अपराध देश, काल, आयु, आर्थिक स्थिति का ध्यान भी दण्ड देते समय रखना चाहिये ।।३६४-३६८।।

अथ व्यवहाराध्यायः

तत्रादौ—सामान्यन्यायप्रकरणम्

व्यवहारात् नृपः पश्येद्विद्वद्भिर्ब्राह्मणैः सह ।
धर्म्मशास्त्रानुसारेण क्रोधलोभविवर्जितः ॥१
श्रुताध्ययनसम्पन्ना धर्मज्ञाः सत्यवादिनः ।
राज्ञा सभासदः कार्या रिपौ मित्रे च ये समाः॥२
अपश्यता कार्यवशाद् व्यवहारान् नृपेण तु ।
सभ्यैः सह नियोक्तव्यो ब्राह्मणः सर्वधर्मवित् ॥३
रागाल्लोभाद्भयाद्वापि स्मृत्यपेतादिकारिणः ।
सभ्याः पृथक् पृथक् दण्डया विवादाद् द्विगुणदमम् ॥४
स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाधर्षिताः परैः ।
आवेदयति चेद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत् ॥५
प्रत्यार्थिनोऽग्रतो लेख्यं यथावेदितमर्थिना ।
समामासतदर्द्धाहोर्नामजात्यादिचिह्नितम् ॥६
श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्वावेदकसन्निधौ ।
ततार्थी लेखयेत् सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम् ॥७
तत्सिद्धौ सिद्धिमाप्नोति विपरीतमतोऽन्यथा ।
चतुष्पाद्व्यवहारोऽयं विवादेषूपदर्शितः ॥८

राज्यासन पर अभिषिक्त एवं प्रशासन गुण समन्वित राजा का पालन सबसे प्रधान धर्म होता है और वह धर्म राष्ट्र में दुष्टों के निग्रह किये बिना सम्भव नहीं होता है। दुष्टों का परिज्ञान व्यवहार देखे बिना नहीं होता है। अतः राजा को स्वयं शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मणों के साथ विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को धर्म शास्त्र के अनुसार क्रोध और लोभ से रहित होकर देखना चाहिए ॥ १ ॥ मीमाँसादि समस्त शास्त्रों के श्रवण तथा वेदादि के अध्ययन से सम्पन्न, धर्म के ज्ञाता, सत्यवादी

और शत्रु तथा मित्र में राग द्वेषादि से रहित व्यक्तियों को राजा अपनी सभा के सदस्य नियुक्त करे ।। २ ।। विशेष कार्यों में व्यस्त रहने के कारण यदि राजा स्वयं व्यवहारों को न देख सके या देखना सम्भव न हो तो राजा को पूर्वोक्त सभा के सभ्यों के साथ समस्त धर्मों के ज्ञाता ब्राह्मण को व्यवहार देखने के कार्य में नियुक्त करना चाहिए ।। ३ ।। राजा के द्वारा नियुक्त प्राड्‌विवाकादि सभ्य स्नेहातिशय से लालच से, भय से स्मृति के विरुद्ध तथा आचार के विपरीत करते हैं तो राजा को पृथक्-पृथक् प्रकृत विवाद पराजय के कारण स्वरूप धन ग्रहणादि दण्ड से दुगुना दण्ड उनको देना चाहिए ।। ४ ।। स्मृति तथा धर्मशास्त्र एवं समयाचार के विरुद्ध मार्ग से दूसरों के द्वारा अभिभूत अर्थात् तिरस्कृत होकर कोई व्यक्ति यदि राजा से आवेदन करता है तो वह आवेदनीय व्यवहार का विषय होता है। यह शंकाभियोग और यत्वाभियोग दो प्रकार का होता है। प्रतिषेधात्मक और विध्यात्मक दो भेद तत्वाभियोग के होते हैं और फिर वह अठारह प्रकार के होते हैं जिनका विवेचन आगे होगा। अर्थी को जो कुछ भी राजा को आवेदन करना हो उसे प्रत्यर्थी के आगे ही लिखना चाहिए और आवेदन-पत्र के लेख में वर्ष, मास, पक्ष, दिन, नाम, जाति, निवास स्थान, पितादि का नाम ये सब अपने तथा प्रत्यर्थी के दोनों के लिखकर विषय का आवेदन करना चाहिए ।। ६ ।। अर्थी के आवेदन पत्र को भली-भाँति सुने हुए अर्थ का उत्तर प्रत्यर्थी के पहिले आवेदन करने वाले के समीप में ही लिखना चाहिए। इसके अनन्तर अर्थात् प्रतिवादी द्वारा किये गये उत्तर के लिखा देने पर अर्थी (वादी) समभिहिसार्थ के साधक साक्षी लिखितादि को स्वयं उपन्यस्त कर राज नियुक्त पुरुष द्वारा लिखा देवे । ।। ७ ।। साक्षी लिखतादि प्रमाण की सिद्धि अर्थात् निर्वाह होने पर विजय प्राप्त होती है अन्यथा प्रमाणों के ठीक निर्वहण न होने पर किये हुए अभियोग में हार होती है । इस प्रकार ऋणदानादि विवादों में चतुष्पाद अर्थात् चार भागों वाला यह उपदर्शित किया गया है ।। ८ ।।

अभियोगमनिस्तीर्य नैनं प्रत्यभियोजयेत् ।
अभियुक्तञ्च नान्येन नोक्तं विप्रकृतं नयेत् ॥९
कुर्यात् प्रत्यभियोगञ्च कलहे साहसेषु च ।
उभयो प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थः कार्यनिर्णये ।.१०
नह्नवे भावितो दद्याद्धनं राज्ञे च तत्समम् ।
मिथ्याभियोगी द्विगुणभियोद्धनं हरेत् ॥११
साहसस्तेयपारुष्यगोभिशायात्यते स्त्रियाम् ।
विवादयेत् सद्य एव कालोऽन्यत्रेच्छया स्मृतः ॥१२
देशाद्देशान्तरं याति सृक्वणीं परिलेढ़ि च ।
ललाटं स्विद्यते यस्य मुख वैवर्णमेति च ॥१३
परिशुष्यत्स्खलद्वाक्योविरुद्धं बहु भाषते ।
वाक्चक्षुः पूजयति नो तथोष्ठौ निभुं जत्यपि । १४
स्वभावाद्विकृतिं गच्छेन् मनोवाक्कायकर्मभिः ।
अभियोगे च साक्ष्ये वा दुष्टः स परिकीर्तितः ॥१५
सन्दिग्धार्थं स्वतन्त्रो यः साधयेद्यश्च निष्पतेत् ।
नचाहूतो वदेत् किञ्चिद्धीनो दण्डयश्च सः स्मृतः ॥१६
साक्षिषूभयतः सत्सु साक्षिणाः पूर्ववादिनः ।
पूर्वपक्षेऽधरीभूते भवन्त्युत्तरवादिनः ॥१७

अर्थी द्वारा किये गये अभियोग के जय पराजय रूप निर्णय जब तक न हो तब तक प्रतिवादी वादी पर कोई भी प्रत्यभियोग न करे और इसी प्रकार वादी भी आदि में किये गये आक्षेप के अपाकरण होने तक प्रतिवादी पर कोई भी अन्य अभियोग नहीं करे । अर्थात् कलह, स्त्री ग्रहण, स्तेयादि करने का दूसरा आक्षेप नहीं करना चाहिए । न्याय के कराने की प्रस्तुत वादी प्रतिवादी दोनों से राजा की सभा द्वारा कोई सम्पन्न समर्थ प्रतिभू (जमानत देवे वाला) ग्रहण कर लेना चाहिए । ॥ ९-१० ॥ वादी के द्वारा निवेदित अभियोग जब साक्षी एवं लिखित प्रमाणों से प्रतिवादी को स्वीकार करा दिया जावे तो प्रत्यर्थी वादी एवं राजा को अपलाप के बराबर दण्ड देवे । यदि वादी ही अपने प्रमाणों से

अभियोग को प्रमाणित करने में असमर्थ हो तो वह मिथ्याभियोग से दुगुना धन देवे ।। ११ ।। सबके समक्ष में बलपूर्वक परहिंसा करने के साहस, चोरी, कठोर वचन बोले जाने तथा दण्डादि के कठोर व्यवहार गौ, पानकादि का अभिशाप और कुल स्त्रियों के चरित्र सम्बन्धी बात का अभियोग तुरन्त ही कर देना चाहिए । ऋणादि के सम्बन्ध वाला अभियोग जब भी चाहे करे ।। १२ ।। मन, वाणी और शरीर के कर्म द्वारा जो स्वाभाविक तौर पर विकार वाला हो जाता है वह अभियोग में, वाद में, गवाही देने में दुष्ट कहा गया है । शास्त्र में ऐसे व्यक्ति के द्वारा किया गया अभियोग तथा गवाही सफल नहीं होते । अब विकृतियाँ क्या हैं उन्हें बतलाते हैं—देश देशान्तर घूमते रहना जिसके माथे पर पसीना आजाता है ऐसा, मुख के रङ्ग का पीला या फीका पड़ जाने वाला, मुख के सूख जाने वाला तथा रुक-रुक कर हिचककर बोलने वाला, पूर्वापर विरुद्ध बोलने तथा आवश्यकता से अधिक बोलने वाला, अपने प्रति दूसरे के कथन तथा देखने को न सहन करने वाला, देखने तथा जवाब देने में होठों को टेढ़ा करने वाला पुरुष विकृत युक्त होता है और अभियोग तथा गवाही के अयोग्य कहा गया है ।। १३-१५ ।। जो विचारक के द्वारा दिये गये जय पत्रादि की अपेक्षा न करके स्वयं स्वाधीन बन जाता है, विवाद के लिए बुलाये जाने पर गिर पड़ता है या विचार स्थल से भाग जाता है और जो अपने पक्ष के साधक या पक्ष के बाधक वचन कुछ भी नहीं बोलता है ऐसा दुष्ट होता है और राजा के द्वारा दण्ड के योग्य कहा गया है ।। १६ ।। परस्पर विवाद करने वाले वादी तथा प्रतिवादी दोनों अपने-अपने साक्षी लेकर उपस्थित हों तो पहिले पूर्व-वादी के साक्षी आदि प्रमाण लेने चाहिए । यदि पूर्व पक्ष उत्तर पक्ष की अपेक्षा दुर्बल हो तो फिर उत्तरवादी के साक्षी आदि प्रमाण उपादेय होते हैं ।। १७ ।।

स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारातः ।
अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थिति. ।।१८

प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्तितम् ।
एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते ॥१९
सर्वेष्वथ विवादेषु बलवत्युत्तरा क्रिया ।
आधौ प्रतिगृहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा ॥२०
प्रणष्टाधिगतं देयं नृपेण धनिने धनम् ।
विभावयेन्न चेल्लिङ्गैस्तत्समं दण्डमर्हति ॥२१
राजः लब्ध्वा निधिं दद्याद् द्विजेभ्योऽर्द्धं द्विजःपुनः ।
विद्वानशेषमादद्यात् स सर्वस्य प्रभुर्यतः ।२२
इतरेण निधौ लब्धे राजा षष्ठांशमाहरेत् ।
अनिवेदितविज्ञातो दाप्यस्तं दण्डमेव च ॥२३
देयं चौरहृतं द्रव्यं राज्ञा जानपदाय तु ।
अददद्धि समाप्नोति किल्विषंयस्य तत् ॥२४

व्यवहार विषय में दो धर्म शास्त्रों में जब परस्पर विरोध हो तो वहाँ विरोध के परिहार के लिये अन्वय के व्यतिरेकात्मक व्यवहार से विषय की व्यवस्था करने वाला न्याय अर्थात् तर्क बलवान् होता है । अर्थशास्त्र से बलवान् धर्मशास्त्र होता है क्योंकि प्रमेय धर्म से अर्थ को अप्रधान माना जाता है ॥१८॥ लिखित् अर्थात् लिपिबद्ध, और साक्षी तथा चतुर्थ अनुमान ये चार लौकिक प्रमाण होते हैं । इनके अभाव में दिव्य प्रमाणों में से कोई भी एक प्रमाण ग्रहण किया जाता है ॥ १९ ॥ ऋणादान विषयक समस्त प्रकार के विवादों में उत्तर क्रिया बलवती होती है। जैसे एक के पास निक्षिप्त धन जहाँ दूसरे के पास निक्षेप स्वरूप में रक्खा जावे तो दूसरे के पास निक्षेप्त क्रिया बलवती होती है इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए । अधिकरण प्रतिग्रह और क्रीत में प्रथम प्रतिग्रहादि बलवान् होते हैं ॥ २० ॥ जिसके स्वामी का ज्ञान न हो ऐसी निधि यदि राज्य को प्राप्त हो तो उसमें से आधा भाग ब्राह्मणों को दान देकर शेष आधे भाग को अपने कोष में रक्खे । यदि ब्राह्मण को अज्ञात स्वामी वाली निधि मिले तो श्रुताध्ययन सम्पन्न स्वयं सबको ग्रहण करे क्योंकि वह समस्त जगत् का स्वामी होता है ।२१।

यदि विद्वता रहित ब्राह्मण को निधि प्राप्त हो तो उसका छटवां भाग राजा प्राप्त करने वाले को देकर शेष स्वयं ग्रहण कर लेवे। क्षत्रियादि अन्य के लिए भी यही विधि करे। यदि निधि प्राप्त करके राजा से निवेदन न करे तो जान लेने के बाद राजा को चाहिए कि वह सम्पूर्ण निधि लेकर शक्त्यानुसार दण्ड भी देवे॥२२-२३॥ चोरी किया हुआ धन प्राप्त होने पर राजा को चाहिए कि वह धन जिसका चोरों ने अपहरण किया है उसी को वापिस दे देवे। यदि चुराया हुआ धन उसके स्वामी को नहीं दिया जावे तो उसकी चोरी का जो पाप होता है वह राजा को लगता है॥ २४ ॥

अथ ऋणदानप्रकरणम्

अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सबन्धके।
वर्ण क्रमाच्छतं द्विस्त्रिश्चतुः पञ्चकमन्यथा॥
गृहीता तु क्रमाद्दाप्यो धनिनामधमर्णिकः।
दत्त्वा तु ब्राह्मणायैव नृपतेस्तदनन्तरम्॥२५
अविभक्तैः कुटुम्बार्थे यदृणच्च कृतं भवेत्।
दद्युस्तदृक्थिनः प्रेते प्रोषिते वा कुटुम्बिनि॥२६
न योषित्पतिपुत्राभ्यां न पुत्रेण कृतं पिता।
दद्यादृते कुटुम्बार्थान्न पतिः स्त्रीकृतं तथा॥२७
सुराकामद्यूतकृतं दण्डशुल्कावशिष्टकम्।
वृथादानं तथैवेह पुत्रो दद्यान्न पैतृकम्॥२८
गोपशौण्डिकशैलुषरजकव्याधयोषिताम्।
ऋणं दद्यात् पतिस्तेषां यस्माद्वृत्तिस्तदाश्रया॥२९
प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या वा सह यत् कृतम्।
स्वयं कृतं वा यदृणं नान्यत् स्त्री दातुमर्हति॥३०
पितरि प्रोषिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेऽथवा।
पुत्रपौत्रैर्ऋणं देयं निह्नवे साक्षिभावितम्॥३१

भ्रातृणामथदम्पत्योः पितुः पुत्रस्य चैव हि।
प्रातिभाव्य मृणं साक्ष्यमविभक्तो न तु स्मृतम् ।।३२
दर्शने प्रत्यये दाने प्रतिभाव्यम् विधीयते।
आद्यौ तु वितथे दाप्यावितरस्य सुता अपि ।।३३
दर्शनप्रतिभूर्यत्र मृतः प्रात्य यिकोऽपिवा।
न तत् पुत्रा ऋण दद्यु र्दद्यु र्दानाय ये स्थिताः।।३४
बह्वः स्यूर्यदि स्वांशैर्दद्युः प्रतिभुवो धनम् ।
एकाच्छायाश्रितेष्वेषु र्धानकस्य यथारुचि ।।३५
प्रतिभूर्दापितो यत्तु प्रकाशं धनिनो धनम्।
द्विगुणं प्रतिदाव्यमृणिकैस्तस्य तद्भवेत् । ३६
आधिः प्रणश्येद् द्विगुणे धने यदि न मोक्ष्यते।
काले कालकृतं नश्येत् फलभोग्यो न नश्यति।।३७
गोप्याधिभोगे नो वृद्धिः सोपकारेऽथ हापिते।
नष्टो देयी विनष्टश्चदैवराजकृताहृते ।।३८

अठारह व्यवहार स्थानों में ऋणदान प्रथम होता है। ऋणदान सात प्रकार का होता है। ऐसा ऋण देने योग्य है ऐसा नहीं देने योग्य होता है, इस अधिकारी को देना चाहिए, इस समय में देना चाहिए, इस विधि से देना चाहिए—ये पाँच प्रकार तो ऋण लेने वाले (अधम) के हैं और दान की विधि तथा ऋण के वापिस आदान की विधि—ये कर्जा देने वाले (उत्तमर्ण) के हैं। ऋण-दान सम्बन्धक दो प्रकार का होता है। सम्बन्धक प्रयोग में प्रयुक्त धन का अस्सीवाँ भाग प्रतिमास में वृद्धि धर्मयुक्त होती है। अबन्धक ऋण में ब्राह्मणादि वर्णों को क्रम से प्रतिशत दो, तीन, चार तथा पाँच धर्म युक्त है। यह वृद्धि मासिक होती है। इच्छा से की हुई वृद्धि 'कारिता', प्रतिमास ग्रहण की जाने वाली कालिका' और दिवस गणनानुसार प्रतिमास ग्रहण की जाने वाली 'कायिका' वृद्धि कहलाती है। वृद्धि पर पुनः वृद्धि को चक्रवृद्धि कहते हैं ।। २५ ।। यदि समान जातीय धनी उत्तमर्ण अर्थात् दाता हों तो उनमें सबसे प्रथम अधमर्ण अर्थात् ऋण लेने वाले को ब्राह्मण का ऋण देना

चाहिए इसके पीछे क्षत्रियादि को क्रम से ऋण चुकाना चाहिए ।। २६ ।। सम्मिलित परिवार में पिता भाई आदि के द्वारा कुटुम्ब के भरण-पोषणादि आवश्यक कार्य के लिये ऋण लिया गया हो तो उनके मरने तथा प्रदेश में चले जाने पर पुत्र भ्राता आदि को जो विभक्त नहीं हैं वह ऋण चुकाना चाहिए ।। २७ ।। पति द्वारा किये गये ऋण को स्त्री तथा पुत्र के लिये ऋण को माता तथा पिता को नहीं देना चाहिए । कुटुम्ब के हित के बिना स्त्री के द्वारा लिये गये ऋण को पति नहीं देवे ।। २७ ।। सुरापान, काम वासना, शान्ति निमित्तक, जुआ में हार के हो जाने पर जो दण्ड शुल्क हो तथा धूर्त, बन्दी आदि के लिए जो प्रतिश्रुत किया हो ऐसे पैतृक ऋण को भी पुत्र द्वारा नहीं देना चाहिए ।। २८ ।। गायों के पालने वाला, मदिरा बनाने वाला, नट, धोबी वस्त्र रङ्गने वाला व्याध इनकी स्त्रियों के लिए हुए ऋण को उनके पति को चुकाना चाहिए क्योंकि उक्त लोगों की वृत्ति उनकी स्त्रियों के आधीन होती है ।। २९ ।। मरने वाले या परदेश मे जाने वाले पति के द्वारा ऋण दान करने को नियुक्त की गई स्त्रो को पति का ऋण चुकाना चाहिए तथा पति के साथ लिया हुआ स्वयं ही लिया ऋण हो स्त्री चुकावे अन्य कोई भो ऋण स्त्री न देवे ।। ३० ।। पिता दातव्य ऋण को न देकर मृत हो जावे, दूर देश में चला जावे और किसी असाध्य रोग से ग्रस्त हो जवे तो साक्षियों द्वारा प्रमाणित होने पर उसके पुत्र तथा पौत्र का वह ऋण चुका देना चाहिए ।। ३१ ।। दर्शन, प्रत्यय और दान—ये तीन प्रकार की प्रतिभाव्य (जमानत) होती है । दर्शन में प्रतिभू (जमानत देने वाला) दिखा देने का वचन देता है । प्रत्यय मे ऋण चुका देने का विश्वास दिलाता है और दान में जमानतदार यह कहता है कि यदि यह ऋण नहीं देगा तो मैं चुका दूंगा । आदि के दोनों से राजा के द्वारा ऋण चुकवा देना चाहिए और दान देने वाले के प्रतिभू के पुत्र पौत्रादि को भी उसके न रहने पर वह जमानत किया हुआ ऋण देना चाहिए । ऐसी स्थिति तभी होती है जब ऋण लेने वाला उसे न चुकावे । ऐसे ऋण पर वृद्धि न देकर केवल जितना ऋण रूप में धन लिया तो वही

देवे ॥ २ ॥ यदि एक से अधिक जमानतदार हों तो प्रत्येक प्रतिभू अपने हिस्से के अनुसार जमानत का ऋण देवे । यदि लेने वाले के सदृश ही सब हों तो धनिक की रुचि जिससे भी लेने की हो उससे ले लेवे । प्रतिभू से राजा के द्वारा साक्षियों के समक्ष में दिलाया हुआ धनिकों का धन ऋण लेने वाले से तीन पक्ष के बाद वृद्धि सहित दुगुना राजा के द्वारा दिलाना चाहिए । धन के प्रयोग में विश्वास के दो हेतु होते हैं । एक प्रतिभू और दूसरा आधि अर्थात् कोई भी वस्तु ऋण देने वाले के अधिकार में दे दी जावे । वह आधि कृतकाल और अकृतकाल दो तरह का होती है । ये दोनों भी गोप्य एवं भोग्य दो प्रकार की होती हैं । गोप्याधि को दुगना धन हो जाने पर भी यदि न छुड़ाया जावे तो वह नष्ट हो जाती है । समय की अवधि जिस आधि (बन्ध) में हो वह समयावधि समाप्त हो जाने पर खत्म हो जाती है । फलभोग्य आधि कभी नष्ट नहीं होती है ॥ ३३-३८ ॥

वासनस्थमनाख्याय हस्तेऽन्यस्य यदर्पितम् ।
द्रव्यं तदौपनिधिकं प्रतिदेयं तथैव तत् ॥३९
न दाप्योऽपहृतं तत्तु राजदैविकतस्करैः ।
भ्रेषश्चेन्मार्गितेऽदत्ते दाप्यो दण्डश्च तत्समम् ॥४०
आजीवन् स्वेच्छया दन्डचो दाप्यस्तञ्चापि सोदयम् ।
याचितान्वाहितन्यासनिक्षेपादिष्वयं विधिः ॥ १

किसी आधार स्वरूप सम्पुट के अन्दर रक्खा हुआ द्रव्य, जिसकी संख्या आदि नहीं बतलाई गई हो, दूसरे हाथ में रक्षा के लिये दिया जावे । वह औपनिधिक (धरोहर) द्रव्य कहा जाता है । वह उसी रूप में मुद्रादि से चिन्हित स्थायक को वापिस दे देना चाहिए । यदि वह औपनिधिक द्रव्य आग लग जाने से नष्ट हो या अन्य दैविक कारण से अथवा चोरादि द्वारा अपहृत हो गया हो तो राजा द्वारा स्थायक को नहीं दिलाना चाहिए । यदि निक्षेप्ता के द्वारा माँगने पर वापिस नहीं देवे तो उसका मूल्य निक्षेप रखने वाले को दिलावे और राजा उसके बराबर स्वयं दण्ड लेवे । जो बिना स्वामी निक्षेप्ता की आज्ञा

के अपनी ही इच्छा से उस उपनिधि का उपभोग करता है वह राजा के द्वारा दण्डनीय होता है और वृद्धि सहित निक्षेप्ता को राजा के द्वारा वापिस दिलाना चाहिए। विवाहादि उत्सवों में वस्त्रालङ्कारादि माँगकर लाया हुआ याचित न्यास होता है। जो एक के हाथ में रक्खा हुआ निक्षेप फिर दूसरे के हाथ में दे दिया जावे वह अन्वाहित न्यास कहा जाता है। इन दोनों प्रकार के निक्षेपों में उक्त विधि ही होती है ॥ ४६-४१ ॥

अथ साक्षिप्रकरणम्

तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः।
धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः ॥४२
त्र्यवराः साक्षिणो ज्ञेयाः पञ्चयज्ञक्रियारताः।
यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वासु वा पुनः ॥४३
श्रोत्रियास्तापसा वृद्धा ये च प्रव्रजितादयः
असाक्षिणस्ते वचनान्नात्र हेतुरुदाहृतः ॥४४
स्त्रीवृद्धबालकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकः।
रङ्गावतारिपाषण्डिकूटकृद्विकलेन्द्रियाः। ४५
पतिताप्तार्थसम्बन्धिसहायरिपुतस्कराः।
साहसी दृष्टदोषश्च निर्धूतश्चैत्यसाक्षिणः ॥४६
उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोऽपि धर्म्मवित्।
सर्वः साक्षी संग्रहणे दण्डपारुष्यसाहसे ॥४७
साक्षिणः श्रावयेद्वादिप्रतिवादिसमीपगान्।
ये पातककृतां लोका महापातकिनां तथा ॥४८
अग्निदानाञ्च ये लोका ये च स्त्रीबालघातिनाम्।
तान् सर्व्वान् समवाप्नोति य साक्ष्यमनृतं भवेत् ॥४९
सुकृतं यत्त्वया किञ्चिज्जन्मान्तरशतैः कृतम्।
तत्सर्वं तस्य जानीहि यं पराजयसि यं मृषा ॥५०

तपश्चर्या के स्वभाव वाले, दानशील, सांकर्य दोष शून्य कुल में उत्पन्न, सत्यवादी, धर्म की प्रधानता मानने वाले, सरल चित्त वाले, पुत्र वाले, धन वाले, अग्निहोत्रादि श्रौत कर्म तथा सन्ध्योपासनादि समस्त कर्म में परायण कम से कम तीन साक्षी होते हैं। जो साक्षात् श्रवण या दर्शन करता है वही साक्षी कहा जाता है। सब वर्ण तथा जातियों में उसी वर्ण एवं जाति के साक्षी होते हैं। यदि स्वजाति तथा वर्ण के साक्षी का अभाव हो तो सब में ब्राह्मणादिक होते हैं। सोलह वर्ष से छोटा, अस्सी वर्ष से ऊपर की उम्र वाला, द्यूत क्रीड़ा करने वाला, मद्यादि पीने वाला, उन्माद रोग वाला, ब्रह्महत्यादि के अभिशाप वाला, नट, पाखण्डी, कपटयुक्त व्यवहार वाला, चक्षु श्रोत्रादि इन्द्रियों से हीन, पतित, मित्र, धन से सम्बन्ध रखने वाला, वादी का सहायक, शत्रु चोर, बलपूर्वक मारने का साहस करने वाला, झूंठी गवाही किसी अन्य वाद में देने वाला और कुल से बहिष्कृत साक्षी होने के कभी अधिकारी नहीं होते हैं अर्थात् ऐसों की गवाही सही नहीं मानी जाती है। वादी-प्रतिवादी दोनों का अनुमत अर्थात् स्वीकृत और धर्म का ज्ञान रखने वाला एक भी साक्षी होता है। स्त्री के संग्रहण में चोरी कर्म में, कठोर वाणी के कथन में और मनुष्य के मारणादि में स्त्री आदि सभी साक्षी होते हैं। विचारक को चाहिए कि वादी-प्रतिवादी के समीप में स्थित साक्षियों को भली भाँति सुनादे कि जो कोई झूंठी गवाही देगा उसे पापियों को प्राप्त होने वाले रौरव आदि नरक, तथा महान् पातक करने वालों को प्राप्त होनेवाले स्थान, स्त्री और छोटे बालकों का घात करने वालों को मिलने वाले यातना स्थान और अग्नि लगा कर महा नाश करने वालों का स्थान उन्हें मिलेगा और जो कुछ तुमने सौ जन्मों में भी सुकृत किया है वह सब उसको चला जायगा जिसे तुम मिथ्या गवाही देकर पराजित कर रहे हो। अतः सत्य ही बोलना चाहिए ॥ ४२-५० ॥

अब्रुवन् हि नरः साक्ष्यमृणं स दशबन्धकम् ।
राज्ञा सर्वं प्रदाप्यः स्यात् षट्चत्वारिंशकेऽहनि ॥५१

न ददाति च यः साक्ष्यं जानन्नपि नराधमः ।
स कूटसाक्षिणां पापैस्तुल्योदण्डेन चैव हि ॥५२
द्वैधे बहुनां वचनं समेषु गुणिनां तथा ।
गुणिद्वैधे तु वचनं ग्राह्यं ये गुणवत्तमाः ॥५३
यस्योचुःसाक्षिणाः सत्यां प्रतिज्ञां स जयीं भवेत् ।
अन्यथावादिनो यस्य ध्रुवं तस्य पराजयः ॥५४
उक्तेऽपि साक्षिभिः साक्ष्ये यद्यन्ये गुणवत्तराः ।
द्विगुणा वान्यथा ब्रूयुः कूटाः स्युः पूर्वसाक्षिणः ॥५५
पृथक् पृथक् दण्डनीयाः कूटकृत् साक्षिणस्तथा ।
विवादाद्द्विगुणं द्रव्यं विवस्तो ब्राह्मणः स्मृतः ॥ ६
यः साक्ष्यं श्रावितोऽन्येननिन्हु ते तत्तमोवृतः ।
स दाप्योऽष्टगुणं द्रव्यं ब्राह्मणन्तु विवासयेत ॥५७
वर्णिनान्तु बधो यत्र तव साक्ष्यनृतं वदेत् ।
तत्पावनाय कर्तव्यश्चरुः सारस्वतो द्विजैः ॥५८

यदि कोई साक्षी गवाही देना स्वीकार करके भी फिर निर्णायक के समक्ष जाकर कुछ भी नहीं बोलता है तो राजा को चाहिए कि जो जेता से दशमांश राजा लेता है उसके सहित वृद्धियुक्त समस्त ऋण छयालीस दिन के अन्दर उससे उत्तमर्ण को (कर्ज देने वाले को) दिला देवे । ॥ ५१ ॥ जो सब बात यथार्थ रूप से जानता हुआ भी गवाही नहीं देता है वह नीच मनुष्य है । उसे झूंठी गवाही देने के पापियों के समान ही दण्ड देना चाहिए । यदि साक्षियों में परस्पर विरुद्ध बोलने वाले हों और समान संख्या में द्वैधभाव हो तो जो उनमें गुण वाले साक्षी हों उनकी गवाही सत्य मानना चाहिए और गुणियों में भी विरोध आता हो तो उनमें विशेष गुण युक्तों का वचन ग्रहण करना चाहिए ॥ ५२-५३ ॥ जिस वादी की द्रव्य जाति संख्यादि की प्रतिज्ञा को साक्षी सत्य बतावें वही अभियोग में विजय प्राप्त करता है । जिसकी प्रतिज्ञा को साक्षी असत्य कहें वह निश्चय ही पराजित हो जाता है । यदि साक्षी अपनी गवाही दे देवें और उनसे गुणों में श्रेष्ठ दूसरे साक्षी उस गवाही के विपरीत गवाही

देवें अथवा पूर्व साक्षियों से संख्या में दूने अन्य साक्षी अन्यथा कहें तो प्रथम साक्षी असत्यवादी निर्णीत होने चाहिए ।। ५०-५५ ।। जो धनादि देकर साक्षियों को मोड़कर मिथ्या कहलवाता है वह कूटकृत् अर्थात् असत्य-भाषी होता है उसे तथा जो झूठी गवाही देता है उसे दोनों को विवाद पराजय में जो दण्ड होता है उससे दुगुना पृथक्-पृथक् दण्ड देना चाहिए । यदि ऐसा कोई ब्राह्मण हो तो उसे यही दण्ड देवे कि राजा उसे अपने राष्ट्र से बाहिर निकाल दे । जो साक्षी पहिले लोगों से कहदे कि मैं इस तथ्य बात को भली भाँति जानता हूँ और गवाही देने के समय आने पर रागादि से आक्रान्त होकर उसे छिपाकर अन्यथा ही बोलता है उसे विवाद पराजय में होने वाले दण्ड से अठगुना दण्ड देना चाहिए किन्तु यदि वह ब्राह्मण हो तो उसे देश निकाला देकर ही दण्डित करे । यदि सत्य कहने में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का वध होता हो तो साक्षी मिथ्या गवाही भी दे देवे । ऐसे प्राण नाश के निवारण के लिये जो मिथ्या भाषण का पाप हुआ हो उसके परिहार के लिए प्रायश्चित स्वरूप में ब्राह्मणों के द्वारा सारस्वत चरु कराना चाहिए ।। ५६-५८ ।।

अथ लिखितप्रकरणम्

यः कश्चिदर्थो निष्णातः स्वरुच्या तु परस्परम् ।
लेख्यं वा साक्षिमत् कार्य्यं तस्मिन् धनिकपूर्वकम् ।।५९
समामासतदर्धाहोनाजातिस्वगोत्रकैः ।
सब्रह्मचारीकात्मीयपितृनामादिचिन्हितम् ।।६०
समाप्तेऽर्थे ऋणीनाम स्वहस्तेन निवेशयेत् ।
मतं मेऽमुकपुत्रस्य यदत्रोपरिलेखितम् ।।६१
साक्षिणश्च स्वहस्तेन पितृनामकपूर्वकम् ।
अत्राहममुकः साक्षी लिखेयुरिति ते समाः ।।६२
अलिपिज्ञ ऋणी यः स्यात् स्वमतं लेखयेत् तु सः ।
साक्षी वा साक्षीणान्येन सर्वसाक्षिसमीपगः ।।६३

उभयाभ्यर्थितेनेदन्मया ह्यमुकसूनुना।
लिखितं त्वमुकेनेति लेखकोऽन्ते ततो लिखेत् ॥८४
विनापि साक्षिभिर्लेख्यं स्वहस्तलिखितन्तु यत्।
तत्प्रमाणं स्मृतं लेख्यं बलोपधिकृतादृते ॥८५

धनिक और ऋण लेने वाले दोनों का आपस में अपनी-अपनी रुचि के अनुसार जो कुछ भी ऋणादि रूप अर्थ व्यवस्थापित हो जावे उसका लेख्य करना चाहिए और उस पर गवाही भी करा लेनी चाहिये। लेख्य पत्र अपने हाथ से तथा दूसरे लिपिक के हाथों से दोनों तरह का होता है। उसमें पहिले धनिक के नामादि लिखे तथा वर्ष, मास, पक्ष, दिनादि का पूरा विवरण होना चाहिए। नाम जाति, अपना गोत्र, कठादि शाखा का नाम और पिता का नाम लिखे दोनों के नामादि सब होने चाहिये। द्रव्य की संख्या का लेखन होना चाहिये। ये उपर्युक्त सब बातें लिखने के बाद ऋण लेने वाला यह लिखे कि इस लेख्यपत्र में जो कुछ भी लिखाया गया है वह अमुक नाम वाले मुझे स्वीकार है। ऐसा लिखकर नीचे अपना नाम लिखे अर्थात् हस्ताक्षर कर देना चाहिए। इसके पश्चात् समगुण साक्षियों को अपने अपने पिता के नाम के सहित अमुक नाम वाला मैं साक्षी हूँ और ये मेरे सामने सब लिखा गया है—ऐसा लिखना चाहिए। लेख्य पत्र में जब सभी उक्त बातें लिखली जावें तब अधमर्ण अर्थात् ऋण लेने वाला मैं अमुक नाम वाले का पुत्र अमुक नाम वाला जो कुछ भी इसमें लिखा गया है उससे सहमत हूँ—ऐसा लिखकर अपना नाम अन्त में अपने हाथ से लिखे। इस लेख्य पत्र में ऋणी यदि लिपिज्ञ न हो तो किसी दूसरे से लिखवा देवे और यदि साक्षी भी लिखना न जानता हो तो समस्त साक्षियों को समीप में बैठाकर किसी अन्य साक्षी से लिखवा देवे। लेख्य पत्र का लिखने वाला अन्त में यह लिखे कि मैंने अमुक के पुत्र तथा अमुक नाम वाले ने उत्तमर्ण तथा अधमर्ण दोनों के द्वारा प्रार्थित होकर यह लिखा। यदि किसी लेखक से न लिखाकर स्वयं अपने हाथ से ही लिखित किया जावे तो बिना साक्षी

के भी लिखना सत्य प्रमाण माना जाता है किन्तु वह बलपूर्वक तथा कपट भयादि के द्वारा न लिखा गया हो ।।५६-६५।।

ऋणं लेख्यकृतं देयं पुरुषस्त्रिभिरेव तु ।
आधिस्तु भुज्यते तावद्यावत्तन्न प्रदीयते ।।६६
देशान्तरस्थे दुर्लेख्ये नष्टोन्मृष्टे हृते तथा ।
भिन्ने दग्धेऽथवाच्छिन्ने लेख्यमन्यत्तु कारयेत् ।।६७
सन्दिग्धलेख्यशुद्धिः स्यात् स्वहस्तलिखितादिभिः ।
युक्ति प्राप्तिक्रियाचिन्हसम्बन्धागमहेतुभिः ।।६८
लेख्यस्य पृष्टेऽभिलिखेद्दत्त्व दत्त्वा धनं ऋणी ।
धनी चोपगत दद्यात् स्वहस्तपरिचिन्हितम् ।।६९
दत्त्वर्णं पाटयेल्लेख्यं शुद्धयै वान्यत्तु कारयेत् ।।७०
साक्षिमच्च भवेद्यद्वां तद्दातव्यं ससाक्षिकम् ।।७१

लेख्य पत्र के आधार पर लिया गया ऋण स्वयं तथा पुत्र और पौत्र इन तीनों को चुकाना चाहिए । क्षेत्रादिक आधि का भोग तभी तक किया जाता है जब तक अधमर्ण के द्वारा ऋण नहीं चुकाया जाता है । यदि लेख्यपत्र देशान्तर में चला गया हो, संदिग्धाक्षर वाला हो, स्याही के फीके होने कारण स्पष्ट वाँचने योग्य न रहा हो, कागज के फट जाने से दो टुकड़ों में हो गया हो, जल गया हो अथवा छिन्न-भिन्न हो गया हो तो दूसरा लिखित पत्र करा लेना चाहिए । यदि लिखित पत्र शुद्धाशुद्ध होने का सन्देह वाला हो तो अपने हाथ से उसकी शुद्धि सदृशाक्षरों में ही करनी चाहिए । उस शुद्धि में युक्ति, प्राप्ति, क्रिया, चिन्ह, सम्बन्ध और आगम इन हेतुओं की आवश्यकता होती है । इन्हीं से संदिग्ध लेख की शुद्धि होती है । कर्ज लेने वाला यदि ऋण का थोड़ा-थोड़ा भाग चुकावे तो उस दिये हुए धन की संख्या लेख्य पत्र के पृष्ठ भाग पर अपने हाथ से लिखदेनो चाहिए और धनी को इसके नीचे इतना ऋण में से धन प्राप्त हो गया ऐसा लिखकर अपने हस्ताक्षर कर देने चाहिए । समस्त लिया हुआ ऋण चुक जाने पर उस लिखित को फाड़ देना चाहिए । यदि वह लेख्य पत्र वहाँ पास में न हो तो ऋणि

को उत्तमर्ण परिशोधन के लिए अन्य लेख्य लिखकर देवे। जो ऋण साक्षियों के समक्ष लिया गया हो उसे साक्षियों के सामने ही देना चाहिए ॥६९—७१॥

अथ दिव्यप्रकरणम्

तुलाग्न्यापो विषं कोशो दिव्यानीह विशुद्धये।
महाभियोगेष्वेतानि शीर्षकस्थेऽभियोक्तरि ॥७२
रुच्या वान्यतरः कुर्यादितरो वर्त्तयेच्छिरः।
विनापि शीर्षकान् कुर्यान्नृपद्रोहेऽथ पातके ७३
सचैलस्नातमाहूय सूर्योदय उपोषितम्।
कारयेत् सर्वदिव्यानि नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥७४
तुला स्त्रीबालवृद्धान्धपंगुब्राह्मणरोगिणाम्।
अग्निर्जलं वा शूद्रस्य यवाः सप्त विषस्य च। ७५
तुलाधारणविद्वद्भिरभियुक्तस्तुलाश्रितः।
प्रतिमानसमीभूतो लेखाः कृत्वावतारितः ॥७६
त्वं तुले ! सत्यधामासि पुरा देवैर्विनिर्मिता।
तत्सत्यं वद कल्याणि ! संशयान्मां विमोचय ॥७७
यद्यस्मि पापकृन्मातः ! स्ततो मां त्वमधो नय।
शुद्धश्चेद् गमयोर्ध्वं मां तुलामित्यभिमन्त्रयेत ॥७८

नौ प्रकार के दिव्य प्रमाण होते हैं। उनमें तुला, अग्नि, जल, विष और कोश—ये पाँच दिव्य प्रमाण सुवर्ण स्तेयादि महान् अभियोगों में ही अभिक्ता के शिर पर होने पर सन्देह निवृत्ति के लिए धर्मशास्त्र में बताए गए हैं। दिव्य प्रमाण के विषय में वादी-प्रतिवादी दोनों की रुचि के ही अनुकूल ही बरतना चाहिए। दोनों में से किसी एक की इच्छा से ही दिव्य प्रमाण होता है। राजा से द्रोह करने की शंका में तथा ब्रह्म-वधादि पातक की शंका में शिरस्थायी के विना भी तुलादिक दिव्यप्रमाणों का उपयोग करे। सूर्य के उदित हो जाने पर वस्त्रों के सहित स्नान करने वाले दिव्य ग्राही को बुलाकर राजा और ब्राह्मणों के सन्निधि

में प्रड्विवाक को दिव्य प्रमाण कराना चाहिए । स्त्री, सोलह वर्ष से छटा बालक, वृद्ध, पंगु, ब्राह्मण, अन्धा और रोगी को तुला दिव्य प्रमाण है । शूद्र को अग्नि और जल तथा विष सात जो के बराबर देना चाहिए । स्पष्टीकरण यह है कि ब्राह्मण को केवल तुला, क्षत्रिय को अग्नि, वैश्य को जल और शूद्र को विष दिव्य प्रमाण होता है । तुला धारण मे विद्वान् अर्थात् तोलना जो भली भाँति जानते हों स्वर्णकारादि के द्वारा तुला मे बैठाया हुआ अभियुक्त हो उसके मान के बराबर मिट्टी आदि रखकर उनका लेखा कर लिया जावे तब वह उतर कर तुला से निम्न प्रकार से प्रार्थना करे । हे तुले ! तू सत्य का स्थान है और तुझे पहिले देवताओं ने उत्पन्न किया है । हे कल्याण करने वाली ! इसलिये सत्य बोलो और संदिग्धार्थ के सन्देह से मेरा उन्मोचन करो । हे माता ! यदि मैं असत्यवादी पापी हूँ तो मुझे तुम नीचे की ओर ले जाओ और यदि मैं शुद्ध हूँ तो मुझे ऊपर की ओर करदो—इस प्रकार तुला को अभिमन्त्रित करना चाहिए । दूसरे दिन तोलने पर प्रतिमान से दिव्य कर्त्ता ऊपर को ओर चला जावे तो शुद्ध और नीचे को ओर जावे तो अविशुद्ध होता है ।।७२—७८।।

करौ विमृर्दितव्रोहेर्लक्षयित्वा ततो न्यसेत् ।
सप्ताश्वत्थस्य पत्राणि तावत्सूत्रेण वेष्टयेत् ।।७९
त्वमग्ने ? सर्वभूतानामन्तश्चरसि पावक ?
साक्षिवत् पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि सत्यं करे मम । ८०
तस्येत्युक्तवतो लोहं पञ्चाशत्पलिकं समम् ।
अग्निवर्ण न्यसेत्पिण्डं हस्तयारुभयोरपि । ८१
स तमादाय सप्तैव मण्डलानि शनैर्व्रजेत् ।
षोडषांगुलिकं ज्ञेयं मण्डलं तावदन्तरम् ।८१
मुक्त्वाग्निं मृदितव्रीहिरदग्धः शुद्धिमाप्नुयात् ।
अन्तरा पतित पिण्डे सन्देहो वा पुनर्हरेत् ।।८३
सत्येन माभिरक्षस्वं वरुणेत्यभिशाप्यकम् ।
नाभिदघ्नोदकस्थस्य गृहीत्वोरू जलं विशेत् ।।८४

समकालमिषु मुक्तमानयेत् यो जवी नरः।
गते ऽन्यस्मिन्निमग्नाङ्गं पश्येच्चेच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥८५
त्वं विष ! ब्रह्मणः पुत्रः ! सत्यधर्मे व्यवस्थितः।
त्रायस्वास्मान्नभिशापात् सत्येन भव मेऽमृतम् ॥८६
एवमुक्त्वा विषं शाङ्गं भक्षयेद्धिमशैलजम्।
यस्य वेगैर्विना जीर्णं तस्य शुद्धिं विनिर्दिदशेत् ॥८७
देवानुग्रान् समभ्यर्च्य तत्स्नानोदकमाहरेत्।
संश्राव्य पाययेत्तस्माज्जलात्तु प्रसृति त्रयम् ॥८८
अर्वाक् चतुर्दशाःह्लो यस्य ना राजदैविकम्।
व्यसनं जायते घारं स शुद्धः स्यान्न संशयः ॥८९

व्रीहि (धान) को हाथों से तोड़ कर उनमें जो तिल अथवा क्षतादि के चिन्ह हों उन पर लाक्षादि रस से अङ्कन करके सात पीपल के पत्ते दानों हाथों की अञ्जलि में रक्खे और हाथों के सहित उन्हें सूत्र से वेष्टित करे। सूत के सात तन्तु होने चाहिए और श्वेत रंग होना चाहिए। इसके अनन्तर पचास पल के बराबर तप्त लोहे का पिण्ड हाथों में रक्खे और यह प्रार्थना करे हे अग्नि देव ! तुम समस्त भूतों के अन्दर विचरण करने वाले हो, हे शुद्धि के हेतु स्वरूप पावक ! तुम साक्षी के समान पुण्य और पापों को देखकर मेरे हाथ में सत्य बतलाओ। यह कहते हुए उस अग्नि के वर्ण के समान तप्त लोह पिंड को लेकर धीरे—धीरे सात मण्डल ले जावे। एक मण्डल सोलह अंगुल के बराबर होता है और सोलह अंगुल का व्यवधान होता है। फिर अष्टम मण्डल मे स्थित होकर नवम मण्डल में उसे छोड़ देवे फिर व्रीहियों से हाथों का मर्दन करे। यदि इस क्रिया के बाद न जले तो शुद्धि को प्राप्त होता है। यदि अष्टम मण्डल के पहिले ही लोह पिण्ड गिर जावे दग्ध अथवा अदग्ध का संशय हो तो पुनः इसी प्रकार करे। यह अग्नि का दिव्य प्रमाण है। अब जल के दिव्य प्रमाण से शुद्धि ज्ञानके विषय में बतलाते हैं। सर्व प्रथम उदक का निम्न प्रकार से अभिमंत्रण करे कि हे वरुण ! तुम सत्य से मेरी रक्षा करो। इसके पश्चात् नाभि पर्यन्त

जल में स्थित पुरुष के उरुओं को पकड़कर जल में प्रवेश करे। उसी समय वेग वाले एक पुरुष के जाने पर अन्य वेग वाला पुरुष शर पात के स्थान पर स्थित पूर्व मुक्त शर को लाकर जल में निमग्न को यदि देखता है तो वह शुद्ध है। हे विष ! हे ब्रह्मा के पुत्र ! तू सत्य धर्म में व्यवस्थित है। सत्य से इस अभिशाप से मेरी रक्षा कर और मेरे लिए अमृत हो जाओ। इस मन्त्र को कहकर विष का अभिमन्त्रण करे और फिर हिम शैलज शृङ्ग विष को खा लेवे। खाने पर जिसको विष वेग न हो और पच जावे तो शुद्धि सम्पन्न एवं प्रमाणित हो जाती है। विष शुद्धि के पश्चात् अब कोश शुद्धि बतलाते हैं। दुर्गा आदि उग्र देवों की अर्चना कर उनके स्नानोदक लावें और प्राड्विवाक उसे दूसरे पात्र में करके उसमें तीन प्रसृति पिलावे। पिलाने के पूर्व उसको भी पूर्ववत् अभिमन्त्रित कर लेवे। यदि उसके चौदह दिन तक उसे कोई राज निमित्तक या दैविक घोर व्यसन न हो तो वह निस्सन्देह शुद्ध ही समझना चाहिए ॥७९-८९॥

अथ दाय विभागप्रकरणवर्णनम्

विभागं चेत् पिता कुर्यात् स्वेच्छया विभजेत्सुतान्।
ज्येष्ठं वा श्रेष्ठ भागेन सर्वे वा स्युः समांशिनः ॥९०
यदि दद्यात् समानशान् पत्न्यः कार्याः समांशिकाः।
न दत्तं स्त्रीधनं यासां भर्त्रा वा श्वसुरेण वा ।८१
शक्तस्यानीहमानस्य किञ्चिद्दत्वा पृथक् क्रिया।
न्यूनाधिकविभक्तानां धर्मः पितृकृतः स्मृतः ।९२
विभजेरन् सुताः पित्रोरूर्ध्वं रिक्थमृणं समम्।
मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य ऋतेऽन्वयः ॥९३
पितृद्रव्याविरोधेन यदन्यत् स्वयमार्जितम्।
मैत्रमौद्वाहिकञ्चैव दायादानं न तद्भवेत् ।९४
क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हृतमभ्युद्धरेत्तु यः।
दायादेभ्यो न तद्दद्याद्विद्यया लब्धमेव च ।९५

यत्किञ्चित् पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति ।
भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालिनः ।।

जो धन स्वामि सम्बन्ध के निमित्त से अन्य का अपना होता है उसे दाय कहते हैं। वह दाय अप्रतिबन्ध-अप्रतिबन्ध भेद से दो प्रकार का होता है। पुत्र व पौत्र होने के नाते जो अपना होता है वह अप्रतिबन्ध होता है और चाचा भाई आदि का पुत्र भाव में या स्वामी के अभाव में अपना होता है वह अप्रतिबन्ध होता है। पिता यदि अपने अर्जित धन का विभाजन करे तो वह अपनी इच्छा से न्यूनाधिक भी विभाग कर देवे। ज्येष्ठ को श्रेष्ठ भाग देवे या सबको समान भाग देवे. पिता की इच्छा से किये जाने वाला विभाग सम और विषम दो प्रकार का होता है। यदि पिता सभी पुत्रों को समान रूप से सम विभाग करता है तो पत्नियों को भी पुत्रों के समांश भाग वाली करनी चाहिए, जिन पत्नियों को स्वामी तथा श्वसुर के द्वारा स्त्री-धन नहीं दिया गया है। विषम विभाग उसी धन का होता है जिसको पिता ने स्वयं अर्जित किया है। जो पितृ क्रम से आया हुआ धन हो उसका तो सम विभाग ही होता है। यदि कोई पुत्र स्वयं द्रव्यार्जन में समर्थ हो और पिता के धन की इच्छा न रक्खे तो कुछ भी देकर विभाग करना पिता का कार्य है। न्यूनाधिक विभाग पिता के द्वारा ही धर्म होता है।। ९०-९२ ।। माता-पिता के मरने के बाद उनका जो धन हो तथा ऋण हो उसका सभी पुत्र समान रूप से विभाग करें और माता के धन का उसकी पुत्रियाँ भाइयों के बराबर माता के ऋण को देने के पश्चात् ग्रहण करें। यदि माता का ऋण हो तो उसे पुत्रों को ही चुकाना चाहिए। यदि दुहिता न हों तो उनके पुत्र अपनी माता के लभ्य अंश को प्राप्त करें ।। ९३ ।। माता-पिता के द्रव्य का व्यय न करके जो वाणिज्यादि द्वारा स्वयं धन का अर्जन किया गया हो, जो मित्रों से प्राप्त हुआ हो, अथवा विवाहादि में प्राप्त धन हो वह धन दायादि अन्य भाई आदि को विभाजन के योग्य नहीं होता है। ।। ९४ ।। जो पितृ पितामह के कर्म से भी आया हुआ हो और अन्य किसी के द्वारा हरण किया गया हो तथा असामर्थ्य के कारण पितादि

उसको न ले सके हों, उनको यदि कोई भी पुत्रादि स्वयं अपनी शक्ति से छुड़ाले तो वह भी अन्य दायादों का नहीं होता है। जो वेद विद्याध्ययन एवं व्याख्यानादि से धन अर्जित किया गया हो उसमें भी दायादों का कुछ भी अधिकार नहीं होता है ॥ ९५ ॥ पिता के मरने के पश्चात् ज्येष्ठ जो भी कुछ धन प्राप्त करता है उसमें छोटों का भी भाग होता है यदि वे विद्यानुपाली हों ॥९६॥

सामान्यार्थं समुत्थाने विभागस्तु समः स्मृतः।
अनेक पितृकाणान्तु पितृतो भागकल्पना ॥९७
भूर्या पितामहोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव वा।
तत्र स्यात् सदृश स्वाम्यं पितुः पुत्रस्य चोभयोः ॥९८
विभक्तेषु सुतो जातः सवर्णायां विभागभाक्।
दृश्याद्वा तद्विभागः स्यादायव्ययविशोधितात्। ९९
पितृभ्यां यस्य यद्दत्तं तत्तस्यैव धनं भवेत्।
पितृरूर्द्धं विभजतां माताऽप्यंश समाप्नुयात् ॥१०९
असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः।
भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्वांशं तु तुरीयकम् ॥१०१
चतुस्त्रिद्‌व्येकभागीनाः वर्णशो ब्राह्मणात्मजाः॥
क्षत्रजास्त्रिद्व्येकभागाविड्जास्तु द्व्येकभागिनः ॥१०२
अन्योन्यापहृतं द्रव्यं विभक्तं यत्र दृश्यते।
तत्पुनस्ते समैरंशैर्भिजेरन्निति स्थितिः ॥१०३

समस्त भाइयों का यदि कृषि एवं वाणिज्यादि स्वरूप अर्थार्जन का व्यापार साधारण अर्थात् सम्मिलत हो तो उसमें सबका समान विभाग होता है। दो भाइयों की सन्तति में यदि एक के एक ही पुत्र हो और दूसरे के चार हों तो उसमें एक भाग एक पुत्र को और दूसरा तत्सम भाग चार पुत्रों का होना चाहिए, सबका समान नहीं होगा ॥ ९७ ॥ पितामह के द्वारा जो भूमि, निबन्ध या द्रव्य प्राप्त किया गया हो अर्थात् अर्जित हो तो उसमें पिता और पुत्र दोनों का समान विभाग होता है। बाबा की सम्पत्ति में यदि पिता से पुत्र पृथक् हो तो आधी का हकदार

होता है ।। ६८ ।। समस्त पुत्रों का विभाजन कर देने के पश्चात् यदि फिर कोई पुत्र सवर्ण पत्नी से उत्पन्न हो जावे तो वह भी सारे विभक्त भाइयों के धन वृद्धि और व्यय को छोड़कर अपना समान भाग प्राप्त करने का अधिकारी होता है ।। ६६ ।। विभाजन के पूर्व ही माता पिता स्नेहवश आभरणादिक जिसको दे देवें वह उसी का धन हो जाता है। विभक्त हुए पुत्रों में भी माता पिता आभरणादि जो कुछ भी किसी एक को देवें तो उसमें अन्यों का कोई भी अधिकार नहीं होता है। पिता के मरने के बाद जो कुछ भी शेष सम्पत्ति हो उसका माता या सौतेली माता के साथ समान बटवारा कर लेना चाहिए ।। १०० ।। पिता के मरने के पश्चात् जो भाई असंस्कृत रह गये हों उनका विवाहोपनयनादिक संस्कार समुदाय द्रव्य से समस्त विभक्त भाइयों का कराना चाहिए। जो असंस्कृत भगिनी हो उसके संस्कार के लिये प्रत्येक को अपने अंश में से चतुर्थ भाग देना चाहिए ।। १०१ ।। ब्राह्मण से ब्राह्मण आदि चार वर्णों की स्त्रियों में उत्पन्न हुए चार पुत्र यथाक्रम चार, तीन, दो और एक भाग के अधिकारी होते हैं। इसी प्रकार क्षत्रिय से त्रिवर्ण की तीन पत्नियों से उत्पन्न पुत्र क्रमशः तीन, दो और एक भाग पाते हैं। वैश्य से दो में दो-एक भाग के अधिकारी होते हैं। यह नियम प्रतिग्रह में प्राप्त भूमि में नहीं होता है। उसे तो ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्र ही पिता के मृत होने पर लेता है ।। १०२ ।। परस्पर में अपहरण किया हुआ समुदाय का द्रव्य जिस का विभाग करने के समय में ज्ञान न हो और पितृ धन के विभक्त हो जाने पर जो दिखाई दे उसको समभाग में विभक्त कर लेना चाहिए ।। १०३ ।।

अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः।
उभयोरप्यसौ रिक्था पिण्डदाता च धर्मतः। १०४
औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः।
क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणेतरेण वा ।।१०५
गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतो मतः।
कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतोमतः ।।१०६

अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवस्तथा ।
दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥१०७
क्रीतस्तु ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमस्तु स्वयं कृतः ।
दत्तात्मा तु स्वयं दत्तो गर्भे विन्नः सहोढजः ॥१०८
उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोऽपविद्धो भवेत् सुतः ।
पिण्डदोंऽशहरश्चैषाम् पूर्वाभावे परः परः ॥१०९
सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः ।
जातोऽपि दास्यां शूद्रेण कामतोंऽशहरो भवेत् ॥११०
मृते पितरि कुर्युस्तं भ्रातरस्त्वर्द्धभागिनम् ।
अभ्रातृको हरेत्सर्वं दुहितृणां सुतादृते ॥१११
पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा ।
तत्सुतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यः सब्रह्मचारिणः ॥११२
एषामभावे पर्वस्य धन भागुत्तरोत्तरः ।
स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥११३

बिना पुत्र वाले देवर आदि के द्वारा शास्त्रोक्त नियोग विधि से जो दूसरे की स्त्री में पुत्र उत्पन्न किया गया है, वह दोनों बीजी और क्षेत्री के रिक्थ का ग्रहण करने वाला तथा पिण्डदाता भी धर्मयुक्त होता है ॥ १०४ ॥ सवर्णा शास्त्रोक्त विधि से विवाहित धर्म पत्नी में उत्पन्न पुत्र औरस पुत्र कहा जाता है। यह मुख्य पुत्र होता है। औरस पुत्र के समान ही पुत्री का पुत्र भी माना जाता है। किसी सगोत्र व्यक्ति तथा देवर के द्वारा नियोग विधि से उत्पन्न पुत्र क्षेत्रजात होने से क्षेत्रज कहा जाता है ॥ १०५ ॥ अपने स्वामी के घर में चौर्यरत होकर गर्भ धारण करने पर जो प्रछन्न अन्य द्वारा पुत्र हो उसे गूढ़ज पुत्र कहते हैं। ऐसे पुत्र का निश्चय नहीं होता है कि किस वर्ण के और किस पुरुष का यह गर्भ हुआ है तो भी उसे सवर्णज मान लेना चाहिए। पिता के ही घर में कन्या में जो पुत्र उत्पन्न हो वह कानीन नाम वाला होता है वह मातामह का पुत्र होता है। अक्षय योनि हो अथवा क्षत योनि हो ऐसी स्त्री सवर्ण पति से दूसरा विवाह करले

उससे उत्पन्न पुत्र पौनर्भव कहा जाता है। माता अथवा पिता या दोनों जिस किसी सवर्ण को दे देवें वह दत्तक पुत्र होता है ।। १०६ १०७ ।। माता पिता के द्वारा कुछ धन लेकर बेच देने पर जो खरीद लिया जावे वह क्रीत पुत्र होता है। माता पिता से हीन को स्वयं पुत्र रूप में बना लेवे या वह स्वयं "मैं आपका ही पुत्र हूँ"—ऐसा कह कर पुत्र भाव से रहे वह कृत्रिम पुत्र होता है और क्रमशः दत्तात्मा कहा जाता है। गर्भिणी से विवाह करने पर जो पुत्र होता है सहोढज पुत्र होता है ।। १ ८ ।। माता पिता के द्वारा जो त्याग दिया जावे ऐसे को ग्रहण कर लेने पर अपविद्ध पुत्र कहलाता है। ये बारह प्रकार के पुत्र होते हैं। इनमें पूर्व-पूर्व के अभाव में उत्तर-उत्तर श्राद्ध देने वाला, भाग ग्रहण करने वाला और धन प्राप्त करने वाला होता है ।। १०९ ।। पूर्वाभाव में पर-पर की विधि सजातीय पुत्रों में ही होती है भिन्न जातीय पुत्रों में नहीं होती है। कानीन, गूढ़ोत्पन्न, सहोढज और पौनर्भवों की सवर्णता जनक द्वारा ही होती है स्वरूप से नहीं। शूद्र से दासी में समुत्पन्न पुत्र पिता की इच्छा से ही अंशहर होता है। पिता से परिणीत भार्या में पुत्र हों और पिता की मृत्यु हो जावे तो भाइयों का कर्त्तव्य है कि दासी पुत्र को अपने भाग में से आधा भाग दे देवें। यदि परिणीता माता के पुत्र न हो और परिणीत दुहिता के भी कोई पुत्रादि न हो तो दासी पुत्र पिता की सम्पूर्ण सम्पति के प्राप्त करने का हकदार है ।।११०-१११।। यदि पूर्वोक्त बारह प्रकार के पुत्रों में से किसी भी प्रकार का कोई पुत्र न हो और पौत्र प्रपौत्रादि से पूर्णतया हीन हो तो मृत्यु प्राप्त हो जाने के पश्चात् मृत की सम्पूर्ण सम्पत्ति का अधिकार निम्न व्यक्तियों को होता है। पत्नी, पुत्री, माता पिता, भाई का पुत्र, गोत्र में उत्पन्न बन्धु, शिष्य और एक साथ में ब्रह्मचर्य रखकर वेद पढ़ने वाला ये हकदार हैं। इनके पूर्व-पूर्व के अभाव में उत्तर-उत्तर अधिकारी होते हैं। यह सभी वर्णों की विधि है ।।११२...११३।।

वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणमृक्थभागिनः।
क्रमेणाचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः। ११४

संसृष्टिनस्तु संसृष्टी सोदरस्य तु सोदरः।
दद्याच्चोपहरेदंशं जातस्य च मृतस्य च ॥११५
अन्योदर्यस्तु संसृष्टी नान्यौदर्यो धनं हरेत्।
असंसृष्टर्चापि चादद्यात् संसृष्टो नान्यमातृजः ॥११६
क्लीबोऽथ पतितस्तज्जः पगुरुन्मत्तको जडः।
रत्धोऽचिकित्स्यरोगी च भर्त्तव्याः स्युर्निरंशकाः ॥११७
औरसाः क्षेत्रजास्तेषां निर्दोषा भागहारिणः।
सुताश्चैषां प्रभर्त्तव्या यावद्वै भर्तृसात्कृताः ॥११८
अपुत्रा योषितश्चैषां भर्त्तव्याः साधुवृत्तयः।
निर्वास्या व्यभिचारिण्यः प्रतिकूलास्तथैव च ॥११९

वानप्रस्थ, यति और ब्रह्मचारी का रिक्त धन का उपयोग करने वाले प्रतिलोम क्रम से आचार्य, सच्छिष्य और धर्मभ्राता तथा एकाश्रमी करते हैं। आचार्यादि के अभाव में पुत्रादि के होने पर भी आश्रमान्तर में चले जाने के कारण एक तीर्थी ही को धन लेने का अधिकार होता है ॥ ११४ ॥ विभक्त किया हुआ धन पुनः लेने को संसृष्ट कहते हैं। ऐसा संसृष्ट वाला संसृष्टी कहलाता है। संसृष्टी के मरण काल के समय में यदि गर्भस्थ पुत्र हो तो उसके उत्पन्न हो जाने पर उसके पिता का अंश उसे दे देना चाहिए। ऐसा संसृष्ट पिता, भ्राता पितृव्य सभी से हो सकता है। सोदर संसृष्टी के मृत हो जाने पर सोदर संसृष्टी ही संसृष्टानुजात को देवे। तात्पर्य यह है कि सोदर-असोदर के संसर्ग में सोदर संसृष्टी के धन को सोदर संसृष्टी ही ग्रहण करता है। अन्योदर्य सापत्न (सौतेला) भाई संसृष्टी धन का हरण करे किन्तु असंसृष्टी अन्योदर्य नहीं ग्रहण करे ॥ ११५-११६ ॥ क्लीव (नपुंसक), पतित, पातकी से उत्पन्न पुत्र, पंगु, उन्माद वाला, हिताहित के निर्णय में असमर्थ जड़, अन्धा और ऐसा रोग वाला जिसका कोई इलाज न हो—ये सब रिक्त के भागी नहीं होते हैं किन्तु केवल इनका भरण-पोषण अवश्य ही करना चाहिए उक्त लोगों के औरस अथवा क्षेत्रज पुत्र यदि दोष रहित हों तो भाग प्राप्त करने के हकदार होते हैं। उपर्युक्त व्यक्तियों की पुत्री हों तो जब तक

उनका विवाह न हो उनका भोजनाच्छादनादि से भरण करना चाहिए। यदि उक्त व्यक्तियों की पत्नी सन्तानहीन हों और सच्चरित्र हों तो उनका भी भरण-पोषण करना चाहिए। यदि वे व्यभिचारिणी हों या प्रतिकूल रहने वाली हों तो घर से निकाल देना चाहिए ॥ ११७-११६ ॥

पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम्।
आधिवेदनिकाद्यञ्च स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥१२०
बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव वा।
अतीतायामप्रजसि बान्धवास्तदवाप्नुयुः ॥१२१
अप्रजः स्त्रीधनं भर्त्तुर्ब्राह्मादिषु चतुर्ष्वपि।
दुहितृणां प्रसूतां चेत् शेषेषु पितृगामि तत ॥१२२
दत्त्वा कन्यां हरन् दण्डचोऽव्ययं दद्याच्च सोदयम्।
मृतायां दत्तमादद्यत्परिशोध्योभयव्ययम् ॥१२३
दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ सम्प्रति रोधके।
गृहीतं स्त्रीधनं भर्त्ता न स्त्रियै दातुमर्हति ॥१२४
अधिविन्नस्त्रियं दद्यावाधिवेदनिकं समम्।
न दत्तं स्त्रीधनं यस्यै दत्ते त्वर्द्धं प्रकीर्तितम् ॥१२५

पिता, भ्राता, माता और पति के द्वारा दिया हुआ और अग्नि की सन्निधि में विवाह के समय कन्या दान के रूप में प्राप्त, तथा अधिवेदन के निमित्त से मिला हुआ धन स्त्री का धन होता है। इसे स्त्री-धन कहा जाता है। प्रीतिपूर्वक सास श्वसुर आदि से विवाह होने के पश्चात् पादवन्दनादि प्रथा में जो दिया जाता है वह भी सब स्त्री-धन हो होता है ॥ १२० ॥ सन्तान हीन स्त्री के मृत हो जाने पर उस उक्त स्त्री-धन को उसके सम्बन्ध वाले बान्धव प्राप्त करते हैं। प्रजाविहीन स्त्री का धन ब्राह्म, दैव आर्ष और प्राजापत्य इन चार प्रकार के विवाहों में स्त्री धन उसके भर्त्ता का होता है। शेष अन्य चार प्रकार के विवाहों में तथा विवाहाभाव में स्त्रीधन पितृगामी होता है। यदि इसी प्रकार के विवाहों में वह

सन्तान वाली हो तो पुत्रियों का होता है। वाग्दान द्वारा कन्या देकर अर्थात् कन्या को वर को देने का वचन देकर यदि फिर कन्या का पिता कन्या को न दे तो वर ने वाग्दान के कारण स्वरूप जो भी धन व्यय किया है उसे वृद्धि सहित राजा को वर के लिये दिलाना चाहिये और दण्ड भी देना चाहिये। यदि कन्या मृत हो जावे तो दोनों के व्यय का परिशोधन कर शेष बिना वृद्धि के दिला देवे ॥ १२१-१२३ ॥ स्वामी के पास धन का अभाव हो और दुर्भिक्ष में कुटुम्ब के भरण की आवश्यकता में, धर्म के काम में, बीमारी की दशा में और बन्दीकरणादि में स्वामी के द्वारा लिया हुआ स्त्री-धन पुनः स्त्री को नहीं देना चाहिए ॥ १२४ ॥ किसी कारण विशेष के होने पर जो पूर्व परिणीता स्त्री के होने पर दूसरा विवाह किया जाता है तो पहिली स्त्री अधिविन्ना कही जाती है और उसको जो धन दिया जाता है वह अधिवेदनिक कहलाता है। सपत्नी विवाह के निमित्त परिणीमान स्त्री को जितना धन दिया जावे उसी के समान अधिविन्ना को भी अधिवेदनिक धन देना चाहिए। यदि उसे स्त्री धन पहिले ही दे दिया गया हो तो आधा ही अधिवेदनिक देवे ॥ १२५ ॥

य इदं धारयिष्यंति धर्मशास्त्र मतंद्रताः।
इहलोके यशः प्राप्यतेयास्यंति त्रिविष्टपम् ॥

जो मनुष्य इस याज्ञवल्क्य रचित धर्मशास्त्रको आलस्य छोड़कर पढ़ेंगे वे इस लोक में यशस्वी होकर स्वर्ग को प्राप्त करेंगे।

॥ समाप्त ॥

पाराशरस्मृतिः

तत्रादौ—धर्मोपदेशंतल्लक्षणञ्चाह

अथातो हिमशैलाग्रे देवदारुवनालये ।
व्यासमेकाग्रमासीनमपृच्छन्नृषयः पुरा ॥१
मानुषाणां हितं धर्मं वर्त्तमाने कलौ युगे ।
शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत ! ॥२
तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यन्तु समिद्धाग्न्यर्कसन्निभः ।
प्रत्युवाच महातेजाः श्रुतिस्मृतिविशारदः ॥३
नचाहं सर्व्वतत्त्वज्ञः कथं धर्मं वदाम्यहं ।
अस्मत् पितैव प्रष्टव्य इति व्यासः सुतोऽवदत् ॥४
ततस्ते ऋषयः सर्व्वे धर्मतत्त्वार्थकांक्षिणः ।
ऋषिं व्यासं पुरस्कृत्य गता बदरिकाश्रमे ॥५
नानावृक्षसमाकीर्णं फलपुष्पोपशोभितम् ।
नदीप्रस्रवणाकीर्णं पुण्यतीर्थैरलंकृतम् ।६
मृगपक्षिगणाढ्यञ्च देवतायतनावृतम् ।
यक्षगन्धर्व्वसिद्धैश्च नृत्यगीतसमाकुलम् ॥७

इसके अन्नतर हिमालय की चोटी पर देवदारू वृक्षों के वन के घर में बैठे हुए । एकाग्र मन वाले व्यास जी से पहिले समय में ऋषियों ने पूछा—हे सत्यवती के पुत्र ! वर्त्तमान कलियुग में मनुष्यों का हित करने वालधर्मं और ठीक २ शौच का आचार बतलाइये ॥१-२॥ ऋषियों

के उस वाक्य को सुन कर जलती हुई अग्नि तथा सूर्य के समान दीप्ति वाले, महान् तेजस्वी और श्रुति एवं स्मृतियों के परम पण्डित व्यासजी ने उत्तर दिया—मैं समस्त तत्वों का ज्ञाता नहीं हूँ अतः मैं किस प्रकार धर्म के विषय में कुछ बतलाऊं ? मेरे पिताजी से ही ये बातें पूछनी चाहिए—ऐसा पुत्र व्यास जी ने कहा ।।३-४।। इसके बाद धर्म के तत्वार्थ की चाह वाले समस्त ऋषिगण व्यास ऋषि को साथ में अपने आगे लेकर बदरिकाश्रम में गये ! वहाँ का आश्रम अनेक प्रकार के वृक्षों से घिरा हुआ था, फल तथा पुष्पों से शोभायमान, नदियों के प्रस्रवण से समाकीर्ण, परम पवित्र तीर्थों से भूषित, मृग पक्षियों के समुदाय से युक्त, देवालयों से समावृत यक्ष गन्धर्व और सिद्धों के द्वारा किये गए नृत्य और गान से पूर्ण था ।।५-७।।

तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम् ।
सुखासीनं महात्मानं मुनिमुख्यगणावृतम् ।।८
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु ऋषिभिः सह ।
प्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभिः समपूजयत् ।।९
अथ सन्तुष्टमनसाः पराशरमहामुनिः ।
आह सुस्वागतं ब्रूहीत्यासीनो मुनिपुङ्गवः ।।१०
व्यासः सुस्वागतं ये च ऋषयश्च समन्ततः ।
कुशलं कुशलेत्युक्त्वा व्यासः पृच्छत्यतः परम् ।।११
यदि जानासि मे भक्ति स्नेहाद्वा भक्तवत्सल ! ।
धर्मं कथय मे तात ! अनुग्राह्योह्यहं तव ।।१२
श्रुता मे मानवा धर्म्मा वाशिष्ठाः काश्यपास्तथा ।
गार्गेया गौतमाश्चैव तथा चौशनसाः स्मृताः ।।१३
अत्रेर्विष्णोश्च साम्वर्त्ता दाक्षा आङ्गिरसास्तथा ।
शातातपाश्च हारीता याज्ञवल्क्यकृताश्च ये । १४
कात्यायनकृताश्चैव प्राचेतसकृताश्चये ।
आपस्तम्बकृता धर्म्माः शङ्खस्य लिखितस्य च ।।१५

श्रुता ह्येते भवत्प्रोक्ताः श्रौतार्थास्तेन विस्मृताः ।
अस्मिन्मन्वन्तरे धर्म्माः कृतत्रेतादिके युगे ।।१६
सर्व्वे धर्म्माः कृते जाताः सर्वे नष्टाः कलौ युगे ।
चातुर्वर्ण्यंसमाचारं किञ्चित् साधारणं वद ।।१७

उस आश्रम में ऋषियों की सभा के मध्य में मुख्य मुनियों के समूह से घिरे हुए, सुख पूर्वक बैठे हुए शक्ति के पुत्र महात्मा पराशर को ऋषियों के साथ व्यास मुनि ने अपनी अञ्जलि पुट को बाँधकर अभिवादन तथा प्रदक्षिणा करके स्तुतियों के द्वारा पूजित किया ।।८-९।। इसके पश्चात् सन्तोषपूर्ण मन वाले बैठे हुए, मुनि श्रेष्ठ पराशर महा मुनि बोले— तुम्हारा स्वागत है, बतलाओ क्या बात है ? ।।१०।। चारों ओर से ऋषियों ने व्यास का स्वागत किया और सबका कुशल दोनों ओर से पूछे बताये जाने पर इसके आगे व्यास जी ने पूछा ।।११।। हे भक्तवत्सल ! हे तात ! आप स्नेह से अथवा मेरी भक्ति को जानते हुए धर्म के विषय में बतलाओ । यह मैं आप के द्वारा अनुग्रह करने के योग्य हूँ ।।१२।। मैंने मानवों के धर्म वसिष्ठ, कश्यप, गार्गेय, गौतम, औशनश, अत्रि, विष्णु, सम्वर्त, दक्ष, अङ्गिरा, शतातप, हारीत, याज्ञवल्क्य, कात्यायन, यम, आपस्तम्ब, शङ्ख, लिखित और आप के द्वारा कहे हुए और वे सुने हुए धर्म के अर्थ विस्मृत नहीं हुए हैं। ये समस्त धर्म इस मन्वन्तर में सतयुग एवं त्रेता, द्वापरयुग के हैं। ये समस्त सतयुग में हुये किन्तु कलियुग में वे सभी नष्ट हो गये । अतः चारों वर्णों में भले आचार को कुछ साधारण रूप से बतलाइये ।।१३ – १७।।

व्यासवाक्यावसाने तु मुनिमुख्यः पराशरः ।
धर्मस्य निर्णय प्राह सूक्ष्मं स्थूलञ्च विस्तरात् ।।१८
शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्येऽहं शृण्वन्तु ऋषयस्तथा । १९
कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्तौ ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
श्रुतिस्स्मृतिः सदाचारा निर्णेतव्याश्च सर्वदा ।।२०

न कश्चिद्वेदकर्त्ता च वेदस्मर्त्ता चतुर्मुखः ।
तथैव धर्मं स्मरति मनुः कल्पान्तरान्तरे ॥२१
अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे ।
अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपानुसारतः ॥२२
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमित्यूचुर्दानमेकं कलौ युगे ॥२३
कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः ।
द्वापरे शाङ्खलिखितः कलौ पाराशरः स्मृतः ॥२४
त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ।
द्वापरे कुलमेकन्तु कर्त्तारञ्च कलौ युगे ॥२५
कृते सम्भाषणात् पापं त्रेतायाञ्चैव दर्शनात् ।
द्वापरे चान्नामादाय कलौ पतति कर्मणा ॥२६
कृते तु तत्क्षणाच्छापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः ।
द्वापरे मासमात्रेण कलौ सम्वत्सरेण तु ॥२७

व्यास मुनि के वचनों के समाप्त हो जाने पर मुनियों में प्रधान पराशर धर्म का निर्णय जो स्थूल था एवं सूक्ष्म था, उसे विस्तार से कहने लगे ॥१८॥ हे पुत्र ! सुनो मैं बतलाता हूँ । हे ऋषिगण ! तुम भी सुनो । कल्प में क्षय तथा उत्पत्ति में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर, श्रुति, स्मृति और सदाचार का सर्वदा निर्णय करना चाहिए ॥१९–२०॥ वेदों का करने वाला कोई भी नहीं है । ब्रह्मा वेदों का स्मरण करने वाला ही होता है । कल्पान्तर के मध्य में मनु भी उसी प्रकार से धर्म स्मरण किया करता है । कृतयुग में अन्य धर्म होते हैं, त्रेता तथा द्वापर में भी दूसरे-दूसरे धर्म होते हैं । युग के अनुसार ही कलियुग में भी मनुष्यों के अन्य धर्म होते हैं ॥२१–२२॥ सतयुग में तप ही परम धर्म था । त्रेता में ज्ञान सब से प्रधान धर्म था । द्वापर में यज्ञादि करना श्रेष्ठ धर्म था और कलियुग में दान करना महान धर्म माना जाता है । कृतयुग में मनु का बताया हुआ धर्म था । त्रेता में गौतम द्वारा प्रतिपादित, द्वापर में शंख द्वारा वर्णित धर्म था किन्तु

कलियुग में पराशर के द्वारा कहा गया धर्म माना जाता है ।।२३-२४।। कृतयुग में अधर्म पूर्ण देश को त्याग देने का विधान था । त्रेता में ऐसे ग्राम को तथा द्वापर में कुल को और कलियुग में केवल अधर्म करने वाले का ही त्याग करना चाहिए। कृतयुग मे अधर्म या पाप की चर्चा करने से ही पाप लगता था, त्रेता में देखने से, द्वापर में अन्न लेने पर और कलियुग में दुष्कर्म करने से ही पतन होता है । कृतयुग में उसी समय शाप का कुफल मिल जाता था, त्रेता में दश दिन में, द्वापर में एक मास में और कलियुग में एक वर्ष में शाप या बद्दुआ का प्रभाव होता है ।।२ -२७।।

अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते ।
द्वापरे याचमानाय जेवया दीयते कलौ ।।२८
अभिगम्योत्तमं दानमाहूतञ्चैव मध्यमम् ।
अधमं याच्यमानं स्यात् सेवादानञ्च निष्फलम् ।।२९
कृते चास्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांससंस्थिताः ।
द्वापरे रुधिरं यावत् कलावन्नादिषु स्थिताः ।।३०
धर्मो जितो ह्यधर्मेण जितः सत्योऽनृतेन च ।
जिता भृत्यैस्तु राजानः स्त्रीभिश्चपुरुषा जिताः ।।३१
सीदन्ति चाग्निहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति ।
कुमार्य्यश्च प्रसूयन्ते तस्मिन् कलियुगे सदा ।।३२
युगे युगे च ये धर्मास्तत्र च ये द्विजाः ।
तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपाहि ते द्विजाः ।।३३
युगे युगे च सामर्थ्यं शेषं मुनिविभावितम्।
पराशरेण चाप्युक्तं प्रायश्चित्तं प्रवीयते ।।३४
अहमद्यैव तद्धर्ममनुस्मृत्य ब्रवीमि वः ।
चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ।।३५
पाराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ।
चिन्तितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ।३६

सतयुग में स्वयं दाता जाकर उसके घर पर दान किया करता था, त्रेता में अपने यहाँ बुलाकर दान देता था, और द्वापर में जब कोई दान की याचना करता तब उसे दिया जाया करता है और कलियुगमें सेवा करने पर दाता द्वारा दान दिया जाया करता है ॥२८॥ जो स्वयं जाकर दिया जाता था वह उत्तम श्रेणी का दान है। बुलाकर दिया जाने वाला मध्यम, याच्यमान दान अधम श्रेणी का दान और सेवा से प्राप्त दान तो बिल्कुल निष्फल होता है ॥१९॥ सतयुग में हड्डियों में रहा करते थे, त्रेता में माँस पेशियों में प्राण की संस्थिति थी, द्वापर में रक्त में और कलियुग में तो अन्न आदि में प्राण रहता है। कलियुग में अधर्म के द्वारा धर्म जीता गया है, मिथ्या से सत्य, भृत्यों द्वारा राजा लोग और स्त्रियों द्वारा पुरुष जीत लिए गऐ हैं। अग्निहोत्रादि कर्म दुखितः हैं, गुरु वृन्द की पूजा नष्ट हो गई। इस कलियुग में सर्वदा कुमारियाँ प्रसव देती हैं ।।३०—३२।। युग-युग में जो धर्म हैं और उनमें जो द्विज हैं उनकी कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे सभी द्विज युग के अनुरूप ही हैं। प्रत्येक युग में मुनि द्वारा कथित शेष सामर्थ्य रहती है। पराशर ने भी ऐसा ही कहा है। अब प्रायश्चित्त का विधान कहा जाता है ।।३३—३४।। हे मुनि श्रेष्ठो ! मैं अब उसी धर्म का अनुसरण करके बतलाता हूँ। आप लोग चारों वर्णों के सम्यक् आचार सुनो ।। पराशर का जो मत है वह पवित्र तथा पापों का नाश करने वाला है। इसका चिन्तन ब्राह्मणों की भलाई तथा धर्म की स्थापना के लिए किया गया है ।।३५-३६।।

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः।
आचारोभ्रष्टदेहानांभवेद्धर्मः पराङ्मुखः ।।३७
षट्कर्माभिरतो नित्यं देवतातिथिपूजकः।
हुतशेषन्तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नावसीदति ।।३८
सन्ध्यास्नानं जपो होम स्वाध्यायो देवतार्च्चनम्।
वैश्वदेवातिथेयञ्च षट्कर्माणि दिने दिने ।३९

प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव वा ।
वैश्वदेवे तु संप्राप्तः सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥४०
दूराद्ध्वान पथि श्रान्तं वैश्वदेवे उपस्थितम् ।
अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः ॥४१
न पृच्छेद्गोत्रचरणं न स्वाध्यायव्रतानि च ।
हृदयं कल्पयेत्तस्मिन् सर्वदेवमयोहि सः ॥४२
नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गमिकं तथा ।
अनित्यं ह्यागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥४३
अपूर्वः सुव्रतो विप्रो ह्यपूर्वो वातिथिस्तथा ।
वेदाभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽपूर्वा दिने दिने ॥४४

चारों ही वर्णों का आचार ही धर्म का पालन करने वाला होता है । आचार से भ्रष्ट शरोर वालों का धर्म विरुद्ध हुआ करता है ॥ अपने नियत छै कर्मों का करने वाला और नित्य ही देव तथा अतिथियों का पूजन करने वाला एवं हवन से शेष को खाने वाला ब्राह्मण कभी भी दुःखित नहीं होता है ॥३७—३८॥ सन्ध्या स्नान, जप, वेदों का स्वाध्याय, देवताओं का पूजन, वैश्व देव और अतिथि-सत्कार ये छै कर्म प्रतिदिन ब्राह्मण के होते हैं । प्रिय हो अथवा द्वेष्य हो, मूर्ख हो अथवा पण्डित हो जो भी कोई वैश्व देव के समय में प्राप्त हो जावे वह अतिथि स्वर्ग प्रदान करने वाला होता है । दूर से आया हुआ और मार्ग में थका हुआ वैश्व देव के समय मे उपस्थित होने वाला जो हो उसे ही अतिथि समझना चाहिए, पहिले से आया हुआ ही अतिथि नहीं होता है ॥३९—४१॥ उस अतिथि से उसके गोत्र चरण न पूछे और न इससे स्वाध्याय एव व्रत आदि के विषय में ही पूछना चाहिए । उसको तो अपने हृदय में समस्त देवों से परिपूर्ण ही समझलेना चाहिए ।॥४२॥ एक ही ग्राम में रहने वाले, ब्राह्मण तथा सङ्गम से प्राप्त होने वाला अतिथि नहीं होता है । जो नित्य नहीं आने वाला आजावे वही अतिथि कहा जाता है ॥४३॥ जो भली भाँति व्रत वाला हो और ब्राह्मण हो वह अपूर्व होता है, जो अतिथि हो वह भी अपूर्व होता है और जो

नित्य ही वेदों के अभ्यास करने में रत रहने वाला हो वह अपूर्व होता है । ये तीनों प्रतिदिन अपूर्ण कहे जाते हैं ।।४४।।

वैश्वदेवे तु संप्राप्ते भिक्षुके गृहमागते ।
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत् ।।४५
यती च ब्रह्मचारी च पक्कान्नस्वामिनावुभौ ।
तयोरन्नमदत्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ।।४६
यतिहस्ते जयं दद्याद्भैक्षं दद्यात पुनर्जलम् ।
तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं सागरोपमम् ।।४७
वैश्वदेवकृतान् दोषान् शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ।
नहि भिक्षु कृतान् दोषान् वैश्वदेवो व्यपोहति ।।४८
अकृत्वा वैश्वदेवन्तु भुञ्जते ये द्विजातयः ।
सर्वे ते निष्फला ज्ञेयाः पतन्ति नरके शुचौ ।।४९
शिरोवेष्टन्तु यो भूङ्क्ते योभुङ्क्ते दक्षिणामुखः ।
वामपादे करं न्यस्य तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ।।५०
यतये काञ्चनं दत्वा ताम्बूलं ब्रह्मचारिणे ।
चौरेभ्योऽप्यभयं दत्त्वा दातापि नरकं व्रजेत् ।।५१

वैश्वदेव कर्म के समय में प्राप्त भिक्षुक के घर पर आजाने पर वैश्वदेव के लिये जो भी हो उसमें से लेकर उसे देकर अर्थात् इसको भिक्षा देने के बाद विदा कर देना चाहिए । यति और ब्रह्मचारी ये दोनों पक्व अन्न के स्वामी होते हैं । इनको अन्न न देकर जो कोई खालेवे तो उसे उस दोष की निवृति के लिये चान्द्रायण व्रत करना चाहिऐ ।।४८।। यति के हाथ में जल देवे फिर भिक्षा देवे और फिर जल देना चाहिए । ऐसी भिक्षा सुमेरु गिरि के समान होती है और इस प्रकार का दिया हुआ जल सागर के तुल्य माना जाता है । वैश्व देव में किये हुए दोषों को भिक्षु ही हटाने में समर्थ होता है । शिशु के द्वारा होने वाले दोषो को वैश्व देव नहीं हटाता है ।४७।।४८।। बलिवैश्य देव कर्म को न करके जो द्विजातिगण स्वयं खा लेते हैं वे सब निष्फल होते हैं और शुचि नरक में उनका पतन होता है । शिर को वेष्टित किये

हुए तथा दक्षिण दिशा में मुख करके जो भोजन करता है और बाँये पैर पर हाथ रखकर जो खाता है उसके आहर को राक्षस खा जाते हैं। सन्यासी को सुवर्णमय वस्तु देकर तथा ब्रह्मचारी को ताम्बूल देकर और चोरों को अभय का दान देकर देने वाला दाता भी नरकगामी होता है ॥४४-५१॥

पापोवा यदि चाण्डालो विप्रघ्नः पितृघातकः।
वैश्वदेवे तु सम्प्राप्तः सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥५२
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्त्तते।
पितरस्तस्य नाश्नन्ति दशवर्षशतानि च ॥५३
न प्रसज्याति गो विप्रो ह्यतिथिं वेदपारगम्।
अददन्नान्नमात्रन्तु भुक्त्वा भुङ्क्ते तु किल्विषम् ॥५४
ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निरुदकमकण्टकम्।
वापयेत् सर्वबीजानि सा कृषिः सर्वकामिका ॥५४
सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपुत्रे दापयेद्धनं।
सुक्षेत्रे च सुपुत्रे च यात्क्षप्तं नैव नश्यति ॥५६
अनृता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः।
तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥५७
क्षत्रियाहि प्रजा रक्षन् शस्त्रपाणि प्रचण्डवत्।
विजित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत् ॥५८
न श्रीः कुलक्रमायाता स्वरूपालिखितापि या।
खड्गेणाक्रम्य भुञ्जीत वीरभोग्या वसुन्धरा ॥५९
पुष्पं पुष्पंविचिनुयान्मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवोद्याने न तथाङ्गारकारकः ॥६०
लोहकर्म तथा रत्नं गवाच्च प्रतिपालनम्
वाणिज्यं कृषिकर्माणि वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥६१
शूद्राणां द्विजशुश्रूषा परो धर्मः प्रकीर्त्तितः।
अन्यथा कुरुते किञ्चित्तद्भवेत्तस्य निष्फलम् ॥६२

लवणं मधु तैलञ्च दधि तक्रं घृतं पयः ।
न दूष्येच्छूद्रजातीनां कुर्य्यात् सर्वस्य विक्रयम् ।।६३
अविक्रेयं मद्यमांसमभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।
अगम्यागमनञ्चैव शूद्रोऽपि नरकं व्रजेत् ।।६४

पापी हो, चाण्डल हो, विप्र का हन्ता हो अथवा पितृ का हनन करने वाला हो, वैश्व देव के समय में सम्प्राप्त हो जावे तो ऐसा भी अतिथि स्वर्ग को संक्रमण करने वाला होता है । जिसका अतिथि अपनी आशा भंग करता हुआ घर से वापिस लौट जाता है उसके पितर एक हजार वर्ष तक नहीं खाया करते हैं ।।५२-५३।। जो ब्राह्मण गौ और वेद पारगामी तथा अतिथि को अन्न मात्र भी न देकर स्वयं खालेता है वह पाप को ही खाता है अर्थात् स्वयं पापी बन जाता है । ब्राह्मण का प्रख बिना काँटे और जलवाला क्षेत्र होता है उसमें सभी तरह के बीजों को बोना चाहिए । यह खेती समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाली होती है । अच्छे क्षेत्र में बीजों को बोना चाहिए और सत्पुत्र को धन देना चाहिए । अच्छे क्षेत्र में और अच्छे पुत्र में डाला हुआ कभी नष्ट नहीं होता है ।।५४–५६।। जहाँ जो झूठे और न पढ़े हुए द्विज भिक्षा करने वाले हो जावें उस गाँव को राजा के द्वारा दण्ड देना चाहिए क्योंकि ऐसा ग्राम चोर-भक्त-प्रद होता है ।। क्षत्रिय को प्रजा की रक्षा करते हुए प्रचण्ड की भाँति हाथ में शस्त्र रख कर दूसरे की सेना को जीतकर पृथ्वी का धर्म पूर्वक पालन करना चाहिए । लक्ष्मी कुल के क्रम से आई हुई नहीं होती है और किसी के स्वरूप में भी लिखी हुई नहीं होती है । इसे तो खड्ग से आक्रमण करके ही भोगना चाहिए क्यों कि यह वसुन्धरा (भूमि) सर्वदा वीरों के द्वारा ही भोगने की वस्तु होती है ।।५७-५९।। माली को भाँति उद्यान में केवल पुष्पों को ही चुनना चाहिए और मूल का उच्छेद नहीं करे तोर अङ्गार धरने वाला न बनें । लोहा तथा रत्नों का कर्म, गौओं का पालन, वाणिज्य और खेती का काम ये ही वैश्यों की वृत्ति कही गई है । शूद्रों को द्विजाति की सेवा ही उनका सबसे बड़ा धर्म होता है । इसके अतिरिक्त यदि

शूद्र कुछ अन्य कर्म करता है तो वह सभी निष्फल होता है ।।६०-६२।। लवण-मधु-तैल-दधि-दुग्ध-तक्र और घृत शूद्र जातियों को दूषित नहीं करता है। इन सब का विक्रय करना चाहिए। मद्य और माँस नहीं बेचना चाहिए तथा अभक्ष्य का भक्षण भी नहीं करे। मद्यादि का विक्रय और अभक्ष्य भक्षण तथा अगम्या का गमन ये शूद्र को भी नरक में डाल दिया करते हैं ।।६३-६४।।

गृहस्थाश्रमधर्मवर्णनम् ।

अतः परं गृहस्थस्त धर्माचारं कलौ युगे ।
धर्मं साधारणं शक्यं चातुर्वर्ण्याश्रमागतम् ।।६५
संप्रवक्ष्याम्यहं भूयः पाराशर्य्यं प्रचोदितः ।
षट्कर्मनिरतो विप्रः कृषिकर्माणि कारयेत् ।।५६
हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं मध्यमं स्मृतम् ।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं वृषघातिनाम् ।।६७
क्षुधितं तृषितं श्रान्तं वलीवर्द्दं न योजयेत् ।
हीनाङ्गं व्याधितं क्लीवं वृषं विप्रो न वाहयेत् ।।६८
स्थिराङ्गं नीरुजं दृप्तं वृषभं षण्डवर्जितम् ।
वाहयेद्दिवसस्यार्द्धं पश्चात् स्नानं समाचरेत् ।।६९
जपं देवार्च्चनं स्वाध्यायं साङ्गमभ्यसेत् ।
एकद्वित्रिचतुर्विप्रान् भोजयेत् स्नातकान् द्विजः । ७०
स्वयंकृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः ।
निर्वपेत् पञ्च यज्ञानि क्रतुदीक्षाञ्च कारयेत् ।।७१
तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतः समा ।
विप्रस्यैवंविधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रयः ।।७२
ब्राह्मणस्तु कृषिं कृत्वा महादोष मवाप्नुयात् ।
सम्वत्सरेण यत्पापं मत्स्यघाती समाप्नुयात् ।
अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लाङ्गली ।।७३

इसके आगे अब गृहस्थ के इस कलियुग में धर्म तथा आचार को बतलाते हैं। चातुरवर्ण्य के आश्रमों के हिसाब से सभी वर्णों के गृहस्थों का साधारण धर्म होता ही है। अब मैं पुनः व्यास के द्वारा प्रेरित होकर उन्हें बतलाता हूँ। हल धर्म से युक्त होता है अर्थात् हल में जोते जाने वाले बैल आठ होवें जो दो-दो घण्टे बाद विश्राम के लिऐ छोड़े जा सकें। छै बैलों का मध्यम, चार ही बैल जिस एक हल में हों वह क्रूर व्यक्तियों का होता है और केवल दो ही बैलों से जो हल पूरे दिन चलाया जाता है वह वृषों का घातक होता है ।।६५-६७।। भूखा, प्यासा थका हुआ बैल कभी हल में नहीं जोतना चाहिए। ब्राह्मण को हीन अङ्ग वाला, व्याधि से ग्रसित, क्लीव बैल का वाहन नहीं करना चाहिए। स्थिर अङ्गों वाले, निरोग, ताकत से परिपूर्ण और बधिया न बनाया हुआ बैल को ही दिन के आधे भाग तक वाहन करे और पीछे स्नान करना चाहिए ।।६८-६९।। ब्राह्मण जप देव पूजन, होम और अङ्गों के सहित वेदों का स्वाध्याय करे। एक से चार स्नातक ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए स्वयं जाते हुए खेत में स्वयं उपजाये हुए धान्यों के द्वारा पाँचों यज्ञों का निर्वापन करना चाहिए तथा ऋतु दीक्षा भी करावे। तिल और रस नहीं वेचना चाहिए। धान्य के समान बेचे। तृण और काष्ठादि का विक्रय करना यही विप्र की वृत्ति होती है। ब्राह्मण खेती का काम करके महान् दोष प्राप्त करता है। मत्स्यों के मारने वाला एक वर्ष में जितना पाप मछली मारने से प्राप्त करता है उतना पाप लोहे के मुख वाले काठ से हल चलाने वाला एक ही दिन में पाप कमा लेता है ।।७०-७३।।

पाशको मत्स्यघाती च व्याधः शाकुनिकस्तथा ।
अदाता कर्षकश्चैव पञ्चैते समभागिनः ।।७४
कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भोऽथ मार्जनी ।
पञ्च शूना गृहस्थस्य अहन्यहनि वर्त्तते ।।७५
वृक्षान् छित्वा महीं हृत्वा हत्वा तु मृगकीटकान् ।
कर्षकः खलु यज्ञेन सर्वपापात् प्रमुच्यते ।।७६

यो न दद्याद्द्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः ।
स चौरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नं तं विनिर्दिशेत् ॥७७
राज्ञे दत्त्वा तु षड्भागं देवानाञ्चैकविंशकम् ।
विप्राणां त्रिंशकं भागं कृषिकर्त्ता न लिप्यते ॥७८
क्षत्रियोऽपि कृषिं कृत्वा द्विजान् देवांश्च पूजयेत् ।
वैश्यः शूद्रः सदा कुर्यात् कृषिवाणिज्यशिल्पकान् ॥७९
चतुर्णामपि वर्णानामेष धर्मः सनातनः ॥८०

पाशक–मत्स्यघाती–व्याध—शकुनिक (चिड़ीमार)—अदाता और कृषि करने वाले ये पाँचों समभागी होते हैं अर्थात् इनका पाप समान ही माना जाता है ॥ कण्डनी-पेषणी (चक्की)-चुल्ली (चूल्हा-उदकुम्भ और मार्जनी (बुहारी) ये पांच हत्याएँ गृहस्थ के घर में प्रतिदिन ही हुआ करती हैं। तात्पर्य है इन पांचों में कुछ न कुछ हत्या होती ही रहती है। वृक्षों को काटकर, भूमि का हरण कर और पशु तथा कीड़ा को मारकर कर्षक (किसान) यज्ञ से समस्त पापों से छुटकारा पाता है अर्थात् यज्ञ करने से उक्त पाप छूट जाते हैं। ॥७४—७६॥ धान्य राशि के मूल पर प्राप्त होने वाला जो द्विजातियों को नहीं देता है वह चोर है और बड़ा भारी पापी है। उसको ब्रह्म हत्यारा ही कहना चाहिए। राजा को अपनी शस्य (फसल) की उपज का छठा भाग देकर, देवों के निमित्त इक्कीसवाँ भाग लगाकर, ब्राह्मणों को तीसवां भाग दान देकर कृषि करने वाला पापों से लिप्त नहीं होता है ॥७७—७८॥ क्षत्रिय को भी खेती का काम करके ब्राह्मण तथा देवों का पूजन करना चाहिए। वैश्य और शूद्र सदा कृषि, वाणिज्य और शिल्प कला में कर्म करे। द्विजों की सेवा छोड़कर यदि शूद्र विशेष कर्म करते हैं तो वे अल्प आयु वाले हो जाते हैं और नरक में पतित होते हैं। चारों वर्णों का यही सनातन धर्म है ॥७९—८०॥

———

अशौचव्यवस्था वर्णनम्

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा ।
दिनत्रयेण शुद्ध्यन्ति ब्राह्मणाः प्रेतसूतके ॥८१
क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहकैः ।
शूद्रः शुद्ध्यति मासेन पराशरवचो यथा ॥८२
उपासने तु विप्राणामङ्गशुद्धिस्तु जायते ।
ब्राह्मणानां प्रसूतौ तु देहस्पर्शो विधीयते ॥८३
जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥८४
एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ।
त्र्यहात् केवलवेदस्तु द्विहीना दशभिर्दिनः ॥८५
जन्मकर्मपरिभ्रष्टः सन्ध्योपासनवर्जितः ।
नामधारकविप्रस्य दशाहं सूतकं भवेत् ॥८६
एकपिण्डास्तु दायादाः पृथग्दारनिकेतनाः ।
जन्मन्यपि विपत्तौ च भवेत्तेषाञ्च सूतकम् ॥८७
उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुञ्जते ।
दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्चनिवर्त्तते ॥८८

अब जनन और मरण में शुद्धि के विषय में बतलाता हूं। ब्राह्मण मृत के सूतक में तीन दिन में शुद्ध हो जाते हैं। क्षत्रिय बारह दिन में वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक पूरे मास में शुद्ध होता है—ऐसा पराशर का वचन है ॥ ८१-८२ ॥ ब्राह्मणों की उपासना में अंग की शुद्धि होती है। ब्राह्मणों की प्रसूति में देहस्पर्श का विधान है। जनन में ब्राह्मण दश दिन में, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है ॥८३-८४॥ जो ब्राह्मण अग्नि और वेद से युक्त होता है वह एक ही दिन में शुद्ध हो जाता है। जो केवल वेद ही से युक्त होता है वह तीन दिन में और जो दोनों से हीन हो वह दश दिन में शुद्ध होता है। जन्म और कर्म से परिभ्रष्ट तथा सन्ध्या-

पासना से रहित जो केवल ब्राह्मण होने का नामधारी होता है वह दश दिन तक सूतकी रहता है ।। ८५-८६ ।। जो एक पिण्ड दायाद होते हैं चाहे वे पृथक् घर बार वाले ही क्यों न हों जन्म और मरण दोनों में उन सबको सूतक होता हे ।। ८७ ।। दोनों प्रकार के सूतक में दश दिन तक उस कुल का अन्न नहीं खाया जाता है। दान देना तथा प्रतिग्रह लेना, होम और स्वाध्याय सब बन्द होते हैं ।। ८८ ।।

प्राप्नोति सूतकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु ।
दायाद्विच्छेदमाप्नोति पञ्चमो वात्मवंशजः ।।८९
चतुर्थे दशरात्रं स्यात् षण्णिशा पुंसि पञ्चमे ।
षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिन त्रयम् ।।९०
पञ्चभिः पुरुषयुंक्ता अश्राद्धेया सगोत्रिणः ।
ततः षट्पुरुषाद्यश्च श्राद्धे भोज्याः सगोत्रिणः ।।९१
भृग्वग्निमरणे चैव देशान्तरमृते तथा ।
बाले प्रेते च सन्नयासे सद्यः शौचं विधीयते ।।९२
दशरात्रेष्वतीतेषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ।
ततः सम्वत्सरादूर्द्ध्वं सचैल स्नानमाचरेत् ।।९३
देशान्तरमृतः कश्चित् सगोत्रः श्रूयते यदि ।
न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा विशुद्धयति ।।९४
आत्रिपक्षात्त्रिरात्रं स्यादाषण्मासाच्च पक्षिणी ।
अहः सम्वत्सरादर्वाक् सद्यः शौचं विधीयते ।।९५
अजाददन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःसृताः ।
न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ।।९६
यदि गर्भोविपद्येत स्रवते वापि योषिताम् ।
यावन्मासं स्थितोगर्भो दिनं तावत् स सूतकः ।।९७
आ चतुर्थाद्भवेत् स्रावा पातः पञ्चमषष्ठयोः ।
अत ऊर्द्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ।।९८
प्रसूतिकाले सम्प्राप्ते प्रसवे यदि योषिताम् ।
जीवापत्ये तु गोत्रस्य मृते मातुरेव सूतकम् ।।९९

रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके ।
पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥१००
दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूड़े च संस्थिते ।
अग्निसंस्करणं तेषां त्रिरात्रं सूतकं भवेत् ॥१०१
आ दन्तजननात् सद्यः आचूड़ान्नैशिकी स्मृता ।
त्रिरात्रमाव्रतात्तेषां दशरात्रमतः परम् ॥१०२

गोत्र में चतुर्थ पुरुष तक का सूतक होता है । आत्म वंश में उत्पन्न पाँचवाँ दायाद का विच्छेद प्राप्त कर लिया करता है ॥ ८९ ॥ चौथे का दशरात्रि तक, पाँचवें का छै रात्रि तक, छठे का चार दिन दिन तक और सातवें का तीन दिन तक अशौच रहता है फिर शुद्धि हो जाती है ॥ ९० ॥ पाँच पुश्त तक के सगोत्र पुरुष श्राद्ध में भोजन के अयोग्य होते हैं । छठी पुश्त के तथा इससे भी ऊपर वाले सगोत्र भी श्राद्ध में भोजन कराने के योग्य होते हैं । भृगु को अग्नि मरण में तथा अन्य देश में मृत हो जाने पर, बालक की मृत्यु में और सन्यासी की मृत्यु में तुरन्त ही शुद्धि हो जाती है ॥ ९१-९२ ॥ दश रात्रि व्यतीत हो जाने पर फिर तीन ही रात्रि में शुद्धि हो जाती है और यदि एक वर्ष से भी ऊपर हो गया हो तो सूचना पाने पर वस्त्रों के सहित स्नान करने से शुद्धि होती है । दूसरे देश में कोई सगोत्र मृत हो जावे और उसकी खबर सुनी जावे तो न तो तीन दिन और न अहोरात्र किन्तु सद्यः ही स्नान करके शुद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ ९३-९४ ॥ तीन पक्ष तक तीन रात्रि, छै मास तक पक्ष तथा सम्वत्सर के भीतर एक दिन और वर्ष से भी ऊपर हों तो तुरन्त ही शुद्धि हो जाती है । जो बालक बिना दांत वाले हों और जो गर्भ से निकले हुए हों उनका अग्नि संस्कार नहीं होता है और उदक क्रिया भी नहीं की जाती है अतः उनका अशौच भी नहीं होता है ॥९५-९६॥

यदि स्त्रियों का गर्भपात हो जावे या गर्भस्राव हो जावे तो जितने मास तक उदर में गर्भ रहा है उतने ही दिन तक सूतक होना है।

चतुर्थ मास तक के गर्भ का स्राव होता है और पाँचवें छठे मास का गर्भपात होता है। इस के बाद प्रसव होता है जिसका सूतक दश दिन का होता है ॥ ९७-९८ ॥ स्त्रियों के प्रसव समय के प्राप्त होने पर यदि जीवित सन्तति हो तो गोत्र वालों को जात का शौच होता है और मृत होने पर केवल माता को ही सूतक होता है। रात्रि में ही उत्पन्न होने पर, मृत होने पर, रजो दर्शन होने पर सूतक में पहिला ही दिन लेना चाहिए जब तक सूर्योदय नहीं होता है प्रथम दिन रहता है ॥ ९९-१०० ॥ बालक के दाँत निकल आये हों और चूड़ा कर्म हो चुका हो तो उनका अग्नि संस्कार होता है और तीन रात्रि का सूतक होता है। जब तक दाँत न निकलें और चूडा संस्कार न हो तब तक केवल एक रात्रि का सूतक होता है। जब तक व्रत धारण करे तब तक तीन रात्रि का होता है और इसके आगे दश रात्रि का सूतक होता है ॥ १०१-१०२ ॥

गर्भे यदि विपत्तिः स्यात्दशाहं सूतकं भवेत् ।
जीवन् जातो यदि प्रेतः सद्य एव विशुद्ध्यति ॥१०३
स्त्रीणां चूड़ान्न आदानात् संक्रमात्तदधःक्रमात् ।
सद्यः शौचमथैकाहं तिरहः पितृबन्धुषु ॥१०४
ब्रह्मचारी गृहे येषां हूयते च हुताशने ।
सम्पर्कं न च कुर्वन्ति न तेषां सूतकं भवेत् १०५
सम्पर्काद्दुष्यते विप्रो नान्यो दोषोऽस्ति ब्राह्मणे ।
सम्पर्केषु निवृत्तस्य न प्रेतं नैव सूतकम् ॥१०६
शिल्पिनः कारुका वैद्या दासी दासाश्च नापिताः ।
श्रोत्रियाश्चैव राजानः सद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः ॥१०७
सव्रती मन्त्रपूतश्च आहिताग्निश्च यो द्विजः ।
राज्ञश्च सूतकं नास्ति यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥१०८
उद्यतो निधने दाने आर्त्तो विप्रो निमन्त्रितः ।
तदेव ऋषिभिर्दृष्टं यथाकालेन शुद्ध्यति ॥१०९

प्रसवे गृहमेधी तु न कुर्य्यात् सङ्कर' यदि ।
दशाहाच्छुद्धचते माता अवगाह्य पिता शुचिः ।।११०

गर्भ में भी यदि कोई विपत्ति हो जाये तो दश दिन का सूतक होता है और जिन्दा उत्पन्न हो और मृत हो जावे तो तुरन्त ही शुद्धि हो जाती है। स्त्रियों की चूड़ा से नहीं बल्कि दान संक्रम, और उसके अधः क्रम तक तुरन्त ही शुद्धि हो जाती है। पिता और बन्धुओं को एक दिन तथा तीन दिन के बाद शुद्धि होती है।। १०३-१०४ ।। जिनके घर में ब्रह्मचारी अग्नि में हवन करता है और घरवाले सम्पर्क नहीं करें तो उनका सूतक नहीं होता है। विप्र तो सम्पर्क से दूषित होता है। जैसे ब्राह्मण में अन्य कोई भी दोष नहीं होता है। सम्पर्क से निवृत्त होने वाले का न प्रेत है और न सूतक ही होता है ।। १०५-१०६ ।। शिल्पी-कारुक-वैद्य-दासीदास-नाई-श्रोत्रिय और राजा तुरन्त शुद्ध हो जाते हैं । जो ब्राह्मण व्रतधारी हो, मन्त्रों द्वारा पवित्र हो, आहिताग्नि हो उसे और राजा को सूतक नहीं हुआ करता है तथा जिसको राजा चाहे उसे भी नहीं होता है।। १०७-१०८ ।। निधन और दान में उद्यत, आर्त और निमन्त्रित विप्र ऋषियों के द्वारा दृष्ट यथा काल में शुद्ध होता है ।।१०९।। प्रसव में गृहस्थ यदि संकर न करे तो माता दश दिन में और पिता स्नान करके शुद्ध होता है ।। ११० ।।

सर्वेषां स्नावमाशौचं मातापित्रोर्दशाहिकं ।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ।।१११
यदि पत्न्यां प्रसूतायां सम्पर्कं कुरुते द्विजः ।
सूतकन्तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडङ्गवित् ।।११२
सम्पर्काज्जायते दोषा नान्यो दोषोऽस्ति ब्राह्मणे ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सम्पर्कं वर्जयेद्द्विजः ।।११३
विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके ।
पूर्वं सङ्कल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दूष्यति ।।११४
अन्तरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनी ।
तावत् स्यादशुचिर्विप्रोयावतत् स्यादनिर्दशम् ।।११५

ब्राह्मणार्थे विपन्नानां वन्दिगाग्रहणे तथा ।
आहवेषु यिपन्नानामेकरात्रन्तु सूतकम् ॥११६
द्वाविमौ पुरुषौ लोके सर्यमण्डलभेदकौ ।
परिव्राडयोगयुक्तश्च रणं चाभिमुखे हतः ॥११७

सबको स्राव सम्बन्धी अशौच माता पिता को दश दिन का होता है। सूतक तो माता ही को होता है पिता तो उपस्पर्शन करके शुद्ध हो जाता है। यदि प्रसूता पत्नी से ब्राह्मण सम्पर्क करता है तो उसको सूतक होता है। यदि विप्र षडङ्गों का वेत्ता है तो उसे सम्पर्क ही से दोष होता है क्योंकि वैसे अन्य कोई भी दोष स्वभावत नहीं हुआ करता है। इसलिए सब प्रयत्नों से सम्पर्क ब्राह्मण को त्याग ही देना चाहिए॥ १११–११३ ॥ विवाहोत्सव और यज्ञ के मध्य में मृत का सूतक हो जावे तो पहिले से संकल्प की हुई वस्तु को देने में कोई भी दोष नहीं होता है। दश दिन होने के बीच में ही फिर कोई जनन या मरण हो जावे तो विप्र तब तक अशुद्ध रहता है जब तक अनिर्दशन रहे। ब्राह्मण के निमित्त विपद्ग्रस्त होने वालों को, बन्दी गौ के ग्रहण और आहव में विपन्नों का एक रात्रि का ही सूतक होता है। इस संसार में दो ही पुरुष ऐसे होते हैं। जो सूर्य मण्डल का भेदन किया करते हैं। एक तो सबका त्याग कर सन्यास धारण करने वाला और दूसरा योगाभ्यासी तथा युद्ध भूमि में शत्रु के सामने लडता हुआ मरने वाला होता है॥ ११४-११७॥

यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ।
अक्षयांल्लभते लोकान् यदि क्लीवं न भाषते । ११८
जितेन लभते लक्ष्मीं मृतेनापि सुराङ्गनाः ।
क्षणविध्वंसिकेऽमुस्मिन् का चिन्ता मरणे रणे ॥११९
यस्तु भग्नेषु सैनेषु विद्रवत्सु समन्ततः ।
परित्राता यदागच्छेत् स च क्रतुफलं लभेत् ।१२०

यस्य च्छेदक्षतं गात्रं शरशक्त्यृष्टिमुद्गरैः ।
देवकन्यास्तु तं वीरं गायन्ति रमयन्ति च ॥१२१
वराङ्गनासहस्राणि शूरमायोधने हतं ।
नागकन्याश्च धावन्ति मम भर्त्ता भवेदिति ॥१२२
ललाटदेशद्रुधिरं हि यस्य
तप्तस्य जन्तोः प्रविशेच्च वक्त्रे ।
तत् सोमपानेन हि तस्य तुल्यं
संग्रामयज्ञे विधिवच्च दृष्टम् ॥१२३
यं यज्ञसंघैस्तपसा च विद्यया
स्वर्गैषिणो वात्र यथैव विप्राः ।
तथैव यान्त्येवहि तत्र वीराः
प्राणान् सुयुद्धेन परित्यजन्तः ॥१२४

शत्रुओं के द्वारा घिरा हुआ शूरवीर जहां-जहां भी मारा गया हो वह अगर दीनता के वचन नहीं बोलता है तो अक्षय लोकों की प्राप्ति किया करता है। वीर यदि विजयी होता है तो लक्ष्मी प्राप्त किया करता है और रणक्षेत्र में मर जाता है तो स्वर्ग में जाकर देवाङ्गनाओं का लाभ प्राप्त करता है। इस क्षण में विध्वंस होने वाले शरीर में क्या चिन्ता करे चाहे रण में ही मरण क्यों न हो जावे ॥ ११८-११९ ॥ सैनिकों के भग्न हो जाने पर तथा भाग निकलने पर जो कोई रक्षा करने वाला वहाँ जावे तो वह एक क्रतु (यज्ञ) करने का फल पाता है। बाण-शक्ति और मुद्गरों द्वारा जिसका शरीर छेदने के कारण क्षत वाला हो ऐसे वीर का यश देव कन्यायें गाया करतीं हैं और उससे रमण करती हैं ॥ १२०-१२१ ॥ हजारों सुन्दर अङ्गनाऐं और नाग कन्याय युद्ध भूमि में लड़ते हुए मरने वाले शूर की ओर दौड़ लगाती है कि यह हमारा स्वामी बनेगा ॥ १२२ ॥ जिस तपे हुए वीर के ललाट के हिस्से से निकला हुआ रुधिर मुख में प्रवेश करता है वह संग्राम रूपी यज्ञ में विधिवत् देखा गया, उसके सोमरस के पान के तुल्य होता है। वीर लोग

भली भाँति न्यायोचित धर्म युद्ध करके अपने प्राणों का त्याग करने वाले होकर उसी प्रकार स्वर्ग लोक में जाया करते हैं जैसे स्वर्ग की इच्छा रखने वाले विप्र बहुत से यज्ञ, तप, विद्या से उसे प्राप्त किया करते हैं ।। १२२-१२४ ।।

अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं वहन्ति द्विजातयः ।
पदे पदे यज्ञफलमानुपूर्वाल्लभन्ति ते ।।१२५
असगोत्रमबन्धुञ्च प्रेतीभूतश्च ब्राह्मण ।
नीत्वा च दाहयित्वा च प्राणायामेन शुद्धयति ।।१२६
न तेषामशुभं किञ्चिद्द्विजानां शुभकर्मणि ।
जलावगाहनात्तेषां शुद्धिः स्मृतिभिरीरिता ।।१२७
अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा ।
स्नात्वा चैव तु स्पृष्टाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्धयति ।।१२८
क्षत्रियं मृतमज्ञानाद्ब्राह्मणो योऽनुगच्छति ।
एकाहमशुचिर्भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्धयति ।।१२९
शवञ्च वैश्यमज्ञानाद्ब्राह्मणो योऽनुगच्छति ।
कृत्वा शौचं द्विरात्रञ्च प्राणायामान् षडाचरेत् ।।१३०
प्रेतीभूतन्तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।
नयन्तमनुगच्छेत त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।।१३१
त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्धयति ।।१३२
विनिवर्त्य यदा शूद्रा उदकान्तमुपस्थिताः ।
द्विजैस्तदानुगन्तव्या इति धर्मविदोविधिः ।।१३३

जो द्विजातिगण मरे हुए अनाथ ब्राह्मण को वहन करते हैं वे पद-पद पर आनुपूर्व से यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं। जो सगोत्र न हो और बन्धु भी न हो ऐसे मरे हुए ब्राह्मण को लेजाकर तथा जलाकर प्राणायाम से शुद्ध हो जाते हैं ।। १२५-१२६ ।। उन द्विजों के शुभ कर्म में कुछ भी अशुभ नहीं है। वे जल में अवगाहन से शुद्ध हो जाते

हैं—ऐसा स्मृतियों ने कहा है। अपनी इच्छा से ही ज्ञाति या अज्ञाति के मृतक के पीछे गमन करके स्नान करके, अग्नि का स्पर्श करके घृत पान करके विशुद्ध होता है ।। ११७-१२८ ।। यदि कोई ब्राह्मण अज्ञान वश मृत क्षत्रिय के शव के पीछे जाता है तो एक दिन अशुचि रहता है और फिर पञ्चगव्य से शुद्ध होता है। वैश्य के शव के पीछे जावे तो दो रात्रि तक शौच करे और छः प्राणायाम करना चाहिए। ज्ञान का दुर्बल ब्राह्मण मृत शूद्र के साथ पीछे जाता है तो वह तीन रात्रि तक अशुचि रहता है। तीन रात्रि पूरी होने पर सागर गामिनी नदी पर जाकर शतवार प्राणायाम करे और घृत पीवे तब शुद्धि होती है। १२९-१३२ ।। शूद्र वापिस लौटकर जब उदकान्त में उपस्थित हों तो द्विजों को उनके पीछे जाना चाहिए। यही धर्म के ज्ञाताओं को विधि है ।। १३३ ।।

अनेकविधिप्रकरणप्रायश्चित्तम् ।

अतिमानादतिक्रोधात् स्नेहाद्वा यदिवा भयात् ।
उद्बध्नीयात् स्त्री पुमान् वा गतिरेषा विधीयते । १३४
पूयशोणितसम्पूर्णे अन्धे तमसि मज्जति ।
षष्टिं वर्षसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते ।
नाशौचं नोदकं नाग्नि नाश्रुपातञ्च कारयेत् । १३५
वोढारोऽग्निप्रदातारः पाशच्छेदकरास्तथा ।
तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः ।।१३६
गोभिहतं तथोद्बद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम् ।
संस्पृशन्ति तु ये विप्रा वोढारश्चाग्निदाश्च ये ।।१३७
अन्येऽपि वानुगन्तारः पाशच्छेदकराश्च ये ।
तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्ति कुर्य्युर्ब्राह्मणभोजनम् ।।१३८

अनडुत्सहितां गाञ्च गद्युर्विप्राय दक्षिणाम् ।
त्र्यहमुष्णं पिवेदापस्त्र्यहमुष्णं पयः पिवेत् ।
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो द्विनत्रयम् ।।१३९
यो वै समाचरेद्विप्रः पतितादिष्वकामतः ।
पञ्चाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ।।१४०
मासार्द्धं मासमेकं वा मासद्वयमथापिवा ।
अब्दार्द्धं मब्दमेकं वा तदूर्द्ध्वं चैव तत्समः ।।१४१
त्रिराहं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्रमाचरेत् ।
तृतीये चैव पक्षे द्वितीये कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ।।१४२

अत्यप्त मान से, प्रतिशय क्रोध से, स्नेह से और भय से स्त्री या पुरुष उद्बन्धन करें तो उसकी यह गति होती है कि मवाद रुधिर से भरे हुए अन्ध तमस नरक में वह मज्जन करता है और इस तरह साठ हजार वर्ष तक नरक में वास करता है। वहाँ आशौच, अग्नि और जल नहीं है और वहाँ अश्रुओं का पातन भी नहीं करे ।१३४-१३५। दहन करने वाले, अग्नि से संस्कार करने वाले तथा पाशों का छेदन करने वाले तप्त कृच्छ्र व्रत से शुद्ध होते हैं। ऐसा प्रजापति ने कहा है ।१३६। गायों के द्वारा मारा गया, उद्बद्ध और ब्राह्मण के द्वारा घातित को वहन करने वाले तथा अग्नि संस्कार करने वालों को जो ब्राह्मण स्पर्श करते हैं और भी जो शव के साथ अनुगमन करने वाले हैं तथा पाशों के उच्छेद करने वाले होते हैं वे सब तप्तकृच्छ्र व्रत करके शुद्ध होते हैं और उन्हें ब्राह्मणों को भोजन भी कराना चाहिए। वृषभ के सहित गौ को ब्राह्मण के लिए दक्षिणा देनी चाहिए ।।१३७-१३८।। तीन दिन तक गर्म जल पीवे, तीन दिन केवल गर्म दूध पीवे, तीन दिन पर्यन्त उष्ण घृत पीवे और तीन दिन तक केवल वायु का ही भक्षण करे, ऐसा ब्राह्मण को अकाम से पतित आदि में आचरण करना चाहिए। पाँच दिन या दस दिन अथवा बारह दिन, एक सक्ष या एक मास अथवा दो महीना, आधे वर्ष या पूरे एक वर्ष या इससे भी ऊपर उसके ही समान करे। प्रथम पक्ष में तीन रात्रि

और द्वितीय पक्ष में कृच्छ्र व्रत करे। तृतीय पक्ष में कृच्छ्र सान्तपन व्रत करना चाहिए ॥१३६-१४२॥

चतुर्थे दशरात्रं स्यात् पराकः पञ्चमे मतः।
कुर्य्याच्चान्द्रायणं षष्ठे सप्तमे त्वैन्दवद्वयम् ॥१४३
शुद्धयर्थमष्टमे चैव षण्मासात कृच्छ्रमाचरेत्।
पक्षसंख्याप्रमाणेन सुवर्णान्यपि दक्षिणा ॥१४४
ऋतुस्नाता तु या नारी भर्त्तारं नोपसर्पति।
सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥१४५
ऋतौ स्नातान्तु यो भार्य्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥१४६
अदुष्टापतितां भार्य्यां यौवने यः परित्यजेत्।
सप्तजन्म भवेत् स्त्रीत्वं वैधव्यञ्च पुनः पुनः ॥२०७

चौथे पक्ष में दश रात्रि रहे,पाँचवें पक्ष में पराक व्रतकरे। छठेपक्ष में चान्द्रायण, सातवें में दो चान्द्रायण करे। आठवें में शुद्धि के लिये दो चान्द्रायण करे। छै मास तक इस तरह कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। पक्षों की संख्या के प्रमाण से सुवर्ण को दक्षिणा भी देनी चहिए।१४३-१४४। ऋतु काल में स्नान करके शुद्ध हुई स्त्री अपने स्वामी के पास नहीं जाती है वह नरक गामिनी होती है तथा बार बार विधवा हो जाया करती है ॥१४५॥ ऋतु से स्नान की हुई भार्या का गमन जो पुरुष नहीं करता वह घोर भ्रूण हत्या के पाप का भागी होता है इसमे कुछ भी संशय नहीं है ॥१६॥ दोष रहित और पातक शून्य अपनी भार्या का जो यौवन की अवस्था मे परित्याग कर देता है वह सात जन्म तक स्त्री बनकर जन्म लेता है और विधवा होता रहता है ॥१४७॥

दरिद्रं व्याधितं मूर्खं भर्त्तारं या न मन्यते।
सा मृता जायते व्यालो वैधव्यञ्च पुनः पुनः ॥१४८
ओघवात हृतं बीजं यथा क्षेत्रे प्ररोहति।
क्षेत्री तल्लभते बीजं न बीजी भागमर्हति ॥१४९

तद्वत् परस्त्रियाः पुत्रौ द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ ।
पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्त्तरि गोलकः ॥१५०
औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः ।
दद्यान्माता पिता वापि स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥१५१
परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते ।
सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः । १५२
दाराग्निहोत्रसंयोगं यः कुर्य्यादग्रजे सति ।
परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ।।१५३
द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्र एव च ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ दातुश्च होता चान्द्रायणञ्चरेत् ॥१५४

दरिद्र, व्याधियुक्त, मूर्ख अपने स्वामी को जो स्त्री नहीं मानती है अर्थात् उसका पति भाव से आदर नहीं करती है वह मर कर सर्पिणी होती है और बार-बार वैधव्य का कष्ट भोगती है ।१४८। वायु के झकोरे से आया हुआ बीज जिस प्रकार क्षेत्र में उग आता है उसका लाभ खेत का मालिक पाता है और बीज का स्वामी उसका भागी नहीं होता है ।।१४९।। उसी प्रकार परस्त्री में समुत्पन्न दो पुत्र कुण्ड और गोलक नाम वाले होते हैं । पराई स्त्री का पति जीवित हो और पर पुरुष से जो पुत्र हो वह कुण्ड कहलाता है तथा पति के मर जाने पर परपुरुष से जो पैदा हो वह गोलक होता है ।१५०। औरस, क्षेत्रज, दत्तक तथा कृत्रिमक पुत्र होते हैं । माता तथा पिता के द्वारा जो खुशी से दे दिया जावे वह दत्तक कहलाता है। परिवित्ति और परीवेत्ता तथा जिस स्त्री के द्वारा परिवेदन किया जावे ये सब दाता, याजक और पंचम नरकगामी होते हैं ।१५१-१५२ । अग्रज के रहते हुये जो दारा अग्निहोत्र का संयोग करता है वह परिवेत्ता कहलाता है और पूर्वज को परिवित्ति कहते हैं ।।१५३।। परिवित्ति को दो कृच्छ्र व्रत तथा कन्या को एक ही कृच्छ्र और दान दाता को कृच्छ्रातिकृच्छ्र, एवं होता को चान्द्रायण करना चाहिये ।।१५४।।

कुब्जवामनषण्डेषु गद्गदेषु जडेषु च ।
जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥१५५

पितृव्यपुत्रः सापत्न्यः परनारीसुतस्तथा ।
दाराग्नि ।त्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ॥१५६

ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव चिन्तयेत् ।
अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं यथा ॥१५७

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो न विद्यते ॥१५८

मृते भर्त्तारि या नारी ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता ।
सा मृता लभते स्वर्गं यथा सद् ब्रह्मचारिणः ॥१५९

व्यालग्राही यथा व्यालं विलादुद्धरते बलात् ।
एवमुद्धृत्य भर्त्तारं तेनैव सह मोदते ।१६०

जो कुबड़ा, बौना, षण्ड (नपुंसक), दगद, जड़, जन्मान्ध, बहिरा और गूँगा हो उनमें परिवेदन का कोई भी दोष नहीं होता है ॥ चाचा का पुत्र, सौतेलो माँ का पुत्र और पराई स्त्री से समुत्पन्न पुत्र के दाराग्निहोत्र के संयोग में परिवेदन करने में दोष नहीं होता है ।१५५-१५६। ज्येष्ठ भ्राता जब रहे तो आधान की चिन्ता नहीं करनी चाहिये । अनुज्ञा प्राप्त किया हुआ करे—ऐसा शंख का वचन है ॥१५७॥ नष्ट होने पर, मृत, प्रव्रजित (संन्यस्त), क्लीव (नपुंसक) और पतित पति के हो जाने पर इन पाँच आपत्तियों में स्त्रियों का अन्य पति नहीं होता है ।१५८। स्वामी के मृत्युगत हो जाने पर जो नारी ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित रहती है वह एक सद्ब्रह्मचारी के समान हो मरने के पश्चात् स्वर्ग की प्राप्ति किया करती है ।१५९। सर्प के पकड़ने वाला जिस तरह बलपूर्वक बिल से व्याल को पकड़ कर खींच लेता है इसी भाँति अपने स्वामी की सदा अनुगामिनी नारी स्वामी का उद्धार कर उसी के साथ सुख भोग प्राप्त किया करती है ॥१६०॥

———

धर्माचरणवर्णनम् ।

गवां बन्धनयोक्त्रेतु भवेन्मृत्युरकामयः ।
अकामात् कृतपापस्य प्रायश्चित्त कथं भवेत् ॥ १६१
वेदवेदाङ्गविदुषां धर्मशास्त्रं विजानताम् ।
स्वकर्मरतविप्राणां स्वकं पापं निवेदयेत् ॥१६२
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य लक्षणम् ।
उपस्थितो हि न्यायेन व्रतादेशनमर्हति ॥१६३
सद्योनिःशसये पापे न भुञ्जीतानुपस्थितः ।
भुञ्जानो वर्द्धयेत् पापं पशद्यत्र न विद्यते ॥१६४
शंसये तु न भोक्ता यं यावत् कार्यविनिश्चयः ।
प्रमादश्च न तर्त्तव्यो तथं वाशंसयस्तथा ॥१६५
कृत्वा पापं न गूहेत गुह्यमानं विवर्द्धते ।
स्वल्पं वाथं प्रभूतं वा धर्मविद्धयो निवेदयेत् ।१६६
ते हि पापे कृते वेद्या हन्तारश्चैव पाप्मनाम् ।
व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमन्तो रुजापहाः ॥१६७

गौओं के बन्धन—योक्त्र में बिना ही चाहे हुए यदि मृत्यु हो जावे तो ऐसे अकाम पाप का किस तरह प्रायश्चित किया जाता है । ॥ १६१ ॥ वेदवेदांगों के विद्वान तथा धर्म शास्त्र के पण्डित और अपने कर्म में निरत विप्रों से अपना पाप निवेदन कर देना चाहिए । ॥ १६२ ॥ इसके आगे उपस्थान का लक्षण बतलाता हूँ । न्याय से उपस्थित ही व्रत देशन के योग्य होता है ॥ १६३ ॥ निःसंशय पाप में अनुपस्थित को तुरन्त ही नहीं भोजन करना चाहिए । भोजन करता हुआ पाप को बढ़ाता है जहाँ पषंद नहीं होती है ॥ १६४ ॥ संशय होने पर जब तक कार्य का विशेष रूप से निश्चय न हो भोजन नहीं करना चाहिए । जैसा कि असंशय हो प्रमाद भी नहीं करना चाहिए ॥१६५॥ पाप कर्म करके कभी उसे छिपाना नहीं चाहिए । छिपाया हुआ पाप विशेष बढ़ जाता है । पाप थोड़ा हो या अधिक हो जो धर्म का ज्ञाता

हो उससे निवेदन कर देना चाहिए ।। १६६ ।। पाप के करने पर वे लोग जना देने के योग्य होते हैं क्यों कि वे पापों के हनन करने वाले होते हैं। जिस प्रकार बुद्धिमान् कुछ व्यक्ति के रोग के हरण करने वाले हुआ करते हैं ।। १६७ ।।

प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने ह्रीमान् सत्यपरायणः ।
मृदुरार्जवसम्पन्नः शुद्धिं गच्छेत मानवः ।।१६८
सचलं वाग्यतः स्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः ।
क्षत्रियो वाच वैश्यो वा ततः पर्षद् माव्रजेत् ।।१६९
उपस्थाय ततः शीघ्रमार्त्तिमान् धरणीं व्रजेत् ।
गात्रैश्च शिरसा चैव न च किञ्चिदुदाहरेत् ।।१७०
सावित्र्याश्चापि गायत्र्याः सन्ध्योपास्त्यग्निकार्ययोः ।
अज्ञानात् कृषिकर्त्तारो ब्राह्मणा नामधारकाः ।।१७१
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ।।१७२
यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममतद्विदः ।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄनधिगच्छति ।।१७३
अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः ।
प्रायश्चित्तीभवेत् पूतः किल्बिषं परिषद्व्रजेत् ।।१७४

प्रायश्चित के समुत्पन्न होने पर जो लज्जा रखने वाला सत्यपरायण और सरलता से युक्त मनुष्य हो उसे शुद्धि करनी चाहिए ।। १६८ । वाणी का संयम करने वाला वस्त्रों के सहित स्नान करके भीगे हुए वस्त्रों से युक्त ही समाहित होते हुए, क्षत्रिय हो अथवा वैश्य हो, इसके बाद उसे परिषद को जाना चाहिए ।। १६९ ।। इसके अनन्तर शीघ्र ही उपस्थित होकर आर्त्तिमान् को पृथ्वी पर जाना चाहिए। शरीर के तथा शिर के द्वारा कुछ भी नहीं उदाहृत करना चाहिए ।। १७० ।। सावित्री और गायत्री के तथा सन्ध्योपासन और अग्नि कार्यों के अज्ञान से कृषि करने वाले केवल नामधारी ब्राह्मण होते हैं ।। १७१ ।। व्रतहीन तथा मन्त्रहीन होते हैं और ब्राह्मण जाति के नाम से अपना उपजीवन

करने वाले होते हैं ऐसे हजार भी यदि समवेत हो जावें तो उनकी परिषद नहीं होती है ॥ १७२ ॥ जो तमोमूढ़ मूर्ख और धर्म को नहीं जानने वाले हों और जो कुछ भी वे बोलते हैं तो वह पाप सौगुना होकर उस बोलने वाले को ही लगता है ॥ १७३ ॥ धर्म शास्त्र को कुछ भी न जानकर जो प्रायश्चित देता है तो वह प्रायश्चित करने वाला तो पवित्र हो ही जाता है किन्तु वह पाप परिषद् को लगता है ॥ १७४ ॥

चत्वारो वौ त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः ।
स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रश. ॥१७५
प्रमाणपार्ग मार्गन्तो ये धर्मप्रवदन्ति वै ।
तेषामुद्विजते पापं सम्भूतगुणवादिनाम् ॥१७६
यथाश्मनि स्थितं तोयं मारुतार्केण शुद्धयति ।
एवं परिषदादेशान्नाशयेदेव दुष्कृतम् ॥१७७
नैव गच्छति कर्त्तारं नैव गच्छति पर्षदम् ।
मारुतार्कादिसंयोगात् पाप नश्यति तोयवत् ॥१७८
अनाहिताग्नयो येऽन्ये वेदवेदाङ्गपारगाः ।
पञ्च त्रयो वा धर्मज्ञाः परिषत् सा प्रकीर्त्तिता ॥१७९
मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम् ।
वेदव्रतेषु स्नातानामेकोऽपि परिषद्भवेत् ॥१८०
पञ्च पूर्वं मया प्रोक्तस्तेषाञ्चैव त्वसम्भवे ।
स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिषत् सा प्रकीर्त्तिता ॥१८१

तीन अथवा चार वेदों के पारगामी जो जिसको बोलते हैं वही धर्म जानना चाहिए । दूसरे हजार भी बोले तो धर्म नहीं कहा जा सकता है ॥ १७५ ॥ प्रमाणों के मार्ग की खोज करते हुए जो धर्म को बतलाते हैं ऐसे सम्भूत गुण के बोलने वालों को पाप उद्विग्न होता है । जिस तरह पत्थर पर स्थित जल वायु और सूर्य की किरणों से शुद्ध होता है । इसी प्रकार परिषद् के आदेश से पाप का भी नाश हो जाता है । न तो वह पाप करने वाले के पास हो रहता है और न परिषद् की ही

लगता है । जल की भाँति वायु और सूर्य के संयोग से पाप नष्ट हो जाता है ।। १७६-१७८ ।। जो आहिताग्नि न हों और वेदों तथा वेदांगों के पारगामी हों, ऐसे धर्म के ज्ञाता पाँच या तीन हों तो उसे परिषद कहा जाता है ।। १७९ ।। आत्म विद्या वाले मुनियों में यज्ञों के याजन कराने वाले ब्राह्मणों में तथा वेद व्रतों में स्नातों में से कोई एक भी हो तो परिषद् बन जाती है ।। १८० ।। जो मैंने पहिले पाँच बतलाये हैं उनके सम्भव न होने पर जो भी कोई ब्राह्मण अपनी ही वृत्ति से सन्तुष्ट रहने वाले हों उनको परिषद् कही जाती है ।। २८१ ।।

अत ऊर्ध्वन्तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः ।
परिषत्वं न तेषां वै सहस्रगुणितेष्वपि ।।१८२
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
ब्राह्मणास्त्वनधीयानास्त्रयस्ते नामधारकः ।।१८३
ग्रामस्थानं यथाशून्यं यथा कूपस्तु निर्जलः ।
यथा हूतमुदग्नौ च अमन्त्रो ब्राह्मणस्तथा ।।१८४
यथा षण्डोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरूषराफला ।
यथा चाज्ञेऽफलं दान यथा विप्रोऽनृचोऽफलः । १८५
चित्रं कर्म यथानेकैरङ्गै रुन्मील्यते शनैः ।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकः ।।१८६
प्रायश्चितं प्रयच्छन्ति ये द्विजा नामधारकाः ।
ते द्विजा पापकर्माणः समेता नरकं ययुः ।।१८७
ये पठन्ति द्विजा वेदं पञ्चयज्ञरताश्च ये ।
त्रैलोक्य धारयन्त्येते पञ्चेन्द्रियरताश्रयाः ।।१८८

इसके अतिरिक्त जो केवल ब्राह्मण नाम मात्र के ही होते हैं वे चाहे हजार गुणा वाले भी हों, उनकी परिषद् कदापि नहीं हो सकती है ।। १८२ ।। जिस प्रकार लकड़ी का बना हुआ हाथी और चमड़े का निर्मित मृग होता है उसी तरह बेपढ़े लिखे ब्राह्मण तीन नामधारी हुआ

करते हैं ॥ १८३ ॥ जिस तरह ग्राम की सूनी जगह होती है और बिना जल वाला कुआ होता है तथा अनाग्नि में आहुतियों का हवन उसी प्रकार बिना मन्त्र वाला ब्राह्मण होता है ॥ १८४ ॥ जिस तरह नपुंसक पुरुष स्त्रियों के लिये फल शून्य एवं बेकार होता है और ऊसर भूमि जैसे अनुपजाऊ होती है। तथा अज्ञ को दिया हुआ दान जैसे विफल होता है वैसे ही वेद विहीन ब्राह्मण निष्फल होता है ॥ १८५ ॥ चित्र बनाने का कार्य जैसे अनेक रङ्गों से शनैः २ उन्मीलित होता है वैसे ही अनेक संस्कार से विधिपूर्वक ब्राह्मण का भी सम्पादन हुआ करता है। जो केवल नाम मात्र के ब्राह्मण होते हैं वे यदि प्रायश्चित देते हैं तो वे ब्राह्मण पाप कर्म करने वाले हैं। और सब नरक में जाते हैं ॥ १८६-१८७ ॥ जो ब्राह्मण वेद पढ़ते हैं और पाँचो यज्ञों में निरत रहा करते हैं वे पञ्चेन्द्रिय रति का आश्रय वाले भी त्रैलोक्य को धारण किया करते हैं ॥ १८८ ॥

सम्प्रणीतः श्मशानेषु दीप्तोऽग्निः सर्वभक्षकः ।
तथैव ज्ञानवान् विप्रः सर्वभक्षश्च दैवतम् ॥१८९
अमेध्यानि च सर्वाणि प्रक्षिपन्त्युदके यथा ।
तथैव किल्विषं सर्वं प्रक्षेप्तयं द्विजेऽमले ।१९०
गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् ।
गायत्रीब्रह्मतत्वज्ञाः सपूज्यन्ते द्विजोत्तमा ॥१९१
दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न शूद्रो विजितेन्द्रियः ।
कः परीत्यज्य दुष्टाङ्गां दुहेच्छीलवतीं खरीम् ।१९२
धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः ।
क्रीडार्थमपि यद्ब्रूयुः सधर्मः परमः स्मृतः ॥ ९३
चातुर्वेद्यो विकल्पी च अङ्गविद्धर्मपालकः ।
प्रपश्चाश्रमिणो मुख्याः परिषत् स्युर्दशावराः ॥१९४
राज्ञाञ्चानुमते चैव प्रायश्चित्तं द्विजो वदेत् ।
स्वयमेव न वक्तव्या प्रायश्चित्तस्य निष्कृतिः ॥१९५

श्मशानों में दीप्त अग्नि, जो कि भली भाँति प्रणीत की गई हो, सबका भक्षण करने वाली होती है उसी तरह ज्ञान वाला ब्राह्मण भाग्य के सब प्रकार के परिणामों का भक्षक होता है ॥ १८९ ॥ जिस प्रकार समस्त अपवित्र वस्तुऐं जल में प्रक्षिप्त कर देते हैं उसी तरह समस्त पाप अमल ब्राह्मण में डाल देने चाहिए ॥ १९० ॥ गायत्री से रहित विप्र शूद्र से भी अधिक अपवित्र होता है । गायत्री रूपी ब्रह्म के तत्व को जानने वाले द्विज श्रेष्ठ भली भाँति पूजे जाते हैं ॥ १९१ ॥ ब्राह्मण चाहे दुःशील भी हो तो पूज्य होता है और शूद्र इन्द्रियों को जीतने वाला भी पूज्य नही हो सकता । कौन दुष्ट अङ्ग वाली गौ का त्याग करके शील वाली गधी को दुहता है ? अर्थात् कोई भी नहीं ॥१९२॥ धर्मशास्त्र रूपी रथ पर चढ़े हुए वेदरूपी खड्ग को धारण करने वाले द्विज क्रीड़ा के लिये भी जो कुछ वे बोल देते हैं वह परम धर्म होता है ॥ चारों वेदों को जानने वाला, विकल्पी, अङ्गों का ज्ञाता, धर्म का पालन करने वाला, मुख्य चारों आश्रम वाले इन सब की दश से ऊपर एक परिषद् होती है । राजा की अनुमति प्राप्त होने पर ही ब्राह्मण को प्रायश्चित बतानी चाहिए । अपने ही आप प्रायश्चित्त की निष्कृति कभी नहीं बोलना चाहिए ॥ १९३-१९५ ॥

ब्राह्मणांश्च व्यतिक्रम्य राजा यत् कर्त्तमिच्छति ।
तत्पापं शतधा भूत्वा राजामुपगच्छति ॥१९६
प्रायश्चित्तं सदा दद्याद्देवतायतनाग्रत ।
आत्मान पावयेत् पश्चाज्जपन् वै वेदमातरम् । १९७
सशिखं वपन कृत्वा त्रिसन्ध्यमवगाहनम् ।
गवां गोष्ठे वसेद्रात्रौ दिवा ताः समनुव्रजेत् ॥१९८
उष्णे वर्षति शीते व मारुते वाति व भृशम् ।
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥१९९
आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले ।
भक्षयन्तीं न कथयेत् पिवन्तञ्चैव वत्सकम् ॥२००

पिबन्तीषु पिबेत्तोयं सम्विशन्तीषु संविशेत् ।
पतितां पङ्कमग्नां वा सर्वप्राणैःसमुद्धरेत् ।२०१
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।।
मुच्यते ब्रह्महत्याद्यैर्गोप्ता गोब्राह्मणस्य च ।।२०२

ब्राह्मणों का व्यतिक्रमण करके राजा जो अपने ही मन से करना चाहता है यह पाप होता है और यह पाप सोगुना होकर राजा को ही लगता है । प्रायश्चित सर्वदा किसी देवायतन के आगे ही देना चाहिये । पीछे प्रायश्चित दाता अपनी भी आत्मा को वेदमाता गायत्री का जप करके पवित्र करे । शिखा के साथ मुण्डन कराके तीनों सन्ध्याओं के समय अवगाहन (स्नान) करे और रात्रि में गायों के गोष्ठ में निवास करे दिन में उनके पीछे जाना चाहिए ।। १९६-१९८ ।। उष्ण काल, शीत तथा वर्षा में और अत्यन्त तेज हवा के झोंके चलने पर भी गाय की रक्षा करके भरसक अपनी नहीं करनी चाहिए । अपने तथा दूसरों के खेत में, गृह में या खलियान में खाती हुई गाय को न बतावे तथा अपने वत्स को दूध पिलाती हुई को भी नहीं बतानी चाहिए । गायों के जल पीने पर स्वयं भी जल पीवे, उनके बैठ जाने पर स्वयं बैठे । अगर गो गिर जावे या दलदल मग्न हो जावे तो पूर्ण प्रयत्नों से उसका उद्धार करे ।। १९९-२०१ ।। ब्राह्मणों के तथा गायों के हित सम्पादन में जो अपने प्राणों का त्याग कर देता है तो वह गो और ब्राह्मणों की रक्षा करने वाला व्यक्ति ब्रह्म हत्या आदि महापापों से भी छुटकारा पा जाता है ।। २०२ ।।

गोवधस्यानुरूपेण प्राजापत्यं विनिर्द्दिशेत् ।
प्राजापत्यन्तु यत्कृच्छ्रं विभजेत्तच्चतुर्विधम् ।।२०३
एकाहमेकभक्ताशी एकाहं नक्तभोजनः ।
अयाचिताश्येकमहरेकाहं मारुताशनः ।।२०४
दिनद्वयं चैकभक्तो द्विदिनं नक्तभोजनः ।
द्विनद्वयमयाची स्याद्द्विदिनं मारुताशनः ।।२०५

त्रिदिनश्चैकभक्ताशो त्रिदिनं नक्तभोजनः !
दिनत्रयमयाचीं स्यात्त्रिदिनं मारुताशनः ।।२०६
चतुरहं त्वेकभक्ताशी चतुरं नक्तभोजनः ।
चतुर्दिनमयाची स्याच्चतुरहं मारुताशनः । २०७
प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्य्याद्‌ब्राह्मणभोजनम् ।
विप्रायदक्षिणां दद्यात पवित्राणि जपेद्‌द्विजः ।।२०७
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु गोघ्नःशुद्धो न संशयः ।।२०९

गो वध के अनुरूप ही प्राजापत्य व्रत शुद्धि के लिये निर्दिष्ट करना चाहिए। प्राजापत्य जो कृच्छ्र होता है वह चार प्रकार का विभाजित किया जावे। एक दिन एक ही बार खाने वाला रहे। एक दिन रात्रि में भोजन करे। एक दिन अयाचित का भोजन करे। एक दिन केवल वायु का ही भक्षण करे ।। २०३-२०५ ।। दो दिन में एक बार भोजन करे। दो दिन मे रात्रि में तथा दो दिन अयाचित भोजन और दो दिन वायु भक्षण करे। तीन दिन एक बार दिन में—तीन दिन केवल रात्रि में—तीन दिन अयाचित और तीन दिन मारुत का आशन करे। चार दिन एक बार, चार दिन रात्रि भोजन, चार दिन न मांगा हुआ और चार दिन वायु का आहार करे ।। २०६-२०७ ।। इसके अनन्तर प्रायश्चित की चीर्णं हो जाने पर ब्राह्मण भोजन करावे और ब्राह्मण को दक्षिणा देवे तथा स्वयं पवित्र मन्त्रों का विप्र जप करे। ब्राह्मणों को भोजन करवा कर गो को मारने वाला शुद्ध हो जाता है-इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।। २०८-२०९ ।।

गोसेवोपदेशवर्णनम्

गवां सं.क्षणार्थाय नदुष्येद्रोधबन्धयोः ।
तद्‌बधन्तु न तं विद्यात् कामात् कामकृतन्तथा ।।२१०
अङ्गुष्ठमात्रः स्थूलो वा बाहुमात्रः प्रमाणतः !
आर्द्रस्तु समलाशश्च दण्ड इत्यभिधीयते ।।२११

दण्डदूर्द्धं यदन्येन प्रहरेद्वा निपातयेत् ।
प्रायश्चित्तं चरेत् प्रोक्तं द्विगुणं गोव्रतञ्चरेत् ।।२१२
रोधबन्धनयोक्त्राणि घातनञ्च चतुर्विधम् ।
एकपादञ्चरेद्रोधे द्विपादं बन्धने चरेत् ।।२१३
योक्त्रेषु पादहीनं स्याच्चरेत् सर्वं निपातने ।
गोचारे च गृहे वापि दुर्गेष्वपि समेष्वपि ।।२१४
नदीष्वपि समुद्रेषु खातेऽप्यथ दरीमुखे ।
दग्धदेशे स्थिताः गावः स्तम्भनाद्रोध उच्यते ।।२१५
योक्त्रदामकडोरैश्च घण्टाभरणभूषणैः ।
गृहे वापि वने वापि बद्धा स्याद्गौर्मृता यदि ।।२१६
तदेव बन्धनं विद्यात् कामाकामकृतञ्च यत् ।
मृल्लेखे शकटे पंक्तौ भारे वा पीडितो नरैः ।।२१७
गोपतिर्मृत्युताप्नोति योक्त्रो भवति तद्वधः ।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तश्चेतनो वाप्यचेतनः ।।२१८
कामाकामकृतक्रोधोदण्डैर्हन्यदधोपलैः ।
प्रहता वा वृता वापि तद्धि हेतुर्निपातने ।।२१९

गायों के संरक्षण के लिये उनका रोध तथा बन्धन का दोष भी नहीं करना चाहिए। इच्छा से इच्छाकृत वध को ही गाय का वध नहीं माना जाता है। अंगूठा के समान स्थूल और भुजा के बराबर प्रमाण वाला गीला और पत्तों से युक्त ही उनके ताड़न के लिये कहा जाता है। ।। २१०-२११ ।। इस उक्त प्रकार के दण्ड से अधिक अन्य किसी भी वस्तु से गाय पर कोई प्रहार करे या उसे गिरा देवे तो उसे बताया हुआ प्रायश्चित तथा दुगुना गोव्रत करना चाहिए ।। २१० ।। गायों का रोध-बन्धन-योक्त्र और घातन चार प्रकार का होता है। रोध में एक पाद प्रायश्चित करे और बन्धन में दो पाद करे। योक्त्र में पूर्ण प्रायश्चित में चतुर्थ भाग छोड़कर करे। निपातन में पुरा व्रत प्रायश्चित में करे। गोचरण भूमि में, घर में, दुर्गों में, समतल में, नदियों में, समुद्र में, गड्ढों

में, पहाड़ की दरी में, दग्ध देश में, स्थित गायों का स्तम्भन रखना हो रोध होता है ।। २१३-२१५ ।। योक्त्र की डोरियों से तथा घण्टाभरण आदि भूषित करने की वस्तुओं से घर में या जंगल में बद्ध गौ यदि मृत हो जावे तो वही बन्धन समझना चाहिए चाहे कामना से या बिना ही कामना के किया गया हो । मूल्लेख में गाड़ी में, पंक्ति में, भार वहन कराने में मनुष्यों के द्वारा सताया हुआ बैल मर जाता है तो यह बध योक्त्र वध होता है । मत्त, प्रमत्त, उन्मत, चेतन या अचेतन भी चाहे कामना से या बिना ही इच्छा के किये हुए क्रोध वाला दण्डों से या पत्थरों से मारे । चाहे वह प्रहत हो या मृत हो उसके नियातन के हेतु होता है ।। २१६-२१९ ।।

मूर्च्छितः पतितो वापि दण्डेनाभिहतः सतु ।
उत्थितस्तु यदा गच्छेत् पञ्च सप्त दशैव वा ।।२२०

ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वापि पिवेद्यदि ।
पूर्वंव्याध्युपसृष्टश्चेत् प्रायश्चित्तं न विद्यते ।।२२१
पिण्डस्थे पादमेकन्तु द्वौ पादौ गर्भसम्मिते ।
पादोन व्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम् ।।२२२

पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोऽपि च ।
त्रिपादे तु शिखावर्जं सशिखन्तु निपातने ।।२२३
पादे वस्त्रयुगञ्चैव द्विपदे कांस्यभाजनम् ।
पादोने गोवृषं दद्याच्चतुर्थे गोद्वयं स्मृतम् ।।२२४

निष्पन्न सर्वगात्रन्तु दृश्यते वा सचेतनम् ।
अंगप्रत्यगसम्पन्ने द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ।।२२५

पाषाणे नैव दण्डेन गावो येनाभिघातिताः ।
शृंगभृंगे चरेत् पादं द्वौ पादो तेन यातने ।।२२६

लाङ्गूले कृच्छ्रपादन्तु द्वौ पादावस्थितभञ्जने ।
त्रिपादञ्चैव कर्णे तु चरेत् सर्वं निपातने ।।२२७

मूर्च्छित अथवा पतित दण्डे से पीटा हुआ वह जब उठकर पाँच सात और दश कदम चला जावे और ग्रास तथा जल ग्रहण करे या पीवे और पूर्व व्याधि से उपसृष्ट हो जावे तो कोई भी उसका प्रायश्चित नहीं होता है। पिण्ड स्वरूप गर्भ के होने पर एक पाद अर्थात् चौथाई भाग प्रायश्चित का करे, गर्भ सम्मित के हनन में आधा और अचेतन गर्भ के हनन में एक पाद कम प्रायश्चित करना चाहिए ।। २२०-२२२ ।। एक पाद प्रायश्चित में अङ्ग के रोमों का वपन करावे, दो पाद में श्मश्रुओं का भी मुण्डन करावे, तीन पाद में शिखा के अतिरिक्त सब का वपन करावे और और निपातन में शिखा के सहित वपन करावे। एक पाद में दो वस्त्र देवे, दो पाद में काँसे का पात्र, तीन पाद में गो वृष और चार पाद में गो का दान करे ।। २२३-२२४ ।। समस्त शरीर से निष्पन्न और सचेतन दिखलाई देता हो तथा सभी अंगों और प्रत्यंगों से सम्पन्न होने पर दुगुना गोव्रत करना चाहिए। पाषाण से और दण्डे से जिसने गाय को अभिघातित किया हो और उसका सींग टूट जावे तो एक चौथाई प्रायश्चित करे उसके गिरा हुआ होने पर दो पाद, पूँछ टूट जाने पर कृच्छ्र पाद, हड्डी का भङ्ग होने पर दो पाद, कान टूट जाने पर तीन पाद और सबके निपातन होने पर पूरा प्रायश्चित करना चाहिए ।।२२५-२२७।।

शृङ्गभृङ्गेऽस्थिभगे च कटि भगे तथैव च।
यदि जीवति षण्मासान् प्रायश्चित्तं न विद्यते ।।२२८
व्रणभंगे च कर्तव्यः स्नेहाभ्यंगस्तु पाणिना।
यवसश्चापहर्त्तव्यो यावद्दृढबलो भवेत् ।।२२९
यावत्सम्पूर्णसर्वाङ्गस्तावत्तं पोषयेन्नरः।
गोरूपं ब्राह्मणस्याग्रे नमस्कृत्य विवर्जयेत् ।।२३०
यद्यसम्पूर्णसर्वाङ्गो हीन देहो भवेत्तदा।
गोघातकस्य तस्यार्द्धं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।।२३१
काष्ठलोष्टकपाषाणैः शस्त्रेणैवोद्धतो बलात्।
व्यापादयति यो गान्तु तस्य शुद्धि विनिर्दिशेत् ।।२३२

चरेत् सन्तपनं काष्ठे प्राजापत्यन्तु लोष्ट्रके ।
तप्तकृच्छ्रन्तु पाषाणे शस्त्रे चैवातिकृच्छ्रकम् ।।२३३
पञ्च सान्तपने गावः प्राजापत्ये तथा त्रयः ।
तप्तकृच्छ्रे भवेन्त्यष्टावतिकृच्छ्रे त्रयोदश ।.२३४
प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम् ।
तस्यानुरूप मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ।।२३५

सींग, अस्थि और कमर के भंग हो जाने पर भी यदि वह छै मास तक जीवित रहे तो प्रायश्चित नहीं होता है ।। २२८ ।। व्रण के भंग हो जाने पर हाथ से तैलादि स्नेह पूर्ण वस्तु का उनमें अभ्यंग करना चाहिए । उसे यव खिलावे जब तक वह दृढ़ बल वाला होवे, जब तक वह अपने सभी अंगों से सम्पूर्ण न हो तब तक मनुष्य को उसका पोषण करना चाहिए । ब्राह्मण के आगे गोरूप को नमस्कार करने विदा करे ।। २२९-२३० ।। यदि वह असम्पूर्ण अंग वाला और हीन देह वाला ही रहे तो उस समय गाय के घात करने वाले व्यक्ति को आधा प्रायश्चित अवश्य करना चाहिए । काठ, ढेला और पाषणों से तथा शस्त्र से उद्धत व्यक्ति बल पूर्वक जो गौ को मार डालता है तो उसकी शुद्धि बतलाई जाती है । काष्ठ से मारने पर सान्तपन, ढेलों से मार देने पर प्राजापत्य, पत्थरों से मार देने पर तप्त कृच्छ्र और शस्त्र से मार देने पर अति कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ।। २३१-२३३ ।। सान्तपन व्रत में पाँच गौ का दान करे, प्रजापत्य में तीन तप्त कृच्छ्र में आठ और अति कृच्छ्र में तेरह प्राण धारियों के प्रमापण में उनका प्रति रूपक का दान करना चाहिए । या उसके अनुरूप मूल्य देकर दान की विधि को पूर्ण करे—ऐसा महर्षि मनु ने बतलाया है ।। २३४-२३५ ।।

अन्यत्राङ्कनलक्ष्मभ्यां वाहने मोहने तथा ।
सायं संयमनार्थन्तु न दुष्येद्रोधबन्धयोः ।।२२६
अतिदाहेऽतिवाहे च नासिकाभेदने तथा ।
नदीपर्वतसञ्चारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।।२२७

अतिदाहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत् ।
नासिके पादहीनं तु चरेत्सर्वं निपातने ॥२३८
दहनाञ्च विपद्येत अबद्धो वापि यन्त्रितः ।
उक्तं पराशरेणैव ह्येकपादं यथाविधि । २३९
रोधबन्धनयोक्त्रञ्च भारः प्रहरणन्तथा ।
दुर्गप्रेरणयोक्त्रञ्च निमित्तानि बधस्य षट् ॥२४०
बन्धप्राशसुगुप्ताङ्गो म्रियते यदि गोपशुः ।
भवने तस्य नाशस्य पापं कृच्छ्रार्द्धं मर्हति ॥२४१
न नारिकेलैर्नच शाणबालै-
    र्नचापि मौञ्जेन च बन्धश्रृङ्खलैः ।
एतैस्तु गावो न निबन्धनीया-
    बद्धातु तिष्ठेत् परशुं गृहीत्वा ॥२४२
कुशैः काशैश्च बध्नीयाद्गोपशुं दक्षिणा मुखम् ।
पाशलग्नादिदग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥२४३
यदि तत्र भवेत् काण्डं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।
जपित्वा पावनीं देवीं मुच्यते तत्र किल्विषात् ॥२४४

वाहन में तथा मोहन अन्यत्र अङ्कन और चिन्हों से और शाम को संयमन के लिए रोध तथा बन्धन करने में कोई भी दोष नहीं होता है। अत्यन्त दाह करने तथा अत्यधिक वाहन करने में और नाक के छेदन करने में नदी तथा पर्वत के सञ्चार में प्रायश्चित करना चाहिए। अतिदाह में प्रायश्चित का चौथा भाग करे, वाहन में आधा नाथ डालने में तीन भाग निपातन में पूर्ण प्रायश्चित करे ॥ २३६-२३८ ॥ दहन करने से बँधा हुआ हो अथवा यन्त्रित हो पीड़ित होता है अतः पराशर महर्षि ने यथा विधि एक पाद ही कहा है ॥ २३९ ॥ वध के रोध-बन्धन-योक्त्र-सार-प्रहरण-दुर्ग-प्रेरण और योक्त्रा ये छै निमित्त होते हैं। बन्ध प्राश से सुगुप्त अंग वाला पशु यदि मर जाता है, तो भवन में उसके नाश का पाप होता है। उसकी शुद्धि के लिए

कृच्छ्र का आधा भाग करने के योग्य होता है ।। २४०-२४१ ।। नारियल की जटाओं की रस्सी, शाण, बालों की डोरी, मूंज की रस्सी और बन्ध शृङ्खला से गायों को कदापि नहीं बाँधना चाहिए और बाँध कर परशु ग्रहण करके रहे । कुश-काँस की डोरी से दक्षिण दिशा को ओर मुख कराकर गौ को बाँधना चाहिए । पाश लग्नादि स दग्ध होने पर प्रायश्चित नही होता है ।। २४२-२४३ ।। यदि वहाँ पर काण्ड हो जावे तो किस प्रकार उनका प्रायश्चित कैसे होना चाहिए यह बतलाते हैं कि पावन देवी गायत्री का जप करके व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है ।। २४४ ।।

प्रेरयन् कूयवापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन् ।
गवाशनेषु विक्रीणंस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ।।२४५
अराधितस्तु यः कश्चिद्भिन्नकक्षो यदा भवेत् ।
श्रवणं हृदयं भिन्नं मग्नौ वा कूटसंकटे ।।२४६
कूपादुत्क्रमणे चैव भारती वा ग्रीयापादयोः ।
स एव म्रियते तत्र त्रीन् पादांस्तु समाचरेत् ।।२४७
कूपखाते तटीबन्धे नदीबन्धे प्रपासु च ।
पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ।।२४८
कूपखाते तटीखाते दीर्घखाते तथैव च ।
अन्येषु धर्मपातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ।।२४९
वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः खातमिच्छति ।
स्वकार्यगृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।।२५०
निशि बन्धनिरुद्धेषु सर्पव्याघ्रहतेषु च ।
अग्निविद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ।।२५१

कुआ—बावड़ी में प्रेरित करते हुए, वृक्ष छेदों में पातन करते हुए तथा गवाशन में विक्रय करते हुए व्यक्ति गोवध को प्राप्त होता है।।२४५।। कोई भी जब आराधित हो और भिन्न कक्ष हो जावे, श्रवण और हृदय भिन्न हों तथा कूट संकट में मग्न हो जावें, कुए से उत्क्रमण में

गरदन और पैरों से भग्न हो जावे और वह वहाँ ही मर जावे तो मनुष्य को प्रायश्चित्त के तीन भाग करने चाहिए ।।२४६-१४७।। कूपखात-तटिबन्ध-नदीबन्ध-प्रया (प्याऊ) और जल में मृत हो जाने वालों का कोई प्रायश्चित नहीं होता है । कुऐ का गड्ढा-तटी का गर्त्त-दीर्घ खात तथा अन्न धर्मपातों में मृत हो जाने पर भी कोई प्रायश्चित नहीं होता है ।।२४८-२४९।। निवास स्थानों में घर के द्वार पर जो कोई मनुष्य खात को चाहता है तो अपने कार्य के लिए घर के खातों का प्रायश्चित्त बतलाते हैं। निशा में बन्धन के लिए निरुद्ध होने वाले तथा सर्प व्याघ्र के द्वारा हत हो जाने वाले एवं आग और बिजली के पात से मरने वालों का कोई प्रायश्चित नहीं है ।।२५०-२५१।।

ग्रामघाते शरौघेण वेश्मबन्धनिपातने ।
अतिवृष्टिहतानाञ्च प्रार्ताश्चत्तं न विद्यते ।।२५२
संग्रामे प्रहतानाञ्च ये दग्धा वेश्यकेषु च ।
दावाग्नि ग्रामघाते वा प्रायश्चित्तं च विद्यते ।।२५३
यन्त्रिता गौश्चिकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने ।
यत्ने कृते विपद्येत प्रार्याश्चत्तं न विद्यते ।।२५४
व्यापन्नानां बहूनाञ्च वन्धने रोधनेऽपिवा ।
भिषग्मिथ्याप्रचारे च प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत ।।२५५
गोवृषाणां विपत्तौ च यावन्तः प्रेक्षका जनाः ।
न वारयन्ति तां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत् ।।२५६
एको हतोयैर्बहुभिः समेतै-
नंज्ञायत यस्य हतोऽभिधानातु ।
दिव्येन तेषामुपलभ्य हन्ता
निवर्त्तनोयो नृपसन्नियुक्तैः ।।२५७
एका चेद्बहुभिः कापि दैवाद्व्यापादिता भवेत् ।
पादं पादञ्च हत्यायश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् ।।२५८
हतेषु रुधिरं दृश्यं व्याधिग्रस्तः कृशो भवेत् ।
नाना भवति दृष्टेषु एवमन्वेषणं भवेत् ।।२५९

ग्राम के घात होने पर, शरों के समूह से वेश्म बन्ध के निपातन में तथा अति वृष्टि के कारण मृत हुओं का भी कोई प्रायश्चित्त नहीं होता है। संग्राम में मृत तथा घर में अग्नि लग जाने पर जल जाने वाले और दावाग्नि तथा ग्राम के घात में मरने वाले का प्रायश्चित्त नहीं होता है।२५२-२५३। चिकित्सा के लिए यन्त्रित तथा मूढगर्भ के विमोचन में यत्न करते हुए भी यदि मृत्यु को गौ प्राप्त हो जावे तो उसका कोई प्रायश्चित्त का विधान नहीं है ।।२५४।। बन्धन तथा रोधन में बहुतों के मृत हो जाने पर एवं भिषक के द्वारा मिथ्या प्रचार में प्रायश्चित बतलाते हैं। गाय तथा बैलों के मर जाने पर जो मनुष्य वहाँ देखने वाले हों और इनको नहीं रोकते हों तो उन सबको पातक लगता है ।।२५५-२५६।। एकत्रित बहुतों के द्वारा जब कोई एक हत हो जावे और किस के द्वारा यह हत हुआ-यह नहीं जाना जावे तो दिव्य निर्णय के द्वारा उसका मारने वाला प्राप्त करें और नृप सन्नियुक्त व्यक्तियों के द्वारा निर्वतन करना चाहिए ।।२५७।। कोई भी एक गौ यदि बहुतों के द्वारा दैवात् मृत हो जावे तो उन सभी को पृथक-पृथक चौथाई भाग प्रायश्चित्त का करना चाहिए। हत होने वालों में रुधिर दिखाई देने, व्याधि से ग्रस्त कृश होवे तो देखने पर अनेक हो जाता है इस तरह अन्वेषण होता है ।।२५८-२५९।।

मनुना चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता।
प्रायश्चित्तन्तु तेनोक्तं गोषु चान्द्रायणं चरेत् ।।२
केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं गोव्रतं चरेत।
द्विगुणे व्रत आदिष्टे दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ।।२६१
राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः।
अकृत्वा वपनं तस्य प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।।२६२
यस्य न द्विगुणं दानं केशश्च परिरक्षितः।
तत्पापं तस्य तिष्ठेत वक्ता च नरक व्रजेत् ।।२६३
यत्किञ्चित् क्रियते पापं सर्वकेशेषु तिष्ठति।
सर्वान् केशान् समुद्धृत्य च्छेदयेदङ्गुलिद्वयम् ।।२६४

एवं नारीकुमारीणां शिरसो मुण्डनं स्मृतम् ।
न स्त्रियाः केशवपनं न दूरे शयनाशनम् ।।२६५
न च गोष्ठे वसेद्रात्रौ न दिवा गा अनुव्रजेत् ।
नदीषु संगमे चैव अरण्येषु विशेषतः ।।२६६

समस्त शास्त्रों को जानने वाले एक महर्षि मनु ने इस प्रकार का प्रायश्चित्त बतलाया है कि गौ के विषय में चान्द्रायण करे । केशों की रक्षा करना अभष्ट हो उसके लिये दुगना गो व्रत करना चाहिए । जब व्रत दुगना बताया गया है तो दक्षिणा भी दुगनी होता है ।।२६०-२६१।। राजा या राज पुत्र,ब्राह्मण या बहुश्रुत यदि वपन करे तो उसके स्थान में प्रायश्चित करना चाहिए । जब कि दान तो दुगना नहीं हो और केशों की रक्षा करली गई हा तो इसका पाप उसी में बना ही रहता है और जो ऐसा बोलता है वह भी नरक में जाता है । जो कुछ भी पाप किया जाता है वह सब केशों में जाकर रहा करता है अतः समस्त केशों को लेकर दो अंगुलियों का छेदन करना चाहिए ।।२६२-२६४।। इसी प्रकार कुमारी नारियों के शिर का मुण्डन बताया गया है । स्त्री के केशों का वपन नहीं होता है और न दूर में शयनासन ही किया जाता है । स्त्रियाँ न तो रात्रि में गोष्ठ में ही वास करतीं हैं और न उन्हें गौओं के पीछे वन में जाना चाहिए । नदियों के सङ्गम में और खास करके वनों में नहीं जाना ।।२६५-२६६।।

न स्त्रीणामजिनं वासो व्रतमेवं समाचरेत् ।
त्रिसन्ध्यं स्नानमित्युक्तं सुराणामर्च्चनं तथा ।।२६७
बन्धुमध्ये व्रतं तासां कृच्छ्रचान्द्रायणादिकम् ।
गृहेषु नियतं तिष्ठेच्छुचिर्नियममाचरेत् ।।२६८
इह यो गोवधं कृत्वा प्रच्छादयितुमिच्छति ।
स याति नरकं घोरं कालसूत्रसंशयम् ।।२६९
विमुक्तो नरकात्तस्मान्मर्त्यलोके प्रजायते ।
क्लीवो दुःखी च कुष्ठी च सप्त जन्मानि वै नरः ।।२७०

तस्मात् प्रकाशयेत् पापं स्वधर्मं सततं चरेत् ।
स्त्रीबालभृत्यगोविप्रेष्वतिकोपं निवर्जयेत् ॥२७१

स्त्रियों के प्रायश्चित्त में अजिन वस्त्र भी नहीं होता है । इसी तरह का व्रत स्त्रियाँ करें । तीनों समय में स्नान और देवों का पूजन उन्हें करना चाहिए । इनका व्रत बन्धुओं के मध्य में ही होता है चाहे कृच्छ्र चान्द्रायण आदि कोई भी व्रत हो उन्हें नियत रूप से ठहरना और शुद्ध होकर नियमों का आचरण करना चाहिए ॥२६७-२६९॥ इस लोक में जो कोई गाय का वध करके उसे छिपाना चाहता है । वह निश्चय ही कालसूत्र नामक घोर नरक में जाता है । उस नरक से विमुक्त होकर भी जब फिर इस लोक में पैदा होता है तो वह नपुंसक दु:खित, कुष्ठ रोग वाला बराबर सात जन्म तक रहता है । इसलिये अपने किये हुए पाप को प्रकाशित कर देना चाहिये और सदा अपने धर्म का आचरण करने रहना चाहिए । स्त्री-बालक-भृत्य गौ और ब्राह्मणों पर अत्यन्त कोप को वर्जित कर देना चाहिए ॥२७०-२७१॥

अभक्ष्यभक्षणप्रायश्चित्तवर्णनम् ।

अमेध्यरेतोगोमासं चाण्डालान्नमथापिवा ।
यदि भुक्तन्तु विप्रेण कृच्छ्रं चान्द्रायणञ्चरेत् ॥२७२
तथैव क्षत्रियो वैश्य स्तदर्द्धन्तु समाचरेत् ।
शूद्रोऽप्येव यदा भुङ्क्ते प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२७३
पञ्चगव्यं पिवेच्छूद्रो ब्रह्मकूर्चं पिवेद्द्विजः ।
एकद्वित्रिचतुर्गाश्च दद्याद्विप्रादनुक्रमात् ॥२७४
शूद्रान्नं सूतकस्यान्नमभोज्यस्यान्नसेव च ।
शङ्कितं प्रतिषिद्धान्नं पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ॥२७५
यदि भुक्तन्तु विप्रेण अज्ञानादापदापि वा ।
ज्ञात्वा समाचरेत् कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चन्तु पावनम् ॥२७६

व्यालैर्नकुलमार्जारैरन्नमुच्छिष्टितं यदा ।
तिलदर्भोदकैः प्रोक्ष्य शुद्धयते नात्र संशयः ॥२७७
शूद्रोऽप्यभोज्यं भुक्त्वान्नं पञ्चगव्येन शुद्धयति ।
क्षत्रियो वापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्धयति ॥२७८

अपवित्र रेतस् (वीर्य) गोमांस और चाण्डाल का अन्न यदि ब्राह्मण ने खाया हो तो उसे कृच्छ्र चान्द्रायण करना चाहिए ॥२७२॥ उसी तरह क्षत्रिय तथा वैश्य को इससे आधा करना चाहिए । शूद्र भी यदि इसी प्रकार से खालेवे तो वह प्राजापत्य करे ॥२७३॥ शूद्र पञ्चगव्य पीवे और द्विज ब्रह्म कूच पीवे । क्रम से एक-दो तीन और चार गाय ब्राह्मण को दान करें ।२७४। शूद्र का अन्न, सूतक का अन्न अभोज्य व्यक्तिका अन्न, शङ्कित,प्रतिषिद्ध अन्न,और पूर्वोच्छिष्ट अन्नादि को यदि ब्राह्मण अज्ञान वश अथवा आपत्ति के कारण खालेवे तो उसे जानने के बाद कृच्छ्र तथा पावन ब्रह्म कूर्च करना चाहिए ॥१७५-२७६॥ व्याल नकुल और मार्जार से जब अन्न उच्छिष्ट हो जावे तो तिल और दर्भ (कुशा) के जल से प्रोक्षण करने से वह शुद्ध हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥२७७॥ शूद्र भी अभोज्य अन्न को खाकर पञ्चगव्य लेने से शुद्ध हो जाता है । क्षत्रिय और वैश्य प्राजापत्य व्रत से शुद्ध होते हैं ॥२७८॥

एकपंक्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ।
यद्यकोऽपि त्यजेत् पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥२७९
मोहाद्वा लोभतस्तत्र पंक्तावुच्छिष्टभोजने ।
प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं सान्तपनन्तथा ॥२८०
पीयूषश्वेतलसुनवृन्ताकफलगृञ्जनम् ॥२८१
पलाण्डुं वृक्षवृक्षनिर्य्यासं देवस्वं कवकानि च ।
उष्ट्रीक्षीरं मविक्षीर मज्ञानाद्भुञ्जति द्विजः ॥२८२
त्रिरात्रमुपवासी स्यात् पञ्चगव्येन शुद्धयति ।
मण्डूकं भक्षयित्वा च मूषकामांसमेव च ॥२८३
ज्ञात्वा विप्रस्त्वहोरात्रं यावकान्नेन शुद्धयति ।

क्षत्रियोवापि वैश्योवा क्रियावन्तौ शुचिव्रतौ ।
तद्गृहेषु द्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येषु नित्यशः ।।२८४
घृतं तैलं तथा क्षीरं गुड़ं तैलेन पाचितम् ।
गत्वा नटीतटे विप्रो भुञ्जीयाच्छूद्रभोजनम् ।।२८५

एक पंक्ति में बैठे हुए ब्राह्मणों के सहभोजन में यदि एक भी कोई पात्र का त्यागकर दे तो शेष अन्न को नहीं खाना चाहिए ।।२७९।। मोह से या लोभ से उस उच्छिष्ट भोजन वाली पंक्ति में कोई भोजन करता रहे तो ब्राह्मण को प्रायश्चित्त कृच्छ्र तथा सान्तपन करना चाहिए ।२८०। पीयूषश्वेत लहसुन-बैंगन-गाजर-प्याज-वृक्ष का गोंद-देवस्व-कवक-ऊंटनी का दूध-अविक्षोर को यदि अज्ञान से कोई द्विज खालेवे तो उसे तीन रात्रि तक उपवास करके पञ्चगव्य लेना चाहिये तभी शुद्धि होती है ।।२८१-२८२।। मेंढ़क को तथा चूहे के मांस को खाकर और जानकर विप्र को अहोरात्र उपवास कर यावकान्न खाना चाहिए तब शुद्धि होती है ।।२८३ । क्षत्रिय वा वैश्व जो क्रिया वाले और शुचि व्रत वाले हों, उनके घर में नित्य ही हव्य कव्यादि में ब्राह्मणों को भोजन कर लेना चाहिए ।।२८४।। घृत-तैल तथा दूध-गुड़ और तैल से पाचित वस्तु को नदी को तट पर जाकर ब्राह्मण को शूद्र का भोजन कर लेना चाहिए ।।२८५।।

अज्ञानाद्भुञ्जते विप्राः सूतके मृतकेऽपिवा ।
प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णे वर्णे विनिर्द्दिशेत् ।।२८६
गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्धः स्याच्छूद्रसूतके ।
वैश्ये पञ्चसहस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रियः ।।२८७
ब्राह्मणस्य यदा भुङ्क्ते प्राणायामेन शुद्धयति ।
अथवा वामदेव्येन साम्ना चैकेन शुद्धयति ।।२८८
शुष्ककान्नं गोरसं स्नेहं शूद्रवेश्मन आगतम् ।
पक्वं विप्रगृहे पूतं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत् ।।२८९
आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि ।
मनस्तापेन शुद्धयेत द्रुपदां वा शतं जपेत् ।।२९०

दासनापितगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ।२९१
शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः।
संस्कृतस्तु भवेद्दास्यो ह्यसंकारैस्तु नापितः ॥२९२
क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्तु यः सुतः।
स गोपाल इतिज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥२९३

यदि ब्राह्मण अज्ञानवश सूतक में अथवा मृतक है भोजन करें तो उनका प्रत्येक वर्ण का कैसे प्रायश्चित्त होता है यह निर्देश किया जाता है। शूद्र के सूतक में भोजन करने पर ब्राह्मण की आठ हजार गायत्री के जप करने से शुद्धि होती हैं। वैश्य की पाँच हजार से तथा क्षत्रिय की तीन हजार गायत्री के जप से शुद्धि होती है ॥२८६-२८७॥ ब्राह्मण के यहाँ जब खावे तो प्राणायाम से शुद्ध होता है। अथवा एक सामवेद के वाम देव्य के जप से शुद्धि होती है। शूद्र के घर से आया हुआ शुष्क अन्न, गोरस, और स्नेह पक्व हो जाने पर विप्र के घर में भोज्य पवित्र हो जाता है—ऐसा महर्षि मनु ने कहा ॥२८८-२८९॥ आपत्ति के समय में ब्राह्मण यदि शूद्र के घर में खालेवे तो मन में संताप करने से तथा द्रूपद मन्त्र के सौ जप करने से शुद्ध हो जाता है। दास-नाई-गोपाल-कुल मित्र और खेती के काम में आधे का साझी ये शूद्र भोज्य अन्न वाले होते हैं और जो भी अपने आपको निवेदन करे ॥२९०-२९१॥ शूद्र की कन्या से समुत्पन्न और ब्राह्मण के द्वारा सस्कार किया हुआ वह संस्कृत दास्य होता है और नाई तो बिना संस्कारों के होता है। क्षत्रिय से शूद्र की कन्या में उत्पन्न हो जाने वाला जो पुत्र है वह गोपाल होता है और विप्रों के द्वारा भोज्यान्न होता है-इसमें संशय नहीं है ॥२९२-२९३॥

वैश्यकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः।
आर्द्धिकश्च स तु ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥२९४
भाण्डस्थितमभोज्येषु जलं दधि घृतं पयः।
अकामतस्तु यो भुङ्क्ते प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥२९५

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाप्युपसर्पति ।
ब्रह्मकूर्च्चोपवासेन यथावर्णस्य निष्कृतिः ।।२६६
शूद्राणां तोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्धयति ।
ब्रह्मकूर्च्चमहोरात्रं श्वपाकमपि शोधयेत् । २६७
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
निर्दिष्टं पञ्चगव्यन्तु पवित्रं पापनाशनम् ।।२९८
गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेताया गोमयं हरेत् ।
पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया दधि चोच्यते ।।२६९
कपिलाता घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा ।
गोमूत्रस्यफलं दद्याद्दध्नस्त्रिपलमुच्यते ।।३००
आज्यस्यैकपलं दद्यादङ्गुष्ठार्द्धन्तु गोमयम् ।
क्षीरं सप्तदलं दद्यात् पलमेकं चुशोदकम् ।।३०१

वैश्य की कन्या में पैदा हुआ और ब्राह्मण के द्वारा संस्कृत हो वह ग्राधिक कहा जाता है और विप्रों के द्वारा भोज्यान्न होता है । जो अभोज्य हैं उनके पात्रों में रखा हुआ जल-दही-घृत और दूध बिना इच्छा के जो खालेवे उसका क्या प्रायश्चित होता है ।।२६४-२६५।। ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र यदि उपसर्पण करता है तो वर्ण की निष्कृति अनुसार ब्रह्मकूर्च उपवास से इनकी शुद्धि होती है । शूद्रों को उपवास का विधान नहीं होता है । शूद्र तो दान से ही शुद्ध हो जाता है । ब्रह्मकूर्च एक अहोरात्र तक करने पर श्वपच को भी शुद्ध कर दिया करता है ।। २६६-२६७ ।। गोमूत्र—गोमय (गोबर)-दूध दही—घृत और कुश का जल यह निर्दिष्ट पञ्च गव्य बहुत ही पवित्र होता है और पापों का नाश करने वाला होता है । गोमूत्र कृष्ण वर्ण की गाय का, सफेद गौ का गोमय, ताम्रवर्ण वाली गाय का दूध रक्तवर्ण की गौ का दही और कपिला गौ का घृत वस्तुतः उत्तम और ग्रहण के योग्य होता है । यदि भिन्न-भिन्न वर्णों की वस्तु न हों तो सभी वस्तु कपिला गौ की ही लेनी

चाहिए। गोमूत्र एक पल, दही तीन पल, घृत एक पल अंगूठे के अर्ध भाग के बराबर गोमय, दूध सप्तदल और कुशोदक एक पल लेना चाहिए ।। २९८-३०१ ।।

गायत्र्यागृह्य गोमूत्र गन्धद्वारेति गोमयम् ।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्नेति वै दधि ॥३०२
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ।
पञ्चगव्यमृचा पूतं स्थापयेतसन्निधौ ॥३०३
आपोहिष्ठेति चालोढ्य मानस्तोकेति मन्त्रयेत् ।
सप्तावरास्तु ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुकत्विषः ॥३०४
एभिरुद्धृत्य होतव्यं पञ्चगव्यं यथाविधि ।
इरावती इदं विष्णुर्मानस्तोके च शंवतो ॥३०५
एवंरुद्धृत्य होतव्यं हुतशेषं स्वयं पिवेत् ।
आलोड्य प्र०.वेनैव निर्म्मथ्य प्रणवेन तु ।
उद्धृत्य प्रणवेनैव पिवेच्च प्रणवेन तु ।३०६
यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम् ।
ब्रह्मकूर्च्चो दहेत् सर्वं यथैवाग्निरिवेन्धनम् ।।३०७

गो मूत्र गायत्री मन्त्र से ग्रहण करे, 'गन्ध द्वारा'—इस मन्त्र से गोबर, "आप्यायस्व"—इस मन्त्र से दूध, 'दधि क्राब्ना'—इस मन्त्र से दही, 'तेजोऽसिशुक्रम्—इस मन्त्र से घृत, 'देवत्वा'—इस मन्त्र से कुशोदक लेना चाहिए। मन्त्रों द्वारा पवित्र किया हुआ पञ्च गव्य बनाकर अग्नि के समीप में स्थापित करे ।। ३०२–३०३ ।। "आयोहिष्ठा" इत्यादि मन्त्रों से आलोड़न कर 'मनस्तोक" इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। सात से ऊपर कुशा जिनके अग्र भाग टूटे हुए न हों ओर शुष्क त्विषा वाले हों इनसे ले-लेकर तथा विधि पञ्च गव्य का हवन करना चाहिए। फिर "इरावती इहं विष्णुर्मान स्तोके च शंवती" इस मंत्र से ले-लकर होम करना चाहिए। जो हवन करने से शेष रहे उसे स्वयं पीना चाहिए ।। ३०४-३०५ ।। प्रणव से आलोड़न करके ओर प्रणव से ही निमंन्थन करके तथा प्रणव से ही ले-लेकर

प्रणव का उच्चारण करते हुए ही पी लेवे तो जो भी त्वक और अस्थियों में रहने वाला पाप है जो कि देहधारियों के शरीर में रहता है ब्रह्मकूर्च व्रत काष्ठेन्धन को अग्नि की भाँति सब को जला देता है ।। ३०६—३०७ ।।

पिवतः पतितं तोयं भाजने मुखनिःसृतम् ।
अपेयं तद्विजानीयाद्भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत ।।३०८
कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्वशृगालौ च चर्कटम् ।
अस्थि चर्म्मादि पतितं पीत्वा मेध्या अपो द्विजः ।।३०९
नारन्तु कपे काकञ्च विड्वराहखरोष्ट्रकम् ।
गावयं सौप्रतीकञ्च मायूरं खाड्गकं तथा ।।३१०
वैयाघ्रमार्क्षं सैहं वा कुणपं यदि मज्जति ।
तड़ागस्याथ दुष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि ।।३११
प्रायश्चित्तं भवेत् पुंसः क्रमेणैतेन सर्वशः ।
विप्रः शुद्ध्येत्त्रिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात् ।।३१२
एकाहेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुद्ध्यति ।।३१३

जल पीते हुए जो जल मुख से निकला हुआ बरतन में गिर गया हो, वह अपेय होता है और यदि उसे खालेवे तो चान्द्रायण करना चाहिए ।। ३०८ ।। कुएं में गिरे हुए कुत्ता—गीदड़ तथा बन्दर को देख कर अस्थि चर्मादि से पतित को द्विज पीवे तो जल मेध्या होते हैं ।।३०९।। कुएं में मनुष्य का शव, कौआ, विड्-वराह-ऊंट-खर, गावय का, सुप्रतीक का, मयूर का, खड्गक का, व्याघ्र का, ऋच्छ का, सिंह का शव यदि मज्जित होता है उस कुएं तथा दुष्ट तालाब का जल पी लिया जावे तो इन सबका क्रमशः पुरुष को प्रायश्चित करना होता है । ब्राह्मण तो तीन रात्रि में शुद्ध हो जाता है, क्षत्रिय दो दिन में वैश्य एक दिन में, और शूद्र एक ही रात में शुद्धि प्राप्त कर लेता है ।। ३१०—३१३ ।।

परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च ।
अपचस्य च भुक्त्वान्नं द्विजश्चान्द्रायणञ्चरेत् ।।३१४

अपचस्य च यद्दाने दातुश्चास्य कुतः फलम् ।
दाता प्रतिग्रहीता च द्वौ तौ निरयगामिनौ ।।३१५
गृहीत्वाग्नि समारोप्य पञ्च यज्ञान्न वर्त्तयेत् ।
परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः परिकीर्तितः ।३१६
पञ्चयज्ञं स्वयं कृत्वा परान्नेनोपजीवति ।
सततं प्रातरुत्थाय परपाकरतो हि सः ।।३१७
गृहस्थधर्मो यो विप्रो ददाति परिवर्जितः ।
ऋषिभिर्धर्मतत्वज्ञैरपचः परिकीर्त्तित । ३१८
युगे युगे च धर्मास्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः ।
तेषां निन्दा न कर्त्तव्या युगरूपा हि ब्राह्मणाः ।।३१९
हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारञ्च गरीयसः ।
स्नात्वा तिष्ठन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ।।२२०

पराये पाक से निवृत्त का, पराये पाक में रत रहने का और अपच का अन्न खाकर ब्राह्मण को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । अपच को दान देने में दाता को फल कैसे प्राप्त हो क्योंकि ऐसा प्रतिग्रहीता और दाता दोनों ही नरक गामी होते हैं ।। ३१४-३१५ ।। जो अग्नि को ग्रहण कर तथा उसका समारोपण करके पञ्च यज्ञों को नहीं करता है उसको मुनिगण ने परपाक निवृत्त कहा है । स्वयं पंच यज्ञ करके पराये अन्न से ही उपजीवित रहा करता है और हमेशा प्रातःकाल उठता है वह परपाकरत कहा जाता है ।। ३१६-३१७ ।। जो विप्र परिवर्जित होता हुआ गृहस्थ धर्म वाला होता है, ऋषियों ने जो कि धर्म के तत्व को भली भाँति जानते हैं, उसे अपच कहा है । युग-युग में जो धर्म हैं और उन धर्मों में जो द्विज हैं, उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए क्योंकि ब्राह्मण भी युग के ही अनुरूप हुआ करते हैं । ।। ३१८-३१९ ।। ब्राह्मण का हुंकार को तथा बड़े ही त्वंकार को कहकर स्नान करके खड़ा होता हुआ दिन के शेष में अभिवादन करके प्रसन्न करना चाहिये ।। ३२० ।।

ताड़यित्वा तृणेनापि कण्ठे वा वध्यवाससा ।
विवादेनापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥३२१
अवगूर्य्य त्वहोरात्रं त्रिरात्रं क्षितिपातने ।
अतिकृच्छ्ञ्च रुधिरे कृच्छ्रमन्तरशोणिते ॥३२२
नवाहमतिकृच्छ्रं स्यात् पाणिपूरान्नभोजनम् ।
त्रिरात्रमुपवासः स्यादतिकृच्छ्रः स उच्यते ॥३२३
सर्वेषामेव पापानां सङ्करे समुपस्थिते ।
शतसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधनं परम् ॥३२४

तिनके से भी ताड़न करके तथा वध्यवस्त्र के कण्ठ में बांधकर तथा विवाद से भी जीतकर प्रणिपात करके प्रसन्न करे । अवगूरित करके अहोरात्र, पृथ्वी में गिरा देने में तीन रात्रि रुधिर के आने पर अतिकृच्छ्र तथा अन्तर शोणित (रक्त) होने पर कृच्छ्र करना चाहिए । अतिकृच्छ्र नौ दिन का होता है और उसमें हाथ में जितना आवे उतने ही अन्न का भोजन होता है । तीन रात्रि जिसमें उपवास होता है वह अतिकृच्छ्र होता है । समस्त पापों का संकर (मिश्रण होना) उपस्थित हो जाने पर एक सौ हजार गायत्री का जप सर्वोत्तम शोधन करने वाला होता है ॥ ३२१-३२४ ॥

॥ समाप्त ॥

———

सम्वर्तस्मृतिः

अथादौ—ब्रह्मचर्यवर्णनम्

सम्वर्त्तमेकमासीनमात्मविद्यापरायणम् ।
ऋषयस्तु समागम्य पप्रच्छुधर्मकांक्षिणाः ॥१
भगवन् ! श्रोतुमिच्छामः श्रेयस्कर्म द्विजोत्तम! ।
यथावद्धर्ममाचक्ष्व शुभाविवेचनम् ॥२
वामदेवादयः सर्वे तमपृच्छन् महौजसम् ।
तानब्रवीन्मुनीन् सर्वान् प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥३
स्वभावाद् यत्र विचरेत् कृष्णसारः सदा मगः ।
धर्म्यदेशः स विज्ञेयो द्विजानां धर्मसाधनम् ॥४
उपनीत सदा विप्रो गुरोस्ते हितमाचरेत् ।
स्त्रग्गन्धमधुमांसानि ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ॥५
संध्या प्रातः सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ।
सादित्यां पश्चिमां सन्ध्यार्द्धास्तिमितभास्करे ॥६
तिष्ठन् पूर्वां जपं कुर्य्याद्ब्रह्मचारी समाहितः ।
आसीनः पश्चिमां सन्ध्यां जपं कुर्य्यादतन्द्रित. ॥७

एकान्त में एकाकी बैठे हुए तथा आत्म विद्या में परायण सम्वर्त मुनि के समीप धर्म के ज्ञान की आकाङ्क्षा रखने वाले ऋषियों ने आकर पूछा ॥ १ ॥ हे भगवन् ! हे द्विज श्रेष्ठ ! हम लोग कल्याण करने वाले कर्म को सुनने की इच्छा रखते हैं। अतः आप ठीक प्रकार से शुभ और अशुभ की विवेचना करने वाले धर्म को बतलावें ॥ २ ॥ वामदेव से आदि समस्त ऋषियों ने महान ओज वाले सम्वर्त से पूछा।

तब प्रसन्न होकर सम्वर्त ने उनसे कहा—सुनो ।। ३ ।। स्वभाव से ही जहां कृष्णसार मृग सदा विचरण किया करता है वही ब्राह्मणों के धर्म की साधना करने वाला धर्म युक्त देश होता है ।। ४ ।। उपनयन संस्कार किया हुआ ब्राह्मण सर्वदा अपने गुरु के हित को करे। ब्रह्मचारी को माला-सुगन्धित पदार्थ मधु और माँस वर्जित कर देना चाहिए ।।५।। प्रातःकाल में नक्षत्रों के आकाश में स्थित रहते हुए ही यथाविधि सन्ध्योपासना करना चाहिए । पश्चिम-संध्या सूर्य के अस्त न होने पर ही आदित्य के रहने पर दिन में ही करे ।।६।। प्रातःकाल में ब्रह्मचारी को समाहित होकर खड़े रहते हुए जप करना चाहिए। पश्चिम सन्ध्या में निरालस्य बैठकर जप करे ।।७।।

अग्निकार्यं ततःकुर्य्यान्मेधावी तदनन्तरम् ।
ततोऽधीयीत वेदन्तु वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ।।८
प्रणवं प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृतिस्तदनन्तरम् ।
गायत्रीञ्चानुपूर्व्रेण ततोवेदं समारभेत् ।।९
हस्तौ सुसंयतौ कार्य्यौ जानुभ्यामुपरिस्थितौ ।
गुरोरनुमतं कुर्य्यात् पठन्नान्यमतिर्भवेत् ।।१०
सायं प्रातस्तु भिक्षेत ब्रह्मचारी सदा व्रती ।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयात् प्राङ् मुखो वाग्यतः शुचि ।।११
सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ।
नान्तरा भोजनं कुर्य्यादग्निहोत्रसमो विधिः ।१२
आचम्यैव तु भुञ्जीत भुक्त्वा चोपस्पृशेद्द्विजः ।
अनाचान्तस्तु योऽश्नीयात् प्रायश्चित्तीयते तु सः ।।१२
अनाचान्तः विवेद्यस्तु योऽपिवा भक्षयेद्द्विजः ।
गायत्र्यष्टसहस्रन्तु जपं कृत्वा विशुध्यति ।।१६

इसके अनन्तर मेधावी को अग्नि का हवनादि कार्य करना चाहिये । फिर गुरू के मुख का निरीक्षण करते हुए वेद का अध्ययन करना चाहिए ।।८।। पहिले प्रणव (ओङ्कार) का प्रयोग करे इसके पश्चात् व्याहृतियों को और फिर गायत्री को आनुपूर्वी क्रम से बोल कर पुनः

वेद का अध्ययन आरम्भ करना चाहिए ॥९॥ ब्रह्मचारी को अपने हाथ सुसंयत रूप में घुटनों पर रखने चाहिए और गुरु की अनुमति के अनुसार ही पढ़ने के समय में रहना चाहिए। अपनी बुद्धि को पठन के अतिरिक्त अन्य किसी भी ओर न लगावे ॥१०॥ व्रत में स्थित ब्रह्मचारी सुबह-शाम सदा भिक्षा करे। पहिले भिक्षा लाकर गुरु के आगे निवेदन करे फिर मौन और शुद्ध होकर तथा पूर्व की ओर मुख करके स्वयं उसे खाना चाहिए ॥११॥ द्विजातियों का भोजन दिन में सायंकाल और प्रातःकाल दो ही बार श्रुति ने बतलाया है। मध्य में चाहे जब भोजन नहीं करना चाहिए। भोजन की भी अग्निहोत्र के ही समान विधि है ॥१२॥ भोजन के आरम्भ में आचमन करे और खाकर फिर आचमन करना चाहिये। जो बिना आचमन किये ही भोजन करता है उसे प्रायश्चित करना होता है ॥१३॥ जो द्विज बिना ही आचामन किये भोजन या पान करता है उसका प्रायश्चित तभी होता है जब आठ हजार गायत्री मन्त्र का जप करे ॥१४॥

अकृत्वा दादशौचन्तु तिष्ठन् मुक्तशिखोऽपिवा ।
विना यज्ञोपवीतेन आचान्तोऽथ शुचिर्द्विजः ॥१५
आचामेद् ब्राह्मतीर्थेन सोपवीतो ह्युदङमुखः ।
उपवीती द्विजोनित्यं प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ॥१६
जले जलस्थ आचामेत् स्थलाचान्तोबहिः शुचिः ।
वहिरन्तस्थ आचान्त एवं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥१७
आमणिबन्धनाद्धस्तौ पादावद्भिर्विशोधयेत् ।
अशब्दाभिरनुष्णाभिः स्ववर्णांरसगन्धिभिः ॥१८
हृद्गताभिरफेनाभिस्त्रिश्चतुर्वाद्भिराचमेत् ।
परिमृज्य द्विरास्यन्तु द्वादशाङ्गानि च स्पृशेत् ॥१९
स्नात्वा पीत्वा तथा भुक्त्वा स्पृष्ट्वा चैव द्विजोत्तमाः ॥
अनेन विधिना विप्र आचान्तः शुचितामियात् ॥२०
शूद्रः शुद्धयति हस्तेन वैश्यो दन्तेषु वारिभिः ।
कण्ठगताभि[illegible] त्रियस्त आचान्तःशुचिता मियात ॥२१

पैरों को शुद्धि किये बिना और चोटी को खोले हुये तथा बिना ही यज्ञोपवीत के द्विज आचान्त होकर शुद्ध हो जाता है ।।१५।। उपवीत वाला द्विज उत्तर की ओर मुख करके ब्राह्मतीर्थ से आचमन करे। उपवीति द्विज नित्य ही प्राङ्मुख वाला, मौन और शुचि होता है। ।।१६।। जल में जलस्थ होकर ही आचमन करे और स्थल में बाहिर स्थित रहकर ही शुद्ध होता है। इस प्रकार बाहिर और अन्दर आचमन करने वाला शुद्धि को प्राप्त होता है ।।१७।। मणिबन्ध तक हाथ और पैरों को जल से शोधित करे। शब्द से रहित शीतल, अपने वर्ण-रस तथा गन्ध वाले ह्रद के जल से, जिसमें फेनादि न हों ऐसे चार प्रकार से आचमन करना चाहिये । दो बार मुख को धोकर बाहर अङ्गों का स्पर्श करे ।।१८-१९।। हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार स्नान करके, पीकर, खाकर तथा स्पर्श करके इस विधि से विप्र आचान्त होकर शुद्धता को प्राप्त हो जाता है ।।२०।। शूद्र हाथ ही धोने से शुद्ध हो जाता है, वैश्य दाँतों में जल के स्पर्श से शुद्ध होता है, क्षत्रिय कण्ठ तक जल के होने पर शुद्धि प्राप्त करता है और ब्राह्मण आचमन करने से ही शुद्ध होता है। २१।।

आसनारूढ़पादश्च कृतावसक्थिकस्तथा ।
आरूढ़पादको ऽपि न शुद्ध्यति कदाचन ।।२२
उपासीत न चेत् सन्ध्यामग्निकार्य्यं नवा कृतम् ।
गायत्र्यष्टसहस्रन्तु जपेत् स्नात्वा समाहितः ।।२३
सूतकान्नं नवश्राद्धं मासिकान्नं तथैव च ।
ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयात्त्रिरात्रेणैव शुध्यति ।।२४
ब्रह्मचारी तु यो गच्छेत् स्त्रियं कामप्रपीड़ितः ।
प्राजात्यं चरेत् कृच्छ्रमथवैकं सुमन्त्रितः ।।२५
ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधुमांसे कथञ्चन ।
प्राजापत्यन्तु कृत्वासौ मौञ्जीहोमेन शुध्यति ।।२६
निर्वपेच्च पुरोडाशं ब्रह्मचारी च पर्वणि ।
मन्त्रैः शाकलहोमान्तैरग्नावाज्यञ्च होमयेत् ।।२७

ब्रह्मचारी तु यः स्कन्देत् कामतः शुक्रमात्मनः ।
अवकीर्णी व्रतं कुर्य्यात् स्नात्वा शुद्धेचदकामतः ।।२८

आसन पर पैर रक्खे हुए तथा अपने उरुओं की नीचे की ओर दबाकर बैठे हुए और आरूढ़ चरणों वाला कभी भी शुद्ध नहीं होता है । ।।२२।। यदि सन्ध्योपासन कभी नहीं करे अथवा अग्नि का कार्य न करे तो आठ हजार गायत्री का समाहित होकर जप स्नान करके करना चाहिए ।।२३।। सूतकी का अन्न, नूतन श्राद्ध का अन्न तथा मासिक श्राद्ध का अन्न जो भी कोई ब्रह्मचारी खाता है वह तीन रात्रि में व्रत से शुद्ध होता है ।।२४।। जो कोई ब्रह्मचारी काम से पीड़ित होकर स्त्री सङ्गम करता है उसे सुमन्त्रित होकर प्राजापत्य व्रत अथवा कृच्छ्र व्रत एक करना चाहिए ।।२५।। प्राजापत्य व्रत करके यह ब्रह्मचारी होम से शुद्ध होता है । जो कभी किसी प्रकार की भूल से मधु-मांश का अशन कर लेता है ।।२६।। ब्रह्मचारी को पर्व के समय पुरोडास का निर्वपन करना चाहिये । शाकल होमान्त मंत्रों से अग्नि में घृत का होम करना चाहिये ।।२७।। जो ब्रह्मचारी इच्छा से ही अपने वीर्य का स्कन्दन करता है । वह अवकीर्ण करने वाला स्नान करके व्रत करे और जिसका वीर्य बिना इच्छा के निःसृत हो जावे वह स्नान से ही शुद्ध हो जाता है ।२८।।

भिक्षाटनमतः कृत्वा स्वस्थो ह्येकात्मनः श्रुतिः ।
अस्नात्वा चैव यो भुङ्क्ते गायत्र्यष्टशतं जपेत् ।।२९
शूद्रहस्तेन योऽश्नीयात् पानीयं वा पिवेत् क्वचित् ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ।।३०
शुष्कपर्य्युषितोच्छिष्टं भुक्त्वान्नं केशदूषितम् ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ।।३१
शूद्राणां भाजने भुक्त्वा भुक्त्वा वा भिन्नभाजने ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ।।३२
दिवा स्वपिति यः स्वस्थो ब्रह्मचारी कथञ्चन ।
स्नात्वा सूर्य्यं समभ्यर्च्य गायत्र्यष्टशतं जपेत् ।।३३

एष धर्मः समाख्यातः प्रथमाश्रमवासिनाम् ।
एवं संवर्त्तमानस्तु प्राप्नोति परमां गतिम् ।।३४
अथ द्विजोऽभ्यनुज्ञातः सवर्णां स्त्रियमुद्वहेत् ।
कुले महति सम्भूयां लक्षणैश्च समन्विताम् ।
ब्राह्मणैव विवाहेन शीलरूपगुणान्विताम् । ३५

भिक्षाटन करके स्वस्थ रहे और एकात्मा ही श्रुति का अध्ययन करे। जो विना ही स्नान किये खा लेता है उसे आठसौ गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिए तभी शुद्धि होती है । २९।। शूद्र के हाथ से जो भोजन करता है या जल पीता है तो एक अहोरात्र व्रतोपवास करके पञ्च गव्य लेने पर शुद्ध होता है ।।३०।। शुष्क-वासी और उच्छिष्ट तथा केश-दूषित अन्न को खाकर अहोरात्र उपवास करके पञ्च गव्य शुद्धि होती है ।।३१।।शूद्रों के पात्र में तथा टूटे हुए पात्र में भोजन करने पर भी अहोरात्र का उपवास और पञ्चगव्य से शुद्ध होता है ।।३२।। जो कोई स्वस्थ पुरुष दिन में सोता है और वह ब्रह्मचारी हो तो इसके प्रायश्चित के लिए स्नान कर सूय की पूजा करे तथा आठ सो गायत्री का जप करना चाहिए ।।३३।। यह प्रथम आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम का धर्म बता दिया है। इस प्रकार से संवर्त्तमान रहने वाला ब्रह्मचारी परम गति को प्राप्त होता है।३४। ब्रह्मचर्याश्रम पूर्णतया पालन करने के पश्चात् आज्ञा प्राप्त कर ब्राह्मण को सवर्ण स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये जो कि महान कुल में उत्पन्न हुई हो और शुभ लक्षणों वाली हो ।।३५।।

पञ्चयज्ञ विधानञ्च कुर्य्यादहरहंद्विजः ।
न हापयेत् क्वचिद्विप्रः श्रेयस्कामः कदाचनः ।।३६
हानिं तस्य तु कुर्व्वीत सदा मरणजन्मनोः ।।३७
विप्रो दशाहमासीत दानाध्ययनवर्जितः ।
क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशैव तु ।
शूद्रः शुध्यति मासेन सम्वर्त्त वचनं यथा ।।३८

प्रेतस्य तु जलं देयं स्नात्वा च गोत्रजैर्बहिः ।
प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा ॥३६
चतुर्थे सञ्चयं कुर्य्यात् सर्वैस्तु गोत्रजैः सह ।
ततः सञ्चयनादूद्र्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥४०
चतुर्थेऽहनि विप्रस्य षष्ठे वै क्षत्रियस्य च ।
अष्टमे दशमे चैव स्पर्शः स्याद्वैश्यशूद्रयोः ॥४१
जातस्यापि विधिर्दृष्ट एष एव मनीषिभिः ।
दशरात्रेण शुध्यन्ति वैश्यदेवविवर्जिताः ॥४२

ब्राह्मण शील और गुणों से युक्त स्त्री का विवाह ब्राह्म विधि से करे तथा पञ्च यज्ञों के विधान को प्रतिदिन करे ॥३६॥ ब्राह्मण को कभी भी उक्त विधान का त्याग नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे श्रेय की सम्प्राप्ति होती है। केवल उक्त विधि का त्याग सदा मरण और जीवन के अशौच में ही करना चाहिए ॥३७॥ ब्राह्मण को दश दिन तक अशौच होने पर दान तथा वेदाध्ययन नहीं करना चाहिए। क्षत्रिय बारह दिन, वैश्य पन्द्रह दिन न करे। शूद्र तो एक माह में शुद्ध होता है ऐसा सम्वर्त का वचन है ॥३८॥ सगोत्र पुरुषों को बाहिर जाकर स्नान कर प्रेत को जल दान करना चाहिए। यह जलदान प्रथम-तृतीय-सप्तम और जनमदिन में अवश्य करे ॥३६॥ प्रेत की अस्थियों का सञ्चय चौथे दिन करे और साथ में समस्त गोत्रज पुरुषों को ले जावे। सञ्चयन के पूर्व अङ्ग स्पर्श नहीं करने का विधान है ॥४०॥ विप्र का चौथे दिन, क्षत्रिय का छठे दिन, वैश्य का आठवें दिन और शूद्र का दशवें दिन स्पर्श करे ॥४१॥ इसी प्रकार की विधि जात में भी होती जो कि मनीषियों ने बताई है। वैश्व देव विवर्जित दश दिन में शुद्धि प्राप्त करते हैं ॥४२॥

पुत्रे जाते पितुः स्नानं सचैलन्तु विधीयते ।
माता शुध्येद्दशाहेन स्नातस्य स्पर्शनं पितुः ॥४३
होमस्तत्र तु कर्तव्यः शुष्कान्नेन फलेन च ।
पञ्चयज्ञविधानन्तु न कार्य्यं मृत्युजन्मनि ॥४४

दशाहांत्तु परं सम्यग् विप्रोऽधीयीत धर्मवित् ।
दानञ्च विधिना देयमशुभान्तकरं शुभम् ॥४५
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे ।
तत्तदगुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥४६
नानाविधानि द्रव्याणि धान्याति सुबहूनि च ।
समुद्रजानि रत्नानि नरो विगतकल्मषः ।
दत्त्वा विप्रा महते प्राप्नोति महतीं श्रियम् ॥४७
गन्धमाभरणं माल्यं यः प्रयच्छति धर्मवित् ।
स सुगन्धः सदा हृष्टो यत्र तत्रोपजायते ॥४८
श्रोत्रियाय कुलीनाय त्वर्थिने च विशेषतः ।
यद्दानं दीयते भक्त्या तद्भवेत्तु महत् फलम् ॥४९

पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता को वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए । माता तो दश दिन में शुद्ध होती है और पिता का स्पर्श स्नान करने के बाद ही हो जाता है ॥४३ । जात का शौच में होम तो कर लेना चाहिए किन्तु वह शुष्क अन्न तथा फलों का ही करे मृत्यु तथा जन्म के अशौच में पञ्च यज्ञों का विधान कदापि नहीं करे ॥४४॥ दश दिन के पश्चात् धर्म के ज्ञाता ब्राह्मण को भलीं भाँति अध्ययन करना चाहिये । अशुभ के अन्त करने वाला शुभदान विधि के साथ देना चाहिए ॥४५॥ संसार में जो-जो मन की अत्यन्त प्रिय वस्तु हों और चाहे घर में प्रिय भी हों वह गुणवान् व्यक्ति को दान में दे देनी चाहिए, इसका अक्षय फल प्राप्त होता है ॥४६॥ नाना प्रकार के द्रव्य, धान्य और बहुत से समुद्र में समुत्पन्न रत्नादि को विगत पाप होकर मनुष्य ब्राह्मण को दान देकर महती अर्थात् बहुत बड़ी सम्पत्ति प्राप्त करता है ॥४७॥ जो धर्म का ज्ञाता गन्ध-भूषण और माल्य का दान करता है वह जहाँ-जहाँ भी पैदा होता है सदा प्रसन्न और अच्छी गन्ध से युक्त होता है ॥४८॥ श्रोत्रिय-कुलीन याचक को विशेषतया जो भक्ति से दान दिया जाता है वह महान फल वाला होता है ॥४९॥

आहूय शीलसम्पन्नं श्रुतेनाभिजनेन च ।
शुचिर्विप्रं महाप्राज्ञो हव्यकव्येषु पूजयेत् ।।५०
नानाविधानि द्रव्याणि रसवन्तीप्सितानि च ।
श्रेयस्कामेन देयानि स्वर्गमक्षयमिच्छता । ५१
वस्त्रदाता सुवेशः स्याद्रौप्यदो रूपमेव हि ।
हिरण्यदो महच्चायुर्लभेत्तेजश्च मानवः । ५२
भूताभयप्रदानेन सर्वकामावाप्नुयात् ।
दीर्घमायुश्च लभते सुखी चैव तथा भवेत् ।।५३
धान्योदकप्रदायी च सर्पिदैः सुखमश्नुते ।
अलङ्कृत्यत्वलङ्कारं दत्वा प्राप्नोति तत्फलम् ।।५४
फलमूलानि विप्राय शाकानि विविधानि च ।
सुरभीणि च पुष्पाणि दत्वा प्राज्ञश्च जायते ।।५५
ताम्बूलं चैव यो दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो विचक्षणः ।
मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते ।।५६

शास्त्र ज्ञान वाले तथा अच्छे कुल वाले शील से सम्पन्न ब्राह्मण को बुला कर शुद्ध होकर महा पण्डित के द्वारा हव्य और काव्यों में पूजित करना चाहिए ।।५०।। अक्षय स्वर्गवास की इच्छा करने वाले तथा श्रेय की कामना करने वाले को अनेक प्रकार के द्रव्य तथा इच्छित सुन्दर वस्तुओं का दान करना चाहिए ।।५१।। जो वस्त्रों को दान किया करता है वह सुन्दर वेष से युक्त होता है । जो चाँदी का दान करता है वह रूप की प्राप्ति करता है । जो सुवर्ण का दान करता है वह महान आयु और उत्तम तेज पाता है ।।५२। प्राणियों का अभय का दान देने से समस्त कामनाओं की पूर्ति करता है तथा दीर्घ आयु पाता है और सुखी होता है ।।५३।। धान्य और जलका दान करने वाला तथा घृतका दाता पुरुष सुख प्राप्त करता है । ब्राह्मण को अलंकारों से अलङ्कृत करके जो अलङ्कारों का दान करता है वह उस के फल में वैसा ही पाता है ।।५४।। जो ब्राह्मण को फल–मूल अनेक प्रकार

के शाक सुगन्धित पुष्प दान करता है वह बड़ा विद्वान होता है ।।५५।। जो पण्डित ब्राह्मण को ताम्बूल देता है वह बुद्धिमान्, अच्छे भाग्य वाला प्राज्ञ और दर्शनीय होता है ।।५६।।

पादुकोपानहौच्छत्रं शयनान्यासनानि च ।
विविधानि च यानानि दत्त्वा दिव्यगतिर्भवेत् । ५७
दद्याच्च शिशिरे त्वग्निं बहुकाष्ठं प्रयत्नतः ।
कायाग्निदीप्तिं प्राज्ञत्वं रूपसौभाग्येयमाप्नुयात् ।।५८
औषधं स्नेहमाहारं रोगिणां रोगशान्तये ।
दत्त्वा स्याद्रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ।।५९
इन्धनानि च योदद्याद्विप्रेभ्यः शिशिरागमे ।
नित्य जयति संग्रामे श्रिया युक्तस्तु दीप्यते ।.६०
अलङ्कृत्य तु यः कन्यां वराय सदृशाय वै ।
ब्राह्मयेण विवाहेन दद्यात्तान्तु सुपूजिताम् ।।६१
स कन्यायाः प्रदानेन श्रेयो विन्दति पुष्कलम्
साधुवादं लभेत् सद्भिः कीर्त्तिं प्राप्नोति पुष्कलाम् ।।६२
ज्योतिष्टोमादिसत्राणां शतं शतगुणीकृतम् ।
प्राप्नोति पुरुषो दत्त्वा होतमन्त्रैस्तु संस्कृताम् ।।६३
अलङ्कृत्य पिता कन्यां भूषणाच्छादनासनैः ।
दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति पूजितस्तु सुरादिषु । ६४

जूते-पादुका छत्र-शय्या और आसन तथा अनेक प्रकार के यान दान में देता है वह दिव्य गति को पाता है ।।५७।। शिशिर ऋतु में बहुत काष्ठ वाली अग्नि का दान करे । इससे शरीर की अग्नि में दीप्ति-प्राज्ञता रूप और सौभाग्य की प्राप्ति होती है ।।५८।। रोगग्रस्त मनुष्यों के रोग की शान्ति के लिये औषधि, तैलादि तथा पथ्याहार देने से मनुष्य रोग से रहित, सुखी और दीर्घायु होता है ।।५९।। शीत काल के आने पर जो ब्राह्मणों को ईंधन देता है वह युद्ध में सर्वदा जय प्राप्त किया

करता है और लक्ष्मी से युक्त होकर दीप्तिमान होता है ॥६०॥ जो कन्या को अलंकृत करके तथा सु पूजित करके सदृश वर के लिये ब्राह्म विवाह की विधि से दान करता है वह कन्या के दान से बहुत-सा श्रेय प्राप्त करता है यथा साधुवाद भी प्राप्ति करता है और सत्पुरुषों के द्वारा उसकी कीर्ति कही जाती है ।।३२।। दश हजार अग्निष्टोमादि सत्रों का फल मनुष्य अपनी कन्या को भूषण तथा वस्त्रों से समलंकृत करके होम के मन्त्रों द्वारा सुसंस्कृत करके दान करता है वह देवों में पूजित होता हुआ स्वर्ग प्राप्त करता है ।।६३-.४।।

रोमदर्शनसंप्राप्ते सोमो भुङ्क्तऽथ कन्यकाम् ।
रजोदृष्ट्वा तु गन्धर्वः कुचौ दृष्ट्वा तू पावकः ॥.५
अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत् कन्या अत ऊर्द्धवं रजस्वला ॥६६
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठोभ्राता तथैवच ।
त्रयस्त्रे तस्माद्विवाहयेत् कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ।
विवाहोऽष्टमवर्षायाः कन्यास्तु प्रशस्यते ।।६८
तैलमास्तरणं प्राज्ञः पादाभ्यङ्गं ददाति यः ।
प्रहृष्टमानसो लोके सुखी चैव सदा भवेत ॥६९
अनड्वाहौ च यो दद्यात् कीलसीरेण संयुतौ ।
अलङ्कृत्य यथाशक्त्या धुर्व्वहौ शुभलक्षणौ ॥७०
सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वकामसमन्वितः ।
वर्षाणि वसति स्वर्गे रोमसंख्याप्रमाणतः ॥.१

रोमों का दर्शन होने पर कन्या का भोग सोम करता है । रजो दर्शन होने पर गन्धर्व भोगता है और कुचों का दर्शन होने पर अर्थात् कन्या के स्तनों का उभार हो जाने पर उसका भोग अग्नि देव करते हैं ॥६५॥ कन्या जब आठ वर्ष की होती है तब गौरी के समान होती है और नौ वर्ष की आयु में रोहिणी होती है तथा दश वर्ष की

आयु में वह कन्या नाम वाली होती है । इससे ऊपर की आयु में वह रजस्वला कही जाती है ।।६६।। माता–पिता और उसका बड़ा भाई ये तीनों कन्या को विवाह के पूर्व ही घर में रजस्वला देखते हैं तो नरकगामी होते हैं ।।६७।। अतएव कन्या जब तक ऋतुधर्म वाली न हो इसके पूर्व उसका विवाह कर देना चाहिए । कन्या का विवाह आठ वर्ष की आयु में ही प्रशस्त माना जाता है ।।६८।। जो मनुष्य तैल-आतरण वस्त्र तथा पादाभ्यङ्ग का दान करता है वह प्राज्ञ ससार में प्रसन्न चित्त होकर सुखी होता है ।।६९। कील सीर (हल) से युक्त जो दो बैलों का दान करता है जोकि यथाशक्ति अलंकृत किये हुए और धुरा का वहन करने वाले अर्थात् शक्तिशाली और शुभ लक्षणों वाले हों, वह मनुष्य भी संख्या प्रणाम वाले वर्षों तक समस्त पापों से शुद्ध होकर तथा सब मनोरथों को सफल बनाकर स्वर्ग में वास करता है ।।७०-७१।।

धेनुश्च योद्विजे दद्यादलङ्कृत्य पयस्विनीम् ।
कांस्यवस्त्रादिभिर्युक्तां स्वर्गलोके महीयते ।।७२
भूमिं शस्यवतीं श्रेष्ठां ब्राह्मणे वेदपारगे ।
गां दत्वार्द्ध प्रसूताञ्च स्वर्गलोके महीयते ।।७३
अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ।
लोकास्त्रयस्तेन भवन्तिदत्ता यः काचनंगांचमहीञ्चदद्यात् ।
यावन्ति शस्यमूल्यानि आरोप्याणि च सर्वशः ।
नरस्तावन्ति वर्षाणि स्वर्गलोके महीयते ।।७५
सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ।
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ।।७६
यो ददाति स्वर्णरोप्यैर्हेमश्रृङ्गीमरोगिणीम् ।
जवत्सां वाससा वीता सुशीलाङ्गां पयस्विनीम् ।।७७
तस्यां यावन्ति रोमाणि यवत्सायां दिवं गतः ।
तावद्वर्षसहस्राणि स नरो ब्रह्मणोऽन्तिके ।।७८

जो पुरुष दूध देने वाली काँसे के पात्र तथा वस्त्रादि से युक्त गाय को अलंकृत करके ब्राह्मण को दान करता है वह स्वर्ग लोक में जाकर पूजित होता है ।।७२।। वेद के पारगामी ब्राह्मण को फसल से भरी हुई श्रेष्ठ भूमि तथा अर्ध प्रसूता गौ दान करता है वह स्वर्ग में महत्व प्राप्त किया करता है ।।७३।। अग्नि, प्रथम सन्तान, सुवर्ण, भूमि अश्व और गाय का भी दान परम फल प्रद है किन्तु जिसने सुवर्ण-गौ, भूमि का दान कर दिया उसने तीनों लोकों का ही मानों दान किया है ।।७४।। भूमि में फसल के मूल जितने भी रोपित किये गये हैं उनकी संख्या के समान वर्षों तक भूमिदाता स्वर्ग लोक में पूजित रहता है। ।।७५।। अन्य समस्त दानों का फल एक ही जन्म तक मिलता है किन्तु सुवर्ण भूमि और गौरी के दान का फल सात जन्म पर्यन्त बराबर मिलता है ।।७६।। जो मनुष्य सोना और चाँदी से हेम शृङ्ग वाली स्वस्थ बछड़े वाली तथा वस्त्र से युक्त-सुशील स्वभाव वाली दुधारु गाय का दान करता है वह बछड़े के सहित गौ के जितने रोम होते हैं उतने वर्ष तक स्वर्ग में वास पाता है। वह गोदान का करने वाला उतने ही वर्ष पर्यन्त ब्रह्म की सन्निधि में रहता है ।।७७-७८।।

यो ददाति बलीवर्द्दमुक्तेन विधिना शुभम् ।
अभ्यङ्ग गोप्रदानेन फलाद्दशगुणं फलम् ।।७९
जलदस्तृप्तिमतुलां वितृष्य सर्ववस्तुषु ।
अन्नदः सुखमाप्नोति सुतृप्तः सर्व वस्तुषु ।।८०
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् ।
सर्वेषामेव जन्तूनां यतस्तज्जीवितं फलम् ।।८१
तस्मादन्नात् प्रजाः सर्व्वाः कल्पे कल्पेऽसृजत् प्रभुः ।
तस्मादन्नात् परं दानं न भूतो न भविष्यति ।।८२
अन्नदानात् परं दानं विद्यते न हि किञ्चन ।
अन्नाद्भूतानि जायन्ते जीवन्ति च संशयः ।।८३
मृत्तिकां गोशकृद्दर्भानुपवीतं यथोत्तरम् ।
दत्त्वा गुणाग्यविप्राय कुले महति जायते ।।८४

जो उक्त विधि से शुभ वलीवर्द का दान करता है वह गोदान के फल से दशगुना अधिक फल प्राप्त करता है ।।७९।। जल का दान करने वाला मनुष्य समस्त वस्तुओं में पूर्णतः तृप्त होकर अतुल तृप्ति की प्राप्ति करता है । जो अन्न का दान करता है वह भी सबसे पूर्ण तृप्त होकर अपार तृप्ति पाता है ।।८०।। समस्त दानों में प्राणों को कायम रखने वाले अन्न का दान सबसे बड़ा दान कहा गया है क्योंकि समस्त प्राणियों का जीवन उसी में रहता है ।।८१।। प्रभु ने जिस अन्न से कल्प-कल्प में सभी प्रजा की सृष्टि की है वह ऐसा होता है अतः उस अन्न से परम अन्न कोई भी बड़ा-से-बड़ा भी दान नहीं होता है न हुआ और न भविष्य में भी होगा ।।८२।। अन्न के दान से अधिक महत्व रखने वाला अन्य कुछ भी दान नहीं होता है । अन्न से प्राणियों की सृष्टि होती और अन्न से ही जीवधारी जीवित रहते हैं इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।८३।। मृत्तिका-गोवर-दर्भ (कुश)-उपवीत ये उत्तर-उत्तर किसी गुणी अग्रगण्य ब्राह्मण को दानकरने से महान कुल में जन्म धारण करता है ।।८४।।

मुखवासञ्च यो दद्याद्दन्तधावनमेव च ।
शुचिगन्धसमायुक्तो वाक्पटुः ग्र सदा भवेत् । ८५
पादशौचन्तु योदद्यात्तथा च गुदलिङ्गयोः ।
यः प्रयच्छति विप्राय शुद्धिबुद्धिः सदा भवेत् ।।८६
औषधं पथ्यमाहारं स्नेहाभ्यंग प्रतिश्रयम्
यः प्रयच्छति रोगिभ्यः सर्वव्याधि विवर्जितः ।।८७
गुडमिक्षुरसञ्चैव लवणं व्यञ्जनानि च ।
सुरभीणि च पानानि दत्वात्यन्तसुखीभवेत् ।।८८
दानैश्च विविधैः सम्यक् पुण्यमेतदुदाहृतम् ।
विद्यादानेन पुण्येन ब्रह्मलोके महीयते ।।८९
अन्योन्यान्नप्रदा विप्रा अन्योन्यप्रतिपूजकाः
अन्योन्यं प्रतिगृह्णन्ति तारयन्ति तरन्ति च ।।९०

दानान्येतानि देयानि ह्यन्यानि च विशेषतः ।
दीनान्धकृपणादिभ्यः श्रेयस्कामेन धीमता ।।९१

जो मुखवास तथा दन्त धावन देता है वह शुद्ध गन्ध से युक्त होकर बोलने चतुर सर्वदा होता है ।।८५।। जो पाद शौच तथा पायूपस्थ का शौच ब्राह्मण को देता है वह सर्वदा शुद्ध बुद्धि वाला होता है ।।८६।। जो औषध हितकर भोजन-तैल-अभ्यङ्ग और आश्रय रोगी लोगों को देता है वह समस्त व्याधियों से वर्जित रहता है ।।८७।। गुड़,ईख का रस, लवण, व्यञ्जन सुगन्धित पेय वस्तु आदि का दान करके मनुष्य जीवन में अत्यन्त ही सुख वाला होता है ।।८८।। अनेक प्रकार के दानों के पुण्य भली भाँति बतला दिये किन्तु विद्या के दान के पुण्य से मनुष्य ब्रह्म लोक में स्थान प्राप्त करता है ।।८९।। ब्राह्मण परस्पर में एक दूसरे को अन्न दान करने वाले तथा परस्पर में एक दूसरे के पूजित भी होते हैं। ये परस्पर में ही प्रतिग्रह लेते तथा देते हैं। ये स्वयं तरजाते हैं और दूसरों को भी तार देते हैं।९०। अपने कल्याण की कामना रखने वाले बुद्धिमान पुरुष को ये दान देने ही चाहिए तथा विशेष रूप से अन्य दान भी देवे किन्तु कंगाल, दीन और अन्धे आदि को अवश्य ही देना चाहिए ।।९१।।

ब्रह्मचारियतिभ्यश्च वपनं यस्तु कारयेत् ।
नखकर्मादिकञ्चैव चक्षुष्मान् जायते नरः ।।९२
देवागारे द्विजातीनां दीपं दद्याच्चतुष्पथे ।
मेधाविज्ञानसम्पन्नश्चक्षुष्मान् जायते नरः ।।९३
नित्ये नैमित्तिके काम्ये तिलान् दत्त्वा तु शक्तितः ।
प्रजावान् पशुमांश्चैव धनवान् जायते नरः ।।९४
यो ददात्यर्थितोविप्रे यत्तत् संप्रतिपादत ।
तृणकाष्ठादिकञ्चैव गोप्रदानसमं भवेत् ।।९५
कृत्वा गार्ह्याणि कर्माणि स्वभार्यापोषणे नरः ।
ऋतुकालाभिगामी स्यात् प्राप्नोति परमां गतिम् ।।९६

उषित्वैवं गृहे विप्रोद्वितीयाश्रमात् परम् ।
वलीपलितसंयुक्तस्तृतीयन्तु समाश्रयेत् ॥९७
गच्छेदेवं वनं प्राज्ञः स्वभार्य्यां सहचारिणीम् ।
गृहीत्वा चाग्निहोत्रञ्च होमं तत्र न होपयेत् ॥९८

ब्रह्मचारी और संन्यासीका वपन तथा नखकर्मादिक जो करता है वह मनुष्य नेत्रों वाला होता है ॥९२॥ द्विजातियों के देवागार में और चतुष्पथ (चौराहे) में जो दीप दान करता है वह पुरुष मेधा–विज्ञान से सम्पन्न होकर चक्षुष्मान् उत्पन्न होता है ॥९३॥ नित्य और नैमित्तिक कार्यों में जा शक्ति से तिलों का दान करता है वह मनुष्य सन्तति वाला, पशुओं वाला और धनी होता है ॥९४॥ जो याचना करने वाले विप्र को जो भी वह चाहता है वह सब तृण काष्ठादिक का दान करना है वह सब गौ दान के तुल्य ही होता है ॥९५॥ जा मनुष्य अपनी भार्या के भरण-पोषण में समस्त गृह सम्बन्धी कृत्य पूर्ण करता है और ऋतु काल में ही गमन किया करता है वह परम गति को प्राप्त होता है ॥९६॥ इस प्रकार ब्राह्मण गृह में दूसरे गार्हस्थ्य आश्रम में रहकर जब बली और पलित (श्वेत केशों का होना) से युक्त हो जावे तो तीसरे वानप्रस्थ आश्रम का आश्रय लेवे ॥९७॥ इस तरह बुद्धिमान गृहस्थ को अपनी भार्या को साथ लेकर वन में चले जाना चाहिए और वहाँ भी होम तथा अग्नि होत्र का त्याग न करे ॥९८॥

कुर्य्याच्चैव पुरोडाशं वन्यैर्मेध्यैर्यथाविधि ।
भिक्षाञ्च भिक्षवे दद्याच्छाकमूलफलानि च ॥९९
कुर्य्यादध्ययनं नित्यमग्निहोत्र परायणः ।
इष्टिं पार्व्वायणीयाञ्च प्रकुर्य्यात् प्रतिपर्वसु ॥१००
उषित्वैवं वने सम्यग्विधिज्ञः सर्ववस्तुषु ।
चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्धुतहोमोजितेन्द्रियः ॥१०१
अग्निमात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितोभवेत् ।
वेदाभ्यासरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः ॥१०२

अष्टौ भिक्षाः समादाय स मुनिः सप्त पञ्च वा।
अद्भिः प्रक्षाल्य तत्सर्वं भुञ्जीत च समाहितः ।।१०३
अरण्ये निर्ज्जने विप्रः पुनरासीत भुक्तवान् ।
एकाकी चिन्तयेन्नित्यं मनोवाक्कायसंयतः ।।१०४
मृत्युञ्च नाभिनन्देत जीवितं वा कथञ्चन ।
कालमेव प्रतीक्षेत यावद्वायुः समाप्यते ।। १०५

वन में वन के ही पवित्र पदार्थों का पुरोडास बनाकर यथाविधि होमादि करे। भिक्षु यदि कोई आवे तो उस को भिक्षा भी शाक-मूल और फलों की देनी चाहिए ।।९९।। अग्नि होत्रादि कर्म में तत्पर रहता हुआ अध्यय करे तथा प्रत्येक पर्व में पर्वणीय इष्टि भी करता रहे ।१००। इस तरह सम्यक् रीति से विधि-विधान का ज्ञाता पुरुष वन में निवास करके हवन करे तथा जितेन्द्रिय रहे और फिर चौथे संन्यास आश्रम को ग्रहण करे ।।१०१।। अपनी आत्मा में अग्नि की स्थापना करके ब्राह्मण को प्रव्रजित (संन्यस्त) हो जाना चाहिए और नित्य प्रति वेद के तथा आत्म विद्या के अभ्यास में परायणता रखनी चाहिए ।।१०२।। आठ स्थानों से भिक्षा लाकर उस मुनि को पाँच या सात बार जल से उस सब को धोकर समाहित रहते हुए भोजन करना चाहिए ।।१०३।। फिर विप्र को निर्जन वन में जाकर रहना चाहिए। नित्य ही अकेला ही मन-वाणी और शरीर से पूर्ण संयत रहते हुए चिन्तन करना चाहिए ।।१०४।। ब्राह्मण को न तो मृत्यु का ही अभिनन्दन करना चाहिए और न जीवन का ही अभिनन्दन करे। काल की प्रतिक्षा करे जब तक श्वास की वायु समाप्त हो ।।१०५।।

शंसेद्य चाश्रमान् विप्रा जितक्रोधाजितेन्द्रियः ।
ब्रह्मलोकेमवाप्नोति वेदशास्त्रार्थ विद्द्विजः ।।१०६
आश्रमेषु च सर्वेषु ह्युक्तः प्रासङ्गिकोविधिः ।
अथाभिवक्ष्ये पापानां प्रायश्चित्तं यथाविधि ।।१०७
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पञ्चमः ।।१०८

ब्राह्मघ्नस्तु वनं गच्छेत् कल्कवासाजटी ध्वजी ।
वन्यान्येव फलान्यश्नन् सर्व्वं कामविवर्जितः ॥१०९
भिक्षार्थी च चरेद्ग्रामं वन्यैर्यदि न जीवति ।
चातुर्वर्ण्यं चरेद्भैक्षं खट्वांगी संयतः पुमान् ॥११०
भैक्षं चैव समादाय वनं गच्छेत्ततः पुनः ।
वनवासी सपापश्च सदाकालमतन्द्रितः ॥१११
ख्यापयन्नेव तत्पापं ब्रह्मघ्नः पापकृन्नरः ।
अनेन तु विधानेन द्वादशाब्दव्रतञ्चरेत् ॥११२

वेद और शास्त्र के अर्थं को जानने वाला ब्राह्मण समस्त आश्रमों का क्रम से पूर्ण पालन करे और इन्द्रिय यथा क्रोध को जीत कर रक्खे। ऐसा ब्राह्मण ब्रह्म लोक को प्राप्त करता है ॥१०६॥ समस्त आश्रमों में प्रसङ्ग प्राप्त कुछ विधि बतलाई गई है। अब पापों के यथाविधि प्रायश्चित्त कहे जाते हैं ॥१०७॥ ब्राह्मण का हन्ता-सुरा पान करने वाला-चोरी करने वाला और गुरु के तल्प का गमन करने वाला-ये चार महापातकी होते हैं और इनका सम्पर्क या संयोग रखता है वह भी पाँचवाँ महापातकी होता है ॥१०८॥ ब्राह्मण का हनन करने वाले को वन में, कल्क के वसन धारण कर तथा जटा रखकर, ध्वजा हाथ में लेकर चले जाना चाहिए। वन के ही फलों को खावे और समस्त कार्यों से रहित रहे ॥१०९॥ यदि वन के फलों से जीवन निर्वाह न हो तो भिक्षा के लिये ग्राम चला जावे। चारो वर्णों के यहाँ भिक्षा करे। खट्वा का अङ्ग वाला, संयमशील पुरुष भिक्षा लाकर फिर वन में चला जावे। पाप से युक्त वन में वास करने वाला सदा निरालस्य रहे ॥११०॥ ब्रह्म हन्ता पापकर्त्ता पुरुष अपने किये हुए पाप को स्पष्ट प्रकट करते रहे। इस विधि से बारह वर्ष तक इस व्रत का पालन करना चाहिए ॥११२॥

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वभूतहिते रतः ।
ब्रह्महत्यापनोदाय ततोमुच्येत किल्विषात् ॥११३

अतः परं सुरापस्य प्रवक्ष्यामि विनिष्कृतिम् ।
श्रोतुमिच्छथ भो विप्रा ! वेदशास्त्रानुरूपिकाम् ॥११४
गौड़ी पैष्टी तथा साध्वी विज्ञेया त्रिविधासुरा ।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजैः सदा ॥११५
सुरापस्तुसुरां तप्तां पिबेत्तत्पापमोक्षकः ।
गोमूत्रमग्निवर्णञ्च गोमयं वा तथा विधम् ॥११६
घृतञ्चैव सुतप्तं च क्षीरं वापि तथाविधम् ।
वत्सरं वा कणानश्नन् सर्वकामविवर्जितः ॥११७
चान्द्रायणानि वा त्रीणि सुरापी व्रतमाचरेत् ।
मुच्यते तेन पापेन प्रायश्चित्ते कृते सति ॥११८
एवं शुद्धिः सुरापस्य भवेदिति न संशयः ।
मद्यभाण्डोदकं पीत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥११९

समस्त इन्द्रियों संयम करके तथा समस्त प्राणियों के हित से अनुरक्त रहता हुआ ब्रह्म हत्या के पाप से मुक्ति पाता है। यही विधान ब्रह्म हत्या के पाप को दूर करने का है ॥११३॥ इसके पश्चात् मदिरा पीने के पाप से छुटकारा पाने के विषय में बतलाते हैं। हे विप्रो ! वेद और शास्त्र के अनुकूल इस विधि को तुम सुनने की इच्छा कर रहे हो ॥११४। सुरा भी गौड़ी-पैष्टी और साध्वी तीन प्रकार की होती है। जिस प्रकार की एक होती है वैसी ही सब होती हैं अतः ब्राह्मणों को कोई कभी भी नहीं पीनी चाहिए ॥११५॥ सुरा पीने वाले को यदि सुरापान के पाप से छुटकारा चाहता हो तो गर्म सुरा पीनी चाहिए। अथवा अग्नि के समान वर्ण वाला गोमूत्र और गोमय (गोबर) उसी प्रकार से पीवे ॥११६॥ अथवा खूब गर्म घृत तथा अत्युष्ण दूध पीवे। अथवा एक वर्ष पर्यन्त कणों को खाता हुआ समस्त कामनाओं से वर्जित होकर रहे ॥११७॥ अथवा सुरापी को तीन चान्द्रायण व्रत करने चाहिए। प्रायश्चित्त के करने पर ही उस पाप से मुक्ति होती है ॥११८॥ सुरापान करने वाले पुरुष की इस प्रकार से ही शुद्धि होती

है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। मद्य के पात्र में जल पीकर भी पुनः संस्कार करने के योग्य हो जाता है ॥११६॥

स्तेयं कृत्वा सुवर्णस्य राज्ञे शंसेत मानवः।
ततोमुषलमादाय स्तेनं हन्यात्ततोनृपः ।१२०
यदि जीवति स स्तेनस्ततस्तेयात् प्रमुच्यते।
अरण्ये चीरवासा वा चरेद्ब्रह्महणोव्रतम् ॥१२१
समालिंगेत् स्त्रियं वापि दीप्तां कृत्वायसा कृताम्।
एवं शुद्धिः कृता स्तेये साम्वर्त वचनं यथा ॥१२१
गुरुतल्पे शयानस्तु तल्पे स्वप्यादयोपये।
चान्द्रायणानि वा कुर्य्याच्चत्वारि त्रीणि वा द्विजः।
ततोविमुच्यते पापात् प्रायश्चित्ते कृते सति ॥१२३
एभिः सम्पर्कमायाति यः कश्चित् पापमोहितः।
षण्मासादधिकं वापि पूर्वोक्तव्रतमाचरेत्। १२४
महापातकिसंयोगे ब्रह्महत्यादिभिर्नरः।
तत्पापस्य विशुद्ध्यर्थं तस्य व्रतञ्चरेत् ।१२५
क्षत्रियस्य बधं कृत्वा त्रिभिः कृच्छ्रै विशुध्यति।
कुर्य्याच्चैवानुरूपेण त्रीणिकृच्छ्राणि संयतः ।१२६
वैश्यहत्यान्तु संप्राप्तः कथञ्चित् काममोहितः।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्व्वीत स नरो वैश्यघातकः। १२७

सुवर्ण की चोरी करके मनुष्य को राजा से स्पष्ट कह देना चाहिए। इसके पश्चात् राजा हाथ में मूषल लेकर चोर को मारे।१२०। यदि मूषल की चोट खाकर भी चोर जीवित रहे तो फिर वह सुवर्ण चोरी के अपराध से मुक्त हो जावे और चीरो कतारों के वस्त्र धारण कर वन में चला जावे तथा ब्रह्म हत्यारे का व्रत करे।१२१।। अथवा लोहे की बनाई हुई स्त्री को एक दम गर्म कराके सुवर्ण के चोर को उसका आलिङ्गन करावे। इस प्रकार चोरी के दोष से मुक्ति हो जाती है-ऐसा सम्वर्त मुनि का वचन है ।।१२२।। जो गुरु स्त्री का गमन करता

है उसको लोहे की पूर्णतः तप्त शय्या में शयन करावे। अथवा ब्राह्मण को तीन या चार चान्द्रायण व्रत करने चाहिए। इस प्रकार प्रायश्चित्त करने पर ही पाप से छुटकारा पाया जाता है ॥१२३॥ ऐसे पापियों के सम्पर्क में जो कोई पाप से मोहित हो कर आ जाता है और छः मास से भी अधिक रहता है तो उसे भी पूर्व में कहा हुआ व्रत करना चाहिए ॥१२४॥ उक्त चार प्रकार के महापातकियों के तथा ब्रह्म इत्यादि के संयोग में जो भी कोई मनुष्य रहे उसे उस पाप की शुद्धि के लिये वही व्रत करना चाहिए ॥१२५॥ क्षत्रिय का वध करके तीन कृच्छ्र व्रत करने पर शुद्धि होती है। जो कोई किसी प्रकार काम से मोहित होता हुआ वैश्य की हत्या करे तो उस वैश्य के घातक को कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत शुद्धि के लिये करना चाहिये ॥१२७।

कुर्य्याच्छूद्रवधं प्राप्तस्तप्तकृच्छ्रं यथाविधि ॥१२८
गोघ्नस्यान प्रवक्ष्यामि निष्कृतिं तत्त्वतः पुमान् ।
गोघ्नः कुर्व्वीत संस्थानं गोष्ठे गोरूपसंस्थिते ॥१२९
तत्रैव क्षितिशायी स्यान्मासार्द्धं संयतेन्द्रियः ।
शक्तुयावकपिण्याकपयोदधि सकृन्नरः ॥१३०
एतानि क्रमतोऽश्नीयाद्द्विजस्तु पापमोक्षकः ।
शुद्ध्यते सार्द्धमासेन नखलोमविवर्ज्जितः ॥१३।
स्नानं त्रिषवणं चास्य गवामनुगमस्तथा ।
एतत् समाहितः कुर्य्यान्नरोविगतमत्सरः ॥१३२
सावित्रीञ्च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ।
ततश्चीर्णव्रतः कुर्य्याद्विप्राणां भोजनं परम् ॥१३३

यदि कोई शूद्र का वध करे तो उसे विधि पूर्वक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। ॥१२८॥ जो गाय का वध करे उस पुरुष का पाप से छुटकारा पाने के विषय में बताया जाता है। गोहत्यारे को गौ रूप में संस्थित में अपना संस्थान बना लेना चाहिए ॥ १२९॥ वहां पर ही आधे मास तक भूमि में संयत इन्द्रिय वाला होते हुए शयन करना चाहिए। उस

पुरुष को दिन रात में एकबार सत्तू–यावक–पिण्याक–दुग्ध और दधि खाना चाहिए ।।१३०।। पापों का मोक्ष चाहने वाले ब्राह्मण को उक्त वस्तुओं को क्रम से खाना चाहिए । इस तरह नाखून और लोमों से वर्जित रहकर डेढ़ मास में शुद्धि प्राप्त करता है ।।१३१।। तीन बार स्नान तथा त्रिषवण करे और सर्वदा गायों के पीछे गमन करे । मत्सरता त्याग कर मनुष्य को इस तरह समाहित रहते हुए नियम का पालन करना चाहिए ।।१३२।। नित्य सावित्री का जप तथा शक्ति पूर्वक अन्य पवित्र मन्त्रों का जप करे । इसके अनन्तर चीर्ण व्रत होकर अन्त में ब्राह्मणों को भोजन करावे ।।१३३।।

भुक्तवत्सु च विप्रेषु गाञ्च दद्यात् सदक्षिणाम् ।।१३४
व्यापादितेषु बहुषु बन्धने रोधनेऽपिवा ।
द्विगुणं गोव्रतं तस्य प्रायश्चित्तं विशुद्धये । १३५
एका चेद् बहुभिः कैश्चिद्दैवाद्व्यापादिता क्वचित् ।
पादं पादन्तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् ।।१३६
यन्त्रेण गोचिकित्सार्थे मूढगर्भविमोचने ।
यदि तत्र विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते ।।१३७
निशाबन्धनिरूप्येषु सर्पव्याघ्रहतेषु च ।
अग्नि वध्ननिपातेन प्रायश्चित्त न विद्यते ।।१३८
प्रायश्चित्तस्य पादन्तु रोधेषु व्रतमाचरेत् ।
द्वौपादौ बन्ध चैव पादोनं कुट्टने तथा ।।१३९
पाषाणैर्लगुडैस्तथा शस्त्रादिभिर्नरः ।
निपातने चरेत् सर्वं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।।१४०

जब ब्राह्मण भोजन कर लेवें तो पीछे उन्हें दक्षिणा के सहित गाय का दान करे ।।१३४।। गायों के बन्धन तथा रोधन में बहुत-सी गायों के मारे जाने पर विशुद्धि के लिये प्रायश्चित के रूप में दुगुना गो-व्रत करना चाहिए ।।१३५।। यदि बहुतों के द्वारा कभी एक गौ का वध हो जावे तो उस हत्या के अपराध से विशुद्धि के लिये प्रत्येक को पृथक्-

पृथक प्रायश्चित का चौथा-चौथा भाग करना चाहिए ॥१३६॥ गाय के यन्त्रण में, उसकी चिकित्सा में और मूढ गर्भ के विमोचन में यदि कोई विपत्ति आ जावे तो वह पाप से कभी लिप्त नहीं होता है। ॥१३७॥ रात्रि में बन्धन के लिये निरूध्य करने पर, सर्प तथा व्याघ्र के द्वारा मारे जाने पर और अग्नि के विघ्न से निपातन हो जाने पर मनुष्य को कोई प्रायश्चित नहीं होता है ॥१३८॥ गायों के रोधन करने पर प्रायश्चित्त का चौथा भाग वाला व्रत करना चाहिए। दो पाद बन्धन में तथा कुट्टन में एक पाद कम प्रायश्चित करना चाहिए ॥१३९॥ पाषाणों से, लाठिया से, तथा दण्डों से और शास्त्रादि के द्वारा गाय का निपातन हो जावे तो मनुष्य को शुद्धि के लिये पूरा प्रायश्चित करना चाहिए ॥१४०॥

गजञ्ज तुरगं हत्वा महिषोष्ट्रकपिन्तथा।
एषु कुर्व्वीत सर्वेषु सप्तरात्रमभोजनम् ॥१४१
व्याघ्रं श्वानं तथा सिंहमृक्षं शूकरमेव च।
एतान् हत्वा द्विजः कृच्छ्रं ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ॥१४२
सर्व्वासामेव जातीनां मृगाणां वनचारिणाम्।
त्रिरात्रोपोषितस्तिष्ठेज्जपन् वै जातवेदसम् ॥१४३
हंसं काकं बलाकञ्च पारावतमथापिवा।
सारसञ्चासभासञ्च हत्वा त्रिदिवसं क्षिपेत् ।१४४
चक्रवाकं तथा क्रौञ्चं सारिकाशुकतित्तिरिम्।
श्येनगृध्राबुलूकञ्च कपोतकमथपिवा ॥१४५
टिट्टिभं जालपादञ्च कोकिलं कुक्कुटं तथा।
एवं पक्षिषु सर्वेषु दिनमेकमभोजनम् ॥१४६
मण्डूकञ्चैव हत्वा च सर्पमार्ज्जारमूषिकम्।
त्रिरात्रोपोषितस्तिष्ठेत कुर्य्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥१४७

हाथी-घोडा-भैंसा-ऊँट और बन्दर को मार कर इन सबके मृत हो जाने पर सात दिन तक भोजन नहीं करना चाहिए ॥ १४१ ॥

व्याघ्र-श्वान-सिंह-रीछ और शूकर को मारकर ब्राह्मण को कृच्छ्र व्रत तथा ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।।१४२।। वन में विचरण करने वाले समस्त मृग (पशु) जातियों के वध से होने वाले पाप की निष्कृति के लिये यही प्रायश्चित है कि तीन दिन उपवास करे और जातवेदा के मन्त्र का समाहित हो जप करे ।।१४३।। हंस-कौआ-वला कबूतर-सारस और असभाम को मार कर तीन दिन उपवास करना चाहिए ।।१४४।। चकवा-कौञ्च-मैना-तोता-तीतर-बाज-गृध्र-उल्लू कबूतर-टिटहरी-जलपाद-कोयल-मुर्गा-इन समस्त पक्षियों को मारने पर एक दिन भोजन नहीं करना चाहिए ।।१४५-१४६।। मेंढक-सर्प-बिल्ली-चूहा के मारने पर तीन दिन का उपवास करे और ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ।।१४७।।

अनस्थीन् ब्राह्मणो हत्वा प्राणायामेन शुध्यति ।
अस्थिमतो बधे विप्रः किञ्चिद्दद्याद्विचक्षणः ।।१४८
चाण्डालीं यो द्विजो गच्छेत् कथञ्चित् काममोहितः ।
त्रिभिः कृच्छ्रे बिशुद्धचेत प्राजापत्यानुपूर्वकैः ।।१४९
पुक्कसीगमनं कृत्वा कामतोऽकामतोऽपिवा ।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं तस्य पावनं परमं स्मृतम् ।।१५०
नटीं शैलूषिकीञ्चैव रजकीं वेणुजीविनीम् ।
गत्वा चान्द्रायणं कुर्य्यात्तथा चर्मोपजीविनीम् ।।१५१
क्षत्रियामथ वैश्यां वा गच्छेद्यः काममोहितः ।
तस्य सान्तपनं कृच्छ्रं भवेत् पापापनोदकम् ।।१५२
शूद्रीं तु ब्राह्मणोगत्वा मासं मासार्द्धमेव वा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति ।।१५३
विप्रस्तु ब्राह्मणीं गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत ।
क्षत्रियां क्षत्रियोगत्वा तदेव व्रतमाचरेत् ।।१ ४

अस्थि रहित जीवों की हत्या हो जाने पर ब्राह्मण केवल प्राणायाम करने से ही शुद्ध हो जाता है। और जो हड्डियों वाले

प्राणी हैं उनके वध करने पर ब्राह्मण को, जो कि विद्वान है, कुछ दान भी करना चाहिए ।।१४८।। यदि कोई ब्राह्मण काम वासना से मोहित होकर किसी भी चाण्डाल जाति की स्त्री से गमन करे तो तीन कृच्छ्र व्रत करने तथा इसके साथ प्राजापत्य व्रत करने से शुद्धि होती है ।।१४९।। काम से या अकाम से किसी भी प्रकार यदि किसी पुक्कसी स्त्री का गमन करे तो कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत ही उसको पवित्र करने वाला वताया गया है ।।१५०।। नट की स्त्री शैलूषी (नटनी) धोबिन-बाँस से रोजी कमाने वाली स्त्री का गमन करके या चमड़े से जीविका वाली का गमन करके चान्द्रायण व्रत करके प्रायश्चित करें ।।१५१।। काम से मोहित होकर ठकुरानी या वैश्य-स्त्री का गमन करे तो उसके पाप को छुड़ाने वाला प्रायश्चित कृच्छ्र सान्तपन व्रत है ।।१५२।। शूद्रवर्ण की स्त्री का गमन ब्राह्मण करके एक मास और पन्द्रह दिन तक गोमूत्र-यावक का आहार करे तो आधेमास में शुद्ध होता है । ।।१५३।। विप्र किसी ब्राह्मणी का गमन करे तो उसे शुद्धि के लिये प्राजापत्य व्रत करना चाहिए । क्षत्रिय क्षत्रिय वर्ण की किसी भी स्त्री का गमन करके इसी प्रकार प्रायश्चित्त करे ।१५४।

नरोगोगमनं कृत्वा कुर्य्याच्चान्द्रायणं व्रतम् ।।१५५
गुरोर्दुहितरं गत्वा स्वसारं पितुरेव च ।
तस्या दुहितरञ्चैव चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ।।१५६
मातुलानीं सनाभिञ्च मातुलस्यात्मजां स्नुषाम् ।
एता गत्वा स्त्रियो मोहात् पराकेणविशुध्यति ।।१५७
पितृव्यदारगमने भ्रातृभार्य्यागमे तथा ।
गुरुतल्पव्रतं कुर्य्यात्तस्यान्या निष्कृतिर्न च ।।१५८
पितृदारान् समारुह्य मातुवर्जं नराधमः ।
भगिनीं मातुलसुतां स्वसारं चान्यमातृजाम् ।
एतास्तिस्रः स्त्रियो गत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ।।१५९

मातरं योऽधिगच्छेच्च सुतां वा पुरुषाधमः ।
भगिनीञ्च निजां गत्वा निष्कृतिर्नो विधीयते ॥१६०
कुमारीगमने चैव व्रतमेतत् समादिशेत् ।
पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ॥१६१

मनुष्य यदि गाय के साथ गमन करे तो उसे भी चान्द्रायण-व्रत-शुद्ध होने के लिये करना चाहिए ॥१५५॥ गुरु की पुत्री तथा पिता की बहिन और उसकी पुत्री के साथ गमन करने पर भी चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥१५६॥ मामी-सनाभि--मामा की पुत्री तथा उसकी पुत्री वधू इनके साथ गमन मोहवश करे तो पराक से शुद्धि होती है ॥१५७॥ चाचा की स्त्री, भाई की भार्या के साथ गमन करने पर गुरु तल्प गमन का ही व्रत करना चाहिए । इसके अलावा अन्य कोई भी छुटकारा पाने का प्रायश्चित नहीं है ॥१५८॥ जो नीच मनुष्य पिता की अन्य स्त्री का केवल अपनी माता को छोड़कर गमन करे, बहिन, मामा की पुत्री तथा बहिन जो दूसरी माता से समुत्पन्न हुई हो, इन तीनों स्त्रियों का गमन करके तप्त कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ॥१५९॥ जो नर पशु माता तथा पुत्री का गमन करता है और अपनी हो बहिन का गमन करता है प्राण दे देने पर भी उस पाप का कोई भी प्रायश्चित नहीं है ॥१६०॥ कुमारी के गमन में, पशु तथा वैश्या के गमन में प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ॥१६१॥

सखिभार्यां कुमारीञ्च श्वश्रूं वा श्यालिकां तथा ।
नियमस्थां वृतस्थाञ्च योऽभिगच्छेत् स्त्रियं द्विजः ।
स कुर्य्यात् प्राकृतं कृच्छ्रं धेनुं दद्यात् पयस्विनीम् । १६२
रजस्वलाञ्च योगच्छेद्गर्भिणी पतितां तथा ।
तस्य पापविशुद्ध्यर्थमतिकृच्छ्रं विधीयते ॥१६३
वेश्याञ्च ब्राह्मणोगत्वा कृच्छ्रमेकं समाचरेत् ।
एवं शुद्धिः समाख्याता सम्वर्त्तस्य वचोयथा ॥१६४

ब्राह्मणोब्राह्मणीं गत्वा कृच्छ्रे णैकेण शुध्यति ।।१६५
कथञ्चिद्ब्राह्मणीं गत्वा क्षत्रियोवैश्य एव च ।
गोमूत्रयावकाहारी मासेनैकेन शुध्यति ।।१६६
ब्राह्मणी शूद्रसम्पर्के कथंचित् समुपागते ।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं कुर्य्यात् पावनं परम स्मृतम् ।।१६७
चाण्डालं पुक्कशं चैव श्वपाकं पतित तथा ।
एतान् श्रेष्ठस्त्रियो गत्वा कुर्युश्चान्द्रायणत्रयम् ।।१६८

मित्र की भार्या, कुमारी, सास और साली और नियम में स्थित तथा व्रत में रहने वाली स्त्री का जो विप्र गमन करे उसे शुद्धि के लिए प्राकृत कृच्छ्र व्रत करना चाहिए और दुधारु गाय का दान करना चाहिए ।।१६२।। जो कोई रजस्वला या गर्भिणी स्त्री का गमन करता है तथा किसी पतित स्त्री का सङ्गम करे तो उसके होने वाले पाप की शुद्धि के लिये अतिकृच्छ्र व्रत करे ।।१६३।। ब्राह्मण वैश्या का गमन करके एक कृच्छ्र करे। सम्वर्त मुनि के वचन से उसकी यही शुद्धि बताई गई है। ।।१६४।। ब्राह्मण ब्राह्मणी का गमन कर एक ही कृच्छ्र से शुद्ध होता है ।।१६५।। किसी भी प्रकार से क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्राह्मणी का गमन करे तो गोमूत्र और यावक का एक मास तक आहार करके शुद्ध होता है ।।१६६।। यदि कोई ब्राह्मणी किसी भी तरह शूद्र के सम्पर्क में आ जावे तो उसे कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत ही परम पावन करता है ।।१६७।। चाण्डाल–पुक्कश–श्वपाक और पतित से यदि कोई श्रेष्ठ स्त्री गमन करे तो शुद्धि के लिये तीन चान्द्रायण करे ।।१६८।।

अतः परंचदुष्टानां निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ।
सन्नयस्य दुर्म्मतिः कश्चिदपत्यार्थं स्त्रियं व्रजेत् ।
स कुर्य्यात कृच्छ्रमश्रान्तः षण्मासंतदनन्तरम् ।।१६९
अतःपरंच दुष्टानां निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ।
सन्नयस्य दुर्म्मतिः कश्चिदपत्यार्थं स्त्रियं व्रजेत् ।
स कुर्य्यात् कृच्छ्रमश्रान्तः षण्मासन्तदनन्तर ।।१६९

विषाग्निश्यामशवलास्तेषामेवं विनिर्दिदशेत् ।
स्त्रीणांच तथाचरणे गर्ह्यभिगमनेषु च ।
पतनेषु तथैतेषु प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः ।।१७०
नृणां विप्रतिपत्तौ च पावनः प्रेतराडिह ।।१७१
गोभिर्विप्रहते चैव तथाचैवात्मघातिनि ।
नाश्रुप्रपातनं कार्य्यं सद्भिः श्रेयोनुकांक्षिभि ।।१७२
एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत्तदहेतवे ।
तथोदकक्रियां कृत्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ।।१७३
तच्छवं केवलं स्पृष्ट्वा वस्त्रं वा केवलं यदि ।
पूर्वः कृच्छापहारी स्यादेकाहक्षपूणं तथा ।।१७४
महापातकिनांचैव तथा चैवात्मघातिनाम् ।
उदकं पिण्डदानंच श्राद्धं चव तु यत्कृतम् ।
नोपतिष्ठति तत्सर्वं राक्षसैर्विप्रलुप्यते ।।१७५

इसके आगे दुष्टों की निष्कृति सुनने के योग्य होते हो । कोई दुष्ट बुद्धि वाला पुरुष सन्यास धारण करके सन्तान की इच्छा से ही स्त्री का गमन करता है तो उसे आश्वान्त होकर छः मास के बाद कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ।।१६९।। जो विष अग्नि श्याम शवल हों उनके लिये इस प्रकार निर्देश करना चाहिए । स्त्रियों को ऐसा आचरण करने पर और गर्हित का अभिगमन करने पर तथा इनके पतन हो जाने पर यह विधि बताई गई है ।।१७०।। मनुष्यों की विप्रपत्ति होने पर यहाँ प्रेतराज ही पावन है ।।१७:।। गायों के द्वारा ब्राह्मण के क्षत हो जाने पर तथा आत्मघात करने पर अश्रुपात नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे श्रेय का ह्रास होता है अतः श्रेय के इच्छुक सत्पुरुष ऐसा नहीं करें ।।१७२।। इनमें से अन्य प्रेत को जो ले जावे उस अहेतु के लिये उदक क्रिया करके चान्द्रायण व्रत करे ।।,७३।। उस शव को ही केवल स्पर्श करके या केवल वस्त्र का स्पर्श करके पहिले तो कृच्छ्रापहारी होवे और फिर एक दिन का क्षपण करे ।।१७४।। महापातक करने वाले तथा आत्मा

का ही घात करने वाले पुरुषों के लिये जल दान और पिण्डदान, श्राद्ध आदि कुछ भी जो किया गया है वह सब उनको नहीं मिलता है और राक्षसों के द्वारा सभी विलुप्त हो जाता है। ॥१७५॥

चाण्डालैस्तु हता ये च जलदंष्ट्रिसरीसृपैः।
श्राद्धमेषां न कर्तव्यं ब्रह्मदण्डहताश्च ये ॥१७६
कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा भुक्तोच्छिष्टस्तथा द्विजः।
श्वादि स्पृष्टो जपेद्देव्याः सहस्रं स्नानपूर्वकम् ॥१७७
चाण्डालं पतितं स्पृष्ट्वा शवमन्त्यजमेव च।
उदक्यां सूतिकां नारीं सवासाः स्नानमाचरेत् ॥१७८
अस्पृश्यं संस्पृशेद्यस्तु स्नानं तेन विधीयते।
ऊर्ध्वमाचमनं प्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणं तथा ॥१७९
चाण्डालाद्यैस्तु संस्पृष्ट उच्छिष्टश्च द्विजोत्तमः।
गोमूत्रयावकाहारः षड्रात्रेण विशुध्यति ॥१८०
शुना पुष्पवती स्पृष्टा पुष्पवत्यान्यया तथा।
शेषान्यहन्युपवसेत् स्नाता शुध्येद्धृताशनात् ॥१८१
चाण्डालभाण्डसंस्पृष्टं पीत्वा कूपगतं जलम्।
गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥१८२

जो चाण्डालों के द्वारा मारे जाते हैं या जल, दाढ़ वाले जीव और सरीसृपों के द्वारा मारे गये, उनका श्राद्ध नहीं करना चाहिए। जो ब्रह्म दण्ड से हत हों उनका श्राद्ध भी न करे ॥१७६॥ पेशाब-मल का त्याग करके जो विप्र भुक्तोच्छिष्ट तथा कुत्ते आदि के द्वारा स्पर्श किया हुआ खावे उसे स्नान करके गायत्री का एक सहस्र जप करना चाहिए ॥१७७॥ चाण्डाल-पतित-शव-अन्त्यज-उदक्या-सूतिका स्त्री का स्पर्श करके वस्त्र सहित स्नान करना चाहिए ॥१७८॥ जो भी स्पर्श न करने योग्य का स्पर्श करे तो उसे स्नान अवश्य ही करना चाहिए। ऊर्ध्व आचमन का भी विधान है। अन्य द्रव्यों का प्रोक्षण करे ॥ १७९ ॥

चाण्डालादि के द्वारा छूआ और उच्छिष्ट द्विजोत्तम छः दिन पर्यन्त गोमूत्र और यावक का आहार करके शुद्ध होता है ।। १८० ।। ऋतुमती कुत्ते के द्वारा छुई हुई तथा अन्य पुष्पवती के द्वारा स्पर्श की हुई शेष दिन तक उपवास करे और स्नान करके घृत पीने से शुद्ध होती है ।।१८१।। चाण्डाल के पात्र से छूआ हुआ कुए में रहने वाला जल पीकर गोमूत्र और यावक के आहार करने से तीन दिन में शुद्धि हो जाती है ।।१८२।।

अन्त्यजैः स्वीकृते तीर्थे तडागेषु नदीषु च ।
शुध्यते पंचगव्येन पीत्वा तोयमकामतः ।।१८३

सुराघटप्रपातोयं पीत्वाकाशजलं तथा ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्यं पिवेद्द्विजः ।।१८४

कूपे विण्मूत्रसंस्पृष्टे प्राश्य चापो द्विजातयः ।
त्रिरात्रेणैव शुध्यन्ति कुम्भे शान्तपनं स्मृतम् ।।१८५

वापकूपतडागानां दूषितानां विशोधनम् ।
अपां घटशतोद्धारः पंचगव्यं च निक्षिपेत् ।।१८६
आविकैकशफोष्ट्रीणां क्षीरं प्राश्य द्विजोत्तमः ।
तस्य शुद्धिविधानाय त्रिरात्रं यावकं पिवेत् ।।१८७

स्त्रीक्षीरमाजिकं पीत्वा सन्धिन्याश्चैव गोः पयः ।
तस्य शुद्धिस्त्रिरात्रेण विड्भक्ष्याणांच भक्षणे ।।१८८

विण्मूत्रभक्षणे चैव प्राजापत्यं समाचरेत् ।
श्वकाकोच्छिष्टगोच्छिष्टभक्षणे तु त्र्यहं द्विजः ।।१८९

अन्त्यजों के द्वारा स्वीकृत तीर्थ-नदी तालाबों में बिना ही इच्छा के जल पीकर पञ्चगव्य से शुद्ध होता है ।।१८३।। सुरा के घट का, प्याऊ का तथा आकाश के जल को पीकर एक अहोरात्र उपवास करे और द्विज पञ्चगव्य लेवे ।।१८४।। विष्ठा और मूत्र से स्पर्श किया हुआ कूआ से जल पीकर द्विजाति तीन रात्रि में शुद्ध होते हैं उनको कुम्भ

में साम्तपन कहा गया है। १८५॥ बावड़ी-कूआ और तालाब यदि दूषित हो जावे तो उनके शोधन का यही विधान है कि उनमें से सौ घड़े जल निकाल कर उनमें पञ्चगव्य डाल देवे ॥१८६॥ आविक और एक शफ (खुर) वाले तथा ऊटनी के दूध को कोई भी द्विज पी लेवे तो उसे शुद्धि के लिये तीन दिन तक का यावक पीना चाहिये ॥१८७। स्त्री का दूध, बकरी का दूध और सन्धिनी गौ का दूध पीकर विड् भक्ष्यों के भक्षण करने पर तीन दिन में शुद्ध होता है ॥१८८॥ विष्ठा और मूत्र यदि किसी भी तरह भक्षण करे तो प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। कुत्ता-कौआ का उच्छिष्ट तथा गाय का उच्छिष्ट के भक्षण करने पर तीन दिन में द्विज शुद्ध होता है ॥१८९॥

विडालमूषकोच्छिष्टे पंचगव्यं पिवेद्द्विजः।
शूद्रोच्छिष्टं तथा भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥१९०
पलाण्डुलशुनं जग्ध्वा तथैव ग्रामकुक्कुटम्।
छत्राकं विड्वराहञ्च चरेच्चान्द्रायणं द्विजः ॥१९१
मानवः श्वखरोष्ट्राणां कपेर्गोमायुकङ्कयोः।
प्राश्य मूत्रं पुरीषं वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥१९२
अन्नं पर्युषितं भुक्त्वा केशकीटैरुपद्रुतम्।
पतितैः प्रेक्षितं वापि पंचगव्यं पिवेद्द्विजः ॥१९३
अन्त्यजाभाजने भुक्त्वा ह्युदक्याभाजनेऽपि वा।
गोमुत्रयावकाहारी मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥१९४
गोमांसं मानुषंचैव शुनोहस्तात् समाहितम्।
अभक्ष्यमेतत् सर्वन्तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१९५
चाण्डालस्य करे विप्रः श्वपाके पुक्वशेऽपि वा।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति ॥१९६

विडाल और मूषक के उच्छिष्ट खाने पर ब्राह्मण को पञ्चगव्य पीना चाहिए। शूद्र के उच्छिष्ट को खाकर तीन दिन में शुद्ध होता है

॥१९०॥ प्याज-लहसन और ग्राम कुक्कुट को, तथा छत्राक विड्वाराह को खाकर ब्राह्मण को चान्द्रायण करना चाहिए ॥१९१॥ कुत्ता-गधा और ऊँट तथा बन्दर-गीदड़ और कङ्क के मूत्र एवं पुरीष (मल) को खाकर चान्द्रायण व्रत करे ॥१९२॥ केश और कीड़ों से उपद्रुत वासी अन्न को खाकर तथा पतित मनुष्यों के द्वारा देते हुए अन्न को खाकर ब्राह्मण को पञ्चगव्य लेना चाहिए तभी उसकी शुद्धि होती है ॥१९३॥ अन्त्यजों के पात्र में तथा उदक्या के पात्र में खाकर ब्राह्मण गोमूत्र और यावक का आहार करे तो आधे मास में शुद्धि होती है ॥१९४॥ गो माँस तथा मानव माँस और कुत्ता के द्वारा लाया हुआ—यह सभी अभक्ष्य है। इसे खाकर चान्द्रायण व्रत करे ॥१९५॥ चाण्डाल के हाथ से—श्वपाक के हाथ से अथवा पुक्कश के हाथ से स्पष्ट वस्तु खाकर ब्राह्मण को गोमूत्र और यावक का आहार करना चाहिए, आधेमास में शुद्ध होता है ॥१९६॥

पतितेन सुसम्पर्के मासं मासार्द्धमेव वा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति ॥१९७
यत्र यत्र च सङ्कीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ।
तत्र कार्य्यस्तिलैर्होमो गायत्र्यावर्त्तनं तथा ॥१९८
एष एव मया प्रोक्तः प्रायश्चित्तविधिः शुभः ।
अनादिष्टेषु पापेषु प्रायश्चित्तं तथोच्यते ॥१९९
दानैर्होमैर्जपैर्नित्यं प्राणायामैर्द्विजोत्तमः ।
पातकेभ्यः प्रमुच्येत वेदाभ्यासान्न संशयः ॥२००
सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं तथैव च ।
नाशयन्त्याशु पापानि ह्यन्यजन्मकृतान्यपि ॥२०१
तिलधेनुञ्च यो दद्यात् संयताय द्विजन्मने ।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशय ॥२०२
माघमासे तु सम्प्राप्ते पौर्णमास्यामुपोषितः ।
ब्राह्मणेभ्यस्तिलान् दत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२०३

पतित पुरुष के सम्पर्क में रहने पर एक मास यथा आधे मास का भी ऐसा सम्पर्क रहे तो गोमूत्र और यावक का आहार करे आधे मास में शुद्धि होती है ।।१९७।। ब्राह्मण जहाँ भी अपने आप को संकीर्ण माने वहां तिलों से होम करे और गायत्री मन्त्र का जप करे ।।१९८।। यही मैंने प्रायश्चित करने की विधि बतलायी है। जो पाप ऐसे हैं जिनको आदिष्ट नहीं किया गया, उनके प्रायश्चित कहे जाते हैं ।।१९९।। दान–होम–जप और नित्य प्राणायामों के करने से ब्राह्मण पातकों से मुक्त होता है तथा वेदों के अभ्यास से भी पातक नष्ट हो जाते हैं—इसमें कोई भी संशय नहीं है ।।२००।। सुवर्ण का दान-भूमि का दान और गोदान शीघ्र ही अन्य जन्म के किये हुए पापों का नाश कर देते हैं ।।२०१।। जो किसी संयमी ब्राह्मण को तिल और गाय का दान देता है वह ब्रह्महत्या आदि पापों से भी मुक्त हो जाता है- इसमें कुछ भी संशय नहीं करना चाहिए ।।२०२।। माघ मास आने पर पूर्णमासी का व्रत करके ब्राह्मणों को तिलों का दान करने से समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ।।२०३।।

उपवासी नरो भूत्वा पौर्णमास्यांच कार्तिक ।
हिरण्यं वस्त्रमन्नं वा दत्वा मुच्येत दुष्कृतैः । २०४
अमावस्या द्वादशी च संक्रान्तिश्च विशेषतः ।
एताः प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च ।।२०५
अत्र स्नानं जपो होमो ब्राह्मणानांच भोजनम् ।
उपवासस्तथा दानमेकैकं पावयेन्नरम् ।।२०६
स्नातः शुचिर्धौतवासाः शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः ।
सात्विकं भावमाश्रित्य दानं दद्याद्विचक्षणः ।।२०७
सप्तव्याहृतिर्होमो द्विजः कार्यो हितात्मभिः ।
उपपातकसिद्धयर्थं सहस्रपरिसंख्यया ।।२०८
महापातकसंयुक्तो लक्षहोमं सदा द्विजः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो गायत्र्याश्चैव जापनात् ।।२०९

अभ्यसेच्च महापुण्यां गायत्रीं वेदमातरम् ।
गत्वारण्ये नदीतीरे सर्वपापविशुद्धये ॥२१०

कार्तिक की पूर्णमासी में उपवास करके मनुष्य सोना-वस्त्र और अन्न का दान करके दुष्कृतों से मुक्त हो जाता है ॥२०४॥ अमावस्या, द्वादशी, संक्रान्ति, विशेष रूप स ये तिथियां प्रशस्त मानी गई हैं और रविवार श्रेष्ठ कहा गया है॥२०५॥ इनमें स्नान-जप-होम और ब्राह्मणों का भोजन तथा उपवास करना उत्तम है । इनमें से एक-एक का भी दान करना मनुष्य को पवित्र कर देता है ॥२०६॥ बुद्धिमान पुरुष को स्नान करके, पवित्र होकर धुले हुए वस्त्र धारण कर, शुद्धात्मा होकर एवं इन्द्रियों को जीतकर और सात्विक भाव में स्थित रहकर दान देना चाहिए ॥२०७॥ हितेच्छु ब्राह्मणों को सात व्याहृतियों से हवन करना चाहिए उपपातकों की सिद्धि के लिये एक हजार संख्या में करे । ॥२०८॥ यदि किसी भी महापातक से संयुक्त हो तो द्विज को एक लक्ष का होम करना चाहिए । गायत्री एक ऐसा महा मन्त्र है कि इस के ही केवल जप से मनुष्य समस्त पापों से छूट जाता है ॥२०९॥ महान् पवित्र वेदमाता गायत्री का नित्य ही अभ्यास करे । समस्त पापों से शुद्धि के लिये वन में नदी के तट पर जाकर जप करे ॥२१०॥

स्नात्वा च विधिवत्तत्र प्राणानायम्य वाग्यतः ।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतो गायत्रीन्तु जपेद्द्विजः ॥२११

अक्लिन्नवासाः स्थलगः शुचौ देशे समाहितः ।
पवित्रपाणिराचान्तो गायत्र्या जपमारभेत् ॥२१२

ऐहिकामुष्मिकं लोके पापं सर्वं विशेषतः ।
पंचरात्रेण गायत्रीं जपमानो व्यपोहति ॥२१३

गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ॥२१४
महाव्याहृतिसंयुक्तां प्राणायामेन संयुताम् ।
गायत्रीं प्रजपन् विप्रः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२१५

ब्रह्मचारी मिताहारः सर्वभूतहिते रतः।
गायत्र्या लक्षजप्येन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२१६
अयाज्ययाजनं कृत्वा भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम्।
गायत्र्यष्टसहस्रन्तु जप्यं कृत्वा विमुच्यते ॥२१७

विधि के साथ वहां स्नान करे तथा प्राणायाम करे और वाग्यत हो। तीन प्राणायाम करके पवित्र होकर फिर गायत्री का जप करना चाहिए ।।२११।। सूखे वस्त्र धारण कर स्थल पर पवित्र भाग में समाहित होकर बैठे और हाथ को पवित्र कर आचमन करे फिर गायत्री का जप करना चाहिए ।।२१२।। इस लोक में किये हुए तथा अन्य जन्म कृत विशेष करके समस्त पापों को ब्राह्मण पाँच ही दिन में गायत्री के जप से नष्ट कर देता है ।।२१३।। पाप कर्मों के शोधन करने में गायत्री से बढ़ कर कुछ भी अन्य नहीं है। महा व्याहृतियों से युक्त और प्रणव ये युक्त गायत्री का जप करता हुआ विप्र सब पापों से छूट जाता है ।।२१४-२१५।। ब्रह्मचर्य से रहकर मित भोजन करता हुआ समस्त प्राणियों पर हित की भावना रखने वाला ब्राह्मण एक लक्ष गायत्री का जप करके समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ।।२१६।। जो यजन के योग्य नहीं है उसका याजन करके और गर्हित अन्न का भोजन करके आठ हजार गायत्री के जप से शुद्धि होती है ।।२१७।।

अहन्यहनि योऽधीते गायत्रीं व द्विजोत्तमः
मासेन मुच्यते पापादुरगः कञ्चुकाद्यथा ।।२१८
गायत्रीं यः सदा विप्रो जपते नियतः शुचिः।
स याति परमं स्थानं वायुभूतः खमूर्त्तिमान्। २१९
प्रणवेन तु संयुक्ता व्याहृतिः सप्त नित्यशः।
गायत्रीं शिरसा सार्द्धं मनसा त्रिः पठेद्द्विजः ।।२२०
निगृह्य चात्मनः प्राणान् प्राणयामो विधीयते।
प्राणायामत्रयं कुर्य्यान्नित्यमेव समाहितः ।।२२१
मानसं वाचिकं पापं कायेनैव तु यत्कृतम्।
तत्सर्वं नश्यते तूर्णं प्राणायामत्रये कृते ।।२२२

ऋग्वेदमभ्यसेद्यस्तु यजु शाखामथापि वा ।
सामानि सरहस्यानि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२२३
पावमानीं तथा कौत्सं पौरुषं सूक्तमेव च ।
जप्त्वा पापैः प्रमुच्येत पित्र्यञ्च मधुच्छन्दसाम् ॥२२४
मण्डल ब्राह्मणं रुद्रसूक्तोक्ताश्च वृहत्कथाः ।
वामदेव्यं वृहत्साम जप्त्वा पापैः प्रमुच्यते ॥२२५
चान्द्रायणन्तु सर्वेषां पावनं परम् ।
कृत्वा शुद्धिमवाप्नोति परमं स्थानमेव च ॥२२६
धर्मशास्त्रमिदं पुण्यं सम्वर्त्तेन तु भाषितम् ।
अधीत्य ब्राह्मणो गच्छेद्ब्राह्मणः सद्म शाश्वतम् ॥२२७

जो ब्राह्मण प्रति दिन गायत्री का अध्ययन करता है वह एक मास में कञ्चुकी से सर्प की भाँति समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है।२१८। जो विप्र सदा समाहित होकर निरन्तर रूप से गायत्री का जप किया करता है वह शुचि विप्र खमूर्त्तिमान् होकर वायु स्वरूप परम स्थान को प्राप्त हो जाता है ।।२१६।। प्रणव से युक्त सात व्याहृति नित्य शिर के साथ गायत्री को मन से तीन बार ब्राह्मण पढ़े । २२०।। अपने प्राण वायु का निग्रह करके प्राणायाम किया जाता है । नित्य ही समाहित होकर तीन प्राणायाम करने चाहिए ।।२२१।। मन के द्वारा कृत तथा वाणी से किये हुए एवं शरीर के द्वारा किये हुए पाप जो भी हैं वे सब तीन बार प्राणायाम सविधि करने पर नष्ट हो जाते हैं।२२२। जो ऋग्वेद का अभ्यास करे तथा किसी भी यजुर्वेद की शाखा का अभ्यास करे या रहस्य से पूर्ण सामवेद का अभ्यास करे तो समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाता है ।।२२३।। पावमानी, कौत्स, और पुरुष सूक्त को जप करके तथा मधुच्छन्दस के पित्र्य का जप करके समस्त प्रकार के पापों से मनुष्य मुक्त हो जाता है ।।२२४।। मण्डल-ब्राह्मण तथा रुद्र सूक्त में कही हुई वृहत् कथा-वामदेव्य-वृहत्साम को जप करके समस्त पापों से मुक्ति हो जाती है ।।२२५।। चान्द्रायण व्रत एक ऐसा व्रत है जो सभी

पापों के दोष से पवित्र करता है। इसे सम्पादन करके शुद्धि को प्राप्त होता है और परम पद भी प्राप्त करता है।२२६।। यह धर्म शाखा सम्वर्त मुनि ने कहा है। इसे पढ़कर ब्राह्मण ब्रह्म के शाश्वत पद को प्राप्त करता है ।।२२७।।

।। समाप्त ।।

दक्षस्मृतिः

प्रथमोऽध्यायः ।

अथादौ—आश्रमवर्णनम्

सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञ सर्ववेदविदां वरः ।
पारगः सर्व्वविद्यानां दक्षो नाम प्रजापतिः ॥१
उत्पत्तिः प्रलयश्चैव स्थितिः संहार एव च ।
आत्मा चात्मनि तिष्ठेत आत्मा ब्रह्मण्यवस्थितः ॥२
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोयतिस्तथा ।
एतेषान्तु हितार्थाय दक्षः शास्त्रमकल्पयत् ॥३
जातमात्रः शिशुस्तावद्यावदष्टौ समा वयः ।
सहि गर्भसमोज्ञेयोव्यक्तिमात्रप्रदर्शितः ॥४
भक्ष्याभक्ष्ये तथा पेये वाच्यावाच्ये तथानृते ।
तस्मिन् काले न दोषोऽस्ति स यावन्नोपनीयते ॥५
उपनीतस्य दोषोऽस्ति क्रियमाणैर्विगर्हितैः ।
अप्राप्तव्यवहारोऽसौ यावत् षोडशवार्षिकः ॥६
स्वीकरोति यदा वेदं चरेद्व्रतानि च ।
ब्रह्मचारी भवेत्तावदूर्द्ध्वं स्नातो भवेद्गृही ॥७

समस्त धर्मार्थ के तत्व को जानने वाले, सब वेदों के ज्ञाताओं मेंश्रेष्ठ, समस्त विद्याओं के पारगामी दक्ष नाम वाले प्रजापति हुए थे ॥१॥ उत्पत्ति, प्रलय, स्थिति, संहार और आत्मा-आत्मा में ही स्थित हैं और वह आत्मा ब्रह्म में अवस्थित है ॥२॥ ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यति

(संन्यासी) इन सब के हित सम्पादन के लिये प्रजापति दक्ष ने शास्त्र की रचना की थी ।।३।। जो बच्चा आठ वर्ष की उम्र तक का हो वह तुरन्त उत्पन्न होने वाले शिशु के समान ही होता है। आठ वर्ष की आयु पर्यन्त बालक गर्भ के ही तुल्य होता है केवल देखने भर के लिये वह व्यक्ति होता है ।।४।। आठ वर्ष की आयु पर्यन्त बालक का भक्ष्याभक्ष्य, पेय (पीने के योग्य पदार्थ), वाच्यावाच्य (कहने योग्य तथा-न कहने योग्य) और मिथ्या में उस समय कोई भी दोष नहीं होता है। आठ वर्ष की उम्र से जब तक उसका उपनयन संस्कार नहीं होता है। तात्पर्य यह है कि आठ वर्ष तक उसके खान-पान एवं भाषण का कोई भी दोष नहीं माना जाता है ।।५।। जब आठ वर्ष की आयु पूर्ण हो जाने पर बालक का उपनयन संस्कार हो जाता है तो फिर निन्दित बुरे कर्म करने पर दोष होता है। जब तक वह सोलह वर्ष की आयु वाला होता है तब तक बालक वेदाध्ययन के योग्य नहीं होता है ।।६।। जब वह बालक वेदाध्ययन कर लेता है और वेदोक्त व्रतादि का पूर्ण आचरण करने लगता है तब तक वह ब्रह्मचारी रहता है इसके अनन्तर निष्णात होकर स्नातक बनता है और फिर गृहस्थाश्रमी बनता है ।।७।।

द्विविधोब्रह्मचारी तु स्मृतः शास्त्रः मनीषिभिः ।
उपकुर्वाणकस्त्वाद्योद्वितीयोनैष्ठिकः स्मृतः ।।८
योगृहाश्रममास्थाय ब्रह्मचारी भवेत् पुनः ।
न यतिर्न वनस्थश्च सर्व्वाश्रमविवर्जितः ।।९
अनाश्रमी न तिष्ठेत्तु दिनमेकमपि द्विजः ।
आश्रमेण विना तिष्ठन् प्रायश्चित्तीयते ह सः ।।१०
जपे होम तथा दाने स्वाध्याये च रतस्तु यः ।
नासौ तत्फलमाप्नोति कुर्वाणोऽप्याश्रमच्च्युतः ।
त्रयाणामानुलोम्यं हि प्रातिलोम्यं न विद्यते ।।११
प्रातिलोम्येन यो याति न तस्मात् पापकृत्तमः ।
मेखलाजिनदण्डेन ब्रह्मचारी तु लक्ष्यते ।।१२

गृहस्थोदेवयज्ञाद्यैर्नखलोम्ना वनाश्रितः ।
त्रिदण्डेन यतिश्चैव लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥१३
तस्यैतल्लक्षणं नास्ति प्रायश्चित्ती नचाश्रमी ।
उक्त कर्मक्रमोनोक्तो न कालो मुनिभिः स्मृतः ।
द्विजानान्तु हितार्थाय दक्षस्तु स्वयमब्रवीत् ॥१४

शास्त्र में विद्वानों ने दो प्रकार के ब्रह्मचारी बताये हैं। पहिला उपकुर्वाण ब्रह्मचारी होता है और दूसरा नंष्ठिक ब्रह्मचारी होता है ॥८॥ जो गृहस्थाश्रम में जाकर भी ब्रह्मचारी रहता है और न वह यति ही होता है और वानप्रस्थ हो होता है तथा समस्त आश्रमो से वर्जित होता है ।॥९॥ ब्राह्मण को एक दिन भी अनाश्रमी नहीं रहना चाहिए । जो ब्राह्मण किसी भी आश्रम का आश्रय न लेकर रहता है वह प्रायश्चित्त करने के योग्य होता है ॥१०॥ आश्रमों से च्युत ब्राह्मण जप, होम, दान, स्वाध्याय में निरत भी रहे तो भी उसका वह कुछ भी फल प्राप्त नहीं कर पाता है अर्थात् उसका जपादि सभी व्यर्थ ही होता है ॥ ११ ॥ इन तीनों का आनुलोम्य हो होता है । प्रातिलोम्य नहीं होता है। जो प्रातिलोम्य से यापन किया करते हैं उनसे अधिक कोईभी पापीनहीं होते हैं। मेखला और मृगचर्म से ब्रह्मचारी जानाजाता है। देव यज्ञादि के द्वारा गृहस्थाश्रमी लक्षितहोता है और नख तथा लोमादि से वानप्रस्थ का ज्ञान होता है। तीन दण्ड धारण करने से संन्यासी जाना जाता है। इस प्रकार इनके पृथक्-पृथक् लक्षण होते हैं ॥१२-१३॥ जिसके इन उक्त लक्षणों में से कोई भी लक्षण नहीं हों वह आश्रम होन होता है और प्रायश्चित्त करने का अधिकारी है। उक्त कर्मों का क्रम तथा काल मुनियों ने नहीं कहा है। ब्राह्मणों के हित के लिये दक्ष ने स्वयं कहा है ॥१४॥

अथ द्वितीऽयोध्यायः

प्रातरुत्थाय कर्त्तव्यं यद्द्विजेन दिने दिने ।
तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि द्विजानामुपकारकम् ॥१
उदयास्तमयं यावन्न विप्रः क्षणिकोभवेत् ।
नित्यनैमित्तिकैर्मुक्तः काम्यैश्चान्यैरगर्हितैः ।.२
यः स्वकर्म परित्यज्य यतन्यत् कुरुते द्विजः ।
अज्ञानाद्यदिवा मोहात् स तेन पतितो भवेत् ॥३
दिवसस्याद्यभागे तु कृत्यं तस्योपदिश्यते ।
द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे पञ्चमे तथा ।४
षष्ठे च सप्तमे चैव अष्ठमे च पृथक् पृथक् ।
विभागेष्वेषु यत्कर्म तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ।५
उषः काले तु सम्प्राप्ते शोचं कृत्वा यथार्थवत् ।
ततः स्नानं प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम् ॥६
अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः ।
स्रवत्येष दिवारात्रौ प्रातः स्नानं विशोधनम् ॥७

प्रातः काल उठकर प्रतिदिन ब्राह्मण को जो कर्त्तव्य कर्म करना चाहिए वह सब द्विजों की भलाई करने वाली बातें मैं बतलाता हूँ ।।१।। सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त ब्राह्मण को क्षण भर समय फुरसत का नहीं मिल पाता है क्योंकि उसको करने के लिये बहुत से अच्छे नित्य कर्म, नैमित्तिक कर्म तथा अनेक काम्य कर्म होते हैं ।.२।। जो ब्राह्मण अपने कर्त्तव्य कर्मों का त्याग कर दूसरे कामों में लगा रहता है और अज्ञान से या मोह से अपने कर्म छोड़ देता है वह पतित हो जाता है ॥३॥ दिन के प्रथम भाग में जो कृत्य ब्राह्मण को करना चाहिए उसका उपदेश किया जाता है । दूसरे तीसरे चौथे-पाँचवें-छठे-सातवें भाग में पृथक्-पृथक् कृत्य होते हैं । इन दिन के भागों में जो कर्म करना चाहिऐ वे बतलाये जांयगे ।।४-५।। उषः काल के होने पर शय्या त्याग कर यथा विधि शौच कर्म करके दन्तधावनादि से निवृत्त होकर नित्य ब्राह्मण

को उसी समय स्नान करना चाहिए ॥६॥ यह शरीर अत्यन्त मलिन होता है क्योंकि नौ इन्द्रियों के छिद्र होते हैं। ये छिद्र रात दिन स्रवते रहा करते हैं अर्थात् कुछ न कुछ मल निकलता ही रहता है। इन सब की शुद्धि स्नान से ही होती है ॥७॥

क्लिद्यन्ति हि प्रसुप्तस्य इन्द्रियाणि स्रवन्ति च।
अङ्गानि समतां यान्ति उत्तमान्यधमैः सह ॥८
नानास्वेदसमाकीर्णः शयनादुत्थितः पुमान्।
अस्नात्वा नाचरेत्कर्म जपहोमादि किञ्चन ॥९
प्रातरुत्थाय योविप्रः प्रातस्नायी भवेत् सदा।
समस्तजन्मजं पापं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥१०
उषस्युषसि यत् स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवौ।
प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ॥११
प्रातः स्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत्।
सर्वमर्हति पूतात्मा प्रातः स्नायी जपादिकम् ॥१२
स्नानादनन्तरं तावदुपस्पर्शनमुच्यते।
अनेन तु विधानेन आचान्तः शुचिता मियात् ॥१३
प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च त्रिः पिबेवम्बु वीक्षितम्।
संवृत्याङ्गुष्ठमूलेन द्विः प्रमृज्यात्ततोमुखम् ॥१४

शयनावस्था में समस्त इन्द्रियाँ क्लेदित होकर स्रवन करती रहती हैं और सोते हुए व्यक्ति के उत्तम अङ्ग भी अधमाङ्गों साथ समान ही हो जाते हैं।८। जब मनुष्य सोकर शय्या से उठता है तो अनेक प्रकार के स्वेदों से युक्त एवं घिरा हुआ होता है। अतः स्नान किये बिना जप होमादि पुण्य कर्म कुछ भी नहीं करने चाहिए ॥९॥ प्रातः काल में उठकर जो ब्राह्मण नित्य प्रातः ही स्नान सदा करता है, वह समस्त जन्म में होने वाले पापों को तीन वर्ष में नष्ट कर देता है ॥१०॥ प्रातः उषा काल में जो स्नान किया जाता है तथा सन्ध्या के समय सूर्य

के उदय रहते हुये जो स्नान है वह प्राजापत्य व्रत के तुल्य माना गया है जिसके कि महापातकों का भी नाश होता है ॥११॥ प्रातः काल में किये हुए स्नान की बड़ी प्रशंसा है। यह प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार से श्रेष्ठता प्रदान करता हैं। प्रातः स्नान करने वाला पवित्रात्मा होकर जपादि समस्त करने के योग्य बन जाता है ॥१२॥ स्नान के के पश्चात् उपस्पर्शन कहा गया है। विधान से आचान्त होने वाला पवित्रता को प्राप्त करता है ॥१३॥ पैरों और हाथों को धोकर देखे हुए जल को तीन बार पीना चाहिए अंगुष्ट के मूल से संवृत करके दो बार मुख का मार्जन करना चाहिए ॥१४॥

संहत्य तिसृभिः पूर्वमास्यमेवमुपस्पृशेत् ।
ततः पादौ समभ्युक्ष्य अङ्गानि समुपस्पृशेत् ॥१५
अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरम् ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षुः श्रोत्रे पुनः पुनः ॥१६
कनिष्ठाङ्गुष्ठया नाभिं हृदयञ्चं तलेन वै ।
सर्व्वाभिस्तु शिरः पश्चाद्बाहू चाग्रेण संस्पृशेत् ॥१७
सन्ध्यायाञ्च प्रभाते च मध्याह्ने च ततः पुनः ।
सन्ध्यां नोपासते यस्तु ब्राह्मणो हि विशेषतः ॥१८
स जीवन्नेव शूद्रः स्यान्मृतः श्वा चैव जायते ।
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥१९
यदन्यत् कुरुते कर्म न तस्य फलमश्नुते ।
सन्ध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमोविधीयते ।
स्वयं होमे फलं यत्तु तदन्येन न जायते ॥२०
ऋत्विक् पुत्रोगुरुर्भ्राता भागिनेयोऽथ विट्पतिः ।
एभिरेव हुतं यत्तं तद्धुतं स्वयमेवहि ॥२१

तीन से संहत करके पहिले मुख को उपस्पृष्ट करे। अंगूठा और प्रदेशिनी अंगुलि से फिर नासिका का उपस्पर्शन करे। इसके बाद अंगूठा और अनामिका अंगुलि से नेत्र और कान का उपस्पर्शन बार-बार

करना चाहिए ॥१५-१६॥ कनिष्टिका अँगुल और अँगूठे से नाभि-हृदय और तल भाग का तथा सब से शिर का और पीछे अग्र भाग से बाहुओं का करे ॥१७॥ सन्ध्या प्रभात और मध्यान्ह में फिर इसी प्रकार करना चाहिए। सन्ध्योपासन न करने वाला जीता हुआ ही शूद्र है और मरने के बाद कुत्ता बनता है। सन्ध्या से हीन द्विज अपवित्र रहता है और कर्मों के करने में सदा अयोग्य होता है ॥१८-१६॥ सन्ध्याहीन पुरुष जो भी कुछ अन्य कर्म करता है उसका उसे कोई भी फल नहीं मिलता है सन्ध्या कर्म के पश्चात् स्वयं होम करने का विधान है स्वयं होम करने में जो फल प्राप्त होता है वैसा दूसरे के द्वारा कराने पर नहीं मिलता है ॥२०॥ ऋत्विग्, पुत्र, गुरु, भ्राता, भानजा, विट्पति के द्वारा कराया हुआ होम स्वयं द्वारा कराया हुआ ही माना जाता है ।२१।

देवकार्य्यं ततः कृत्वा गुरु मङ्गलवीक्षणम् ।
देवकार्य्याणि पूर्व्वाह्णे मनुष्याणाञ्च मध्यमे ॥२२
पितृणामपराह्णे च कार्य्याण्येतानि यत्नतः ।
पौर्व्वाह्णिकन्तु यत् कर्म यदि तत् सायमाचरेत् ॥२३
न तस्य फलमाप्नोति बन्ध्यास्त्रीमैथुनं यथा ।
दिवसस्याद्यभागे तु सर्वमेतद्विधीयते ॥२४
द्वितीये च तथाभागे वेदाभ्यासोविधीयते ।
वेदाभ्यासो हि विप्राणां परमंतप उच्यते ।
ब्रह्मयज्ञः विज्ञेयः षड़ङ्गसहितस्तु सः ॥२५
वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोऽभ्यसनं जपः ॥२६
ततोदानञ्च शिष्येभ्यो वेदाभ्यासोहि पञ्चधा ।
समित्पुष्पकुशादीनां स कालः समुदाहृतः ॥२७
तृतीये चैव भागेतु पोष्यवर्गार्थं साधनम् ।
पिता माता गुरुभार्य्या प्रजादीनाः समाश्रिताः ॥२८
अभ्यागतोऽतिथिश्चान्यः पोष्यवे उदाहृतः ।
ज्ञातिर्बन्धुजनः क्षीणस्तथानाथः समाश्रितः ॥२६

अन्येऽप्यधनयुक्ताश्च पोष्यवर्गउदाहृतः।
भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ॥३०

इस होम के कार्य के अनन्तर बड़ा मङ्गल दिखाने वाला देव कार्य करना चाहिए। दिन के पूर्वान्ह काल में देव कार्य करे, मध्यम समय में मनुष्य कार्य करे ॥२२॥ पितृगण का कार्य दिन के अपरान्ह काल में करना चाहिए। यदि पूर्वान्हि काल का कुछ कर्म शेष रह जावे तो उसे सायङ्काल में पूर्ण करना चाहिए ॥२३॥ दिन के आदि भाग के अति-रिक्त काल में किए हुये कर्म का फल वन्ध्या से प्रसङ्ग की भाँति कुछ भी नहीं मिलता है। अतः सभी कर्म दिवसारम्भकाल में करना श्रेयस्कर होता है। वेदाभ्यास ब्राह्मणों का सर्वश्रेष्ठ तप होता है। वेद के छः अङ्गों के साथ वेद का अध्ययन एवं ज्ञान प्राप्त करने का कर्म ब्रह्मयज्ञ कहलाता है ॥२४-२५॥ आरम्भ में वेद का अध्ययन फिर उसका विचार तथा इसके पश्चात् अभ्यास एवं जप, फिर शिष्यों को वेद ज्ञान का दान इस प्रकार वेद का अभ्यास पाँच प्रकार का होता है ॥२६॥ वह काल समिधा-पुष्पादि-कुशादि के लाने का होता है तृतीय भाग में जो अपने पोषण करने के योग्य समुदाय हो उसके लिये अर्थ का साधन करने का है। माता-पिता-गुरु-भार्या-सन्तति और अपने आश्रय में रहने वाले-अभ्यागत-अतिथि तथा अन्य ये सभी पोष्य वर्ग में आते हैं। ज्ञाति का व्यक्ति-बन्धुजन-क्षीण-तथा जो अनाथ जो समाश्रित हो अन्य भी जो धन हीन हो सभी पोष्य वर्ग बताया गया है। पोष्य वर्ग का भरण करना अत्यन्त ही प्रशस्त होता है और स्वर्ग प्रदान करने का भी साधन है ॥२७-३०॥

नरकं पीड़ते चास्य तस्माद्यत्नेन तं भरेत्।
सार्वभौतिकमन्नाद्यं कर्त्तव्यन्तु विशेषतः।
ज्ञानविद्भ्यः प्रदातव्यमन्यथा नरकं व्रजेत् ।.३१
स जीवति य एवैकोबहुभिश्चोपजीव्यते ।
जीवन्तोमृतकाश्चान्ये य आत्मम्भरयो नराः।
नह्यर्थं जीव्यते कश्चित् कुटुम्बार्थे तथा परैः ॥३२

आत्मार्थेऽन्यो न शक्नोति स्वोदरेणापि दुःखितः ।
दीनानाथविशिष्टेभ्योदातव्यं भूतिमिच्छता ॥३३
अदत्तदाना जायन्ते परभाग्योपजीविनः ।
यद्ददाति विशिष्टेभ्यो यज्जुहोति दिने दिने ॥३४
तत्तु वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति ।
चतुर्थे च तथा भागे स्नानार्थं मृदमाहरेत् ॥३५
तिलपुष्पकुशादीनि स्नानञ्चाकृत्रिमे जले ।
नित्यं नैमत्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमुच्यते ॥३६
तेषां मध्ये तु यन्नित्यं तत्पुनर्भिद्यते त्रिधा ।
मलापहरणं पश्चान्मन्त्रवत्तु जलेस्मृतम् ॥३७
सन्ध्यास्नानमुभाभ्याञ्च स्नानभेदाः प्रकीर्तिताः ।
मार्जनं जलमध्ये तु प्राणायामोयतस्ततः ॥३८

समस्त प्राणिमात्र के हितप्रद अन्नादि का दान विशेष रूप से करना चाहिए । सभी दान ज्ञान वालों को ही देना उचित है ऐसा न करने पर नरक भोगना पड़ता है ॥३१॥ पोष्य वर्ग के सताने में नरक होता है अतः यत्नपूर्वक इसका भरण ही करना चाहिए। वही वस्तुतः जीवित रहता है जिसके द्वारा अन्य उपजीवित रहते हैं। वे लोग जीवित भी मरे हुए हैं जो सर्वदा अपना ही केवल पेट पाला करते हैं। बहुतों के लिए कोई ही विरला संसार में जीवित रहा करता है । कुछ लोग अपने कुटुम्बी जनों के लिए हो जीवित रहा करते हैं ॥३२॥ कोई ऐसे भी होते हैं जो अपने लिए भी समर्थ नहीं होते हैं और अपनी उदर-पूर्ति के लिये भी दुःखित रहा करते हैं। जो भूति (वैभव) की इच्छा रखता है उसे दीन—अनाथ तथा कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के लिये देना ही चाहिए ॥३३॥ जिन्होंने दान नहीं दिया है वे, सर्वदा पराये भाग्य के ऊपर उपजीवित रहा करते हैं। जो विशिष्टों के लिये दान देता है और प्रति दिन हवन किया करता है मैं उसी को धन तथा धनी समझता हूँ। बाकी अन्य लोग तो किसी के धन रक्षक ही होकर जन्मते हैं। दिवस के

चौथे भाग में स्नान के लिये मिट्टी लाना चाहिए ।।३४-३५।। तथा तिल पुष्पकुशादि लावे । स्नान भी तीन प्रकार का होता है । अकृतिम जल में नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्म करे । यही तीन स्नान हैं ।।३६।। उक्त तीन प्रकार के कर्मों में जो नित्य कर्म है वह भी तीन प्रकार का होता है । एक स्नान केवल मल का अपहरण करने वाला है । दूसरा मन्त्रों के साथ जल में किया जाता है । दोनों समय सन्ध्यादि करने के लिये स्नान तीसरा है । इस प्रकार स्नान के तीन भेद हैं । जल के मध्य में मार्जन और जहाँ तहाँ प्राणायाम इसके पश्चात् उपस्थान और पीछे सावित्री का जप कहा गया है ।।३७-३८।।

उपस्थानं ततः पश्चात् सावित्र्या जप उच्यते ।
सविता देवता यस्या मुखमग्निस्त्रिधास्थितः ।। ३९
विश्वामित्रऋषिश्छन्दोगायत्री सा विशिष्यते ।
पंचमे च तथा भागे संविभागोयथार्हतः ।।४०
पितृदेवमनुष्याणां कोटानांचोपदिश्यते ।
देवैश्चैव मनुष्यश्च तिर्य्यग्भिश्चोपजीव्यते ।।४१
गृहस्थः प्रत्यहं यस्मात्तस्माज्ज्येष्ठाश्रमी गृही ।
त्रयाणामाश्रमाणान्तु गृहस्थो योनिरुच्यते ।।४२
तेनैव सीदामानेन सीदन्तीहेतरे त्रयः ।
मूलप्राणो भवेत् स्कन्दः स्कान्दाच्छाखा सपल्लवाः ।।४३
मूलेनैव विनष्टेन सर्वमेतद्विनश्यति ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन रक्षितव्यो गृहाश्रमी ।।४४
राज्ञा जान्यैस्त्रिभिः पूज्यो माननीयश्च सर्वदा ।
गृहस्थोऽपि क्रियायुक्तो न गृहेण गृहाश्रमी ।।४५

जिसका सविता (सूर्य) देवता है, अग्नि मुख है, वह तीन प्रकार से स्थित है विश्वामित्र ऋषि हैं, छन्द गायत्री है यही विशेषता वाली है । दिन के पाँचवें भाग में यथोचित सम्विभाग करे । पितृगण—देव और मनुष्यों का तथा कीटों का भी विभाग बतलाया जाता है । देव—मनुष्य

और तिर्यंग भी उपजीवित किये जाते हैं ।।३९-४१।। गृहस्थ सदा सब आश्रमों में बड़े आश्रम वाला इस लिये माना जाता है कि अन्य तीनों आश्रमों की उत्पत्ति एवं पोषण इसी गार्हस्थ्य आश्रम से ही होती है। ।।४२।। गृहस्थाश्रमी यदि किसी कारण से दुःखित होता है तो अन्य तीनों आश्रमों वाले भी अवश्य ही दुःखित हो जायेंगे जैसे वृक्ष का मूल प्राण तो उसका स्कन्ध से हो पल्लवों वाली शाखाऐं समुत्पन्न होती हैं वैसे ही अन्याश्रमों का मूल प्राण गृहस्थाश्रम होता है ।।४३।। मूल के विनाश होने से ही सभी का नाश हो जाता है इसलिये गृहस्थाश्रमी को समस्त प्रयत्नों द्वारा रक्षित रखना चाहिए ।।४४।। राजा और अन्य तीनों वर्णों के द्वारा सर्वदा गृहस्थ मान्य और पूज्य होता है किन्तु अपनी क्रिया से युक्त ही गृहस्थ होता है । केवल घर से ही गृहस्थ नहीं होता है ।।४५।।

न चैव पुत्रदारेण स्वकर्मपरिवर्जितः ।
अस्नात्वा चाप्यहुत्वा चाजप्त्वाऽदत्वा च मानवः ।।४६
देवादीनामृणी भूत्वा नरकं प्रतिपद्यते ।
एक एव हि भुङ्क्तेऽन्नमपरोऽन्नेन भुज्यते।
न भुज्यते स एवैको योभुङ्क्तेऽन्नं ससाक्षिणा ।।४७
विभागशीलो योनित्यं क्षमायुक्तोदयापरः ।
देवतातिथिभक्तश्च गृहस्थः स तु धार्मिकः ।।४८
दया लज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा योगः कृतज्ञता ।
एते तस्य गुणाः सन्ति स गृही मुख्य उच्यते ।।४९
सम्विभागं ततः कृत्वा गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ।।५०
भुक्त्वा तु सुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत् ।
इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठञ्च सप्तमं नयेत् ।।५१
अष्टमे लोकयात्रा तु बहिःसन्ध्या ततः पुनः ।
होमो भोजनकञ्चैव यच्चान्यद्गृहकृत्यकम् ।।५२

पुत्र और भार्या से युक्त होने वाला अपने आवश्यक कर्मों से वर्जित मनुष्य स्नान, हवन, दान, और जप न करके देव पितर आदि का

ऋणी होकर नरक में जाता है ।।४६।। अन्न को एक ही भक्षण करता है दूसरा अन्न द्वारा भुज्यमान होता है अतः वह एक भुज्यमान नहीं होता है जो साक्षी के साथ अन्न का भोक्ता बनता है ।।४७।। जो नित्य दो भाग करने का स्वभाव वाला क्षमा से युक्त और दया परायण तथा देवता और अतिथियों का भक्त गृहस्थ होता है वही गृही वस्तुतः परम धार्मिक होता है ।।४८-४९।। जिस गृहस्थ में दया, लज्जा, क्षमा, श्रद्धा, प्रज्ञा, योग और कृतज्ञता ये गुण विद्यमान होते हैं वही गृही मुख्य कहा जाता है और परम प्रशस्त होता है ।।५०। सबका सम्यक् प्रकार से विभाग करके शेष का उपभोग करने वाला गृहाश्रमी होना चाहिए। फिर इतिहास तथा पुराणादि के अवलोकन से दिन के छठे भाग को बितावे ।।५१।। दिन के आठवें भाग में लोक यात्रा करे और बाहिर ही सन्ध्या करे। इसके पश्चात होम तथा भोजन करे और अन्य जो भी घर के कार्य हों उन्हें पूर्ण करे ।।५२।।

कृत्वा चैवं ततः पश्चात् स्वाध्यायं किञ्चिदाहरेत् ।
प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत् ।।५३
यामद्वयं शयानोहि ब्रह्मभूयाय कल्पते ।
नैमित्तिकानि काम्यानि निपतन्ति यथा यथा ।।५४
तथा तथैव कार्य्याणि न कालस्तु विधीयते ।
अस्मिन्नेव प्रयुञ्जानो ह्यस्मिन्नेव तु लीयते ।।५५
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं सुखमिच्छता ।
सर्वत्र मध्यमौ यामौ हुतशेषं हविश्च यत् ।
भुञ्जानश्च शयानश्च ब्राह्मणोनावसीदति ।।५६

इस प्रकार समस्त कार्य करके इसके पीछे कुछ स्वाध्याय करना चाहिए। प्रदोष का समय और पिछले दो प्रहरों को वेद के अभ्यास में व्यतीत करना चाहिए ।।५३।। केवल दो प्रहर तक शयन करने वाला पुरुष ही ब्रह्म भूय के तुल्य होता है। नैमित्तिक तथा काम्य कृत्य जिस तरह आवे वैसे—वैसे ही उन्हें समय पर करना चाहिए। उनका कोई खास

काल नहीं होता है ॥५४। उसी काल में काम्यादि कर्मों का प्रयोग करता हुआ उसी में लीन हो जाता है। इसलिये पूर्ण प्रयत्नों के साथ सुख की इच्छा करने वाले को करना चाहिए। सर्वत्र मध्यम प्रहर दो को जो कृत से शेष हो उसका भोग करता हुआ और शयन करता हुआ ब्राह्मण कभी दुःखित नहीं होता है ॥५५-५६॥

———

अथ तृतीयोऽध्यायः

गृहस्थाश्रमवर्णनम् ।

सुधा नवगृहस्थस्य सद्वदामि नवैव तु ।
तथैव नवकर्माणि विकर्माणि तथा नव ॥१
प्रच्छन्नानि नवान्यानि प्रकाश्यानि तथा नव ।
सफलानि नवान्यानि निष्फलानि नवैव तु ॥२
अदेयानि नवान्यानि वस्तुजातानि सर्वदा ।
नवका नव निर्दिष्टा गृहस्थोन्नतिकारकाः ॥३
सुधावस्तनि वक्ष्यामि विशिष्टे गृहमागते ।
मनश्चक्षुर्मुखं वाचं सौम्य दद्याच्चतुष्टयम् ॥४
अभ्युत्थानमिहागच्छ पृच्छालापप्रियान्वितः ।
उपासन मनुव्रज्या कार्याण्येतादि यत्नतः ॥५
ईषद्दानानि चान्यानि भूमिरापस्तृणानि च ।
पादशौचं तथाभ्यङ्गमाश्रयः शयनन्तथा ॥६
किञ्चिच्चान्नं यथाशक्ति नास्यानश्नन् गृहे वसेत् ।
मृज्जलं चार्थिने देय मेतान्यपि सदा गृहे ॥७

गृहस्थाश्रमो के लिये नौ सुधा वस्तु होती हैं और ईषद् दान भी नौ होते हैं। उसके नौ ही मुख्य कर्म कहे जाते हैं और नौ विकर्म होते

हैं ।।१।। नौ संख्या वाले कर्म तो ऐसे हैं जो सदा प्रच्छन्न रखने चाहिए और नौ का सर्वदा प्रकाश करना चाहिए । नौ ही कर्म सफल कहे गये हैं और निष्फल रहने वाले भी कर्म नौ ही होते हैं ।।२।। सर्वदा अन्य नौ वस्तु नहीं देनी चाहिए । नौ ही ऐसी वस्तु हैं जो गृहस्थ की उन्नति करने वाली मानी जाती हैं ।।३।। गृहस्थाश्रमी के लिये सुधोपम जो नौ वस्तु बतलाई जाती हैं उन्हें सौम्य कहते हैं । किसी भी विशिष्ट व्यक्ति के घर पर जाने पर गृहस्थ को सौम्य मन, प्रफुल्ल नेत्र, प्रसन्न मुख और मधुर वाणी ये चार वस्तु देनी चाहिए ।।४।। विशेष व्यक्ति के आ जाने पर गृहस्थ को उठ कर अभ्युत्थान करना चाहिए, 'पधारिये'—ऐसा कह कर स्वागत सत्कार करना चाहिए, कुशलक्षेम पूछते हुए प्रिय आलाप करे और यत्नपूर्वक सदासन पर उसे स्थित कराकर उसकी पूर्ण परिचर्या करनी चाहिए ।।५।। ईषदान अर्थात् लघु दान ये हैं । भूमि, जल, तृण पाद प्रक्षालन, शरीर का अभ्यङ्ग, आश्रय, शय्या, कुछ अन्न जो भी शक्ति के अनुसार बन सके देना चाहिए । कुछ भी खिलाये बिना घर में न रक्खे । मिट्टी के पात्र का जल याचक को घर में अवश्य ही देना चाहिए ।।६-७।।

सन्ध्यास्नानं जपोहोमः स्वाध्यायो देवतार्च्चनम् ।
वैश्वदेवं तथातिथ्यमुन्घृतञ्चापि शक्तितः ।।८
पितृदेवमनुष्याणां दीनानाथतपस्विनाम् ।
मातापितृगुरुणाञ्च संविभागोयथार्हतः ।।९
एतानि नव कर्माणि विकर्माणि तथा पुनः ।
अनृतं पारदार्य्यञ्च तथाभक्षस्य भक्षणम् । १०
अगम्यागमनापेयपानं स्तेयञ्च हिंसनम् ।
अश्रौतकर्माचरणं मित्रधर्मबहिष्कृतम् ।।११
नवैतानि विकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ।
आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमैथुनभेषजम् ।।१२
तपोदानावमानौ च नव गोप्यानि यत्नतः ।
प्रायोग्यमृणशुद्धिश्च दानाध्ययन विक्रयाः ।।१३

कन्यादानं वृषोत्सर्गो रहः पापमकुत्सनम् ।
प्रकाश्यानि नवैतानि गृहस्थाश्रमिणस्तथा । १४

सन्ध्योपासन, स्नान, जप, होम, स्वाध्याय, देवार्चन, वैश्व देव और शक्तिपूर्वक अतिथि का सत्कार जो भी बन सके करना आवश्यक है । पितृ देव-मनुष्य, दीन, अनाथ, तपस्वी, माता, पिता, गुरु का योग्य गृहस्थाश्रमी के यहाँ सबका संविभाग रहना चाहिए—ये ही उसके सफल नौ सत्कर्म होते हैं ।।८-९।। अब गृहस्थाश्रमी नौ विकर्म अर्थात् त्याज्य कर्म बतलाते हैं । मिथ्या का भाषण तथा व्यवहार, पर स्त्री सम्पर्क, अभक्ष्य वस्तु का भोजन, अगम्य का गमन, अपेय वस्तु का पान, चोरी, हिंसा अवैदिक कर्मों का आचरण और मित्र धर्म के विपरीत रहना—ये ही नौ कुत्सित विकर्म होते हैं जिनका गृही को सर्वदा त्याग करना चाहिए ।।१०-११।। अपनी ठीक आयु, अपने पास रहने वाला धन, घर में होने वाली कोई गुप्त या बुरी बात, मन्त्र, मैथुन, दवा दान, अपना मान या सत्कार और कहीं भी होने वाला अपना निरादर—ये नौ बातें सर्वदा गुप्त ही रखनी चाहिए ।।१२-१३।। प्रकृष्ट योग, ऋण शुद्धि, दान और अध्ययन का विक्रय, कन्यादान, विजार छोड़ना, एकान्त में किया हुआ पाप और भलाई—ये नौ बातें गृहस्थ को सदा प्रकाशित कर देनी चाहिए ।।१४।।

मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणी ।
दीनानाथविशिष्टेभ्योदत्तन्तु सफलं भवेत् ।।१५
धूर्त्ते वन्दिन मन्दे च कुवैद्ये कितवे शठे ।
चाटुचारणचौरभ्योदत्तं भवति निष्फलम् ।।१६
सामान्य याचितं न्यास आधिर्दाराश्च तद्धनम् ।
क्रमायातञ्च निक्षेपः सर्वस्वञ्चान्वये सति ।।१७
आपस्त्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा ।
यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्तीयते नरः ।।१८
नवनवकवेत्तारमनुष्ठानपरं नरम् ।
इह लोके परे च श्रीः स्वर्गस्थञ्च न मुञ्चति ।।१९

यथ‚वात्मा परस्तद्वद्द्रष्टव्यः सुखमिच्छता ।
सुखदुःखानि तुल्यानि यथात्मनि तथा परे ।।२०
सुखं वा यदि वा दुःखं यत्किञ्चित् क्रियते परे ।
ततस्तत्तु पुनः पश्चात् सर्वमात्मनि जायते ।।२१

माता-पिता-गुरु-मित्र-विनीत और उपकार करने वाले को तथा दीन अनाथ और विशिष्ट को देकर गृहस्थ सफल होता है ।।१५।। धूर्त्त, बन्दी, मन्द-कुवैद्य-कितव-शठ-चाटुकार-चारण और चोरों को दिया हुआ सब निष्फल होता है ।।१६।। सामान्य-याचित-धरोहर-आधि-दारा-उसका धन-क्रम से आया हुआ निक्षेप और वश होने पर सर्वस्व ये नौ वस्तु आपत्तियों में भी सर्वदा नहीं देनी चाहिए । जो मूढ़ देता है वह प्रायश्चित के योग्य होता है ।।१७-१८।। नौ नवक का ज्ञाता और अनुष्ठान में परायण मनुष्य को भी इस लोक में तथा परलोक में स्वर्ग में स्थित को भी नहीं त्यागती है ।।१९।। जिस प्रकार अपनी आत्मा है वैसे ही दूसरे को भी सुख की इच्छा रखने वाले पुरुष को देखना चाहिए क्योंकि सुख और दुःख समान होते हैं जैसे अपने लिये होते हैं वैसे ही दूसरों को भी होते है ।।२०।। सुख या दुःख जो भी दूसरे के लिये किये जाते हैं, वे कुछ बाद में पीछे पर अपने ही लिये उत्पन्न होते हैं ।।२१।।

न क्लेशेन विना द्रव्यं द्रव्यहीने कुतः क्रिया ।
क्रियाहीने न धर्मः स्याद्धर्महीने कुतः सुखम् ।।२२
सुखं वाञ्छन्ति सर्वे हि तच्च धर्मसमुद्भवम् ।
तस्ताद्धर्मः सदा कार्य्यः सर्ववर्णैः प्रयत्नतः ।।२३
न्यायागतेन द्रव्येण कर्तव्य पारलौकिकम ।
दानञ्च विधिना देय काले पात्रे गुणान्विते ।।२४
समद्विगुणसाहस्रमानन्त्यञ्च यथाक्रमम् ।
दाने फलविशेषः स्याद्धिसायां तावदेव तु ।।२५
सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ।
सहस्रगुणमाचार्य्यं त्वनन्तं वेदपारगे ।।२६

विधीहीने तथा पात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ।
न केवलं तद्विनश्येच्छेषमप्यस्य नश्यति ॥२७
व्यसनप्रतिकाराय कुटुम्बार्थञ्च याचते ।
एवमन्विष्य दातव्यमन्यथा न फलं भवेत् ॥२८
मातापितृविहीनन्तु संस्काराद्वहनादिभिः ॥२९
यः स्थापयति तस्येह पुण्यसंख्या न विद्यते ॥३०
न तच्छ्रेयोऽग्निहोत्रेण नाग्निष्टोमेन लभ्यते ।
यच्छ्रेयः प्राप्यते पुंसा विप्रेण स्थापितेन तु ॥३१
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे ।
तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥३२

क्लेश के बिना धन नहीं मिलता है और जो द्रव्य हीन है उसमें क्रिया किस प्रकार हो सकती है। सभी सुख चाहते हैं किन्तु वह सुख धर्म से उत्पन्न होने वाला ही होना है । इसलिये सदा धर्म करना चाहिए और सभी वर्ण वालों को प्रयत्न सहित करना चाहिए ॥२२॥ न्याय से जो धन आया हो उससे पर-लौकिक कर्त्तव्य करना चाहिए। गुणों से युक्त पात्र को ही विधिपूर्वक समय पर दान देना चाहिए ॥२३-२४॥ दान और हिंसा में समय-पात्र और विधि के अनुसार सम-दुगना-हजार-गुना और क्रमानुसार अनन्त फल तथा कुफल होता ॥२५॥ ब्राह्मणेतर को दिये हुए दान का सम फल होता है, ब्राह्मणब्रुव को दिये हुए दान का फल द्विगुण और आचार्य को दिये हुए दान का फल सहस्र गुना तथा वेद के पारगामी विद्वान ब्राह्मण को दिये हुये दान का अनन्त फल होता है ॥२६॥ विधिहीन पात्र को जो कोई भी दान देता है उसका केवल वही नष्ट नहीं होता है ॥२७॥ अपने व्यसन (दुःख) के प्रतिकार के लिए अथवा अपने कुटुम्ब के सपूणादि के लिऐ जो कोई याचना करता है—ऐसा अन्वेषण करके दान करना चाहिए अन्यथा दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है ॥२८॥ माता पिता से हीन ो विवाह और संस्कारादि के द्वारा

इस संसार में प्रतिष्ठित किया करता है उसके पुण्य की कोई संख्या नहीं होती है अर्थात् अमिति पुण्य होता है ॥२९-३०॥ अग्नि-होत्र करने के द्वारा उतना श्रेय नहीं होता है और अग्निष्टोम से भी वैसा कल्याण तथा पुण्य नहीं होता है, जितना या जैसा किसी ब्राह्मण को यहाँ भली प्रकार से स्थापित करने से मनुष्यों को श्रेय मिलता है ।:१। संसार में जो-जो भी अत्यन्त अपना अभीष्ट हो और जो यद्यपि घर में प्रिय भी हो उसे-उसे किसी गुणयुक्त पात्र को दान रूप में देना चाहिए यदि उस-उस वस्तु की अक्षय रूप में चाह होती है अर्थात् प्रदत्त वस्तु अक्षय होकर पुनः मिलती है ॥३२॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

पत्नीमूलं गृहं पुंसा यदि च्छन्दोऽनुवर्तिनी ।
गृहाश्रमसमं नास्ति यदि भार्य्या वशानुगा ॥१
तया धर्मार्थकामानां त्रिवर्गफलमश्नुते ।
प्राकाम्ये वर्त्तमाना तु स्नेहान्नतु निवारिता ॥२
अवश्या सा भवेत् पश्चाद् यथा व्याधिरुपेक्षितः ।
अनुकूला नवाग्दुष्टा दक्षा साध्वी प्रियम्वदा ॥३
आत्मगुप्ता स्वामिभक्ता देवता सा न मानुषी ॥४
अनुकूलकलत्रोय स्तस्य स्वर्ग इहैव हि ।
प्रतिकूलकलत्रस्य नरको नात्र संशयः ॥५
स्वर्गेऽपि दुर्लभं ह्येतदनुरागः परस्परम् ।
रक्त एको विरक्तोऽन्यस्तस्मात् कष्टतरं नु किम् ॥६
गृहवासः सुखार्थाय पत्नीमूलं गृहे सुखम् ।
सा पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्त्तिनी ॥७

पुरुषों का घर का मूल पत्नी होती है यदि वह अपने स्वभाव के अनुकूल व्यवहार वाली हो । यदि भार्या अपने वश वर्तिनी हो तो

गृहस्थाश्रम के तुल्य आनन्दप्रद अन्य कुछ भी नहीं है ।।१।। स्नेह से निवारत न हो और इच्छा के अनुकूल वर्त्तमान रहने वाली भार्या हो तो उसके द्वारा धर्म-अर्थ और काम का त्रिवर्ग फल प्राप्त होता है ।।२।। जिस प्रकार व्याधि की उपेक्षा कर देने पर वह असाध्य हो जाती है उसी तरह उपेक्षित भाव से पीछे स्त्री भी अवश्या हो जाती है ।३। जो पति के सदा अनुकूल हो, वाणी से दुष्ट न हो, दक्ष हो, साध्वी हो, प्रिय बोलने वाली हो, आत्म गुप्ता और स्वामी की भक्त हो एसी भार्या मानुष नहीं, देवी स्वरूप ही है ।।४। जिसकी पत्नी पति के अनुकूल रहने वाली हो उसके लिये यहाँ पर ही स्वर्ग है और जिसकी सदा प्रतिकूल हो उसको यहाँ नरक ही है- इसमें तनिक भी सन्देह नही है ।।५।। स्वर्ग मे भी पारस्परिक प्रेमानुराग दुर्लभ होता है । एक अनुराग युक्त है तो दूसरा विरक्त होता है । इससे अधिक कष्टप्रद क्या हो सकता है ।।६ । गृह का निवास सुख के लिये ही होता है और घर मे सुख का मूल पत्नी ही होती है । यदि वह पत्नी विनम्र, चित्त की बात जानने वाली और वश में रहने वाली होती हैं ।।७।।

दुःखा ह्यन्ता सदा खिन्ना चित्तभेदः परस्परम् ।
प्रतिकूलकलत्रस्य द्विदारस्य विशेषतः ।।८
योषित्सर्वा जलौकेव भूषणाच्छादनाशनैः ।
सुभृत्यापि कृता नित्यं पुरुषं ह्यपकर्षति ।।९
जलौका रक्तमादत्ते केवलं सा तपस्विनी ।
इतरा तु धनं वित्तं मांसं वीर्यं बलं सुखम् ।।१०
सशङ्का बालभावे तु यौवने विमुखी भवेत् ।
तृणवन्मन्यते पश्चाद्वृद्धभावे स्वकं पतिम् ।।११
अनुकूला नवाग्दुष्टा दक्षा साध्वी पतिव्रता ।
एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ।।१२
या हृष्टमनसा नित्यं स्थानमान विचक्षणा ।
भर्त्तुः प्रीतिकरी नित्यं सा भार्य्या होतरा जरा ।।१३

शिष्योभार्य्या शिशुर्भ्राता पुत्रो दासः समाश्रितः ।
यस्यैतानि विनीता तस्य लोके हि गौरवम् ।।१४

दूसरी ऐसी होती है कि सर्वदा दुःख स्वरूप रहती है । सदा खिन्न रहा करती है । दोनों के चित्त में भेद भाव रहता है अर्थात् आपस में भेद रखती है । प्रतिकूल पत्नी वाले तथा खासकर दो पत्नियों वाले पुरुष को दुःख ही होता है घर में कोई भी सुख नहीं होता है ।।८।। सभी स्त्री जौंक की भाँति होती हैं । भूषण और आच्छादन सुन्दर वस्त्र तथा भोजनादि से सुसज्जित रहती हुई भी नित्य ही पुरुष का अपकर्षण किया करती हैं ।।९ । केवल तपस्विनी जौंक रक्त का पान करती है । दूसरी (स्त्री) तो धन-वित्त-माँस वीर्य-बल और सुख सभी का आकर्षण करती है ।।१०।। बाल भाव में तो स्त्री शङ्का युक्त रहा करती है और यौवन में विमुख हो जाती है और पीछे वृद्ध भाव में तो अपने पति को तिनके के समान समझा करती है । अनुकूल-ऐसी जो वाणी से बोलने में दुष्ट न हो-कुशल—साधु आचार वाली और पति व्रता इन गुणों से युक्त पत्नी साक्षात् लक्ष्मी ही होती है साधारण स्त्री नहीं होती है ।।१२।। जो सर्वदा प्रसन्न मन वाली और नित्य ही स्थान तथा मान में विच-क्षण हो, अपने स्वामी की प्रीति को करने वाली हो वही वास्तव में भार्या है अन्यथा भार्या नहीं बुढ़ापे के तुल्य है ।।१३।। जिसका शिष्य-भार्य्या बच्चा भाई-पुत्र-दास और अन्य जो समाश्रय में रहने वाला हो-ये सब विनीत हों, उसका ही संसार में वास्तविक गौरव होता है ।।१ ।।

प्रथमा धर्मपत्नी च द्वितीया रतिवर्द्धिन ।
पृष्टमेव फलं तत्र नादृष्टमुपजायते ।।१५

धर्मपत्नी समाख्याता निर्दोषा यदि सा भवेत् ।
दोषे सति न दोषः स्यादन्या भार्य्या गुणान्विता ।।१६

अदृष्टापतितां भार्य्यां यौवने यः परित्यजेत् ।
स जीवनान्ते स्त्रीत्वञ्च बन्ध्यत्वञ्च समाप्नुयात् ।।१७

दरिद्रं व्याधितं चैव भर्त्तारं यावमन्यते ।
शुनी गृध्री च मकरी जायते सा पुनः पुनः ॥१८
मृते भर्त्तरि या नारी समारोहेद्धुताशनम् ।
सा भवेत्तु शुभाचारा स्वर्गलोके महीयते ॥१९
व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ।
तथा सा पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥२०
चाण्डालप्रत्यवसितपरिव्राजकतापसाः ।
तेषां जातान्यपत्यानि चाण्डालैः सह वासयेत् ॥२१

प्रथम तो स्त्री धर्मपत्नी है अर्थात् धार्मिक विधि से धर्म वृद्धि के ही लिये होती है । दूसरे वह रति के बढ़ाने वाली होती है इसमें यह फल दृष्ट हो होता है यह अदृष्ट नहीं होता है ॥१५॥ यदि पत्नी में किसी भी प्रकार कोई दोष नहीं होता है तो वह धर्म पत्नी कही गई है। दोष होने पर भी कोई दोष न माने वह अन्य गुणयुक्त भार्या होती है ॥१६॥ अदृष्टापतित भार्या को जो यौवन काल में त्याग देता है वह जीवन के अन्त में स्त्रीत्व तथा वन्ध्यात्व को प्राप्त होता है ॥२७॥ जो स्त्री दरिद्र व्याधित अपने स्वामी का अपमान करती है वह कुतिया, गधी तथा मकरी बा बार-बार जन्म लिया करती है ॥१८॥ अपने पति के मरने पर जो सती धर्म का पालन करती है वह शुभ आचरण वाली स्वर्ग में भी महत्व प्राप्त करती है ॥१९॥ सर्पों के पकड़ने वाला जैसे सर्प को उसके बिल से बल पूर्वक निकाल लेता है उसी प्रकार साध्वी सती अपने पति का उद्धार कर उसी के साथ प्रसन्नता प्राप्त किया करती है ॥२०॥ चाण्डाल–प्रत्यवसित–परिव्राजक (सन्यासी) और तापस इनके उत्पन्न सन्तति को चाण्डालों के साथ वास करा देना चाहिए ॥२१॥

———

अथ पंचमोऽध्यायः

उक्तं शौचमशौचञ्च कार्य्यं त्याज्यं मनीषिभिः ।
विशेषार्थं तयोः किञ्चिद्वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१
शौचे यत्नतः सदाकार्यः शौचमूलोद्विजः स्मृतः ।
शौचाचारविहीनस्य समस्तानिष्फलाः क्रियाः ॥२
शोचञ्च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरन्तथा ।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तथान्तरम् ॥३
अशौचाद्धि वरं बाह्यं तस्मादाभ्यन्तरं वरम् ।
उभाभ्याञ्च शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरः शुचिः ॥४
एका लिङ्गे गुदे तिस्रोदश वामकरे तथा ।
उभयो सप्त दातव्या मृदस्तिस्रस्तु पादयोः ॥५
गृहस्थशौचमाख्यातं त्रिष्वन्येषु यथाक्रमम् ।
द्विगुणं त्रिगुणञ्चैव चतुर्थस्य चतुर्गुणम् ॥६
अर्द्धं प्रसूतिमात्रन्तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता ।
द्वितीया च तृतीया च तदर्द्धं परिकीर्तिता ॥७

शौच (शुद्धि) और अशौच बता दिया गया है । मनीषियों को जो करना चाहिए तथा त्याग देना चाहिए । अब उन दोनों का विशेष अर्थ हित की कामना से कुछ बताते हैं ॥१॥ शौच (पवित्रता) में सदा यत्न करना चाहिए और शौच मूल ब्राह्मण ही होता है । जो शौच और आचार से विहीन होता है उसको समस्त क्रियाऐं निष्फल हुआ करती हैं ॥२॥ शौच भी बाह्य (बाहिरी) और (आभ्यन्तर) अन्दरूनी दो प्रकार का होता है । मिट्टी और जल के द्वारा बाह्य होता है तथा मन में भावों की शुद्धि से आन्तरिक शौच होता है ॥३॥ अशौच रहने की अपेक्षा तो बाह्य शौच श्रेष्ठ होता है । किन्तु आभ्यन्तर उससे पर होता है । दोनों प्रकार से शुचि (पवित्र) होता है वही मनुष्य शुद्ध होता है दूसरा नहीं होता है ॥४॥ एक बार मिट्टी

से मार्जन उपस्थ पर करे, तीन बार गुदा पर, दश बार बाँये हाथ पर, दोनों हाथों पर सात बार और तीन बार पैरों पर करना चाहिए ॥५॥ यह शौच का क्रम गृहस्थाश्रमी के लिये बताया गया है । अन्य तीन आश्रमों के रहने वालों का शौच यथा क्रम द्विगुण-त्रिगुण और चौगुना होना चाहिए ॥६॥ आधी प्रसृति (पसा) मात्र मृत्तिका पहिली बार लेनी चाहिए । फिर दूसरी और तीसरी क्रम से आधी-आधी लेवे ॥७॥

लिङ्गेऽप्यत्र समाख्याता त्रिपर्वी पूर्य्यते यया ।
एवच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥८
त्रिगुणन्तु वनस्थाना यतीनांच चतुर्गुणम् ।
दातव्यमुदकन्तावन्मृदभावोयथा भवेत् । ९
मृदा जलेन शुद्धिः स्यान्नक्लेशो न धनव्ययः ।
यस्य शौचेऽपि शैथिल्यं चित्तं तस्य परीक्षितम् ॥१०
अन्यदेव दिवाशौचं रात्रवन्यद्विधीयते ।
अन्यदापत्सु विप्राणामन्यदेव ह्यनापदि ॥११
दिवोदितस्य शौचस्य रात्रावर्द्धं विधीयते ।
तदर्द्धं मातुरस्याहुस्त्वरायामर्द्धं मध्वनि ।.१२
न्यूनाधिकं न कर्तव्यं शौचे शुद्धिमभीप्सता ।
प्रायश्चित्तेन युज्येत विहितातिक्रमे कृते ।१३

लिङ्ग पर भी इतनी बतलाई गई है जिससे तीन पर्व की पूर्त्ति हो सके । यह शुद्धि का प्रकार केवल गृहस्थों के लिये ही है । ब्रह्मचर्यावस्था में जो रहते हैं उनका इससे दुगुना होता है ॥८॥ वानप्रस्थों का तिगुना और यतियों का चौगुना होना चाहिए । जब तक जल और मिट्टी का अभाव न हो देनी चाहिए ॥९॥ मिट्टी और जल के द्वारा ही शुद्धि होती है । इसमें न तो कोई क्लेश ही है और न धन का ही व्यय अधिक होता है । जिनकी अपनी शुद्धि करने में ही शिथिलता होती है उसके चित्त की परीक्षा हो ही जाती है ॥१०॥ दिन का शौच दूसरी

प्रकार का होता है और रात्रि की शुद्धि अन्य प्रकार की होती है। आपत्ति काल तथा अनापत्ति काल में ब्राह्मणों की शुद्धि करने का विधान भी और ही होता है ॥११॥ दिन में जो शौच का क्रम बताया गया है उससे आधा रात्रि में करना चाहिए। आतुरावस्था में इससे भी आधा भाग ही करे और यदि कोई शीघ्रता हो तो उससे भी आधा भाग कृत्य करने से शुद्धि हो जाती है ॥१२॥ शुद्धि चाहने वाले को न्यूनता तथा अधिकता नहीं करनी चाहिए। जो विधान बताया गया है उसका उलंघन करने पर प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥१३॥

———

अथ षष्ठोऽध्यायः

सूतकं तु प्रवक्ष्यामि जन्ममृत्युसमुद्भवम्।
यावज्जीवं तृतीयन्तु यथावदनुपूर्वशः ॥१

सद्यः शौचं तथैकाहोद्वित्रिचतुरहस्तथा।
दशाहो द्वादशाहश्च पक्षोमाहस्तथैव च ॥२

मरणान्तं तथा चान्यद्दशपक्षन्तु सूतके।
उपन्यस्तक्रमेणैव वक्ष्याम्यहमशेषतः ॥३

ग्रन्थार्थं यो विजानाति वेदमङ्गैः समन्वितम्।
संकल्प सरहस्यञ्च क्रियावांश्चेन्न सूतकी ॥४

राजर्त्विग्दीक्षितानांच बाले देशान्तरे तथा।
व्रतिनां सत्रिणांचैव सद्यः शौच विधीयते ॥५

एकाहस्तु समाख्यातो योऽग्निवेदसमन्वितः।
हीने हीनतरेचैव द्वित्रिचतुरहस्तथा ॥६

जातिविप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्य पचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्धचति ॥७

जन्म और मृत्यु हो जाने पर जो सूतक लगता है उसको बतलाते हैं। तीसरा सूतक ऐसा है जो अन्त तक स्थिर रहता हैं। इन्हें यथावत् क्रम से बताया जाता है।।१।। सद्यः शुद्धि होती है, तथा एक दिन में, दो दिन में, तीन और चार दिन में शुद्धि होती है। दश दिन, बारह दिन, एक पक्ष तथा एक पूरे मास में शुद्धि होती है ।।२।। सूतक में दश पक्ष एवं मरण पर्यन्त भी शुद्धि होती है। बताये गये क्रम से ही यहाँ सब बताया जाता है ।।३।। अङ्गों से युक्त वेद को और ग्रन्थ के अर्थ को जो भली भाँति जानता है वह भी कल्प और रहस्य के सहित जानता है और जो क्रियावान् पुरुष होता है वह सूतकी नहीं होता है ।।४।। राजा ऋत्विक्, दीक्षित, बाल और देशान्तर में स्थित, व्रती, सत्र करने वाला-इन सबको शुद्धि तुरन्त ही हो जाती है-ऐसी शास्त्र की आज्ञा है ।।५।। एक दिन की शुद्धि उसके लिये बतलाई गई है जो अग्नि और वेद से समन्वित होता है। जो हीन हो तथा और भी अधिक हीन हो उनकी शुद्धि दो-तीन और चार दिन में शुद्धि होती है ।।६।। विप्र जाति की दश दिन में तथा क्षत्रिय की बारह दिन में,वैश्य की पन्द्रह दिन में और शूद्र की शुद्धि एक मास में होती है ।।७।।

अस्नाता चाप्यहुत्वा च भुङ्क्तेऽदत्वा च यः पुनः।
एवं विधस्य सर्वस्य सूतकं समुदाहृतम्।
व्याधितस्य कदर्य्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा।
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ।।८
व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः।
श्रद्धात्यागविहीनस्य भस्मान्तं सूतकं भवेत् ।।९
न सतकं कदाचित् स्याद्यावज्जावन्तु सूतकम्।
एवं गुणविशेषेण सूतकं समुदाहृतम् ।।१०
सूतके मृतके चैव तथा च मृतसूतके।
एतत्संहतशौचानां मृतशौचेन शुद्धयति ।।११
दानं प्रतिगहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते।
दशाहात्तु परं शौचं विप्रोऽर्हति च धर्मवित् ।।१२

दानञ्च विधिना देयं अशुभात्तारकं हि तत् ।
मृतकान्ते मृतो यस्तु सूतकान्ते च सूतकम् ॥१३
एतत्संहतशौचानां पूर्वाशौचेन शुद्धयति ।
उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ॥१४

जो स्नान न करके, हवन न करके और दान न करके भोजन कर लेता है, इस प्रकार के सभी व्यक्तियों को भी सूतक बताया गया है। जो व्याधिग्रस्त होता है, कदर्य होता है, सर्वदा ऋण से ग्रसित रहता है, अपनी क्रिया से हीन होता है, मूर्ख होता है और खास तौर से स्त्री के द्वारा जीता हुआ होता है, व्यसनों में आसक्त चित्त वाला होता है, नित्य ही परायी अधीनता में रहने वाला, श्रद्धा और त्याग से जो रहित होता है ऐसे पुरुषों का सूतक तो सर्वदा ही बना रहता है और मर कर जब तक उनकी भस्म होती है जब तक रहता है ॥८-९॥ किसी समय विशेष में सूतक नहीं होता है बल्कि जब तक जीवन रहता है तब तक ऐसे पुरुषों का सूतक बना ही रहता है। इस तरह गुणों की विशेषता के अनुसार सूतक बताया गया है ॥१०॥ सूतक में, मृतक में और मृत सूतक में इस प्रकार के संहत शौचवालों की शुद्धि मृत शौच से ही होती है ॥११॥ सूतक की दशा में दान देना, प्रतिग्रह लेना, होम करना, वेद का स्वाध्याय करना सभी निवृत्त हो जाते हैं। धर्म के वेत्ता ब्राह्मण की शुद्धि दश दिन के पश्चात हो जाती है ॥१२॥ दान विधि के साथ देना चाहिए जो अशुभ से रक्षा करता है, मृतक के अन्त में जो मृत हो और सूतक के अन्त जो सूतक हो ॥१३॥ इस प्रकार के संहत शौचों की पूर्व अशौच से शुद्धि होती है। दोनों प्रकार के सूतकों में उस कुल का अन्न नहीं खाया जाता है ॥१४॥

चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थि संचयं द्विजः ।
ततः संचयनादूद्धर्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥१५
वर्णानामानुलोम्येन स्त्रीणामेकोयदा पतिः ।
दशषट्त्र्यहमेकाहः प्रसवे सूतकं भवेत् ॥१६

यज्ञकाले विवाहे च देशभङ्गे तथैव च ।
हूयमाने तथाग्नौ च नाशौचं मृतसूतके ।१७
स्वस्थकाले त्विदं सर्वमशौचं परिकीर्तितम् ।।१८
आपद्गतस्य सर्वस्य सूतके नतु सूतकम् ।।१८

ब्राह्मणों को चौथे दिन अस्थियों का सञ्चय करना चाहिए। जब अस्थियों का सञ्चय न हो, अङ्ग स्पर्श नहीं करना चाहिऐ ।।१५।। वर्णों के अनुलोम्य से स्त्रियों का जब एक ही पति होतो, दश–छः–तीन और एक दिन का जातका शौच अर्थात् प्रसव होने पर सूतक होता है ।।१६।। यज्ञ के समय में, विवाह, देश के भङ्ग होने के समय में और अग्नि में हवन करने के समय में मृत सूतक में अशौच नहीं होता है ।।१७।। स्वस्थता की दशा में यह सभो अशौच बताया गया है । सभी को जब कि आपत्ति में ग्रस्त हो तो सूतक में भी सूतक नहीं होता है ।।१८।।

अथ सप्तमोध्यायः

लोको वशीकृतो येन येन चात्मा वशीकृतः ।
इन्द्रियार्थो जितो येन तं योगं प्रब्रवीम्यहम् ।।१
प्राणायापस्तथा ध्यानं प्रत्याहारस्तु धारणा ।
तकंश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते ।।२
नारण्यसेवनाद्योगो नानेकग्रन्थ चिन्तनात् ।
व्रतैर्यज्ञैस्तपोभिश्च न योगः कस्यचिद्भवेत् ।।३
नच पथ्याशनाद्योगो नासाग्रनिरीक्षणात् ।
नच शास्त्रातिरिक्तेन शौचेन स भवेत् क्वचित् ।।४
न मौनमन्त्रकुहकैरनेकैः सुकृतैस्तथा ।
लोकयात्रावियुक्तस्य योगो भवति कस्यचित् ।।५
अभियोगात्तथाभ्यासात्तस्मिन्नेव तु निश्चयात् ।
पुनः पुनश्च निर्वेदाद्योगः सिद्धयति नान्यथा ।।६

आत्मचिन्ताविनोदेन शौचक्रीडरकेन च
सर्व्वभूतसमत्वेन योगः सिध्यति नान्यथा ।।७

जिसने अपनी आत्मा को अर्थात् अपने आप को वश में कर लिया है उसने समस्त संसार को वश में कर लिया समझना चाहिए । जिसने इन्द्रियों के विषयों को जीत लिया है उस योग को मैं बतलाता हूँ ।।१।। प्राणायात, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा तर्क और समाधि ये ही छः योग के अङ्ग होते हैं । इनको क्रमशः अभ्यस्त कर लेना ही योगाभ्यास होता है ।।२।। केवल वन निवास कर लेने से योग सिद्धि नहीं होती और न बहुत से ग्रन्थों के पढ़ने या चिन्तन से ही योग में सफलता होती है । व्रत, यज्ञ और तपश्चर्या आदि से भी कभी किसी को योग सिद्धि नहीं हो सकती है ।।३।। सदा पथ्य भोजन करने या नासाग्र भाग पर त्राटन करने और शास्त्रोक्त से भी अधिक शौच विधि का आडम्बर रखने से योग की सिद्धि नहीं हो सकती है ।।४।। मौन मंत्र कुहकों से तथा अनेक सकृतों किसी का भी जो लोक यात्रा से वियुक्त होता है योग नहीं होता है ।।५।। योग कि सिद्धि अभियोग, नित्याभ्यास, योग में पूर्ण निश्चय और बार-बार निर्वेद (वैराग) से ही होती है, इसका कोई दूसरा मार्ग नहीं है ।।६।। सर्वदा आत्म–चिन्तक का आनन्दानुभव करने से तथा शौच के क्रीडनक (खिलौने) द्वारा रहने से अर्थात् शुद्धि पूर्वक वरतने से और समस्त प्राणियों को समभाव से देखने से योग सिद्ध होता है अन्य कोई इसकी सिद्धि का विधान नहीं है ।।७।।

याश्चत्मनि रतोनित्यक्रीडस्तथैव च ।
आत्मनिष्ठश्च सततमात्मन्येव स्वभावतः ।।८
रतश्चैव स्वयं तुष्टः सन्तुष्टो नान्यमानसः ।
आत्मन्येव सुतृप्तोऽसौ योगस्तस्य प्रसिद्धचति ।।९
सुप्तोऽपि योगयुक्तः स्यांजग्रच्चापि विशेषतः ।
ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो गरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ।।१०
य आत्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नैव पश्यति ।
ब्रह्मीभूय स एवं हि दक्षपक्ष उदाहृतः ।।११

विषयासक्तचित्तोहि यतिर्मोक्षं न विन्दति ।
यत्नेन विषयासक्तिं तस्याद्योगी विवर्जयेत् ॥१२
विषयेन्द्रियसंयोगः केचिद्योगं वदन्ति हि ।
अधर्मो धर्मरूपेण गृहीतस्तैरपण्डितः ॥१३
मनसश्चात्मनश्चैव संयोगञ्च तथापरे ।
उक्तानुमधिका ह्येते केवलं योवंचिताः ॥१४

अपनी आत्मा में रमण करते हुए आत्मरत योगी को रहना चाहिए। स्वभाव से ही आत्मनिष्ठ होकर सदा आत्म कल्याण का चिन्तन ही योगी का कर्त्तव्य है ॥८॥ स्वयं अपने आप रत रहकर पूर्ण सन्तुष्ट रहे और योगाभ्यासी अपने मन को एक निष्ठ करे। जो स्वात्मतृप्त रहता है उसी को योग की सिद्धि होती है ॥९॥ सुषुप्ति अवस्था में भी योगाभ्यास रहे और जाग्रत दशा में तो विशेष रूप से अभ्यासरत योगी का रहना चाहिए। इस प्रकार की जिसकी योग में सदा चेष्टा रहती है वही ब्रह्मवादियों में सर्वश्रेष्ठ एवं बड़ा कहा गया है ॥१०॥ जो इस जगत में सर्वत्र आत्मा ही को देखता है और आत्मा के अतिरिक्त दूसरी कोई भी वस्तु उसे दिखलाई नहीं देती है, दक्ष का पक्ष यही है कि ऐसा अभ्यासी योगी ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है ॥११॥ जो यति तो है किन्तु विषयों में मन और बुद्धि आसक्त है, ऐसा यति कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं करता है। अतः विषयों की ओर जाने वाले मन को यत्नपूर्वक हटाकर उनमें आसक्ति योगी को पूर्ण रूप से त्याग देनी चाहिए ॥१२॥ कुछ लोग विषयों और इन्द्रियों के संयोग को ही योग कहते हैं। जो अपण्डित है उन्होंने ही इस अधर्म को धर्म के रूप से ग्रहण किया है ॥१३॥ दूसरे लोग मन और आत्मा के संयोग को ही योग के नाम से पुकारते हैं। ऐसे लोग केवल कथन मात्र से ही होते हैं, वस्तुतः जो योग है उससे वंचित ही रहते हैं ॥१४॥

वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ।
एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते ॥१५

कषायमोहविक्षेपलज्जाशङ्कादिचेतसः ।
व्यापारास्तु समाख्यातास्तान् जित्वा वशमानयेत् ॥१६
कुटुम्बं पंचभिर्ग्राम्यैः षष्ठस्तत्र महत्तरः ।
देवासुरमनुष्यैस्तु स जेतुं नैव शक्यते ॥१७
बलेन परराष्ट्राणि गृह्णन् शूरस्तु नोच्यते ।
जितो येनेन्द्रियग्रामः स शूरः कथ्यते बुधैः ।१८
वहिर्मुखानि सर्व्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै ।
सर्वञ्चवेन्द्रियग्रामं मनश्चात्मनि योजयेत् ॥१९
सर्वभावविनिर्मुक्तः क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत् ।
एतद्ध्यानंच योगश्च शेषाः स्युर्ग्रन्थविस्तराः ॥२०
त्यक्त्वां विषयभोगांश्च मनोनिश्चलतां गतम् ।
आत्मशक्तिस्वरूपेण समाधिः परिकीर्त्तितः ॥२१

क्षेत्रज्ञ मन को वृत्ति रहित करके परमात्मा में एकीकरण करके छोड़ देते हैं, वास्तव में मुख्य योग यही होता है ॥१५॥ कषाय, मोंह विशेष, लज्जा और शङ्कादि चित्त वाले व्यापार कहे गये हैं । इन सबको जीतकर मन को वश में लाना चाहिए ॥१६॥ ग्राम के पाँच कुटुम्ब से यह छठा विशेष बड़ा होता है देव तथा असुरों एवं मनुष्यों से वह जीता नहीं जा सकता है ॥१७॥ बल से दूसरे राष्ट्रों को ग्रहण करने वाला कभी शूरवीर नहीं कहा जाता है । जिसने अपनी इन्द्रियों के समूह को जीत लिया है, पण्डितों के द्वारा वही शूर कहा जाता है ॥१८॥ जो सर्वदा अपने अभिमुख रहते हैं उन्हें सबका वहिर्मुख करके समस्त इन्द्रियों के समुदाय को तथा मन का आत्मा में योजित करना चाहिए ॥१९॥ समस्त प्रकार के भावों से निर्मुक्त होकर क्षेत्रज्ञ को ब्रह्म में लगावे । यही ध्यान है और यही योग है । बाकी तो सब बातें ग्रन्थों के विस्तार मात्र भरी हुई हैं ॥२०॥ विषय भोगों का त्याग कर निश्चलता को प्राप्त होने वाला मन आत्मा की शक्ति का स्वरूप धारण कर लेने से ही वह अवस्था प्राप्त कर लेता है जिसे समाधि कहा जाता है ॥२१॥

चतुर्णां सन्निकर्षेण पदं यत्तदशाश्वतम् ।
द्वयोस्तु सन्निकर्षेण शाश्वतं ध्रुवमक्षयम् ।।२२
यन्नास्ति सर्व्वलोकस्य तदस्तीति विरुद्धचते ।
कथ्यमानं पथान्यस्य हृदये नावतिष्ठते ।।२३
स्वसम्वेद्यं हि तद्ब्रह्मा कुमारीमैथुनं यथा ।
अयोगी नैव जानाति जातान्धोहि यथा घटम् । २४
नित्याभ्यसनशीलस्य सुसंवेद्यं हि तद्भवेत् ।
तत्सूक्ष्मत्वादनिर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम् ।।२५
बुधस्त्वाभरणं भाव मनसालोचनं यथा ।
मन्यते स्त्री च मूर्खश्च तदेव बहुमन्यते ।।२६
सत्त्वोत्कटा। सुराश्चापि विषयेण वशीकृताः ।
प्रमादिभिः क्षुद्रसत्वैर्मानुषैरत्र का कथा ।।२७
तस्मात्त्यक्तकषायेण कर्तव्यं दण्डधारणम् ।
इतरस्तु न शक्नोति विषयैरभिभूयते ।।२८

चारों के सन्निकर्ष जो पद प्राप्त होता है वह शाश्वत नहीं होता है अर्थात् नित्य या सर्वदा रहने वाला नहीं है। दो के सन्निकर्ष से पद (स्थान) प्राप्त होता है वह शाश्वत, अटल और अक्षय होता है ।।२२।। जो समस्त लोगों का नहीं होता है-यह विरोधयुक्त बात है । अन्य को उस प्रकार कही हुई बात हृदय में नहीं जमती है ।।२३।। ब्रह्म अपने ही द्वारा जानने की वस्तु है जिस प्रकार कुमारी का मैथुन होता है । जो योगी नहीं है वह ब्रह्म को कभी नहीं जानता है जिस प्रकार जन्म से ही अन्धा पुरुष घर को नहीं जानता है कि उसकी कैसी रूप रेखा है ।।२४।। प्रतिदिन अभ्यास करने के स्वभाव वाला पुरुष जो होता है उसी के द्वारा ब्रह्म जाना जा सकता है । बस इतना सूक्ष्म है कि उसका निर्देश नहीं किया जा सकता है वह परात्पर है और ब्रह्म सनातन है अर्थात् सर्वदा से रहने वाला है ।।२५।। पण्डित तथा ज्ञानी पुरुष के लिये मन से तत्व की आलोचना करना ही शोभादायक आभरण होता है। स्त्री और मूर्ख वैसे आभरण को ही बहुत कुछ मानते है। २६।. उत्कट सत्त्व वाले देव-

गण भी विषय से वश में आ जाते हैं। जो प्रमादी तुच्छ जीव मनुष्य हैं उनकी तो बात ही क्या है अर्थात् ऐसे लोगों का विषय लिप्त होना तो साधारण बात है ॥२७॥ अतएव साँसारिक भोग के कसैलेपन का त्याग करने वाले पुरुष को दण्ड धारण करना चाहिए अर्थात सन्यास ले लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी विषयों को नहीं त्याग सकता है क्योंकि विषयों के द्वारा बलात् मनुष्य अभिभूत हो जाता है ॥२८॥

न स्थिर क्षणमप्येकमुदकं हि यथोर्मिभिः !
वाताहतं तथा चित्त तस्मात्तस्य न विश्वसेत् ॥२९
त्रिदण्डव्यपदेशेन जीवन्ति बहवो नराः।
योहि ब्रह्म च जानाति न त्रिदण्डार्हं एव सः ॥३०
ब्रह्मचर्य्यं सदा रक्षेदष्टधा मैथुनं पृथक्।
स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥३१
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः। ३२
न ध्यातव्य न वक्तव्य न कर्त्तव्यं कदाचन।
एतैः सर्वैं सुसम्पन्नो यतिर्भवति नेतरः ॥३३
पारिव्रज्यं गृहीत्वा च योधर्मे नावतिष्ठते।
श्वपदेनाङ्कयित्वा तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ॥३४
एकोभिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वौ चैव मिथुनं स्मृतम।
त्रयो ग्रामस्तथा ख्यात ऊर्द्ध्वन्तु नगरायते ॥३५

जल एक क्षण मात्र के लिये भी तरङ्गों से जिस प्रकार स्थिर नहीं रहता है क्योंकि वह वायु से चंचल होता रहता है। उसी प्रकार चित्त में भी बहुत चचल होता है अतएव कभी विश्वास नहीं करे ॥२९॥ तीन दण्ड संन्यासी धारण किया करता है अतः तीन दण्ड के व्यवदेश से बहुत से मनुष्य जीवित रहते हैं अर्थात् मनुष्य संन्यासी के भेष में पाये जाते हैं किन्तु जो ब्रह्म को नहीं जानता है वह तीन दण्ड धारण के योग्य नहीं होता है ॥३०॥ मनुष्य को ब्रह्मचर्य की रक्षा रखनी चाहिए। मैथुन भी

आठ प्रकार का पृथक् २ होता है। इन सबसे ब्रह्मचर्य नष्ट होता है। स्त्री का स्मरण करना—स्त्री की बातें करना, स्त्री के साथ क्रीड़ा करना—स्त्री को देखना—स्त्री के साथ गुप्त भाषण करना—स्त्री के विषय मन में सकल्प करना—स्त्री की प्राप्ति के लिये लगातार प्रयत्न करना और स्त्री के साथ रति की क्रिया करना ये आठ अङ्ग वाला मैथुन होता है, जिसको विद्वान लोग ब्रह्मचर्य को खण्डित करने वाला कहते हैं ।।३१-३२।। स्त्री का कभी भी ध्यान ही नहीं करना चाहिए और न स्त्री के साथ कभी बातचीत ही करनी चाहिए तथा न उसकी रति का कामही करना चाहिए। इन उक्त सब गुणों से युक्त पुरुष ही यति है, अन्य कोई नहीं हो सकता है चाहे वह भेष भले ही बनाये रक्खे ।।३३।। सन्यास धारण करके जो अपने संन्यास योग्य धर्म में अवस्थित नहीं रहता है, राजा का कर्त्तव्य हैं कि ऐसे सन्यासी को कुत्तों से कटवा कर अपने देश से शीघ्र ही निकाल देना चाहिए ।।३४।।जैसा कि ऊपर बताया गया है वैसा भिक्षु अकेला ही रहता है। यदि दो हों तो मिथुन कहलाता है। तीन का एक साथ निवास ग्राम और तीन से अधिक का साथ तो नगर के समान होता है ।।३५।।

नगरं हि न कर्त्तव्यं ग्रामोत्रा मिथुनं तथा।
एतत्त्रयं प्रकुर्व्वाणः स्वधर्माच्च्यवते यतिः ।।३६
राजवार्त्तादि तेषान्तु भिक्षावार्त्ता परस्परम्।
स्नेहपैशून्यमात्सर्य्यं सन्निकर्षासंशयम् ।।३७
लाभपूजानिमित्तं हि व्याख्यानं शिष्यसंग्रहः।
एते चान्ये च बहवः प्रपचाः कुतपस्विनाम् ।।३८
ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकान्तशीलता।
भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पञ्चमो नोपपद्यते ।।३९
तपोजपैकृशीभूतोव्याधिनोऽवसथावहः।
वृद्धोग्रहगृहीतश्च यश्चान्योविकलेन्द्रियः ।।४०
नीरुजश्च युवा चैव भिक्षुर्नावसथावहः।
स दूषयति तत्स्थानं बुधान् पीडयतीति च ।।४१

नीरुजश्च युवा चैव ब्रह्मचर्य्याद्विनश्यति ।
ब्रह्मचर्य्याद्विनष्टस्तु कुलञ्चैव स नाशयेत् ।।४२

यति को मिथुन–ग्राम तथा नगर नहीं करना चाहिए । इन उक्त तीनों का करने वाला यति अपने धर्म से च्युत जाता है ।।३६।। जब कई एक का साथ होता है तो आपस में राजा की बातचीत, भिक्षा सम्बन्धित वार्त्तालाप, स्नेह, पिशुनता और मत्सरता निश्चय ही जनों में सन्निकर्ष होने से होती है ।।३७। अपना लाभ तथा पूजा के निमित्त व्याख्या देना और बहुत चेला बना कर जमात जुटाना आदि ये बहुत से कुतपस्वियों के प्रपञ्च हुआ करते हैं ।।३८।। भिक्षु अर्थात् सन्यासी के ध्यान करना—शुद्धि करना—भिक्षा और नित्य ही एकान्त में रहने का स्वभाव रखना ये चार ही कर्म होते हैं, पाँचवा कोई नहीं होता है ।३९।। यति तप तथा जप से दुबला, व्याधित, अवसथ का वहन करने वाला, वृद्ध ग्रहों से ग्रहीत और विकल इन्द्रियों वाला होता है ।।४०।। निरोगी, जवान और अवस्था वहन होने वाला भिक्षु उस स्नान को दूषित करता है और बुधजनों को सताता है ।।४१।। निरोग और युवा यति ब्रह्मचर्य से विनिष्ट हो जाता है । जो ब्रह्मचर्य से विनष्ट है वह अपने कुल का भी नाश कर देता है ।।४२।।

वसन्नावसथे भिक्षुर्मैथुनं यदि सेवते ।
तस्यावसथनाथस्य मूलान्यपि निकृन्तति ।।४३
आश्रमे तु यतिर्यस्य मुहूर्त्तमपि विश्रमेत् ।
किन्यस्यान्येन धर्मेण कृतकृत्योऽभिजायते ।।४४
समितं यद्गृहस्तेन पापमामरणान्तिकम् ।
स निर्दहति तत् सर्व्वमेकरात्रोषितोयतिः ।।४५
योगाश्रमपरिश्रान्तं यस्तु भोजयते यतिम् ।
निखिलं भोजितं तेन त्रैलोक्य सचराचरम् ।।४६
यस्मिन् देशे वसेद्योगी ध्यानयोगविचक्षणः ।
सोऽपि देशो भवेत् पूतः किंपुनस्तस्य बान्धवाः ।।४७

द्वैतञ्चैव तथाद्वैत द्वैताद्वैतं तथैव च ।
न द्वैतं नापि चाद्वैतमित्येतत् परमार्थिकम् ।।४८
नाहं नैवान्यसम्बन्धो ब्रह्मभावेन भावित: ।
ईदृशायामवस्थायामवाप्यं परमं पदम् ।।४९

अवसथ में वास करता हुआ यति मैथुन का सेवन करता है तो उस अवसथ के स्वामी के फूलों को भी काट देता है ।।४३।। जिसके आश्रम में यति मुहूर्त मात्र भी विश्राम कर लेवे उसको अन्य धर्म के कार्य की क्या आवश्यकता है, वह तो इतने ही से कृतकृत्य हो जाता है ।।४४।। गृहस्थ ने मरण पर्यन्त जो भी पाप, कर्मों का सञ्चय किया है वह सब को जला देता है यदि एक रात्रि भी उसके यहाँ कोई सच्चा यति निवास कर लेता है ।।४५।। योगाश्रम से थके हुए यति को जो कोई भोजन करा देता है तो उससे समस्त त्रिलोकी के चराचर को भोजन करा दिया हो—ऐसा पुण्य होता है ।।४६।' जिस देश में ऐसा योगी निवास करता है जोकि अपने ध्यान योग में पूर्ण निष्णात है, वह देश भी पवित्र हो जाता है उसके बान्धवों की तो बात ही क्या है ।।४७।। उपासना तथा वेदान्त के सिद्धान्त में विभिन्न आचार्यों के भिन्न २ मत हैं । कुछ द्वैत मानते हैं, कुछ अद्वैत और कुछ द्वैता-द्वैत मानते हैं । वस्तुत: न द्वैत हैं और न अद्वैत ही हैं यह सब पारमार्थिक हैं ।।४८।। न मैं हूँ और न अन्य से मेरा सम्बन्ध ही है । ब्रह्म के भाव मे भावित रहे, ऐसी ही अवस्था में परम पद की प्राप्ति होती है ।४९।।

द्वैतपक्ष: समाख्याता येऽद्वैते तु व्यवस्थिता ।
अद्वैतिनां प्रवक्ष्यामि यथा धर्म: सुनिश्चित: ।।५०
तत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं यदि पश्यति ।
तत: शास्त्राण्यधीयन्ते श्रूयन्ते ग्रन्थसञ्चया: ।।५१
दक्षशास्त्रं यथा प्रोक्तमशेषाश्रममुत्तमम् ।
अधीयन्ते तु ये विप्रास्ते यान्त्यमरलोकताम् ।।५२

इदन्तु यः पठेद्भक्त्या शृणुयादधमोऽपिवा ।
स पुत्रपौत्रपशुमान् कीर्तिञ्च समवाप्नुयात् ।।५३
श्रावयित्वा त्विदं श्राद्धकालेऽपिवा द्विजः ।
अक्षयं भवति श्राद्धं पितृभ्यश्चोपजायते ।।५४

द्वैत का पक्ष कहा गया है और जो अद्वैत में व्यवस्थित है वह भी बताया गया है । अब अद्वैत वादियों के विषय में कहा जाता है जिससे धर्म सुनिश्चित हो सके । ५०।। यदि आत्मा के अतिरिक्त दूसरे को कोई देखता है तो फिर शास्त्रों का अध्ययन किया जाता है और बहुत से ग्रन्थों के समुदाय को सुना जाता है ।।५१ दक्ष शास्त्र अशेष आश्रमों से पूर्ण उत्तम कहा गया जो ब्राह्मण पढ़ते हैं वे देव लोक को जाते हैं ।।५२।। इसका जो भक्तिपूर्वक पढ़ता है और कोई अधम भी इसे सुनता है वह पुत्र पौत्र और पशुओं वाला होकर कीर्ति की प्राप्ति करता है ।।५३।। ब्राह्मण इसे श्राद्ध के समय में भी यदि सुनादे तो श्राद्ध अक्षय होकर पितृगण को जाता है ।।५४।।

।। समाप्त ।।

———

[वेद] व्यासस्मृतिः

प्रथमोऽध्यायः

अथ धर्माचरणादेशप्रयुक्त-वर्ण-षोडशसंस्कारवर्णनम्

वाराणस्यां सुखासोनं वेदव्यासं तपोनिधम ।
पप्रच्छुर्मुनयोऽभ्येत्य धर्मान् वर्णव्यवस्थितान् ॥१
य पृष्टः स्मृतिमान् स्मृत्वा स्मृतिं वेदार्थगर्भिताम् ।
उवाचाथ प्रसन्नात्मा मुनयः श्रूयतामिति ॥२
यत्र यत्र स्वभावेन कृष्णसारो मृगः सदा ।
चरते तत्र वेदोक्तो धर्मो भवितु मर्हति ॥३
श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ।
तत्र श्रौतं प्रमाणन्तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥४
ब्राह्मणः क्षत्रियोवैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तधर्मयोग्यास्तु (ते नराः) नेतरे ॥५
शूद्रोवर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धममर्हति ।
वेदमन्त्रस्वधाहावषट्कारादिभिर्विना ॥६
विप्रवद्विप्रविन्नासु क्षत्रविन्नासु विप्रवत् ।
जातकर्माणि कुर्वीत वतःशूद्रासु शूद्रवत् ॥७

वाराणसी में सुख पूर्वक बैठे हुए तप की खान वेद व्यासजी से ऋषियों ने आकर वर्ण व्यवस्था के धर्मों को पूछा ॥१॥ प्रसन्नचित्त, स्मृति वाले, पूछे गये उन व्यास मुनि ने वेदार्थ के गर्भ वाली स्मृति का स्मरण करके कहा—हे मुनिगण ! तुम सब सुनो ॥२॥ जहाँ-जहाँ स्व-

भाविक रूप से कृष्णसार मृग सर्वदा विचरण करता है वहीं पर वेद द्वारा विहित धर्म हो सकता है ॥३॥ श्रुति, स्मृति और पुराणों के वचनों में जहाँ भी कोई विरोध आवे तो वहाँ श्रौत वचन को ही प्रणाम माना जाता है। स्मृति और पुराणों में विरोध हो तो स्मृति वचन ही प्रामाणिक होता है ॥४॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ग द्विजाति कहलाते हैं ये ही लोग श्रुति, स्मृति और पुराणों द्वारा कथित धर्म के योग्य होते हैं, अन्य नहीं होते हैं ॥५॥ चौथा वर्ण शूद्र होता है, वह भी एक वर्ण विशेष होने से धर्म के योग्य होता है किन्तु इस के धर्म में वेद के मन्त्र, स्वधा, स्वाहा और वषट्कारादि वर्जित होते हैं ॥६॥ ब्राह्मण की भाँति ही जो विप्रविन्ना स्त्री हो उसमें समुत्पन्न सन्तति के जात कर्मादि संस्कार करने चाहिए। क्षत्रिय विन्ना से समुत्पन्न का विप्र वर्ण के समान और शूद्र विन्ना से समुत्पन्न के जात कर्म शूद्रकी भाँति करने चाहिए ॥७॥

वैश्यासु विप्रक्षत्राभ्यां ततः शूद्रासु शूद्रषत् ।
अधमादुत्तमायान्तु जातः शूद्राधमः स्मृतः ॥८
ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चाण्डालो धर्मवर्जितः ।
कुमारीसम्भवस्त्वेकः सगोत्रायां द्वितीयकः ॥९
ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चाण्डालस्त्रिविधिः स्मृतः ।
वर्द्धकी नामितो आशापः कुम्भकारकः ॥१०
वणिक्किरातकास्थमालाकार कुटुम्बिनः ।
एते चान्ये च वहवः शूद्रा भिन्नः स्वकमभिः ।
चर्मकारो भटो भिल्लो रजकः पुष्करो नटः ।
वरटोमेदचण्डालदास (श) स्वपचकोलकाः ॥११
एतेऽन्त्यजा समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः ।
एषां सम्भाषणाद्द स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ॥१२
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च ।
नामक्रिया निष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया ॥१३

कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रिया विधिः ।
केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥१४

त्रेताग्निसंग्रहश्चे ति संस्काराः षोडश स्मृताः ।
नवताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्ज क्रियाः स्त्रियाः ॥१५

ब्राह्मण, क्षत्रिय से वैश्या में विप्र तथा क्षत्रिय के समान और शूद्रा में शूद्र के तुल्य करे । अधम से उत्तम स्त्री में समुत्पन्न शूद्र से भी अधम होता है ॥८॥ ब्राह्मणी में शूद्र से पैदा हुआ चाण्डाल धर्म से वर्जित होता है । ब्राह्मणी में शूद्र से जन्मा हुआ एक—कुमारी से जन्मा हुआ—एक और सगोत्र स्त्री से जन्मा हुआ एक—ऐसे चाण्डाल तीन प्रकार के होते हैं ॥९-१०॥ वर्द्धकी, नापित, गोप, आशाप, कुम्हार, वणिक, किरात, कायस्थ और माली के कुटुम्बी ये सब अपने कर्मों से भिन्न बहुत से शूद्र होते हैं ॥१०॥ चमार-भट-भील-धोबी-पुष्कर-नट-बरट-मेद-चाण्डाल-दास-श्वपच और कोल-ये सब अन्त्यज कहे जाते हैं और जो गोमांस भक्षक हैं वे भी अन्त्यज होते हैं । इनके साथ सम्भाषण करने से स्नान करना चाहिए और इनके दर्शन करके सूर्य को देखना चाहिए तब शुद्धि होती है ॥ ११-१२ ॥ गर्भाधान पुंसवन—सीमन्त-जातकर्म—नामकरण—निष्क्रमण—अन्नप्राशन—वर्भान क्रिया—कर्णवेध—स्नाद—उद्धर—व्रतादेश—वेदारम्भ—केशान्त—विवाहग्नि परिग्रह—त्रेताग्नि संग्रह ये सोलह संस्कार होते हैं । कर्ण वेध के अन्त तक नौ संस्कार मंत्र हीन और स्त्रियों के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं ॥१३-१५ ॥

सीमन्तश्चाष्टमे मासि जाते जातक्रिया भवेत् ॥१६
एकादशेऽह्नि नामार्कस्येक्षा मासि चतुर्थके ॥१७
षष्ठे मास्यान्नमश्नीयाच्चूडाकर्म कुलोचितम् ।
कृतचूडे च वाले च कर्णबेधो विधीयते ॥१८

विप्रो गर्भाष्टमे वर्षे क्षत्त्रमेकादशे तथा ।
द्वादशे वैश्यजातिस्तु व्रतोपनयनक्रिया ॥१९

तस्य प्राप्तव्रतस्यायं कालः स्यात् द्विगुणाधिकः।
वेदव्रतच्युतो व्रात्यः स व्रात्यस्तोममर्हति ॥२०
द्वे जन्मनी द्विजातीनां मातुः स्यात् प्रथमं तयोः।
द्वितीयं छन्दसा मातुर्ग्रहणाद्विधिवद्गुरोः ॥२१
एवं द्विजातिमापन्नो विमुक्तो बाल्यदोषतः।
श्रुतिस्मृतिपुराणानां भवेदध्ययनक्षमः ॥२२

सर्व प्रथम गर्भाधान होता है। उसके तीसरे मास में पुंसवन संस्कार होता है। सीमन्त आठवें मास में होता है। जन्म हो जाने पर जातकर्म संस्कार होता है। ग्यारहवें दिन नामकरण और चौथे मास में सूर्य दर्शन होता है ॥१६-१७॥ जात बालक के छठे मास में अन्न प्राशन और चूड़ा कर्म संस्कार अपने कुल की प्रथा के अनुसार ही होता है चूड़ा कर्ण के हो जाने पर कर्ण वेध किया जाता है ॥१८॥ ब्राह्मण का उपनयन संस्कार गर्भ से अष्टम वर्ष में होना चाहिए। क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य का बारहवें वर्ष में होना चाहिए ॥१९॥ प्राप्त व्रत पुरुष को यदि दुगने से अधिक काल हो जाता है तो वह वेदव्रत से च्युत व्रात्य हो जाता है और फिर वह व्रात्यस्तोम प्रायश्चित्त के योग्य हो जाता है ॥२०॥ द्विजातियों के (ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य) दो जन्म माने जाते हैं। पहिला जन्म तो अपनी माता के उदर से उत्पन्न होने पर होता है और दूसरा जन्म विधि विधान पूर्वक गुरु से छन्दों की माता (गायत्री) के ग्रहण करने पर अर्थात् उपनयन संस्कार से होता है ॥२१॥ इस प्रकार द्विजत्व को प्राप्त हुआ बाल्यावस्था के दोष से विमुक्त हो जाता है फिर वह श्रुति—स्मृति और पुराणों के अध्ययन की क्षमता प्राप्त कर लेता है ॥२२॥

उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः।
बिभृयाद्दण्डकौपीनोपवीताजिनमेखलाः ॥२३
पुण्येऽह्नि गुर्वनुज्ञातः कृतमन्त्राहुतिक्रियः।
स्मृत्वोङ्कारञ्च गायत्रीमारभेद्वेदमादितः ॥२४

शौचाचारविचारार्थं धर्मशास्त्रमपि द्विजः ।
पठेत गुरुतः सम्यक् कर्म तद्दिष्टमाचरेत् ॥२५
ततोऽभिवाद्य स्थविरान् गुरुञ्चैव समाश्रयेत् ।
स्वाध्यायार्थं तदा यत्नः सर्वदा हितमाचरेत् ॥२६
नापक्षिप्तोऽपि भाषेत (विरज्येत, नोव्रजेत्ताडितोऽपि वा ।
विद्वेषमथ पैशुन्यं हिंसनञ्चार्कवीक्षणम् ॥२७
तौर्यत्रिकानयोन्मादपरिवादानलङ्क्रियाम् ।
अञ्चनोद्वर्त्तनादर्शस्रग्विलेपनयोषितः । २८

उपनीत होकर द्विजाति बालक ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर समाहित चित्त वाला गुरुकुल में वास करे और वहाँ दण्ड, कोपीन, उपवीत, मृगचर्म और मौञ्जी मेखलादि ब्रह्मचारी के धारण योग्य वस्तुओं को धारण करे ॥२३॥ किसी शुभ दिन में गुरु की आज्ञा पाकर मन्त्रों से आहुतियाँ देने की क्रिया का सम्पादन कर प्रणव (ओंकार) का स्मरण करते हुए वेदारम्भ के आदि में वेद माता गायत्री का पाठ करे ॥२४॥ शौच के आचार और विचार के लिये द्विज को धर्म शास्त्र को पढ़ना चाहिए और गुरु से भी भली भली भाँति अध्ययन करे तथा जो कुछ भी शास्त्र में आदेश हो वैसा ही कर्म भी करना चाहिए ॥२५। इसके अनन्तर वृद्धजनों का अभिवादन करके अपने वृन्द का समाश्रय ग्रहण करे और स्वाध्याय के लिये तब अपना यत्न करे। ब्रह्मचारी को सर्वदा हित कर्म का आचरण करना चाहिए।२६॥कोई आक्षेप करे तो भी ब्रह्मचारी को कुछ भी नहीं बोलना चाहिए। गुरु के द्वारा ताड़ना देने पर भी वहाँ से चले नहीं जाना चाहिए। ब्रह्मचारी को विद्वेष, चुगली, हिंसा, अर्कवीक्षण नृत्य, मिथ्या उन्माद, निन्दा, अलंकारादि की सज्जा, अञ्जन, उबटना, दर्पण देखना, पुष्पहार, चन्दनादि सुगन्धित लेपन, स्त्री दर्शन भाषणादि, व्यर्थ घूमना, असन्तोष को पूर्णतः त्याग देना चाहिए ॥२७-२८॥

वृथाटनमसन्तोषं ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ।
ईषच्चलितमध्याह्नेऽनुज्ञातो गुरुणा स्वयम् ॥२९

आलोलुपश्चरेद्भैक्षं व्रतिषूत्तमवृत्तिषु ।
सद्यो भिक्षान्नमादाय वित्तवत्तदुपस्पृशेत् ॥३०

कृतामाध्याह्निकोऽश्नीयादनुज्ञातो यथाविधि ।
नाद्यादेकान्नमुच्छिष्टं भुक्त्वा चाऽऽचामितामियात् ॥३१

नान्यद्भिक्षितमादद्यादापन्नो द्रविणादिकम् ।
अनिन्द्यामन्त्रितः श्राद्धे पैत्र्येऽद्याद्गुरुचोदितः ॥३२

एकान्न मप्यविरोधे व्रतानां प्रथमाश्रमी ।
भुक्त्वा गुरुमुपासीत कृत्वा सन्धुक्षणादिकम् ॥३३

समिधोऽग्नावादधीत ततः परिचरेद्गुरुम् ।
अधीत गुर्वनुज्ञात प्रह्वश्च प्रथमं गुराः ॥३४

एवमन्वहमभ्यासी ब्रह्मचारी व्रतञ्चरेत् ।
हितोपवादः प्रियवाक् सम्यग्गुर्वर्थ साधकः ॥३५

गुरु द्वारा अनुज्ञात होकर स्वयं मध्यान्ह में थोडा चले और लोलुपता से रहित होकर उत्तम वृत्ति वाले व्रतियों के यहाँ भिक्षा करे। तुरन्त ही भिक्षा के अन्न को लाकर वित्त की तरह उपस्पर्शन करे।।२९-३०।।मध्यान्ह कर्म करके अनुज्ञात होकर विधि के साथ उसे खावे। एक ही अन्न न खावे। जो उच्छिष्ट हो उसे खाकर आचमन क्रिया को करे ।।३१।। अन्य के द्वारा भिक्षित को न खावे और आपन्न होता हुआ द्रविणादि भी न लेवे। श्राद्ध तथा पित्र्य कर्म में जोकि अनिन्द्य हो और उसमें आमन्त्रण किया गया हो तो गुरु की प्रेरणा पाकर खावे।३२।। ब्रह्मचर्य के आश्रम में स्थित पुरुष व्रतों का यदि कोई विरोध न हो तो एक अन्न को भी खा लेवे और खाकर गुरु की उपासना करे और पहिले सन्धुक्षणादि कर लेवे ।।३३।। अग्नि में समिधा देवे और फिर गुरु की परिचर्या करे। गुरु की आज्ञा प्राप्त करके अध्ययन का आरम्भ करे तथा गुरु से प्रथम ही जगे और आज्ञा पाकर सोवे ।।३४।। ब्रह्मचारी को इसी विधि से प्रति दिन का अभ्यास करना चाहिए और अपने व्रत का पूर्ण पालन करे।

ब्रह्मचारी हितोपवादी रहे, विप्र वाणी बोले और भली प्रकार गुरु के अर्थ का साधक बने ।।३५।।

नित्यमाराधयेदेनमा समाप्तेः श्रुतिग्रहात् ।
अनेन विधिनाऽधीतो वेदमन्त्रो द्विजं नयेत् ।।३६
शापानुग्रहसामर्थ्यमृषीणाञ्च सलोकताम् ।
पयोऽमृताभ्यां मधुभिः साज्यैः प्रीणन्ति देवताः ।।३७
तस्मादहर्वेदसनध्यायमृते पठेत् ।
यदङ्गं तदनध्याये गुरोर्वचनमाचरेत् ।।३८
व्यतिक्रमावसम्पूर्णमनहंकृतिराचरेत् ।
परत्रेह च तद्ब्रह्म अनधीतमपि द्विजम् ।
यस्तूपनयनादेनदामृत्योर्व्रतमाचरेत् ।।३९
स नैष्ठिको ब्रह्मचारी ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।
उपकुर्वाणकोयस्तु द्विजः षड्विशवार्षिकः ।।४०
केशान्तकर्मणा तत्र यथोक्तचरितव्रतः ।
समाप्य वेदान् वेदौ वा वेदं वा प्रसभं द्विजः ।
स्नायीत गुवतुज्ञातप्रः प्रवृत्तादित्तदक्षिणः ।।४१

वेदाध्ययन की समाप्ति पर्यन्त गुरु की नित्य प्रति आराधना करनी चाहिए । इस विधि से पढ़ा हुआ वेद द्विज को शाप तथा वरदान देने की शक्ति प्रदान करता है और ऋषियों के लोक को प्राप्त करा देता है । घृत सहित मधु तथा दूध और अमृत से देवता प्रसन्न होते हैं ।।३६-३७।। इसलिये अनध्याओं को छोड़ कर वेद को नित्य प्रति पढ़ना चाहिए जो वेद के अङ्ग स्वरूप व्याकरणादि शास्त्र हैं उनको वेदाध्याय में पढ़ना चाहिए और गुरु के वचनों को मानना चाहिए ।।३८।। व्यतिक्रम होने से यदि अध्ययन पूर्ण न हो तो अहंकृति रहित होकर इस लोक तथा परलोक में अनधीत वेद द्विज उस ब्रह्म का आचरण करे । जो उत्पन्न संस्कार से मृत्यु पर्यन्त व्रत का आचरण करे वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त होता है। द्विज छत्तीस वर्ष तक उपकुर्वाण होता है

॥३९-४०॥ केशान्त कर्म से यथा विधि व्रत का पालन करने वाला द्विज सम्पूर्ण वेदों या एक ही वेद को बल पूर्वक समाप्त करके गुरु की आज्ञा से ही क्षान्त स्नान करे और उदित दक्षिण होकर प्रवृत्त होवे ॥४१॥

अथ द्वितीऽयोध्यायः

अथ विवाहविधिवर्णनम् ।

एवं स्नातकतां प्राप्तो द्वितीयाश्रमकांक्षया ।
प्रतीक्षेत विवाहाथमनिन्द्यान्वयसम्भवाम् ।।१
अरोगादुष्टवंशोत्थामशुल्कादानदूषिताम्
सवर्णासमानार्षाममातृपितृगोत्रजाम् ।।२
अनन्यपूर्विकां लघ्वीं शुभलक्षणसंयुताम् ।
वृताधोवसनां गौरीं विख्यातदशपूरुषाम् ।।३
ख्यातनाम्नःपुत्रवतः सदाचारवतः सतः ।
दातुमिच्छोर्दुहितरं प्राप्य धर्मेण चोद्वहेत् । ४
ब्राह्मोद्वाहविधानेन तदभावेऽपरो विधिः ।
दातव्यैषा सदृक्षाय वयोविद्यान्वयादिभिः ।।५
पितृतत्पितृभ्रातृषु पितृव्यज्ञातिमातृषु ।
पूर्वाभावे परो दद्यात् सर्वाभावे स्वयं व्रजेत् ।।६
यदि सा दातृवैकल्याद्रजः पश्येत् कुमारिका ।
भ्रूणहत्याश्च यावत्यः पतितः स्यात्तदप्रदः ।।७

विवाह ऐसी कन्या से करना चाहिए जो स्वस्थ हो, शुद्ध वंश में उत्पन्न हुई हो, जिसके विवाह करने के लिये कोई धनादि न दिया जावे, अपने ही वर्ण वाली हो और अपने तथा माताके गोत्र से भिन्न गोत्र वाली हो। ऐसी कन्या से विवाह करना शास्त्र सम्मत है ॥१२॥ पहिले से अनन्य मन वाली छोटी अवस्था वाली, शुभ लक्षणों से युक्त अधो वसन धारण करने वाली, दश पुश्त तक शुद्ध एवं प्रसिद्ध वंश वाली गौर वर्ण वाली कन्या से जिसका पिता प्रसिद्ध नाम वाला हो, पुत्रवान हो सदाचार वाला हो, सात्विक हो और अपनी पुत्री को दान करने की चाह रखता हो तो ऐसी कन्या को पाकर धर्म विधि से विवाह करना चाहिए ॥३-४॥ ब्राह्म विवाह की विधि से अथवा इसके अभाव में दूसरी विधि से वय-विद्या और वंशादि सदृश वर के लिये कन्या को देना चाहिए ॥५॥ पिता या पिता के भाई चाचा, ज्ञातिजन, माता इनमें पूर्व के अभाव में दूसरा कोई भी कन्या का दान करदे। यदि सभी उक्त जनों का अभाव हो तो कन्या स्वयं योग्य वर के पास जाकर विवाह कर लेवे ॥६॥ यदि वह कन्या दान कर्त्ता के विफलता के कारण रजो दर्शन कर लेवे तो उसको न देने वाला जितनी बार रजो धर्म हुआ उतनी भ्रूण हत्याओं का भागी होकर पतित हो जाता है ॥७॥

तुभ्यं दास्याम्यहमिति ग्रहीष्यामीति यस्तयाः।
कृत्वा समयमन्योन्यं भजते न स दण्डभाक् ॥८
त्यजन्नदुष्टां दण्डचःस्याद्दूषयं श्चाप्यादूषिताम्।
तावन्न दुष्टं दुष्टं च स्वार्थेभ्यो भेदयश्च तत्।
ऊढायां हि सवर्णायामन्या वा काममुद्वहेत्। ९
तस्यामुत्पादितः पुत्रो न सवर्णात् प्रहीयते ॥१०
उद्वहेत क्षत्रियां विप्रो वैश्याञ्च क्षत्रियो विशाम्।
न तु शूद्रां द्विजः कश्चिन्नाधमः पूर्ववर्णजाम्। ११
नानावर्णासु भार्यासु सवर्णा सहचारिणी।
धर्म्या धर्मेषु धर्मिष्ठा ज्येष्ठा तस्य स्वजातिषु ॥१२

पाटितोऽयं द्विजाः पूर्वमेकदेहः स्वयम्भुवा ।
पतयोऽर्द्धेन चार्द्धेन पत्न्योऽभूवन्निति श्रुतिः ।।१३
यावन्न विन्दते जायां तावदर्द्धो भवेत् पुमान् ।
नार्द्धं प्रजायते सर्वं प्रजायेतेत्यपि श्रुतिः ।।१४

किसी वर के लिए यह वचन दे देवे कि मैं अपनी कन्या को तुझे दूंगा और वर उसे ग्रहण करूंगा ऐसी स्वीकृति दे देवे ऐसा उन दोनों में वचन बद्धता हो जाने पर अन्योन्य की विवाह में देरी हो जावे तो फिर कोई भी दण्ड भागी नहीं होता है । ८।। दोष रहित कन्या या भार्या को दूषण लगाकर त्यागने वाला दण्ड के योग्य होता है । तब तक वह दुष्ट नहीं है जब तक स्वार्थों के कारण भेद करते हुई सवर्ण स्त्री के विवाह कर लेने पर किसी अन्य के साथ स्वेच्छा या विवाह कर लेता है अर्थात अन्य के साथ विवाह करने पर दोष हो ही जाता है ।।९।। सवर्ण के अतिरिक्त अन्य उद्वाहित में समुत्पन्न पुत्र सवर्ण से कम नहीं होता है ।।१०।। ब्राह्मण क्षत्रिया तथा वैश्या के साथ भी विवाह करे और क्षत्रिय वैश्य की कन्या से विवाह करे किन्तु ब्राह्मण या द्विज शूद्रा से कभी विवाह न करे तथा कोई भी छोटे वर्ण वाला पूर्व वर्ण को कन्या से विवाह न करे ।।११।। अनेक वर्णों की भार्याओं में सवर्णा भार्या ही सहचारिणी होती है । धर्म कृत्यों में धर्म से युक्त और वही धार्मिक एवं उसको अपनी जातियों में ज्येष्ठ भी होती है ।। १२ ।। स्वयम्भू के द्वारा यह द्विज एक देह वाला पूर्व में बनाया गया है उसमें आधा शरीर पति का और आधा शरीर पत्नो का था ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है ।।१३।। जब तक पुरुष भार्या की प्राप्ति नहीं कर लेता है तब तक वह आधा ही कहा जाता है । आधा शरीर सब कुछ नहीं कर पाता है और प्रजोत्पत्ति भी पूरा शरीर होने पर हो होती है ऐसा श्रुति कहती है ।।१४।।

गुर्वी सा भूस्त्रिवर्गस्य वोढुं नान्येन शक्यते ।
यतस्ततोऽन्वह भूत्वा स्ववशो बिभृयाच्च ताम् ।।१५

कृतदारोग्निपत्नीभ्यां कृतवेश्मा गृहं वसेत् ।
स्वकृत्यं वित्तमासाद्य वैतानाग्नि न हापयेत् ।।१६
स्मार्त्तं वैवाहिके वह्नौ श्रौतं वैतानिकाग्निषु ।
कर्म कुर्यात् प्रतिदिनं विधिवत् प्रीतिपूर्वतः ।।१७
सम्यग्धर्मार्थकामेषु दम्पतिभ्यामहर्निशम् ।
एकचित्ततया भाव्यं समानव्रतवृत्तितः । १८
न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्गविधिसाधनम् ।
भावतो ह्यतिदेशाद्वा इति शास्त्रविधिः परः ।।१९
पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धि विधाय च ।
उत्थाप्य शयनाद्यानि कृत्वा वेश्मविशोधनम् ।।२०
मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य साग्निशाल स्वमङ्गनम् ।
शोधयेदग्निकार्याणि स्निग्धान्युष्णेन वारिणा ।।२१

वह तीनों वर्ग की उत्पत्ति करने वाली होने से बड़ी है अतः अन्य के द्वारा वहन भी नहीं की जा सकती है अतएव अनुकूलता के साथ स्ववश होकर उसका भरण करना चाहिए ।।१५।। दारायुक्त होने पर अग्नि और पत्नी दोनों के साथ गृही होता है और उसे गृह में वास करना चाहिए । अपना कृत्य और वित्त को प्राप्त कर गृही को वैतानाग्नि का त्याग नहीं करना चाहिए ।।१६।। स्मार्त वैवाहिक वह्नि में और वैताग्नि में श्रौत कर्म प्रतिदिन प्रीति पूर्वक करना चाहिए ।।१७।। भली भाँति धर्म-अर्थ और काम में दम्पतियों के द्वारा दिन रात एक चित्तता के साथ समान व्रत एवं वृत्ति से लगा रहना चाहिए ।।१८।। स्त्रियों का त्रिवर्ग (धर्मार्थकाम) साधन पति के साथ ही सम्बद्ध है । भाव से अथवा अतिदेश से स्त्रियों के त्रिवर्ग का साधन पृथक् नहीं हैं । यही शास्त्र की विधि है ।।१९।। पत्नी को पति के उठने के पूर्व ही प्रातःकाल में शयन से उठकर अपनी देह की शुद्धि करनी चाहिए । और शय्यादि को उठ कर घर की सफाई शुद्धि आदि कर्म करना चाहिए ।।२०।। मार्जन और लेपन के द्वारा अग्नि शाला के साथ अपने आँगन की स्व-

च्छता करे और अग्नि कर्म करे तथा जो स्निग्ध (चीकने) भाग हों गर्म जल के द्वारा शुद्ध करे ॥२१॥

प्रोक्षण्यै रिति तान्येव यथास्थानं प्रकल्पयेत् ।
द्वन्द्वपात्राणि सर्वाणि न कदाचिद्वियोजयेत् ॥२२
शोधयित्वा तु पात्राणि पूरयित्वा तु धारयेत् ।
महानसस्य पात्राणि बहि प्रक्षाल्य सर्वथा ॥२३
मृद्भिश्च शोधयेच्चुल्लीं तत्राग्निं विन्यसेत्ततः ।
स्मृत्वा नियोगपात्राणि रसांश्च द्रविणानि च ॥२४
कृतपूर्वाह्णकार्या च स्वगुरुनभिवादयेत् ।
ताभ्यां भर्तृ पितृभ्यां वा भ्रातृमातुलबान्धवैः ॥२५
वस्त्रालङ्काररत्नानि प्रदत्तान्येव धारयेत् ।
मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेशानुवर्तिनी ॥२६
छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु ।
दासीवाऽऽदिष्टकार्येषु भार्या भर्त्तुः सदा भवेत् ॥२७
ततोऽन्नसाधनं कृत्वा पतये विनिवेद्य तत ।
वैश्वदेवकृतैरन्नैर्भोजनीयांश्च भोजयेत् ॥२८

सभी प्रोक्षण के योग्य हैं अतः उन्हें यथा स्नान रक्खे । सभी द्वन्द पात्रों को भी कभी वियोजित नहीं करना चाहिए ॥२२॥ समस्त पात्रों का शोधन करके और पूरित करके रक्खे। जो रसोई घर के पात्र हों धोकर उन्हें बाहिर ही रक्खे और मिट्टी से चूल्हे को शोधित कर उसमें अग्नि डाले फिर जो नियोग पात्र हो उनको याद कर तथा समस्त रस एव द्रविणों को वहां रक्खे ॥२३-२४॥ पूर्वान्ह का समस्त कार्य करके फिर अपने गुरु वर्ग का अभिवादन करना चाहिए उन दोनों को भर्त्ता तथा पिता के द्वारा एवं भाई-मामा और बान्धवों के द्वारा प्रदत्त वस्त्रालंकार ही धारण करने चाहिए । स्त्री को सर्वदा मन-वाणी और काया से अपने पति के आदेश के अनुकूल रहना चाहिए ॥२५-२६॥ छाया की भांति अनुगत स्वच्छ एवं सखा की भाँति हित

कर्मों में संलग्न एवं दासी के समान आदेश दिये हुए कर्मों में निरत भार्या को सर्वदा अपने पति की अनुगामिनी रहना चाहिए ॥२७॥ इसके पश्चात अन्न का साधन करके अपने पति को निवेदित करे और वैश्वदेव किये हुए अन्न भोजन के योग्य पदार्थों का भोजन करना चाहिए ॥२८॥

पतिञ्चैतदनुज्ञाता शिष्टमन्वाद्यमात्मना ।
भुक्त्वा नयेदहः शेषमायव्ययविचिन्तया ॥२९
पुनः सायं पुनः प्रातर्गृहशुद्धिं विधाय च ॥३०
कृतान्नसाधना साध्वी सुभृशं भोजयेत् पतिम् ।
नातितृप्त्या स्वयं भुक्त्वा गृहनीतिं विधाय च ॥३१
आस्तीर्य साधुशयनं ततः परिचरेत् पतिम् ।
सुप्ते पतौ तदभ्यासे स्वपेत्तद्गतमानसा ।
अनग्ना चाप्रमत्ता चनिष्कामा च जितेन्द्रिया ॥३२
नोच्चैर्वदेन्न परुषं न बहून् पत्युरप्रियम् ।
न केनचित् विवदेच्च अप्रलापविलापिनी ॥३३
नचातिव्ययशीला स्यान्न धर्मार्थविरोधिनी ।
प्रमादोन्मादरोषेर्ष्यावञ्चातिमानिताम् ॥३४
पैशुन्यहिंसाविद्वेषमहाहंकारधूर्त्तताः ।
नास्तिक्यसाहसस्तेयदम्भान् साध्वी विवर्जयेत् ॥३५

पति के द्वारा अनुज्ञात होकर अपने से शेष अन्नादि को खाकर आमदनी तथा खर्चा का चिन्तन करती हुई शेष दिन को बिताये ॥२९॥ इसी प्रकार प्रातः सायं पुनः घर के समस्त कार्यों को करना चाहिए। ॥३०॥ अन्न का पाक करके साध्वी पतिव्रत पालन करने वाली स्त्री को अपने स्वामी को भली भाँति भोजन कराना चाहिए और स्वयं अत्यन्त तृप्ति से भोजन न करे। घर के समस्त व्यवहार को पूरा करके शयनार्थ रात्रि में शय्या बिछादे और स्वयं पाद संवाहन सेवा करे

॥३१॥ दिनान्त में सुन्दर शय्या बिछाकर फिर पति की परिचर्या करनी चाहिए। पति क सुप्त हो जाने पर उसके समीप में ही स्वयं पति के अन्दर अपना मन रखते हुए शयन करे। स्वयं अनग्न, अप्रमत और जिपेन्द्रिय होकर तथा निष्काम रहकर शयन करना चाहिए ॥३२। स्त्री को कभी उच्च स्वर स नहीं बोलना चाहिए और न कठोर वचन बोले, बहुत अधिक न वाले और जो पति को वचन अप्रिय लगे ऐसे भी न वाले। कभी प्रलाप एवं विलाप न करने वाली किसी के साथ विव द नहीं करे ॥३३॥ पत्नी को कभी अधिक खर्चा करने वाले के स्वभाव वाली नहीं होना चाहिए और धर्म तथा अथ का विरोध करने वाली भी न होवे। प्रमाद—उन्माद और क्रोध में तथा ईर्ष्या में अवञ्चन और प्रति मानिता का त्याग कर देना चाहिए ॥३४॥ पिशुनता-हिंसा-विद्वेष अधिक अहकार-धूर्त्त-नास्तिक भाव—साहप-स्तेय (चारी) और दम्भों को साध्वी स्त्री को त्याग देना चाहिए ॥३५॥

एवं परिचरन्ती सा पतिं परमदैवतम्।
यशः शर्मिह यात्येव परत्र च सलोकताम् ॥३६
योषितो नित्यकर्मोक्तं नैमित्तिकमथोच्यते।
रजोदर्शनतादोषात् सर्वमेव परित्यजेत् ॥३७
सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जिताऽन्तर्गृहेवसेत्।
एकाम्बरावृता दीना स्नानालङ्कारवर्जिता ॥३८
मौनिन्यधोमुखो चक्षुष्पाणिपद्भिरचञ्चला।
अश्नीयात् केवलं भक्त नक्तं मृण्मयभाजने ॥३९
स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम्।
स्नायात सा त्रिरात्रान्ते सचैलमुदिते रवौ ॥४०
विलोक्य भर्त्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः।
कृतशौचा पुनः कर्म पूर्ववच्च समाचरेत् ॥४१
रजो दर्शनतो याः स्यू रात्रयः षोडशर्त्तवः।
ततः पुंबीजमाक्लिष्टं शुद्धे क्षेत्रे प्ररोहति ॥४२

इस प्रकार अपने परम दैवत पति की परिचर्या करती हुई स्त्री इस लोक में यश तथा कल्याण और परलोक में सलोकता को प्राप्त करती है ।।३६।। स्त्रियों के नित्य कर्म तथा नैमित्तिक कर्म कहे जाते हैं किन्तु उन्हें रजो दर्शन का दोष होने से वे सब त्याग देने चाहिए ।।३७।। रजो-दर्शन के समय में सब के द्वारा अलक्षित होकर अन्दर घर में लज्जितावस्था में एक वस्त्र धारण कर दीन भाव वाली स्नान और अलङ्कारों से रहित होकर निवास करे । ३८।। मौन धारण कर नेत्र हाथ और पैरों को चञ्चलता रहित कर नीचे को ओर मुख वाली केवल एक रात्रि को एक बार मिट्टी के पात्र में भोजन करना चाहिए ।।३९।। भूमि में अप्रमत्त भाव से शयन करे और इस प्रकार तीन दिन व्यतीत करे । तीन दिन के बाद में स्नान करे और सूर्य के उदित होने पर वस्त्रों के सहित शुद्धि स्नान करना चाहिए ।।४०।। अपने स्वामी का मुख देख कर धर्म पूर्वक शुद्धि होती है । शुद्धि पूर्णतया करके फिर पहिली भाँति गृह का सब कार्य स्त्री को करना चाहिए ।।४१।। रजोदर्शन से जो सोलह रात्रि होती हैं वे ऋतु रात्री कही जाती हैं। उन में ही पुरुष का वीर्य पड़ा हुआ शुद्ध क्षेत्र में माना गया है और प्ररोहित होता है ।।४२।।

चतस्रश्चाऽऽदिमा रात्रीः पर्ववच्च विवर्जयेत् ।
गच्छेद्युग्मासु रात्रीषु पौष्णपित्रर्क्षराक्षसान् ।।४३
प्रच्छादितादित्यपथे पुमान् गच्छेत् स्वयोषितः ।
क्षामाऽलङ्कृदवाप्नोति पुत्रं पूजितलक्षणम् ।।४४
ऋतुकालेऽभिगम्यैवं ब्रह्मचर्ये व्यवस्थितः ।
गच्छन्नपि यथाकामं न दुष्टः स्यादनन्यकृत् ।।४५
भ्रूणहत्यामवाप्नोति ऋतौ भार्यापराङ्मुखः ।
सा त्ववाप्याऽन्यतो गर्भं त्याज्या भवति पापिनी ।।४६
महापातकदुष्टा च पतिगर्भविनाशिनी ।
सद्वृत्तचारिणीं पत्नीं त्यक्त्वा पतति धर्मतः ।।४७

महापातकदुष्टोऽपि नाप्रतीक्ष्यस्तया पतिः ।
अशुद्धे क्षयमादूरं स्थितायामनुचिन्तया ।।४८
व्यभिचारेण दुष्टानां पतीनां दर्शनादृते ।
धिक्कृतायामवाच्यामन्यत्र वासयेत् पतिः ।।४९

रजो दर्शन की पहिली चार रात्रियाँ तो पर्व की भांति वर्जित कर देनी चाहिए। फिर उनके बाद सम रात्रियों में ही पौष्ण-पितृ-ऋक्ष और राक्षसों को भार्या गमन करना चाहिए ।।४३।। पुरुष को अपनी भार्या का गमन सूर्य पथ के प्रच्छादित होने पर अर्थात रात्रि में ही करना चाहिए। इस प्रकार वह क्षामा अलकृत भार्या शुभ एवं सुन्दर लक्षणों से युक्त पुत्र को प्राप्त करती है ।४४।। केवल ऋतुकाल में ही भार्या का गमन करके फिर ब्रह्मचय में व्यवस्थित रहना चाहिए । इसके पश्चात् चाहे जब स्वेच्छा गमन करता हुआ अनन्य कृत पुरुष को दोष भागी नहीं होना चाहिए ।।४५।। ऋतु काल में भी जो पुरुष भार्या के अभिगमन का पराङ्मुख रहता है तो वह भार्या कहीं अन्य पुरुष से गर्भ धारण करलेती है तो पापिनी और त्याज्य हो जाती है और पुरुष भ्रूण हत्या का दोष प्राप्त करता है ।।४६।। पति के गर्भ का विनाश करने वाली स्त्री महान पातक से युक्त बन जाती है। जो पति सदाचार वाली पत्नी का त्याग करता है वह धर्म में पतित हो जाता हैं ।।४७।। महान पातक से दुष्ट भी पति पत्नी के द्वारा कभी भी प्रतीक्षा न करने के योग्य नहीं होता है पत्नी के दूर स्थित रहने पर अनुचिन्ता से दोष युक्त के विषय में क्षय हो जाता है ।।४८।। व्यभिचार से युक्त पति के दर्शन के बिना धिक्कृता तथा अवाच्य होने पर पति को अन्य स्थान में निवास कर देना चाहिए ।।४९।।

पुनस्तामार्त्तवस्नायां पूर्ववद् व्यवहारयेत् ।
धूर्ताञ्च धर्मकामघ्नोमपुत्रां दीर्घरोगिणीम् ।।५०
सुदुष्टां व्यसनासक्तामहितामधिवासयेत् ।
अधिविन्नामपि विभुः स्त्रीणान्तु समतामियात् ।।५१

विवर्णा दीनवदना देहसंस्कारवर्जिता ।
पतिव्रता निराहारा शोष्यते प्रोषिते पतौ ॥५२
मृतं भर्त्तारमादाय ब्राह्मणी वह्निमाविशेत् ।
जीवन्ती चेत्यक्तकेशा तपसा शोधयेद्वपुः ॥५३
सर्वास्ववस्थासु नारीणां न युक्तं स्यादरक्षणम् ।
तदेवानुक्रमात् कार्यं पितृभर्तृ सुतादिभिः ॥५४
जाताः सुरक्षितायां ये पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ।
ये यजन्ति पितॄन् यज्ञैर्मोक्षप्राप्तिमहोदयः ॥५५
मृतानामग्निहोत्रेण दाहयेद्विधिपूर्वकम् ।
दाहयेदविलम्बेन भार्याञ्चात्र व्रजेत सा ॥५६

फिर जब ऋतु धर्म से स्नान करके शुद्ध स्त्री हो जावे तो पूर्व की भाँति उसके साथ व्यवहार करना चाहिए । जो स्त्री धूर्त हो, धर्म और काम का हनन करने वाली हो, पुत्रहीन हो, दीर्घ रोग वाली हो, दुष्टा हो, व्यसनों में आसक्त हो और अहित करने वाली हो उसका अधिवास कर देना चाहिए । पति को स्त्रियों में अधिविन्ना स्त्री को भी समता देनी चाहिए ॥५०-५१॥ पति प्रोषित (परदेशगामी) होने पर पतिव्रता स्त्री विवर्णा, दीन मुख वाली, शरीर के संस्कारों से रहित और निराहार होकर अपना शोषण करती है ॥५२॥ पतिव्रता स्त्री का पति मृत हो जावे तो उसका शव अपनी गोद में रखकर ब्राह्मणी को वह्नि प्रवेश करना चाहिए अथवा जीवित रहते हुए अपने केशों को त्याग कर तप से शरीर का शोधन करना चाहिए । अर्थात् शव के साथ सती न होकर जीवित ही रहे और तपस्विनी बने ॥५३॥ स्त्रियों का सभी अवस्थाओं में अरक्षण युक्त नहीं होता है । अतएव स्त्रियों की रक्षा अनुक्रम से पिता, पति और पुत्रादि को करनी चाहिए । बाल्यदशा में पिता, यौवन में पति और वार्धक्य में पुत्र करे ।.५४॥ सुरक्षित स्त्री के जो पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र उत्पन्न हुए हैं वे यज्ञों के द्वारा पितृगण का यजन करते हैं और उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥५५॥ मृतों का अग्निहोत्र

के द्वारा विधिपूर्वक दाह करना चाहिए। भार्या को भी अविलम्ब ही दाह करे और वह यहाँ गमन करे ॥५६॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

अथ सस्नानादिविधि पूर्वाह्णकृत्यवर्णनम् ।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिति कर्म त्रिधा मतम् ।
त्रिविध तच्च वक्ष्यामि गृहस्थस्यावधार्यताम् ॥१
यामिन्याः पश्चिमे यामे त्यक्तनिद्रो हरिं स्मरेत् ।
आलोक्य मङ्गलद्रव्यं कर्माऽऽवश्यकमाचरेत् ॥२
कृतशौचो निषेव्याग्नि दन्तान् प्रक्षाल्य वारिणा ।
स्नात्वोपास्य द्विजः सन्ध्यां देवादींश्चैव तर्पयेत् ॥३
जुहोत्यनुदिते भानावित्येक उदिते रवौ ।
जपेदादित्यदेवत्यान्मन्त्रान्मन्त्रानियोगवित् ।
वेदवेदाङ्गशास्त्राणि इतिहासानि चाभ्यसेत् ।
अध्यापयेच्च सच्छिष्यान् सद्विप्रांश्च द्विजोत्तमः ॥४
अलब्धं प्रापयेल्लब्ध्वा क्षणमात्रं समापयेत् ।
समर्थो हि समर्थेन नाविज्ञातः क्वचिद्वसेत् ॥५
सरित्सरसि वापीषु गर्तप्रस्रवणादिषु ।
स्नायीत यावदुद्धृत्य पञ्च पिण्डानि वारिणा ॥६
तीर्थाभावेऽप्यशक्त्यां वा स्नायात्तोयैः समाहृतैः ।
गृहाङ्गणगतस्तत्र यावदम्बरपीडनम् ॥७

नित्य, नैमित्तिक और काम्य ये तीन प्रकार के कर्म होते हैं। गृहस्थ के वे तीन प्रकार के कर्म बतलाते हैं उनको अब धारण करो ॥१॥ रात के अन्तिम प्रहर में निद्रा का त्याग कर हरि का स्मरण करना चाहिए

फिर मज्जन द्रव्य को देखकर आवश्यक कर्म करना चाहिए ॥२॥ शौच क्रिया से निवृत्त होकर अग्नि का सेवन करे फिर जल से दाँतों का प्रक्षालन करे और स्नान करके ब्राह्मण को सन्ध्योपासन करना चाहिए और देवादि का तर्पण करना चाहिए ॥३॥ सूर्योदय के पूर्व ही हवन करे कुछ का मत है कि सूर्य के उदित हो जाने पर करना चाहिए सूर्य जिनके देव हैं ऐसे मन्त्रों को मन्त्र नियोग की भाँति जपना चाहिए। वेद और वेद के अङ्गभूत शास्त्रों को तथा इतिहासों को अभ्यस्त करना चाहिए। द्विजोत्तम को अच्छे छात्रों को तथा सद्विप्रों को पढ़ना चाहिए ॥४॥ अलब्ध को प्राप्त करे और प्राप्त करके क्षणमात्र में ही समाप्त कर दे। समर्थ किसी समर्थ के द्वारा अविज्ञात होता हुआ कहीं भी वास नहीं करे ॥५॥ नदी–सरोवर–बावड़ी–गर्त और प्रस्रवण (झरना) आदि में जल से पाँच पिण्ड उद्धृत करके स्नान करना चाहिए ॥६॥ तीर्थ के अभाव में या अशक्ति होने पर लाये हुए जल से जब तक अम्बर पीड़न हो घर के आँगन में जाकर स्नान करना चाहिए ॥७॥

स्नानमब्दैवतैःकुर्यात् पावनैश्चापि मार्ज्जनम्।
मन्त्रैः प्राणास्त्रिरायम्य सौरैश्चार्कं विलोकयेत् ॥८
तिष्ठन् स्थित्वा तु गायत्रीं ततः स्वाध्यायमारभेत्।
ऋचाञ्च यजुषां साम्नामथर्वाङ्गिरसामपि ॥९
इतिहासपुराणानां वेदोपनिषदां द्विजः।
शक्त्या सम्यक् पठेन्नित्यमल्पमप्यासमापनात् ॥१०
स यज्ञदानतपसामखिलं फलमाप्नुयात्।
वेदेभ्योऽन्यत्र संतुष्टः स विप्रः शूद्रतामियात्।
तस्मादहरहर्वेदं द्विजोऽधीयीत वाग्यतः ॥११
धर्मशास्त्रेतिहासादि सर्वेषां शक्तितः पठेत्।
कृतस्वाध्यायः प्रथमं तर्पयेच्चाथ देवताः ॥१२
जान्वा च दक्षिणं दर्भैः प्रागग्रैः सयवैस्तिलैः।
पुरः क्षिप्तैः कराग्राभ्यां निर्गतैः प्राङ्मुखो द्विजः।
एकैकांजलिदानेन प्रकृतिस्थोपवीतकः ॥१३

समजानुद्वयो ब्रह्मसूत्रहार उदङ्मुखः ।
तिर्य्यग्दर्भश्च वामाग्रैर्यवैस्तिलविमिश्रितैः ॥१४
अम्भोभिरुत्तरक्षिप्तः कनिष्ठामूलनिर्गतैः ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यामञ्जलिभ्यां मनुष्यांस्तर्पयेत्ततः ॥१५

जलीय देव मन्त्रों से स्नान करे और पावन मन्त्रों से मार्जन करे। मन्त्रों के द्वारा प्राणों को तीन वार आयमित करके सौर मन्त्रों से सूर्य का दर्शन करना चाहिये ॥८॥ खड़े होते हुए या बैठकर गायत्री मन्त्र का जप करे। इसके पश्चात् स्वाध्याय का आरम्भ करना चाहिए। स्वाध्याय में ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वाङ्गिरस का भी अध्ययन करे ॥९॥ ब्राह्मण को इतिहास–पुराण–वेद और उपनिषदों का शक्तिपूर्वक भली-भाँति समाप्ति पर्यन्त थोड़ा-थोड़ा पठन करना चाहिए ॥१०॥ ब्राह्मण वेदों के अध्ययनाध्यापन से यज्ञ, दान और तप का समस्त फल प्राप्त कर लेता है। इसके अतिरिक्त वैसे ही जो सन्तुष्ट बना रहता है वह ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है ॥११॥ अतएव ब्राह्मण को प्रतिदिन वाग्यत होकर वेदों का अध्ययन अवश्य ही करना चाहिए। धर्मशास्त्र इतिहासादि सबका ही शक्ति भर अध्ययन करना चाहिए ।१२। स्वाध्याय करने के बाद देवताओं का तर्पण करना चाहिए। दक्षिण जानु से, प्रागग्र कुशा से और जो के साथ तिलों से ब्राह्मण आगे क्षिप्त और कराग्र से निकले हुए के द्वारा पूर्वाभिमुख होकर प्रकृतिस्थ उपवीत वाला रहते हुए एक-एक अञ्जलि देवे ॥१३॥ ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) को गले में हार बनाकर दोनों घुटनों को समान रखते हुए उत्तराभिमुख होकर बाँये हाथ में दर्भों को तिरछा करके तिलों से मिले हुए जो से दो-दो अञ्जलि देकर उत्तर को ओर कनिष्ठिका के मूल से निकले हुए जल द्वारा मनुष्यों का तर्पण करे ॥१४-१५॥

दक्षिणाभिमुखः सव्यं जान्वा च द्विगुणैः कुशैः ।
तिलैर्जलैश्च देशिन्या मूलदर्भाद्विनिःसृतैः ॥१६
दक्षिणांसोपवीतः स्यात् क्रमेणांजलिभिस्त्रिभिः ।
सन्तर्पयेद्दिव्यपितॄं स्तत्परांश्च पितॄन् स्वकान् ॥१७

स्वधा वर्जन्य मानेवमेक इच्छन्ति दर्पणे ।
द्विजातिजीवत्पितृकोऽस्येतानन्यांश्च तर्पयेत् ।।
तर्पयेद्दिव्येपितॄंश्च पितृपूर्वान्पितृन्स्वकान् ।
मातृमातामहांस्तद्वत्त्रीनेवं हि त्रिभिस्त्रिभिः ।
मातामहाश्च येऽप्यन्ये गोत्रिणो दाहवर्जिताः ।।१८
तानेकांजलिदानेन तर्पयेच्च पृथक् पृथक् ।
असंस्कृतप्रमीता ये प्रेतसंस्कारवर्जिताः ।।१९
वस्त्रनिष्पीड़नाम्भोभिस्तेषामाप्यायनम्भवेत् ।
अतर्पितेषु पितृषु वस्त्रं निष्पीड़येच्च यः ।।२०
निराशाः पितरस्तस्य भवन्ति सुरमानुषैः ।
पयोदर्भस्वधाकारगोत्रनामतिलैर्भवेत् ।।२१
सुदत्तं तत्पुनस्तेषामेकेनापि वृथा विना ।
अन्यचित्तेन यद्दत्तं यद्दत्तं विधिवर्जितम् ।।२२
अनासनस्थितेनापि तज्जलं रुधिरायते ।
एवं सन्तर्पिताः कामैस्तर्पकास्तर्पयन्ति च ।।२३

दक्षिण दिशा की ओर मुखवाला, सव्योपवीत वाला जानु द्वारा द्विगुणित कुशा से देशिनी अंगुलि के मूल से निकले हुए तिल तथा जल के द्वारा क्रम से तीन-तीन अञ्जलियों द्वारा दिव्य पितरों को और उसके पश्चात् अपने पितरों का तर्पण करना चाहिये ।।१६-१७।। स्वधा वर्जन वाला, इस प्रकार तर्पण में इच्छा करते हैं । ऐसा कुछ का मत है । जिस द्विजाति के पूर्व पुरुष पितादि जीवित हों वह दिव्य पितरादि अन्यों का तर्पण करे तथा पूर्व पितृगण का तर्पण करे । इसी प्रकार मातृ महादि का भी तीन-तीन अञ्जलि द्वारा तर्पण करे । मातामह और जो अन्य हों जिनका दाहादि न हुआ हो सबका तर्पण करे ।।१८।। इन सबको एक-एक अञ्जलि देकर पृथक् तर्पण करना चाहिए । जो संस्कार रहित हों और प्रेत संस्कार वर्जित हों, उनको वस्त्र निष्पीड़ित जल के तृप्त करे । जो पितर अतृप्त हों उनके लिये यदि वस्त्र से निष्पीड़ित कोई जल देता है तो उसके पितर निराश होते हैं । जल-डाभ-स्वधाकार-गोत्र-नाम और

तिल रहित देव मनुष्य तृप्त किये जाते हैं वे भी निराशा वाले होते हैं ॥१९-२१॥ उनके लिये पुनः भली-भाँति एक भी अञ्जलि के दिये बिना सब व्यर्थ होता है। जो अन्यमनस्क होकर जल दिया जाता है और बिना विधि के जलदान दिया जाता है अथवा आसन पर स्थित रह कर ही जो तर्पण किया जाता है वह जल रुधिर के समान होता है। अतः इस उक्त विधि द्वारा तृप्त किये गये पितर तर्पण करने वालों की समस्त कामनायें पूर्ण कर तृप्त कर देते हैं ॥२२-२३॥

ब्रह्मविष्णुशिवादित्यमित्रावरुणनामभिः ।
पूजयेल्लक्षितैर्मन्त्रैर्जलमन्त्रोक्तदेवताः ॥२४
उपस्थाय रवेः काष्ठां पूजयित्वा च देवताः ।
ब्रह्माग्नीन्द्रौषधीजीव विष्णुनामहृतांहसाम् ॥२५
अपां यत्तेति सत्कार्यं नमस्कारैः स्वनामभिः ।
कृत्वा मुखं समालभ्य स्नानमेवं समाचरेत् ॥२६
ततः प्रविश्य भवनमावसथ्ये हुताशने ।
पाकयज्ञाश्च चतुरो विदध्याद्विधिवद् द्विजः ॥२७
अनाहितावसथ्याग्निदायान्नं घृतप्लुतम् ।
शाकलेन विधानेन जुहुयाल्लौकिकेऽनले ॥२८
व्यस्ताभिर्व्याहृतीभिश्च समस्ताभिस्ततः परम् ।
षड्भिर्देवकृतस्येति मन्त्रवद्भिर्यथाक्रमम् ॥२९
प्राजापत्यं स्विष्टकृतं हुत्वैवं द्वादशाऽऽहुती ।
ओङ्कारपूर्वः स्वहान्तस्त्यागः स्विष्टविधानतः ॥३०

ब्रह्मा- विष्णु-शिव-आदित्य-मित्रावरुण नाम वाले लक्षित मन्त्रों द्वारा जल मन्त्रोक्त कर देवों का पूजन करना चाहिए ॥२४॥ सूर्य की दशा में उपस्थ होकर और देवताओं का पूजन करके ब्रह्मा-अग्नि-इन्द्र-ओषधिजीव-विष्णु के नाम से हतपाप जल का सत्कार करे तथा अपना नाम लेकर नमस्कार से सत्कृत करना चाहिए। मुख को समालब्ध करके स्नान करे ॥२५-२६॥ इसके अनन्तर भवन में प्रवेश कर ब्राह्मण आव-

सथ्य अग्नि में चार पाक यज्ञों को विधि पूर्वक करे ॥२७॥ जो अना-हित आवसथ्य अग्नि वाला हो उसे लौकिक अग्नि में ही घृत से प्लुत अन्न लेकर शाकल द्वारा विधान से हवन करना चाहिए ॥२८॥ आरम्भ में पृथक-पृथक व्याहृतियों से और फिर समस्त व्याहृतियों से तथा "देवकृतस्य" इत्यादि मन्त्र से युक्त से छः बार यथाक्रम हवन करे ॥२९॥ स्विष्टकृत प्राजापत्य से बारह आहुतियाँ देवे। आरम्भ में ओंकार तथा अन्त में "स्वाहा" का प्रयोग करे और सब स्विष्ट विधान से त्याग करे ॥३०॥

भुविदर्भान् समास्तीर्य्य बलिकर्म समाचरेत् ।
विश्वेभ्योदेवेभ्य इति सर्वेभ्यो भूतेभ्य एव च ॥३१
भूतानां पतये चेति नमस्कारेण शास्त्रवित् ।
दद्याद्बलित्रयञ्चाग्रे पितृभ्यश्च स्वधा नमः ॥३२
पात्रनिर्णेजनं वारि वायव्यां दिशि निःक्षिपेत्।
उद्धृत्य षोडशग्रासमात्रमन्नं घृतोक्षितम् ।
इदमन्नं मनुष्येभ्यो हन्तेत्युक्त्वा समुपत्सृजेत् ।
गोत्रनामस्वधाकारैः पितृभ्यश्चापि शक्तितः ॥३३
षड्भ्योऽन्नमन्वहं दद्यात् पितृयज्ञविधानतः ।
वेदादीनां पठेत् किञ्चिदल्पं ब्रह्ममखाप्तये ॥३४
ततोऽन्यदन्नमादाय निर्गत्याभवनाद्बहिः ।
काकेभ्यः श्वपचेभ्यश्च प्रतिपेद्ग्रासमेव च ॥३५
उपविश्य गृहद्वारि तिष्ठेद्यावन्मुहूर्तकम् ।
अप्रभुक्तोऽतिथिं लिप्सुर्भावशुद्धः प्रतीक्षकः ॥३६
आगतं दूरतः (श्रान्तं) शान्तं भोक्तुकाममकिञ्चनम् ।
दृष्ट्वा संमुखमभ्येत्य सत्कृत्य प्रश्रयार्च्चनैः ॥३७
पाद धावनसम्मानाभ्यञ्जनादिभिरर्चितः ।
त्रिदिवं प्रापयेत्सद्यो यज्ञस्याभ्यधिकोऽतिथिः ॥३८

भूमि में दर्भों (कुशाओं) को फैलाकर बलि कर्म करना चाहिए। समस्त भूतों के लिये तथा विश्वेदेवों के लिये बलि कर्म करे॥ ३१ ॥

शास्त्र का ज्ञाता भूतों के पति के लिये नमस्कार के साथ बलि दे तथा 'स्वधा नमः' कहकर पितरों के लिये तीन बलि देवे ।।३२।। पात्र धोने का जल वायव्य कोण में डाले और घृत से उक्षित अन्न को सोलह ग्रास मात्र लेकर "इदमन्नं मनुष्यो हन्त" ऐसा कह छोड़ देवे । गोत्र नाम तथा स्वधाकार के साथ पितृयज्ञ के विधान से शक्ति पूर्वक छः पितरों के लिये प्रति दिन अन्न देवे । वेदादि का कुछ स्वरूप भाग मख प्राप्ति के लिये अवश्य पढ़ना चाहिए ।।३३-३४।। इसके पश्चात अन्य अन्न लेकर घर से बाहिर निकल कर कौओं के लिये तथा श्वपचों के लिय ग्रास डाले ।।३५।। गृह के द्वार पर बैठकर मुहूर्त मात्र स्थित रहें और देखे कि कोई चाह वाला, न खाया हुआ शुद्धभाव वाला एवं प्रतीक्षा करने वाला अतिथि आ रहा है ।।३६।। दूर चले आने वाले, थके हुए, खाने की इच्छा वाले और जिसके पास कुछ भी न हो ऐसे अतिथि को देखकर उसके सामने जाकर नम्रता के साथ अर्चना से पाद प्रक्षालन तथा चरणों का दबाना, सम्मान देना और अभ्यञ्जनादि द्वारा भली भाँति सत्कार पूर्वक पूजित करे । इस अतिथि से तुरन्त ही स्वर्ग प्राप्त होता है और अतिथि यज्ञ से भी अधिक महत्व रखता है ।।३७-३८।।

कालागतोऽतिथिर्दृष्टवेदपारो गृहागतः ।
द्वावेतौ पूजितौ स्वर्गं नयतोऽधस्त्वपूजितौ ।
विवाह्यस्नातकक्ष्माभृदाचार्यसुहृदृत्विजः ।।३९
अर्घ्या भवन्ति धर्मेण प्रतिवर्षं गृहागताः ।
गृहागताय सत्कृत्य श्रोत्रियाय यथाविधि ।।४०
भक्त्योपकल्पयेदेकं महाभागं विवर्जयेत् ।
विसर्जयेदनुव्रज्य सुतृप्तश्रोत्रियातिथीन् ।
मित्र मातुलसम्बन्धिबान्धवान् समुपागतान् ।।४१
भोजयेद् गृहिणो भिक्षां सत्कृतां भिक्षुकोऽर्हति ।
स्वाद्वन्नमश्नन्नस्वादु ददद्गच्छत्यधोगतिम् ।।४२
गर्भिण्यातुरभृत्येषु बालवृद्धातुरादिषु
बुभुक्षितेषु भुञ्जानो गृहस्थोऽश्नाति किल्विषम् ।।४३

नाद्यादगृह्येन्न पाकान्नं कदाचिदनिमन्त्रितः।
निमन्त्रितोऽपि निन्द्येन प्रत्याख्यानं द्विजोऽर्हति ॥४४

कलागत अतिथि और इष्ट वेद पारगामी घर में आया हुआ हो, ये दोनों पूजित एवं सत्कृत होने पर स्वर्ग, प्राप्ति करते हैं और यदि इनकी पूजा सत्कृति नहीं हो तो अधः पतन करा देते हैं ।।३९।। विवाह के योग्य स्नातक, राजा, आचार्य, सुहृत और ऋत्विज ये घर में आये हुए प्रति-वर्ष धर्म सिद्धि के लिये पूजा योग्य होते हैं। घर में आगत श्रोत्रिय के लिये यथाविधि सत्कार करे ।।४०।। भली प्रकार तृप्त श्रोत्रिय और अतिथि का भक्ति पूर्वक अच्छी तरह आतिथ्य करे और ऐसे महा भाग को विदा करे तथा कुछ दूर तक साथ में पीछे गमन करना चाहिए। मित्र, मामा, सम्बन्धी और बान्धवों को जो भी घर में समुपागत हों, गृहस्थी को उनका भोजन कराना चाहिए। गृहस्थाश्रमी के यहाँ भिक्षुक भी सत्कार युक्त भिक्षा प्राप्त करने के योग्य होता है। जो स्वयं तो स्वादयुक्त अन्न खावे और उनको स्वाद रहित देवे वह अधोगति को जाता है ।।४१-४२।। गर्भिणी स्त्री, रोगी, भृत्य बालक, वृद्ध, आतुर आदि तो भूखे हों और उन्हें पहले न देकर आप भोजन करले तो ऐसा गृहस्थ पाप का भागी होता है ।।४३।। ब्राह्मण अनिमन्त्रित होता हुआ कभी भी पाकान्न को न खावे और न गृहण करे। निन्दा योग्य के द्वारा निमन्त्रित होने पर भी उसके अन्न का प्रत्याख्यान कर देना चाहिए ।।४४।।

क्षुद्राभिशस्तवार्धुष्यवाग्दुष्टक्रूरतस्कराः।
क्रुद्धापविद्धबद्धोग्रवधन्धनजीविनः ॥४५
शैलूषशौण्डिकोन्नद्धोन्मत्तव्रात्यव्रतच्युताः।
नग्ननास्तिकनिर्लज्जपिशुनव्यसनान्विताः ॥४६
कदर्य्यस्त्रीजितानार्य्यपरवादकृता नराः।
अनीशाः (अमित्रा) कीर्तिमन्तोऽपि राजदेवस्वहारकाः ॥४७
शयनासनसंसर्गवृत्तकर्मादिदूषिताः।
अश्रद्दधानाः पतिता भ्रष्टाचारादयश्च ये ॥४८

अभोज्यान्नाः स्युरन्नादो यस्य यः स्यात्स तत्समः ।
नापितान्वयपित्रार्द्धसीरिणो दासगोपकाः ।।४६

शूद्राणामप्यमीषान्तु भुक्त्वाऽन्नं नैव दुष्यति ।
धर्मेणान्योन्यभोज्यान्ना द्विजास्तु विदितान्वयाः ।।५०

स्ववृत्त्योपार्जितं मेध्यमकेशकृमिमक्षकम् ।
अश्वलीढद्वप्रोघ्रातमस्पृष्टं शूद्रवायसैः ।।५१

अनुच्छिष्टमसंदुष्टमपर्यु षितमेव च ।
अम्लानवाष्पमन्नाद्यमद्यान्नित्यं सुसंस्कृतम् ।।५२

क्षुद्र—अभिशस्त -वार्धुषि--गूंगा तथा वागदुष्ट-क्रूर-तस्कर -क्रोधी-अपविद्ध--बद्ध--उग्र--वध तथा बन्धन की जीविका वाला--नट-शौण्डिक-उन्नद--उन्मत्त -व्रात्य—व्रतच्युत--नग्न--नास्तिक - निर्लज्ज - पिशुन — व्यसनी - कदर्य स्त्री के द्वारा जीता हुआ-अनार्य-परवादकारक-अनीश-राजा-और देव धन का हरणकर्त्ता चाहे कीत्तिमान भी हो और शयन आसन, संसर्ग, चरित्र तथा कर्म से दूषित-अश्रद्धा करने वाला-पतित और भ्रष्टाचार वाले पुरुषों का अन्न भोजन के योग्य नहीं होता है। जिसका भी अन्न जो खाता है वह भी उसी के समान ही होता है क्योंकि उसके अन्न का ऐसा प्रभाव ही होता है ।।४५-४८।। नापित (नाई), वंश परम्परा से मित्र, अर्धसीरी, दास और गोप ये शूद्र हैं तथापि इन शूद्रों के अन्न को खाकर भी दूषित नहीं होते हैं । जिनके अन्वय (वंश) का ज्ञान है ऐसे द्विज धर्म से परस्पर में भोजन के योग्य अन्न वाले होते हैं ।।४९-५०।। अपनी वृत्ति से उपार्जित, पवित्र और केश, कृमि तथा मक्खियों से रहित, अश्व के द्वारा अवलीड (न चाटा हुआ) और गाय के द्वारा सूंघा हुआ, शूद्र और कौआ से स्पर्श न किया हुआ, उच्छिष्ट न हुआ, अदूषित, जो पर्युषित न हो अम्लान वाष्प वाले अन्नादि को सुसंस्कृत करके नित्य खाना चाहिए ।।५१-५२।।

कृसरापूपसंयावपायसं शष्कुलीति च ।
नाश्नीयाद् ब्राह्मणो मांसमनियुक्तः कथञ्चन ।।५३
क्रतौ श्राद्धे नियुक्तो वा अनश्नन् पतति द्विजः ।
द्विजोजग्ध्वा वृथामांसं हत्वाऽप्यविधिना पशुन् ।।५४-५५
निरयेष्वक्षयं वासमाप्नोत्याचन्द्रतारकम् ।
सर्वान् कामान् समासाद्य फलमश्वमखस्य च ।।५६
मुनिसाम्य मवाप्नोत गृहस्थोऽपि द्विजोत्तमः ।
द्विज भोज्यानि गव्यानि माहिषाणि पयांसि च ।।५७
निर्दशशासन्धिसम्बन्धिवत्सवन्तीपयांसि च ।
अलावुशिग्रु कवकच्छ त्राकलशुनानि च ।
पलाण्डुश्वेतवृन्ताकरक्त मूलकमेव च ।।५८
गृञ्जनारुणवृक्षासृग्जन्तुगर्भ फलानि च ।
अकालकुसुमादीनि द्विजोजग्ध्वैन्दवं चरेत् ।।५९
वाग्दूषितमविज्ञातमन्यपीड़ितकार्य्यंपि
भूतेभ्योऽन्नमदत्वा च तदन्नं गृहिणो दहेत ।।६०

अनियुक्त ब्राह्मण को कृसर, अपूप, संयाव, पायस, शुष्कुली को तथा माँस को किसी प्रकार भी नहीं खाना चाहिए ।।५३।। क्रतु (यज्ञ) तथा श्राद्ध में नियुक्त ब्राह्मण भोजन न करे तो पतित हो जाता है यदि ब्राह्मण माँस को खाता है और पशुओं की हिंसा करता है तो जब तक तारागण रहते हैं तब तक नरक में अक्षय वास प्राप्त करता है ।।५४-५५।। गृहस्थ भी द्विज समस्त कामनाओं को तथा अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त कर मुनि की समता को प्राप्त किया करता है जो द्विज के योग्य भोज्य गव्य तथा भैंस के दूधादि को सेवन करता है ।।५७।। दश दिन के पूर्व सन्धि सम्बन्धी बच्चे वाली का दूध, अलावु, शिग्रु, कवक, छत्राक, लहसुन, प्याज, श्वेत वृन्ताक (बैंगन), मूली, गाजर, अरुण वृक्ष सृग, जन्तु फल अकाल कुसुम आदि को खाकर ब्राह्मण को चान्द्रायण व्रत प्रायश्चित के लिये करना चाहिए ।।५९।। वाणी से दूषित

अविज्ञात और अन्य को पीड़ित करने वाला अन्न धूर्तों को न देकर ग्रहण करने वाला दाह को प्राप्त होता है ।।६०।।

हैमराजतकांस्येषु पात्रेष्वद्यात सदा गृही ।
तदभावे साधुगन्ध (मेध्य) लोध्रद्रु मलतासु च ।।६१
पलाशपद्म प षु गृहस्थो भोक्तु मर्हति ।
ब्रह्मचारी यतिश्चैव श्रेयोवद्भोक्तु मर्हति ।।६२
अभ्युक्ष्यान्नं नमस्कारं भुवि दद्याद्बलित्रयम् ।
भपतये भुवः पतये भूतानां पतये तथा ।।६३
अपः प्राश्य ततः पश्चात् पञ्चप्राणाहुतिः क्रमात् ।
स्वाहाकारेण जुहुयाच्छेषमद्याद्यथासुखम् ।।६४
अनन्यचित्तो भुञ्जीत वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।
आतृप्तेरन्न मश्नीयादक्षुण्णां पात्रमुत्सृजेत् ।।६५
उच्छिष्टमन्नमुद्धृत्य ग्रासमेक भुवि क्षिपेत् ।
आचान्तः साधुसङ्गेन सद्विद्या पठनेन च ।।६६
वृतवृद्ध (पुरावृत्त) कथाभिश्चशेषाहमतिवाहयेत् ।
साय सन्ध्यामुपासीत हुत्वाऽग्नि भृत्यसंयुतः ।।६७

गृहस्थ को सुवर्ण, चाँदी तथा काँसे के पात्र में सदा भोजन करना चाहिए । यदि इनका अभाव हो तो अच्छी गन्ध वाले पवित्र लोध के वृक्षलतादि में तथा पलाश के या पदम के पत्तों में गृहस्थ भोजन करने के योग्यहोते हैं । ब्रह्मचारी और सन्यासी भी इनमें कल्याणकारी भोजन करने के योग्य होता है ।।-२।। अन्न का भ्युक्षण करके भूमि में नमस्कार करे फिर-"भु पतये नमः", "भुवः पतये नमः", "भूतानां पतये नमः"- इन मन्त्रो से तीन बलि देवे ।।६३।। जल प्राशन करके क्रम से पाँच प्राणाहुतियाँ स्वाहाकार—से देव और फिर शेष का सुख पूर्वक भोजन करना चाहिए ।।६४।। मौन पूर्वक अन्न की निन्दा न करते हुये भोजन करे और तृप्त होने के पश्चात् थाली में थोड़ा सा छोड़दे ।।६५।। उच्छिष्ट अन्न को उठाकर एक ग्रास भूमि पर डाले । फिर आचान्त होकर अपने समय को साधु सन्तों की सङ्गति में तथा अच्छी विद्या के

पढ़ने में, या साधु चरित तथा वृद्ध कथाओं से शेष दिन को व्यतीत करना चाहिए। सायंकाल की संध्या की उपासना करे और भृत्य वर्ग से युक्त अग्नि का हवन करे ॥६७॥

आपोशानक्रियापूर्वमश्नीयादन्वहं द्विजः।
सायमप्यतिथिः पूज्योहोमकालागतो (द्विजः) ऽनिशम् ॥६८
श्रद्धया शक्तितो नित्यं श्रुतं हन्यादपूजितः।
नातितृप्त उपस्पृश्य प्रक्षाल्य चरणौ शुचिः ॥६९
अप्रत्यगुत्तरशिराः शयीत शयने शुभे।
शक्तिमानुचिते काले स्नानं सन्ध्यांनहापयेत् ॥७०
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेद्धितमात्मनः।
शक्तिमान् मतिमान् नित्यं वृत्तमेतत् समाचरेत् ॥७१

ब्राह्मण को प्रति दिन भोजन के पूर्व अपोशान क्रिया करनी चाहिए। सायंकाल में भी अतिथि की पूजा करे जो कि होम के समय में आ गया है ॥६८॥ श्रद्धा और शक्ति से नित्य अपूजित अतिथि श्रुति का हनन करता है। अतिशय रूप से तृप्त न होता हुआ चरणों को धोकर उपस्पर्शन करके पवित्र होकर उत्तर की ओर शिर करके शुभ शय्या पर शयन करे। शक्ति रहते हुए उचित समय में स्नान और सन्ध्या का कभी भी त्याग न करे ॥६९-७०॥ ब्राह्म मुहुर्त में उठकर अपने कल्याण तथा हित का चिन्तन करना चाहिए। शक्तिमान् और मतिमान् को नित्य ही अपना चरित्र इसी प्रकार रखना चाहिए ॥७१॥

———

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अथ गृहस्थाश्रमप्रशंसापूर्वक तीर्थधर्म वर्णनम् ।

इति व्यासकृतं शास्त्रं धर्मसारसमुच्चयम् ।
आश्रमेयानि पुण्यानि मोक्षधर्माश्रितानि च ।।१
गृहाश्रमात् परो धर्मो नास्ति नास्ति पुनः पुनः ।
सर्वतीर्थफलं तस्य यथोक्तं यस्तु पालयेत् ।।२
गुरुभक्तो भृत्यपोषी दयावाननुसूयकः ।
नित्यजापी च होमी च सत्यवादी जितेन्द्रयः ।।३
स्वदारे यस्य सन्तोषः परदारनिवर्तनम् ।
अपवादोऽपि नो यस्य तस्य तीर्थफलं गृहे ।।४
परदारान् परद्रव्यं हरते यो दिने दिने ।
सर्व्वतीर्थाभिषेकेण पाप तस्य न नश्यति ।।५
गृहेषु सेवनीयेषु सर्वतीर्थं फलं ततः ।
अन्नदस्य त्रयो भागाः कर्त्ता भोगेन लिप्यते ।।६
प्रतिश्रयं पादशौचं ब्राह्मणानाञ्च तर्पणम् ।
न पापं संस्पृशेत्तस्य बल भिक्षां ददाति यः ।।७

गार्हस्थ्य आश्रम का महत्व सबसे अधिक है। इससे बड़ा संसार में कोई भी पुण्य या धर्म नहीं है। पूर्णतया इसका पालन करने पर तीर्थों का फल प्राप्त होता है ।।१-२।। गृहस्थ व्यक्ति गुरु का पूर्ण भक्त रहे अपने भृत्यों का पालन करने वाला रहे दयावान हो, किसी की बुराई न करे, नित्य हवन तथा जप करे और सत्यवादो एव इन्द्रियों का जीतने वाला होना चाहिए ।।३।। जिस गृहस्थ को अपनी स्त्री से सन्तोष हो और परस्त्री से निवृत्ति रक्खे, जिसका कोई भी संसार में कुछ अपवाद न हो ऐसे गृहस्थी को घर में ही पूर्ण तीर्थ का फल प्राप्त होता है ।।४।। जो गृहस्थ पर-स्त्री,परायाधन प्रतिदिन हरण करता रहता है उसका पाप समस्त तीर्थों के अभिषेक करने पर भी नष्ट नहीं होता है ।।५।। घरों में

जो सेवन के योग्य हैं, समस्त तीर्थों का फल रहता है। अन्न देने वालों के त.न भाग होते हैं किन्तु कर्त्ता भोग से लिप्त हो जाता हैं ॥६॥ प्रतिश्रय पादशौच और ब्राह्मणों का तर्पण करना—इन को जो किया करता है और बलि और भिक्षा देता है उसको कभी भी पाप स्पर्श नहीं करता है ॥७॥

पादोदकं पादघृतं दीपमन्नं प्रतिश्रयम्।
यो ददाति ब्राह्मणेभ्यो नापसर्पति तं यमः ॥८
विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदनी।
तावत् पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरोऽमृतम् ॥६
यत्फलं कपिलादाने कार्तिक्यां ज्येष्ठपुष्करे।
तत्फलं ऋषयः (पाण्डव) श्रेष्ठाविप्राणांपादशौ (ध) चने ॥१०
स्वागतेनाग्नयः प्रीता आसनेन शतक्रतुः।
पितरः पादशाचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः ॥११
मातापित्रोः परं तीर्थं गङ्गा गावो विशेषतः।
ब्राह्मणात् परमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥१२
इन्द्रियाणि वशीकृत्य गृह एव वसेन्नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिष पुष्कराणि च ॥१३
गङ्गाद्वारञ्च केदारं सन्निहत्यां तथैव च।
एतानि सर्वतीर्थानि कृत्वा पापः प्रमुच्यते ॥१४

जो ब्राह्मणों को पादोदक, पाद घृत, दीप और अन्न और प्रतिश्रय देता है उसके निकट यमराज नहीं फटकता है ॥८॥ ब्राह्मणों के चरण धोने के जल से गृहस्थ के घर की भूमि जब तक क्लिन्न (गीली—भीगी हुई) रहती है तब तक उसके पितृगण पुष्कर पात्रों में अमृत का पान किया करते हैं ॥६॥ जो फल कपिला (कपिल वर्ण वाली, गाय को कार्तिकी पूर्णिमा में तथा ज्येष्ठ में पुष्कर तीर्थ दान करने का होता है, वहा फल श्रेष्ठ ऋषि कल्प (सदृश) ब्राह्मणों के चरण धोने से होता है ॥१०॥ ब्राह्मणों के स्वागत करने से गृहस्थ के अग्नि प्रसन्न होते हैं। उनको आसन देने से इन्द्र देव प्रसन्न होते हैं। पाद प्रक्षालन करने से

पितृगण परम हर्षित होते हैं और अन्नादि देने से या अन्नादि का भोजन कराने से प्रजापति सन्तुष्ट होते हैं ॥११॥ अपनी इन्द्रियों को वश में करके मनुष्य को घर में ही वास करना चाहिए। उमके लिये वह घर ही कुरुक्षेत्र, नैमिष तया पुष्करराज है ॥१२-१३॥ जो इन्द्रियों को जीतने वाला है अपने निकट ही गङ्गाद्वार तथा केदारनाथ आदि समस्त तीर्थों को करके समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥१४॥

वर्णानामाश्रमाणाञ्च चातुर्वर्ण्यस्य (पार्थिव) भो द्विजः।
दानधर्मं प्रवक्ष्यामि यथा व्यासेन भाषितम् ॥१५
यद्ददाति वशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिने दिने।
तच्च वित्तमहं मन्ये शेषं कस्याभिरक्षति ॥ ६
यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम्।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥१७
किं धनेन करिष्यन्ति देहिनोऽपि गतायुषः।
यद्वर्द्धयितुमिच्छन्तस्तच्छरीरमशाश्वतम् ॥१८
अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥१९
यदि नाम न धर्माय न कामाय न कीर्तये।
यत्परित्यज्य गन्तव्यं तद्धनं किं न दीयते ॥२०
जीवन्ति जीविते यस्य विप्रा मित्राणि बान्धवाः।
जीवितं सफलं तस्य आत्मार्थे को न जीवति ॥२१

ब्राह्मणादि वर्णों का तथा ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का चातुर्वंण्य के जो दान तथा धर्म हैं और व्यास मुनि ने बताये हैं उन्हें हे ब्राह्मणों। मैं बतलाता हूँ ॥१५॥ जो पास में रहने वाला धन विशिष्ट योग्य व्यक्तियों को दान रूप में दे दिया जाता है और जिस का प्रतिदिन अपने भोजनादि में व्यय किया जाता है मैं वास्तव में उसी धन को मानता हूँ। उसके अतिरिक्त धन की रक्षा किसलिए की जाती है ? अर्थात् शेष धन व्यर्थ ही रहता है ॥१७॥ जो दान में दे दिया जावे और जिसका भोजनादि कार्य

में स्वयं उपभोग करले वही वस्तुतः धनी पुरुष का अपना धन है बाकी रहने वाले धन और स्त्री सभी से मरने के पश्चात् दूसरे लोग ही क्रीड़ा क्रिया करते हैं ।।१७।। क्षीण आयु वाले देहधारी धन से क्या करेंगे। जिस शरीर के उपभोग के लिये धन की वृद्धि की इच्छा किया करते हैं वह शरीर ही सर्वदा नहीं रहने वाला अनित्य एवं नाशवान् है ।।१८।। यह शरीर अशाश्वत है और यह धन भी सदा बना रहने वाला नहीं होता है, अतः धर्म का सग्रह भरसक करना चाहिए ।।१९।। जो धन धर्म, काम और यश के लिये नहीं होता है अर्थात् जिससे न धर्म हो किया जावे, न कामनाओं की पूर्ति हो और न यश की वृद्धि करे वह त्याग कर चले जाना चाहिए, एसा धन क्यों नहीं दिया जाता है ? ।।२०।। जिसके जीवित रहने पर ब्राह्मण, मित्र और बान्धव गण अपना जीवन कायम रखते हैं वास्तव में उसी पुरुष का जीवन सफल एवं सार्थक है। अपने लिये तो सभी जीवित रहा करते हैं ।।२१।।

क्रिमयः किं न जीवन्ति भक्षयन्ति परस्परम् ।
परलोकाविरोधेन यो जीवति स जीवित ।।
पशवोऽपि हि जीवन्ति केवलात्मोदरम्भराः ।
कि कायेन सुगुप्तेन (सुपुष्टेन) बलिना चिरजोविनः ।।२२
ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः कि न मीयते ।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ।।२३
अदाता पुरुषस्त्यागी धनं संत्यज्य गच्छति ।
दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुञ्चति ।।२४
प्राणनाशस्तु कर्तव्यो यः कृतार्थो न सोऽमृतः ।
अकृतार्थस्तु यो मृत्युं प्राप्तः खरसमोहि सः ।।२५
अनाहूतेषु यद्दत्तं यच्च दद्यमयाचितम् ।
भविष्यति युगस्यान्तस्तस्यान्तो न भविष्यति ।।२-

केवल अपने ही आमोद में तत्पर रहने वाले पशु भी अपना पेट भरकर जीवित रहते हैं। जो अपना ही उदर भरने में परायण रहे ऐसे परिपुष्ट, बलवान् और अधिक समय तक जीवित शरीर से क्या लाभ है ?

।।२२।। जितना भी अपने पास हो उसमें से कुछ न कुछ दान में देना ही चाहिये। एक ग्रास में से भी आधा ग्रास याचकों को दे देना उचित है। यों तो अपनी इच्छा की पूर्ति करने वाला धन –वैभव किसी के पास भी नहीं होता है ।।२३।। अदाता और त्यागी दोनों ही धन को अन्त समय में यहीं त्याग कर चले जाते हैं। जो धन का दान नहीं करता है उसको कृपण माना जाता है क्योंकि वह मरते समय में भी अर्थ को नहीं छोड़ता ।।२४।। प्राणों का नाश तो एक दिन अवश्य ही करना होगा। किन्तु जो कृतार्थ होता है वह नहीं मरता है। जो अकृतार्थ है वह गधा के समान ही मृत्यु को प्राप्त होता है ।।२५।। बिना बुलाये हुए जो स्वयं ही उपस्थित हो गये हों ऐसे व्यक्तियों को दिया हुआ दान फल होता है । युग का तो अन्त हो अन्त हो जाता किन्तु उक्त दान का अन्त कभी नहीं होता है ।।२६।।

।। समाप्त ।।

आपस्तम्ब स्मृतिः

अथ प्रथमोऽध्यायः

अथ गोरोधनादिविषये—गोहत्यायाँ च प्रायश्चित्त वर्णनम् ।

आपस्तम्बं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविनिर्णयम् ।
दूषितानां हितार्थाय वर्णानामनुपूर्वशः ॥१
परेषां परिवादेषु निवृत्तमृषिसत्तमम् ।
विविक्तदेश आसीनमात्मविद्यापरायणम ॥२
अनन्तमनसं शान्तं सत्वस्थं योगवित्तमम् ।
आपस्तम्बमृषिं सर्वे समेत्य मुनयोऽब्रुवन् ॥३
भगवन् ! मानवाः सर्वेऽसन्मार्गेऽपिस्थिता यदा ।
चरेयुर्धर्मकार्याणां तेषां ब्रूहि विनिष्कृतिम् ॥४
यतोऽवश्यं गृहस्थेन गवादिपरिपालनम् ।
कृषिकर्मादि चापत्सु द्विजामन्त्रेणमेव च ॥५
देयञ्चानाथकेऽवश्यं विप्रादीनाञ्च भेषजम् ।
बालानां स्तन्यपानादिकार्यञ्च परिपालनम् ॥६
एवं कृते कथञ्चित्त स्यात् प्रमादो यद्यकामतः ।
गवादीनां ततोऽस्माकं भगवन् ! ब्रूहि निष्कृतिम् ॥७

अब आपस्तम्ब के द्वारा कहा हुआ दोषयुक्त वर्णों के हित के लिए क्रमशः प्रायश्चितों का निर्णय वर्णन किया जाता है ॥१॥ दूसरों परिवादों से विवृत्त एकान्त स्थान से बैठे हुए, आत्मविद्या में परायण, अनन्य मन वाले, शान्त स्वरूप, सत्वगुण निनिविष्ट, योगवेताओं में श्रेष्ठ, ऋषिराज आपस्तम्ब के पास मुनिगण आकर बोले ॥ २-३ ॥ समस्त मुनिवृन्दों ने एकत्रित होकर परमयोगी आपस्तम्ब ऋषि से पूछा—हे भगवन् ! कृपा कर

यह बतलाइये, जो मनुष्य बुरे मार्ग में रह कर भी धर्म के कार्यों का आचरण करें, उनका क्या प्रतिकार होता है ? ।।४।। गृहस्थाश्रमी व्यक्ति को अवश्य ही गवादि का पालन, कृषि कर्म आदि और आपत्ति के अवसर पर द्विजों का आमन्त्रण करना होता हैं ।।५।। अनाथों को सहायतार्थ दान देना, विप्रादि को औषध देना और बालकों को स्तन्य (दुग्ध) पानादि से पूर्णतया पालन करना गृहस्थ का कर्तव्य होता है ।।६।। इस उक्त प्रकार के किये जाने वाले गृहस्थ के कर्त्तव्य कर्म में किसी प्रकार से यदि अनिच्छया ही गवादि के रक्षण-पोषणादि में प्रमाद (भूल से त्रुटि) हो जावे तो कृपा करके उसकी निष्कृति (प्रायश्चित्त) क्या है—यह बतलाइये ।।७।।

एवमुक्तः क्षणं ध्यात्वा प्रणिपातादधोमुखः ।
दृष्ट्वा ऋषीनुवाचेदमापस्तम्बः सुनिश्चितम् ।।८
बालानां स्यन्यपानादिकार्ये दोषो न विद्यते ।
विपत्तावपि विप्राणामामन्त्रणचिकित्सने ।।९
गवादीनां प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तं रुजा (तृषा) दिषु ।
केचिदाहुर्न दोषोऽत्र देहधारणभेषजे ।।१०
औषध लवणञ्चैव स्नेहपुष्टन्नभोजनम् ।
प्राणिनां प्राणवृत्त्यर्थं प्रायश्चित्तं न विद्यते ।।११
अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वल्पन्तु दापयेत् ।
अतिरिक्ते विपन्नानां कृच्छ्रमेव विधीयते ।।१२
त्र्यहं निरशनात् पादः पादश्चायाचितं त्र्यहम् ।
पादः सायं त्र्यहं पादः प्रतर्भोज्यं तथा त्र्यहम् ।।१३
प्रातः सायं दिनार्द्धञ्च पादोनं सायवर्ज्जितम् । १४
प्रातः पादं चरेच्छूद्रः सायं वैश्यस्य दापयेत् ।
अयाचितन्तु राजन्ये त्रिरात्रं ब्राह्मणस्य च ।।१५

इस प्रकार से ऋषियों के द्वारा पूछे जाने पर प्रणिपात करने के कारण नीचे की ओर मुख वाले आपस्तम्ब क्षण भर ध्यान करके ऋषियों की ओर देखकर सुनिश्चित बात बोले ।।८।। बालकों के स्तन्य (स्तन का

दुग्ध) पानादि कार्य में कोई भी दोष नहीं है और विपत्ति में भी विप्रों के आमन्त्रण (बुलाने) तथा चिकित्सा करने में कोई दोष नहीं होता है, जिस-का कि प्रायश्चित्त किया जावे ॥६॥ गवादि के सम्बन्ध में मैं बतलाऊँगा। कुछ लोग, रोग और तृषादि के अवसर पर देह को धारण करने के लिये औषध में कोई दोष नहीं होता— ऐसा कहते हैं ॥१०॥ प्राणियों के प्राण धारण करने के लिये जो औषध, लवण, चिकने घृतादि पदार्थ, पोषण करने वाले पदार्थ अन्नादि में कोई भी प्रायश्चित्त नहीं होता है ॥११॥ इसके अतिरिक्त नहीं देना चाहिए। समय आ पड़ने पर थोड़ा सा दिला देवे। विपत्ति ग्रस्तता से अतिरिक्त समय में तो प्रायश्चित् कृच्छ्र चान्द्रायण है ॥१२॥ तीन दिन कुछ भी न खाने के बाद एक पाद (चतुर्थ-भाग) लेवे। फिर तीन दिन तक अयाचित पाद ग्रहण करे। तीन दिन तक सायंकाल एक पाद ले तथा तीन दिन तक एक पाद प्रातः काल खाना चाहिए। प्रातः, सायं और दिनार्ध में पाद से कम लेवे। प्रातःकाल पाद भाग का शूद्र को और सायंकाल वैश्य को दिला देवे। जो अयाचित हो वह क्षत्रिय में और तीन दिन तक ब्राह्मण को दिलाना चाहिए ॥१३-१५॥

पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ बन्धने चरेत्।
योजने पादहीनञ्च चरेत सर्वं निपातने ॥१६
घण्टाभरणदोषेण गौस्तु यत्र विपद्यते।
चरेदर्द्धव्रतं तत्र भूषणार्थं कृतं हि तत् ॥१७
दमने वा निरोधे वा संघाते चैव योजने।
स्तम्भश्शृङ्खलपाशैश्च मृते पादोनमाचरेत् ॥१८
पाषाणैर्लगुडैर्नापि शस्त्रेणान्येन वा बलात्।
निपातयन्ति ये गास्तु तेषां सर्वं विधीयते ॥१९
प्राजापत्यं चरेद्विप्रः पादोनं क्षत्रियश्चरेत्।
कृच्छार्द्धन्तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत ॥२०
द्वौ मासौ दापयेद् वत्सं द्वौ मासौ स्तनौ दुहेत्।
द्वौ मासावेकवेलायां शेषकाले यथारुचि ॥२१

एक पाद रोध में खावे और दो पाद बन्धन में खावे। योजन में (चार कोश का एक योजन होता है) पाद से कम खावे और निपातन में सब खा लेवे ॥१६॥ घण्टाभरण दोष से जहाँ गौ विपन्न होती है वहाँ चाहे वह भूषण के लिये ही किया गया हो, आधा व्रत करना चाहिए ॥१७॥ दमन, निरोध, संघात और योजन में स्तम्भ (खम्भा) शृङ्खला और पाशों के द्वारा मृत हो जाने पर एक पाद कम करना चाहिए ॥१८॥ पत्थर, लाठी, शस्त्र अथवा अन्य किसी के द्वारा बलपूर्वक जो गायों को गिरा देते हैं, उनको सब ही विधान किया जाता है ॥१९॥ ब्राह्मणों को प्राजापत्य करना चाहिए। एक पाद कम क्षत्रिय को करना चाहिए। वैश्य को कृच्छ व्रत का आधा भाग करना चाहिए और शूद्र को एक पाद ही करावे ॥२०॥ व्याई हुई गौ का दूध दो मास तक उसके बच्चे को पिलावे और इसके बाद दो मास तक केवल दो स्तनों का दूध लेवे अर्थात् दुहे। दो मास तक केवल एक समय ही दूध का दोहन करे फिर अपनी रुचि के अनुसार दोहन करे ॥२१॥

दशरात्रार्द्धं मासेन गौस्तु यत्र विपद्यते।
सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२२
हलमष्टगवं धर्मं षड्गवं जीवितार्थिनाम्।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवञ्च जिघांसिनाम् ॥२३
अतिवाहातिदाहाभ्यां नासिकाभेदने तथा।
नदीपर्वतसंरोधे मृते पादोनमाचरेत् ॥२४
न नारिकेलबालाभ्या न मुञ्जेन न चर्म्मणा।
एभिर्गास्तु न बध्नीयाद् बद्ध्वा परवशोभवेत् ॥२५
कुशैः काशैश्च बध्नीयाद् बृषभं दक्षिणामुखम्।
पादलग्नाग्निदोषेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥२६
व्यापन्नानां बहूनान्तु रोधनेबन्धनेऽपि च
भिषङ्मिथ्योपचारे च द्विगुणं गोव्रतञ्चरेत् ॥२७
शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च लाङ्गूलस्य च कर्त्तने।
सप्तरात्र पिबेद् दुग्ध यावत्स्वस्था पुनर्भवेत् ॥२८

दश दिन या आधे मास तक गौ यदि दुःखित हो तो शिखा के साथ वपन (बालों का मुँड़वाना) कराके प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ।।२२।। हल के चलाने के कार्य में कृषक को आठ बैल रखने चाहिए । छै वृष से भी जो हल का काम लेते हैं वे अपने जीवित रहने के इच्छुक माने जाते हैं । चार बैलों से काम लेने वाले क्रूर होते हैं और केवल दो ही बैलों से हल द्वारा भूमि की जुताई करने वाले जिघांसु कहे जाते हैं ।।२३।। गो-वंशजों से अत्यन्त काम लेने से तथा उनका भोजन बचपन में जो दूध है उसका अति दोहन कर लेने से, नाक को छेद कर नाथ डालने से और नदी तथा पर्वत के संरोधन से मृत हो जाने पर पादोन व्रत करना चाहिए ।।२४।। नारियल के बने हुए रस्सों से, बालों की रस्सी से, मूंज की और चमड़े की रस्सी से गौ-वंशजों को नहीं बाँधना चाहिए, क्योंकि इनसे उनको परवशता हो जाती है ।।२५।। कुश और काँस से बनी हुई रस्सी से वृषभ को दक्षिणाभिमुख बाँधना चाहिए । पाद लग्न अग्नि दोषों में कोई भी प्रायश्चित् नहीं होता है ।।२६।। बहुतों से विपन्नों के रोधन तथा में तथा भिषग् द्वारा मिथ्या उपचार में दुगुना गो—व्रत करना चाहिए ।।२७।। सींग तथा हड्डी के टूट जाने पर पूँछ के कट जाने पर सात दिन तक दूध पीवे, जब तक स्वस्थ न होवे ।।२८।।

गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं भक्षयेद् द्विजः ।
एतद्विमिश्रितं चैव भुक्तञ्चोशनसा स्वयम् ।।२९
देवद्रोण्यां विहारेषु कूपेष्वायतनेषु ।
एषु गोषु विपन्नासु प्रायश्चित्तं न विद्यते ।।३०
एका पादात्तु बहुभिर्दैवाद्व्यापादिता क्वचित् ।
पादं पादन्तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् ।।३१
यन्त्रणे गोश्चिकित्सार्थे मूढगर्भविमोचने ।
यत्ने कृते विपत्तिश्चेत् प्रायश्चित्तं न विद्यते ।।३२
सरोमं प्रथमे पादे द्वितीये श्मश्रुकर्त्तनम् ।
तृतीये तु शिखा धार्य्या सशिखन्तु निपातने ।।३३

सर्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदंगुलिद्वियम् ।
एवमेव तु नारीणां शिरसो मुण्डनं स्मृतम् ।।३४

ब्राह्मण को गोमूत्र के साथ मिलाकर कुलथी का भक्षण करना चाहिए और स्वयं भी उशनस से मुक्त इसी विमिश्रित को खाना चाहिए ।।२६।। देवद्रोणी में, विहारों में, कुओं में और आयतनों में यदि गौ विपन्न हो जावे तो इसका कोई भी प्रायश्चित नहीं होता है ।।३०।। कहीं पर बहुतों के द्वारा एक गौ पद से दैवात् व्यापादित (मृत) हो जावे तो वे पद-पद पर पृथक्-पृथक् हत्या को करते हैं ।।३१।। गाय को चिकित्सा करने के लिये उसको नियन्त्रण करने में और मूढ़ गर्भ के विमोचन के समय में यत्न करने पर भी यदि कोई विपत्ति गाय को हो जावे तो इसका कोई प्रायश्चित नहीं है ।।३२।। प्रथम पाद में रोमों के सहित वपन करावे, द्वितीय पाद में दाढ़ी-मूँछ का कर्तन करावे, तृतीय पाद में केवल चोटी धारण करे और चौथे पाद में शिखा के सहित मुण्डन कराना चाहिए ।।३३।। समस्त केशों को कटवा कर दो अंगुलियों का भी छेदन करावे । इसी प्रकार स्त्रियों का भी मुण्डन कहा गया है ।।३४।।

अथ द्वितीयोऽध्याय:

अथ शुद्धयशुद्धिविवेकवर्णनम् ।

कारुहस्तगतं पुण्यं यच्च ग्रामाद्विनि:सृतम् ।
स्त्रीबालवृद्धाचरितं प्रत्यक्षादृष्टमेव च ।।१
प्रपास्वरण्येषु जलेऽथ नीरे द्रोण्यां जलं यच्च विनि:सृतं भवेत् ।
श्वपाकचाण्डालपरिग्रहेषु पीत्वा जलं पञ्चगव्येन शुद्धि: ।।२
न दुष्येत् सन्तता धारा वातोद्धूताश्च रेणव: ।
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यति कदाचन ।।३
आत्मशय्या च वस्त्रञ्च जायापत्यं कमण्डलु: ।
आत्मन: शुचिरेतानि परेषामशुचीनि तु ।।४

अन्यैस्तु खानिताः कूपास्तडागानि तथैव च ।
एषु स्नात्वा च पीत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥५
उच्छिष्टमशुचित्वंच यच्च विष्ठानुलेपनम् ।
सर्वं शुध्यति तोयेन तत्तोयं केन शुध्यति ॥६
सूर्य्यरश्मिनिपातेन मारुतस्पर्शनेन च ।
गवां मूत्रपुरीषेण तत्तोयं तेन शुध्यति ॥७

शिल्पी के हाथ में गई हुई वस्तु पवित्र मानी जाती है और जो पात्र या ग्राम से निकली हुई हो, वह भी पवित्र है । स्त्री, बालक और वृद्ध के द्वारा जो भी कुछ किया जावे वह पवित्र है । जो प्रत्यक्ष में अपनी आँखों से नहीं देखी जावे वह भी पवित्र मानी जाती है ॥१॥ प्याऊ में तथा जङ्गल में जो जल होता है उसको, द्रोणी में जल होता है उसे और जो विनिःसृत होकर जल आता है उसे तथा श्वपच चाण्डालादि के परिग्रह में जो जल हो उसे पीकर केवल पंचगव्य लेने से शुद्धि हो जाती है ॥२॥ निरन्तर बहने वाली जल की धारा कभी दूषित नहीं होती है और वायु से उड़ाये रेणु-कण भी दूषित नहीं माने जाते हैं । स्त्री, बालक वृद्ध कभी भी दूषित नहीं होते हैं ॥३॥ अपनी शय्या, अपना वस्त्र, जाया (भार्या) सन्तति और कमण्डलु ये सब अपनो तो शुद्ध होती हैं और ये ही दूसरों के अशुद्ध कही गई हैं ॥४॥ दूसरों के द्वारा खोदे हुए कूप और तड़ागों में स्नान करके या इनका जल पीकर पंचगव्य से शुद्धि होती है ॥५॥ उच्छिष्ट (जूँठा), अशुचि और जो विष्ठा से अनुलिप्त हो वह सब जल से शुद्ध होते हैं किन्तु वह जल किससे शुद्ध होता है ? ॥६॥ जो जल सब प्रकार की शुद्धि प्रक्षालनादि करने पर कर देता है, उसकी स्वय शुद्धि सूर्य की किरणों के उस पर पड़ने से तथा वायु के स्पर्श से और गाय के मूत्र एवं गोमय (गोबर के गिरने से हो जाती है ॥७॥

अस्थिचर्म्मादियुक्तन्तु खराश्वोष्ट्रोपदूषितम् ।
उद्धरेदुदकं सर्वं शोधनं परिमार्जनम् ॥८
कपो मूत्रपुरीषेण ष्ठीवनेनाहि दूषितः ।

श्वशृगालखरोष्ट्रैश्च क्रव्यादैश्च जुगुप्सितः ।।९
उद्धृत्यैव च तत्तोयं सप्तपिण्डान् समुद्धरेत् ।
पंचगव्यं मृदा पूतं कूपे तच्छोधनं स्मृतम् ।।१०
वापीकूपतड़ागानां दूषितानांच शोधनम् ।
कुम्भानां शतमुद्धृत्य पंचगव्यं ततः क्षिपेत् ।।११
यश्च कूपात् पिवेत्तोयं ब्राह्मणः शवदूषितात् ।
कथं तत्र विशुद्धिः स्यादिति मे संशयो भवेत् ।।१२
अक्लिन्नेनाप्यभिन्नेन शवेन परिदूषिते ।
पीत्वा कूपे ह्यहोरात्रं पचगव्येन शुध्यति ।।१३
क्लिन्ने भिन्ने शवे चैव तत्रस्थं यदि तत् पिवेत् ।
शुद्धश्चान्द्रायणं तस्य तप्तकृच्छ्रमथापि वा ।।१४

अस्थि, चर्म आदि से युक्त तथा गधा, कुत्ता और ऊँट से उप-दूषित सभी वस्तु जल से पवित्र होती हैं और परिमार्जन ही इनके शोधन का तरीका होता है ।।८।। कुए का जल मूत्र-मल और थूक आदि के डालने से दूषित हो जाता है । इसी प्रकार कुत्ता, गीदड़, गधा ऊँट और असुरों द्वारा भी दूषित होता है ।।९।। दूषित हो जाने पर कूपस्थ जल की शुद्धि के लिये उस समस्त जल को निकाल देवे और कुछ उसके तले की मिट्टी को भी खुदवाकर निकाल दे तथा जब शुद्ध मिट्टी रहे तब पंचगव्य उसमें डाल देने से वह शुद्ध हो जाता है ।।१०।। वापी (बावड़ी) कुआ और तालाबों के दूषित हो जाने पर उसकी शुद्धि सौ घड़े उनका जल निकाल कर उनमें पंचगव्य डाल देने से भी हो जाती है ।।११।। शव से दूषित कुए से जो ब्राह्मण जल पीता है उसकी विशुद्धि किस प्रकार से हो यह मुझे संशय होता है ।।१२।। क्लिन्नता (गीलापन) से रहित और अभिन्न शव (मृतक शरीर) से परिदूषित कुए में जल पीकर पाँच दिन तक बराबर पंचगव्य लेने से शुद्धि होती है ।।१३।। क्लिन्न और भिन्न (टूटा—फूटा) शव यदि वहाँ स्थित हो और उस कुए का जल पी लेवे तो चान्द्रायण या तप्त-कृच्छ्र व्रत करने पर शुद्धि होती है ।।१४।।

अथ तृतीयोऽध्यायः

अथ गृहेऽविज्ञातस्यान्त्यजातेनिवेशने-बालादिविषये च प्रायश्चित्तम्।

अन्त्यजातिमविज्ञातो निवसेद्यस्त्र वेश्मनि ।
सम्यग् ज्ञात्वा तु कालेन द्विजाः कुर्वन्त्यनुग्रहम् ॥१
चान्द्रायणं पराको वा द्विजातीनां विशोधनम् ।
प्राजापत्यन्तु शूद्रस्य शेषं तदनुसारतः ॥२
यैर्भुक्तं तत्र पक्वान्नं कृच्छ्रं तेषां प्रदापयेत् ।
तेषामपि च यैर्भुक्तं कृच्छ्रपादं प्रदापयेत् ॥३
कूपैकपानैर्दुष्टानां स्पर्शने शवदूषणम् ।
तेषामेकोपवासेन पंचगव्येन शोधनम् ॥४
बाली वृद्धस्तथा रोगी गर्भिणी वाऽपि पीडिता ।
तेषां नक्तं प्रदातव्यं बालानां पहरद्वयम् ॥५
अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालोवाप्यूनषोडशः ।
प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो व्याधित एव च ॥६
न्यूनकादशवर्षस्य पंचवर्षाधिकस्य च ।
चरेद् गुरुः सुहृद्वापि प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥७

अन्त्य जाति के नहीं परिचय वाले को जो घर में आश्रय दे देवे और कुछ समय में भली प्रकार जानकर ब्राह्मण अनुग्रह करते हैं ॥१॥ चान्द्रायण या पराक व्रत द्विजातियों का विशुद्ध करने वाला होता है। शूद्र की शुद्धि के लिए प्राजापत्य व्रत होता है। शेष की शुद्धि उसी के अनुसार ही होती है ॥२॥ जिन्होंने वहाँ पर पक्वान्न का भोजन किया हो उनको कृच्छ्र कराना चाहिए। भोजन करने वालों के यहाँ जिन्होंने खा लिया हो, उनको कृच्छ्र व्रत का चतुर्थ भाग करना चाहिए।३। एक ही कुए में पान करने के दोष से युक्तों का तथा शव के स्पर्श करने के दोश से शुद्धि एक दिन के उपवास और पंचगव्य से होती है ॥४॥ बालक, वृद्ध, रोगी, गर्भिणी और वायु के दोष से पीड़ित को केवल रात्रि का ही समय देना चाहिए। छोटे बच्चों को तो केवल दो ही

प्रहर का समय पर्याप्त है ।।५।। जिसकी अवस्था अस्सी वर्ष की हो गई हो या जो सोलह वर्ष की उम्र से कम का बालक हो, इनको प्रायश्चित्त का अर्ध भाग ही होना चाहिए। स्त्री और रोग-ग्रस्त को भी आधा हो प्रायश्चित्त बताया गया है ।।६।। जो ग्यारह वर्ष से भी कम उम्र का का हो और पाँच वर्ष से अधिक उम्र का हो, उसका प्रायश्चित्त गुरु या कोई सुहृद करे, इससे ही उसका शोधन हो जाता है ।।७।।

अथवा क्रियमाणेषु येषामार्त्ति. प्रदृश्यते ।
शेषसम्पादनाच्छुद्धिर्विपत्तिर्न भवेद्यथा ।।८
क्षुधा व्याधितकायानां प्राणो येषां विपद्यते ।
ये न रक्षन्ति भक्तेन तेषां तत्किल्विषं भवेत् ।।९
पूर्णेऽपि कालनियमे न शुद्धिर्ब्राह्मणैर्विना ।
अपूर्णेष्वपि कालेषु शोधयन्ति द्विजोत्तमाः ।।१०
समाप्तमिति नो वाच्यं त्रिषु वर्णेषु कर्हिचित् ।
विप्रसम्पादनं कार्यमुत्पन्ने प्राणसंशये ।।११
सम्पादयन्ति यद्विप्राः स्नानतीर्थं फलञ्च तत् ।
सम्यक् कर्त्तु रपापं स्याद्व्रती च फलमाप्नुयात् ।।१२

जिनको प्रायश्चित्त करने में ही कोई कठिनाई या पीड़ा हो तो शेष के सम्पादन से ही शुद्धि होती है किन्तु उसके करने में कोई विपत्ति न मालूम हो ।।८।। भूख से व्याधित शरीर वाले पुरुषों का प्राण यदि विपन्नावस्था में हो तो प्राण-रक्षा करनी चाहिए। जो भक्ति से प्राण रक्षा नहीं करते हैं, उनको पाप लगता है ।।९। काल का नियम पूर्ण हो जाने पर भी ब्राह्मणों के विना शुद्धि नहीं होती है। काल अपूर्ण होने पर भी ब्राह्मण शोधन कर देते हैं ।।१०।। तीनों वर्णों में समाप्त हो गया-ऐसा कभी भी नहीं बोलना चाहिए। प्राणों का संशय उत्पन्न होने पर विप्रों के द्वारा ही उसका सम्पादन करना चाहिए ।।११।। जिस काम को ब्राह्मण सम्पादन करते हैं वही तीर्थं का स्नान है और उसका फल है। जो भली प्रकार करता है उसको निष्पापता होती है और व्रत करने वाला उसका फल भी प्राप्त करता है। १२।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अथ चाण्डालकूपजलपानदोपानादिषूदक्यादि संस्पर्शे च प्रायश्चित्तं

चाण्डालकूपभाण्डेषु योऽज्ञानात् पिबते जलम् ।
प्रायश्चित्त कथं तस्य वर्णे वर्णे विधीयते ॥१
चरेत् सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यन्तु भूमिपः ॥२
तदर्द्धन्तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥३
भुक्त्वोच्छिष्टस्त्वनाचान्तश्चाण्डालैः श्वपचेन वा ।
प्रमादात् स्पर्शनं गच्छेत्तत्र कुर्याद्विशोधनम् ॥४
गायत्र्यष्टसहस्रन्तु द्रुपदां वा शतं जपेत् ।
जपं त्रिरात्रमनश्नन् पञ्चगव्येन शुध्यति ॥५
चाण्डालेन यदा स्पृष्टो विण्मूत्रे च कृते द्विजः ।
प्रायश्चित्तं त्रिरात्रं स्याद्भुक्त्वोच्छिष्टः षडाचरेत् ॥६
पानमैथुनसम्पर्क तथा मूत्रपुरीषयोः ।
सम्पर्कं यदि गच्छेत्तु उदक्या चान्त्यजैस्तथा ॥७
एतैरेव यदा स्पृष्टः प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।
भोजने च त्रिरात्र स्यात् पाने तु त्र्यहमेव च ॥८

चाण्डाल के कुंए तथा पात्र में जो अज्ञानवश जल पी लेता है उसका प्रत्येक वर्ग में किस प्रकार प्रायश्चित्त किया जाता है? ॥१॥ ब्राह्मण को प्रायश्चित के लिये सान्तपन व्रत और क्षत्रिय को प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। वैश्य को उसका आधा भाग करना चाहिए और शूद्र चतुर्थ भाग करे ॥२॥ खाकर उच्छिष्ट दशा में स्थित और आचान्त न होने वाला श्वपच या चाण्डाल से प्रमादवश स्पर्श किया जावे तो उसका विशोधन करना चाहिए ॥३-४॥ आठ हजार गायत्री का जप अथवा द्रुपद का एक सौ जप करे और तीन दिन तक अनशन करते हुए जपे फिर पञ्चगव्य ले तो शुद्ध होता है ॥५। ब्राह्मण मल तथा मूत्र के त्यागने पर चाण्डाल के द्वारा स्पर्श कर लिया जावे तो तीन दिन तक प्रायश्चित्त करे। यदि भुक्त्वोच्छिष्ट दशा हो तो छै दिन तक करना

चाहिए ।।६।। पान तथा मैथुन के सम्पर्क होने पर और मूत्र-पुरीष के सम्पर्क में यदि आजावे और उदकी अथवा अन्त्यज के द्वारा स्पर्श होवे तो किस प्रकार प्रायश्चित करे ? भोजन में तीन रात्रि और पान में तीन दिन पर्यन्त करे । ।।७-८।।

मथुने पादकृच्छ्रं स्यात्तथा मूत्र पुरीषयोः ।
दिनमेकं तथा मूत्रे पुरीषे तु दिनत्रयम् ।।६
एकाहं तत्र निर्दिदष्टं दन्तधावनभक्षरण ।।१०
वृक्षारूढे तु चाण्डाले द्विजस्तत्रैव तिष्ठति ।
फलानि भक्षयेत्तस्य कथं शुद्धि विनिर्दिदशेत ।।११
ब्राह्मणान् समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ।
एकरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ।।१२
यंन केनचिद् च्छिष्टो अमेध्यं स्पृशति द्विजः ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ।।१३

मैथुन के सम्पर्क में पाद कृच्छ्र करे और मल मूत्र के सम्पर्क में एक दिन एव मूत्र और पुरीष (मल) में तीन दिन तक करे ।। ६ ।। दन्त धावन भक्षण में एक ही दिन निर्दिष्ट किया गया है ।। १० ।। चाण्डाल वृक्ष पर चढ़ा हुआ हो और वहीं ब्राह्मण स्थित हो और फलों को खा लेवे तो किस प्रकार शुद्धि करे ? ।।११।। ब्राह्मणों की भली प्रकार अनुज्ञा प्राप्त करके वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए और एक रात्रि तक उपवास करके पञ्चगव्य लेने से शुद्ध होता है ।।१२।। जिस किसी के द्वारा उच्छिष्ट ब्राह्मण यदि अमेध्य वस्तु (अपवित्र वस्तु) का स्पर्श करता है तो एक अहोरात्र तक उपवास करके पञ्चगव्य ग्रहण करे तो शुद्ध हो जाता है ।।१३।।

अथ पंचमोऽध्यायः

अथ वैश्यान्त्यजश्वकाकोच्छिष्टभोजनेप्रायश्चित्तवर्णनम्

चाण्डालेन यदा स्पृष्टो द्विजवर्णः कदाचन ।
अनभ्युक्ष्य पिवेत्तोतयं प्रायश्चित्त कथं भवेत् ।।१

ब्राह्मणस्तु त्रिरात्रेण पञ्चगव्येन शुध्यति ।
क्षत्रियस्तु द्विरात्रेण पंचगव्येन शुध्यति ॥२

चतुर्थस्य तु वर्णस्य प्रायश्चित्तं न वै भवेत् ।
व्रतं नास्ति तपो नास्ति होमो नैव च विद्यते ॥३

पंचगव्यं न दातव्यं तस्यं मन्त्रविवर्जनात् ।
ख्यापयित्वा द्विजानान्तु शूद्रो दानेन शुध्यति ॥४

ब्राह्मणस्य यदोच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ।
अहोरात्रन्तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुध्यति ॥५

उच्छिष्टं वैश्यजातीनां भुङ्क्ते ज्ञानाद् द्विजो यदि ।
शङ्खपुष्पीपयः पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥६

ब्राह्मण्या सह योऽश्नीयादुच्छिष्टं वा कदाचन ।
न तत्र दोष मन्यन्ते नित्यमेव मनीषिणः ॥७

द्विजवर्ण चाण्डाल के द्वारा स्पर्श करने पर अभ्युक्षण न करके यदि जल पान कर ले तो उसका प्रायश्चित कैसे होता है ? ॥१॥ ब्राह्मण तीन रात्रि तक पञ्चगव्य लेने पर और क्षत्रिय दो रात्रि तक पञ्चगव्य से शुद्ध हो जाता है ॥२॥ चतुर्थ वर्ण का तो प्रायश्चित नहीं होता है। न कोई उसके लिये व्रत है, न तप और न कोई होम ही होता है ॥३॥ मन्त्र रहित होने के कारण उसे पञ्चगव्य तो देना ही नहीं चाहिए। ब्राह्मणों को ख्यापन करके दान देने ही से शूद्र की शुद्धि हो जाती है ॥४॥ यदि द्विज अज्ञान से ब्राह्मण के उच्छिष्ट को खा लेता है तो एक अहोरात्र गायत्री के जप करने से शुद्ध हो जाता है ॥५॥ यदि वैश्य जाति का उच्छिष्ट अज्ञान से कोई द्विज खा लेता है तो शंखपुष्पी का स्वरस तीन रात्रि पर्यन्त पीने से शुद्ध होता है ॥६॥ जो कोई ब्राह्मणी के साथ कदाचित् उच्छिष्ट खालेवे तो मनीषी लोग उसमें कोई दोष नहीं मानते हैं ॥७॥

उच्छिष्टमितरस्त्रीणामश्नीयात् पिबतेऽपिवा ।
प्राजापत्येन शुद्धि स्याद्भगवानङ्गिरा ब्रवीत् ॥८

अन्त्यानां भुक्तशेषन्तु भक्षयित्वा द्विजातयः ।
चान्द्रायण मदर्द्धार्द्धं ब्रह्मक्षत्रविशां विधिः ॥९

विण्मूत्रभक्षणे विप्रस्तप्तकृच्छ् समाचरेत् ।
श्वकाकोच्छिष्टभोगे च प्राजापत्यविधिः स्मृतः ॥१०
उच्छिष्टः स्पृशते विप्रो यदि कश्चिदकामतः ।
शुनः कुक्कुटशूद्रांश्च मद्यभाण्डं तथैव च ॥११
पक्षिणाधिष्ठितं यच्च यदमेध्यं कदाचन ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१२
वैश्येन च यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ।
स्नानं जपञ्च त्रैकाल्यं दिनस्यान्ते विशुध्यति ॥१३
विप्रोविप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ।
स्नात्वाचम्य विशुद्धः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ॥१४

अन्य स्त्रियों का उच्छिष्ट भोजन अथवा पान करे तो भगवान् अङ्गिरा ने कहा है उसकी शुद्धि प्राजापत्य व्रत-से होती है ॥८॥ अन्त्यों के खाने से बचे हुये को यदि द्विजाति लोग खालेवें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिये क्रम से चान्द्रायण व्रत, उसका आधा भाग तथा चतुर्थभाग करना शुद्धि के लिए आवश्यक विधि है ॥९॥ विष्ठा तथा मूत्र के भक्षण कर लेने पर विप्र को तप्त कृच्छ्र व्रत करना चाहिए तभी शुद्धि होती है। कुत्ता और काक के उच्छिष्ट खाने पर प्रजापत्य व्रत करना चाहिए ॥१०॥ यदि कोई ब्राह्मण बिना इच्छा के ही उच्छिष्ट का स्पर्श कर लेता है, कुत्ता, मुर्गा और शूद्र का स्पर्श कर लेवे तथा मदिरा के पात्र का स्पर्श करले और अक्षि द्वारा वह अधिष्ठित हो एवं अपवित्र हो तो एक अहोरात्र व्रत करके पञ्चगव्य से शुद्धि होती है ॥ ११-१२ ॥ उच्छिष्ट वैश्य के द्वारा जब स्पर्श कर लिया जावे तो स्नान जप तीनों काल में करे तब दिन के अन्त में शुद्धि होती है ॥ १३ ॥ यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण के द्वारा ब्राह्मण ही स्पर्श प्राप्त करले तो आपस्तम्ब मुनि ने कहा है कि वह स्नान और आचमन करके विशुद्ध हो जाता है ॥१४॥

नोट:—छठे अध्याय में नील वर्ण के पदार्थों तथा नील के वृक्ष के दोषों का वर्णन है जो आंगीरस स्मृति के १२ से २४ तक श्लोकों में ज्यों का त्यों दिया गया है। पाठक उसे वहीं पर देखलें ।]

अथ सप्तमोऽध्याय

अन्त्यजादिस्पर्शे रजस्वलायाः, विवाहदिषु कन्याया रजोदर्शने प्रायश्चित्तम् ।

स्नानं रजस्वलायस्तु चतुर्थेऽहनि शस्यते।
वृत्त रजसि गम्या स्त्री नानिवृत्ते कथञ्चन ॥१
रोगेण यद्रजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्तते ॥
अशुद्धा स्तु न तेनेह तासां वैकारिकं हि तत् ॥२
साध्वाचारा न सा तावद्रजो यावत् प्रवर्तते ।
वृत्ते रजसि साध्वी स्याद् गृहकर्म्मणि चेन्द्रिये ॥३
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेहनि शुध्यति ॥४
अन्त्यजातिश्वपाकेन संस्पृष्टा वै रजस्वला ।
अहानि तान्यतिकम्य प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥५
त्रिरात्रमुपवासः स्यात् पञ्चगव्यं विशोधनम् ।
निशां प्राप्य तु तां योनिं प्रजाकारञ्च कारयेत् ॥६
रजस्वलां त्यजेत् स्पृष्टां शुना च श्वपचेन च ।
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पंचगव्येह शुध्यति ॥७

रजस्वला स्त्री का शुद्धि स्नान चौथे दिन में श्रेष्ठ होता है । रज के समाप्त होने पर ही स्त्री गमन योग्य होती है और उसके अनिवृत्त होने पर किसी प्रकार भी गम्य नहीं होती है ॥१॥ रोग के कारण जो स्त्रियों को रज स्राव होता रहता है उससे वे अशुद्ध नहीं होती हैं क्योंकि वह मासिक-धर्म नहीं किन्तु रोग विकार से ही होता है ॥२॥ जब तक स्त्री को रज प्रवृत्ति रहती है वह साधु आचार वाली नहीं होती है । रज के निवृत होने पर ही वह साध्वी होती है और तभी घर के काम-काज में तथा इन्द्रिय-सुख में योग्य होती है ॥३॥ रजो-दर्शन के प्रथम दिन में स्त्री चाण्डाली तुल्य होती है, दूसरे दिन में ब्रह्म घातिनी के समान और तीसरे दिन में धोबिन के सदृश होती है तथा चौथे दिन में विशुद्ध होती है ॥४॥ अन्त्य जाति के तथा श्वपच के द्वारा रजस्वला

स्पर्श कर लेने पर रजोधर्म के उन दिनों को विताकर प्रायश्चित करे। तीन रात्रि उपवास करे और विशोधनार्थ पञ्चगव्य लेवे। तब रात्रि हो जावे तो उस योनि को प्रजाकर्त्री करे ॥५-६॥ रजस्वला स्त्री यदि कुत्ता तथा श्वपच से छू ली गई हो तो उसे उस समय त्याग देना चाहिए। वह तीन रात्रि व्रत कर पंचगव्य से शुद्ध होती है ॥७॥

प्रथमेऽह्नि षड्रात्र द्वितीये नु त्र्यहन्तथा।
तृतीये चोपवासस्तु चतुर्थे वह्निदर्शनात् ॥८
विवाहे वितते यज्ञे संस्कारे च कृते तथा।
रजस्वला भवेत् कन्या सस्कारस्तु कथं भवेत् ॥९
स्नापयित्वा तदा कन्यामन्यैर्वस्त्रैरलङ् कृताम्।
पुनः प्रत्याहुतिं हुत्वा शेषं कर्म्म समाचरेत् ॥१०
रजस्वला तु संस्पृष्टा प्लवकुक्कुटवायसैः
सा त्रिरात्रोपवासेन पंचगव्येन शुध्यति ॥११
उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टा कदाचित् स्त्री रजस्वला।
कृच्छ्रेण शुद्धते विप्रस्तथा दानेन शुद्धध्यति ॥१२
एकशाखासमारूढ़ा चाण्डाला वा रजस्वला।
ब्राह्मणेन समं यत्र सवासाः स्नानमाचरेत् ॥१३
रजस्वलायाः संस्पर्शे कथञ्चिज्जायते शुना।
रजोदिनात्तु यच्छेषस्तदुपोस्य विशुध्यति ॥१४

प्रथम दिन में छै रात्रि तक, द्वितीय दिन में तीन दिन तक, तृतीय दिन में केवल उपवास और चतुर्थ दिन में अग्नि के दर्शन मात्र से रजस्वला की शुद्धि होती है ॥८॥ विवाह में, फैले हुए यज्ञ कर्म में तथा संस्कार करने पर कन्या रजस्वला हो जाती है तो संस्कार किस तरह होता है ? ॥९॥ कन्या को स्नान कराकर अन्य वस्त्रों से अलंकृत करके पुनः प्रत्याहुति से हवन करके शेष कर्म करना चाहिए ॥१०॥ रजस्वला स्त्री प्लव-कुक्कुट और वायस के द्वारा संस्पृष्ट हो जावे तो वह तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करे और पंचगव्य लेवे तो शुद्ध हो जाती है ॥११॥ यदि रजस्वला उच्छिष्ट से किसी समय स्पर्श प्राप्त करे तो

कृच्छ्र व्रत से शुद्ध होती है और ब्राह्मण दान से शुद्ध होता है ॥१२॥ यदि किसी एक ही शाखा पर चाण्डाल तथा रजस्वला समारूढ हों तो ब्राह्मण के समान वस्त्रों के सहित स्नान करे ॥१३॥ रजस्वला का कुत्ते से संस्पर्श हो जावे तो रजोधर्म के दिन शेष हों उनमें उपवास करके शुद्धि हो जाती है ॥१४॥

अशक्ता चोपवासे तु स्नानं पाश्चत् समाचरेत् ।
तत्राप्यशक्ता चैकेन पचगव्यं पिबेत्ततः ॥१५
उच्छिष्टस्तु यदा विप्रः स्पृशेन्मद्यं रजस्वलाम् ।
मद्यं स्पृष्ट्वा चरेत् कृच्छ्रं तदर्द्धन्तु रजस्वलाम् ॥१६
उदक्यां सूतिकां विप्र उच्छिष्टः स्पृशते यदि ।
कृच्छ्राद्धन्तु चरेद्विप्रः प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥१७
चाण्डालैः श्वपचैर्वापि आत्रेयी स्पृशते यदि ।
शेषाहात् फालकृष्टेन पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१८
उदक्या ब्राह्मणी शूद्रामुदक्यां स्पृशते यदि ।
अहोरात्रोषिता भूत्वा पंचगव्येन शुध्यति ॥१९
एवच क्षत्रियां वैश्यां ब्राह्मणी चेद्रजस्वलाम् ।
सचेलप्लवनं कृत्वा दिनस्यान्ते घृतं पिबेत् ॥२०
सवर्णेषु तु नारीणां सद्यः स्नानं विधीयते ।
एवमेव विशुद्धिः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ॥२१

यदि उपवास करने में असमर्थ हो तो पीछे स्नान ही कर लेना चाहिए। यदि इसमें भी अशक्त हो तो पञ्चगव्य ही पी लेना चाहिए ॥१५॥ उच्छिष्ट विप्र यदि मद्य तथा रजस्वला का स्पर्श कर लेवे या मदिरा का स्पर्श करले तो कृच्छ्र व्रत करे और रजस्वला का स्पर्श करके उनका आधा भाग करना चाहिए। ॥१६॥ ऊदकी और सूतिका को यदि उच्छिष्ट विप्र स्पर्श करे तो ब्राह्मण को आधा कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। यही उसकी शुद्धि का प्रायश्चित होता है। ॥१७॥ चाण्डाल अथवा श्वपच के द्वारा यदि आत्रेयी स्पर्श करले तो फालकृष्ट

शेषाह से और पञ्चगव्य से शुद्धि होती है ।।१८।। उदक्या ब्राह्मणी उदक्या शूद्रा का स्पर्श करे तो अहोरात्र तक उपवास करके पञ्चगव्य ग्रहण करे तब शुद्ध होती है ।।१६।। यदि रजस्वला क्षत्रिया या वैश्या को ब्राह्मणी स्पर्श करले तो वस्त्रों के साथ जल में डुबकी मारकर दिन के अन्त में घृत पीवे तब शुद्ध होती है ।।२०।। स्त्रियों को सवर्णा में तुरन्त ही स्नान करना चहिए । इसी प्रकार शुद्धि होती है—ऐसा आपस्तम्ब मुनि ने कहा है ।।२१।।

अथ अष्टमोऽध्यायः

सुरादिदूषितकांस्यशुद्धिविधानवर्णनम् ।

भस्मना शुध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते
सुराविण्मूत्रसंस्पृष्टं शुध्यते तापलेखनैः ।।१
गवाघ्रातानि कांस्यानि शुद्रोच्छिष्टानि यानि तु ।
दशभिः क्षारैः शुध्यन्ति श्वकाकोपहतानि च ।।२
शौचं सुवर्णनारीणां वायुसूर्य्येन्दुरश्मिभिः ।।३
रेतस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकन्तु प्रदुष्यति ।
अद्भिर्मृदा च तन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुध्यति ।।४
शुद्धमन्नमविप्रस्य पंचरात्रेण जीर्य्यति ।
अन्नं व्यञ्जनसंयुक्तमर्द्धमासेन जीर्य्यति ।।५
पयस्तु दधि मासेन षण्मासेन घृतं तथा ।
सम्वत्सरेण तंलन्तु कोष्ठे जीर्य्यंति वा नवा ।।६
भुञ्जते ये तु शूद्रान्नं मासमेकं निरन्तरम् ।
इह जन्मनि शूद्रत्वं जायन्ते मृताः शुनि ।।७

जो कांसे का पात्र अशुद्ध हो जाता है उसकी शुद्धि भस्म से हो जाती है । यदि शराब, विष्ठा, मूत्रादि से उसका स्पर्श हो गया हो तो ताप और लेखन से शुद्धि होती है ।।१।। गाय के द्वारा सूंघे हुए तथा

उच्छिष्ट और कुत्ता, कौआ के स्पर्श वाले कांस्य पात्रों की शुद्धि दश प्रकार के क्षारों से मार्जन करने पर होती है ॥२॥ सुवर्ण नारियों की शुद्धि तो वायु और सूर्य तथा चन्द्रमा की किरणों से ही हो जाती है ॥३॥ रेतस् से स्पर्श पाकर तथा शव से स्पृष्ट होकर आविक दूषित हो जाता है अतः मिट्टी और जल से उतनाभर प्रक्षालित करने पर शुद्धि हो जाती है ॥४॥ अब्राह्मण का शुद्ध अन्न पाँच रात्रि में जीर्ण हो जाता है और जो अन्य व्यञ्जन संयुक्त होता है वह आधे मास में पचता है । ॥५॥ दूध और दधि एक मास में तथा घृत छै मास में और तैल एक वर्ष में जीर्ण होता है किन्तु तैल के विषय में संदेह होता है कि वह कोष्ठ में जीर्ण हो और न भी हो ॥६॥ जो निरन्तर एक मास तक शूद्र का अन्न खाता है वह इस जन्म में ही शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है और मर कर कुत्ते की योनि में जन्म ग्रहण करता है ॥७॥

शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेणैव सहासनम् ।
शूद्राज्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥८
आहिताग्निस्तु योविप्रः शूद्रान्नान्न निवर्तते ।
तथा तस्य प्रणश्यन्ति आत्मा ब्रह्म त्रयोऽग्नयः ॥९
शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योऽधिगच्छति ।
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा ह्यन्याच्छुक्रस्य सम्भवः ॥१०
शूद्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः ।
स भवेच्छूकरो ग्राम्यो मृतः श्वा वाथ जायते ॥११
ब्राह्मणस्य सदा भुङ्क्ते क्षत्रियस्य तु पर्वणि ।
वैश्यस्य यज्ञदीक्षायां शूद्रस्य न कदाचन ॥१२
अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्य पयः स्मृतम् ।
वैश्यस्याप्यन्नमेवान्नं शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम् ॥१३
वैश्वदेवेन होमेन देवताभ्यर्च्चनैर्जपैः ।
अमृतं तेन विप्रान्नमृग्यजुः सामसंस्कृतम् ॥१४

शूद्रान्न, शूद्र के साथ सम्पर्क, शूद्र के साथ ही उठना-बैठना और शूद्र से ही ज्ञान प्राप्त करना तेजयुक्त ब्राह्मण को भी पतित कर देत

है ।।८।। अग्नि को आहित करके भी जो ब्राह्मण शूद्र के अन्न से निवृत नहीं होता है उसके आत्मा, तीनों अग्नि और ब्रह्म सभी प्रनष्ठ हो जाते हैं ।।९।। शूद्र के अन्न को खाने वाला मैथुन करता है तो जिसका उसने अन्न खाया है उसी की सन्तान होती है क्योंकि उसी शुक्र (वीर्य) से उसकी उत्पत्ति होती है ।।१०।। शूद्र का अन्न उदर में स्थित हो और वह ब्राह्मण मर जावे तो वह ग्राम्य सूकर या कुत्ता होकर जन्म लेता है ।।११।। ब्राह्मण को ब्राह्मण का हो अन्न सदा खाना चाहिए क्षत्रिय का अन्न किसी भी हर्व पर खा सकता है और वैश्य का अन्न यज्ञादि की दीक्षा के समय खा सकता है किन्तु शूद्र का अन्न तो कभी भी नहीं खाना चाहिए ।।१२।। ब्राह्मण का अन्न अमृत तुल्य है, क्षत्रिय का पय के समान कहा गया है और वैश्य का अन्न, अन्न ही माना जाता है किन्तु शूद्र का अन्न तो ब्राह्मण के लिये रुधिर के समान होता है ।।१३।। बलि वैश्वदेव, होम, देवार्चन और जपादि के कारण विप्र का अन्न अमृत होता है क्योंकि साम—ऋग् और यजुर्वेद संस्कारयुक्त होता है ।।१४।।

व्यवहारानुरूपेण धर्मेण च्छलवर्जितम् ।
क्षत्रियस्य पयस्तेन भूतानां यच्च पालनम् ।।१५
स्वकर्म्मणा च वृषभैरनुसृत्याद्यशक्तितः ।
खलयज्ञातिथित्वेन वैश्यान्नन्तेन संस्कृतम् ।।१६
अज्ञानतिमिरान्धस्य मद्यपानरतस्य च ।
रुधिरं तेन शूद्रान्तं विधिमन्त्रविवर्जितम् ।।१७
आममाषं मधु घृतं धानाः क्षीरं तथैव च ।
गुड तक्र समं ग्राह्यं निवृत्तेनापि शूद्रतः ।।१८
शाकं माषं मृणालानि तुम्बुरुः शक्तवस्तिलाः ।
रसाः फलानि पिण्याकं प्रतिग्राह्या हि सर्वतः ।।१९
आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि ।
मनस्तापेन शुध्येत द्रुपदां वा शतं जपेत् ।।२०

द्रव्यपाणिश्च शूद्रेण स्पृष्टोच्छिष्टेन कर्हिचित् ।
तद्द्विजेन न भोक्तव्यमापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ॥२१

व्यवहार के अनुकूल धर्म से उपार्जित और छल रहित क्षत्रिय का अन्न पय माना गया है क्योंकि वह प्राणियों का पालनकारक होता है ॥१५॥ अपने कर्म से वृषभों का अनुसरण करके शक्ति पूर्वक उपार्जित है और उससे खल, यज्ञ और अतिथि सत्कार किया जाता है इससे वैश्य का अन्न सूसंस्कृत भी है ॥१६॥ अज्ञान रूपी अन्धकार से अन्धा और मदिरा पान में प्रेम करने वाला शूद्र होता है अतः उसका अन्न रुधिर समान माना गया है क्योंकि वह शास्त्रीय विधि और मन्त्रों से रहित होता है ॥१७॥ मधु, घृत, धान, दूध, गुड़, शाक, मृणाल फल आदि को शूद्र से ग्रहण कर लेने में भी कोई दोष नहीं है। आपत्ति के समय में ब्राह्मण यदि शूद्र के घर में भोजन कर लेवे तो उसे मन में पश्चाताप करना चाहिए अथवा द्रुपद मन्त्र की एक माला जप करे तो शुद्धि हो जाती है ॥१८-२०॥ हाथ में कोई भी पदार्थ हो और किसी उच्छिष्ट शूद्र से स्पर्श हो जावे तो उस ब्राह्मण को भोजन नहीं करना चाहिए ऐसा आपस्तम्ब मुनि ने कहा है ॥२१॥

अथ नवमोऽध्यायः

पेयपानेऽभक्ष्यभक्षणे च प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित् स्रवते गुदम् ।
उच्छिष्टस्याशुचेस्तस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥१
पूर्वं शौचन्तु निर्वर्त्य ततः पश्चादुपस्पृशेत् ।
अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येन शुध्यति ॥२
अशित्वा सर्वमेवान्नमकृत्वा शौचमात्मनः ।
मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रन्तु यवान् पीत्वा विशुध्यति ॥३
प्रसृतं यवशस्येन पलमेकन्तु सर्पिषा ।
पलानि पंच गोमूत्रं नातिरिक्तवदाशयेत् ॥४

अलेह्यानामपेयानामभक्ष्याणांच भक्षणे ।
रेतोमूत्रतुरीषाणां प्रायश्चित्त' कथं भवेत् ॥५
पद्मोदुम्बरबिल्वाश्च कुशाश्वत्थपलाशका: ।
एतेषाधुदक' पीत्वा षडात्रेण विशुध्यति ॥६
ये प्रत्यवसिता विप्रा: प्रव्रज्याग्निजलादिषु ।
अनाशकनिवृत्ताश्च गृहस्थत्व' चिकीर्षत: ॥७
चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि वा ।
जातकर्मातिभि: सर्वैः तुन: संस्कारभागिन: ।
तेषां सान्तपन' कृच्छ्' चान्द्रायणमथापिवा ॥८

भोजन करते हुए ब्राह्मण को यदि गुदा से स्राव हो उस जावे तो उस उच्छिष्ट दशा में जो अशुचिता हो जावे इसका क्या प्रायश्चित होता है ? ॥१॥ पहिले शोच क्रिया से निवृत होवे और पीछे उपस्पर्शन करना चाहिए । एक अहोरात्र उपवास कर पञ्चगव्य लेने पर शुद्धि होती है ॥२॥ समस्त अन्न को खाकर और अपनी शुद्धि न करके करके मोह से खाकर तीन रात्रि पर्यन्त यव पीने से विशुद्ध होता है ॥३॥ यवं शस्य प्रसृत और एक पल घृत तथा पाँच पल गोमूत्र मिलाकर पान करे । इससे अधिक नहीं लेना चाहिए ॥४॥ जो वस्तु न चाटने योग्य हों और जो कभी भी न खाने योग्य हों उनके भक्षण करने पर तथा रेतस् (वीर्य , मूत्र और मल के खाने पर क्या प्रायश्चित होता है ? ॥५॥ कमल, गूलर, विल्व, कुशा, पीपल और ढाक स्वरस छै रात्रि पर्यन्त पीने से विशुद्धि हो जाती है ॥६॥ जो ब्राह्मण प्रव्रज्या (संन्यास) अग्नि और जलादि में जाकर भी फिर गृहस्थाश्रम भोगने की इच्छा से वापिस लौट आते हैं उन्हें तीन कृच्छ्र व्रत अथवा तीन चान्द्रायण व्रत करने चाहिए । जात कर्मादि सभी संस्कार भी पुन: करने चाहिए । उनको कृच्छ्र सान्तपन अथवा चान्द्रायण व्रत करने का विधान है ॥७-८॥

यद्वेष्टितं कालवलाकचिल्लैरमेध्यलिप्तञ्च भवेच्छरीरम् ।
श्रोत्रे मुखे च प्रविशेच्च सम्यक् स्नानेन लेपोहतस्य शुद्धि: ॥९

ऊद्‌र्ध्वं नाभेः करौ मुक्त्वा यदङ्गमुपहन्यते ।
ऊद्‌र्ध्वं स्नानमधः शौचं मार्जनेनैव शुध्यति ॥१०
उपानहावमेध्यं वा यस्य संस्पृशते मुखम् ।
मृत्तिकाशोधनं स्नानं पंचगव्यं विशोधनम् ॥११
दशाहाच्छुध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु ।
षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ॥१२
उपनीतं यदा त्वन्नं भोक्ता च समुपस्थितः ।
अपीतवत् समुत्सृष्टं न दद्यान्नैव होमयेत् ॥१३
अन्ने भोजनसम्पन्ने मक्षिकाकेशदूषिते ।
अनन्तरं स्पृशेदापस्तच्चान्नं भस्मना स्पृशेत् । १४

जो कौग्रा, बलाका बगुला) ग्रौर चीलों के लगा हुआ कुछ भी अमेध्य (अपवित्र) वस्तु से शरीर लिप्त हो जावे ग्रौर श्रोत तथा मुख में भी वह प्रवेश कर लेवे तो लेप से उपहत व्यक्ति की शुद्धि भली प्रकार स्नान करने से हो जाती है ॥९॥ हाथों को छोड़कर नाभि से ऊपर के शरीर का भाग यदि किसी भी ग्रमेध्य वस्तु से उपहत हो जावे तो ऊपर में स्नान ग्रौर अधोभाग में मार्जन से शुद्धि होती है ॥१०॥ जूते या कोई ग्रमेध्य वस्तु का स्पर्श कर लेवे तो मिट्टी से शोधन, स्नान और पञ्च-गव्य से शुद्ध हो जाता है ॥११॥ अपनी योनि में जन्म हानि (मृत्यु) हो जाने पर दश दिन में ब्राह्मण शुद्ध हो जाता हैं। छै दिन में क्षत्रिय, तीन दिन में वैश्य ग्रौर एक दिन में शूद्र को योनि शुद्ध होती है ॥१२॥ अन्न उपनीत हो ग्रौर उसका भोक्ता भी उपस्थित हो ग्रौर उसे अपीत-वत् त्याग दिया जावे तो फिर नहीं देना चाहिए ग्रौर होम करना चाहिए ॥१३॥ भोजन सम्पन्न अन्न में मक्खी, बाल से वह दूषित हो जावे तो इसके जल का स्पर्श करे ग्रौर उस ग्रन्न का भस्म से स्पर्श करे ॥१४॥

शुष्कमांसमयं चान्नं वाप्यकामतः ।
भुक्त्वा कृच्छ्रं चरेद्विप्रो ज्ञानात् कृच्छ्रत्रयं चरेत् ॥१५

अभुक्ते भुञ्चते यश्च भुञ्जन् यश्चापि मुच्यते ।
भोक्ता च भोजनश्चैव पङ्क्त्या गच्छति दुष्कृतम् ॥ १६
यच्च भुङ्क्ते तु भुक्तं वा दुष्टं वाऽपि विशेषता ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुध्यति ॥१७
उदके चोदकस्थस्तु स्थलश्च स्थले शुचिः ।
पादौ स्थापयोभयत्रैव आचम्योभयतः शुचिः ॥१८
उत्तीर्य्याचम्य उदकादवतीर्य्य उपस्पृशेत् ।
एवन्तु श्रेयसा युक्तो वरुणेनाभिपूज्यते ॥१९
अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानांच सन्निधौ ।
स्वाध्याये भोजने चैव पादुकानां विसर्जनम् ॥२०
जन्मप्रभृतिसंस्कारे श्मशानान्ते च भोजनम् ।
असपिण्डैर्न कर्तव्यं चूडाकार्ये विशेषतः ॥२१

कोई मांसयुक्त अन्न तथा शूद्रान्न की यदि कोई अज्ञान-वश खा लेवे तो उसे कृच्छ्र व्रत करना चाहिए । यदि ज्ञान पूर्वक खावे तो तीन कृच्छ्र व्रत करने चाहिए ॥१५॥ न खाने पर जो त्याग देता है या भोजन करता हुआ जो त्याग किया जाता है, उसका भोक्ता और भोजन कराने वाला पंक्ति से पाप के भागी होते हैं ॥१६॥ जो खाये हुए को खाता है या खास तौर से दूषित अन्न को खाता है, वह एक अहोरात्र उपवास करके पञ्चगव्य लेने पर शुद्ध हो जाता है ॥१७॥ जल में रहने वाला जल में और स्थल में स्थित स्थल में शुचि होता है । दोनों स्थानों में पाद स्थापित करने चाहिए और दोनों में आचमन करके शुद्धि होती है ॥१८॥ जल में उतर कर आचमन करके और अवतरण करके पुन: उप-स्पर्शन करना चाहिए । इस प्रकार करने से वह कल्याण युक्त होता है और वरुण देव का भी पूजित होता है ॥१९॥ अग्नि के आगार (घर) में, गायों के गोष्ठ में, ब्राह्मण के सान्निध्य में स्वाध्याय करने में और भोजन में पादुकाओं का त्याग कर देना चाहिए ॥२०॥ जन्म आदि संस्कार में और श्मशान के अन्त में जो असपिण्ड हों उन्हें

भोजन नहीं करना चाहिए। विशेष करके चूड़ा कार्य में कदापि नहीं करे ॥२१॥

याजकान्नं नवश्राद्धं संग्रहे चैव भोजनम् ।
स्त्रीणां प्रथमगर्भे च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥२२
ब्रह्मौदने च श्राद्धे च सीमान्तोनयने तथा ।
अप्रजा या तु नारी स्यान्नाश्नीयादेव तद्गृहे ।
अथ भुञ्जीत मोहाद् यः पूयसं नरकं व्रजेत् ॥२३-२४॥
अल्पेनापि हि शुल्केन पिता कन्यां ददाति यः ।
रौरवे बहुवर्षाणि तुरीषं मूत्रमश्नुते ॥२५
स्त्रीधनानि च ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः ।
स्वर्णं यानानि वस्त्राणि ते पापा यान्त्यधोगतिम् ॥२६
राजान्नं तेजआदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ।
असंस्कृतन्तु योभुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम् ॥२७
मृतके सूतके चैव गृहीते शशिभास्करे ।
हस्तिच्छायान्तु यो भुङ्क्ते पापः स पुरुषो भवेत् ॥२८

याजक का अन्न, नवीन श्राद्ध ग्रहयुक्त का भोजन और स्त्री के प्रथम गर्भ में भोजन करके चान्द्रायण व्रत करे ॥२२॥ ब्रह्मौदन में, श्राद्ध में, सीमन्तोन्नयन में, अन्य श्राद्ध में और मृतक के श्राद्ध में भोजन करके चान्द्रायण करना चाहिए। २३॥ जो स्त्री सन्तानहीन हो उसके घर में भोजन न करे। अगर मोहवश कोई भोजन कर लेता है तो वह मवाद से पूर्ण (पूयस) नरक में जाता है ॥२४॥ जो कोई पिता थोड़ा भी धन लेकर कन्या को देता है, वह रौरव नरक में वर्षों तक मल और मूत्र को खाता है ॥२५॥ जो बान्धव स्त्री के धन को लेकर उपजीवित रहते हैं और स्त्री का सुवर्ण, यान और वस्त्रों को ले लेते हैं वे पापी अवश्य ही अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥२६॥ राजा का अन्न खाने पर तेज का हरण करता है और शूद्र का अन्न ब्रह्मवर्चस का हरण करता है। जो बिना संस्कार किया हुआ अन्न खाता है वह पृथ्वी के मल को खाता है ॥२७॥ मृतक, सूतक और सूर्य चन्द्र के ग्रहण में जो

खाता है तथा हस्ती की छाया में जो खाता है वह पुरुष पाप का भागी होता है ।।२८।।

पुनर्भूः पुनरेता च रेतोधा कामचारिणी ।
आसां प्रथमगर्भेषुभुक्त्वा चान्द्रायण चरेत् ।।२६
मातृघ्नश्च पितृघ्नश्च ब्रह्मोघ्नो गुरुतल्पगः ।
विशेषांद्भुक्तमेतेषां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।३०
रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम् ।
भुक्त्वैषां ब्राह्मणश्चान्नं शुद्धि चान्द्रायणेन तु ।।३१
उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः कदाचिदुपजायते ।
सवर्णेन तदोत्थाय उपस्पृश्य शुचिर्भवेत् ।
उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टःशूना शूद्रेण वा द्विजः ।
उपोष्य रजनीमेकां पचगव्येन शुध्यति ।।३२
ब्राह्मणस्य सदाकालं शूद्रेप्रेषणकारिणः ।
भूमावन्नं प्रदातव्यं यथैव श्वातथैव सः ।।३३
अनुदकेष्वरण्येषुचौरव्याघ्रासले पथि ।
कृत्वामूत्रं पुरीषञ्च द्रव्यहस्तःकथं शुचिः ।।३४
भूमावन्नं प्रतिष्ठाप्य कृत्वा शौचंयथार्थतः ।
उत्सङ्गे गृह्यपक्वान्नमुपस्पृश्य ततः शुचिः ।।३५

पुनः पति करने वाली, पुनः वीर्य धारण करने वाली तथा पुनः गर्भ धारण करने वाली, स्वेच्छयाचरण करने वाली स्त्री के प्रथम गर्भ में भोजन करने पर चान्द्रायण करना चाहिए ।।२६।। जो माता का, पिता का और ब्राह्मण का हनन करने वाला हो तथा गुरु तल्पगामी हो ऐसे पुरुष के यहाँ खास तौर से भोजन कर लेने पर चान्द्रायण व्रत करने से शुद्धि होती है ।।३०।। धोबी, व्याध, नट, बाँस और चमड़े से जीविका करने वाले क यहाँ अन्न का भोजन करके चान्द्रायण व्रत से शुद्धि होती है ।।३१।। उच्छिष्ट से जो उच्छिष्ट हो गया हो उसका स्पर्श करके जो किसी भी समय हो जावे तो सवर्ण के द्वारा तो उठकर उपस्पर्शन करके शुद्ध

हो जाता है ॥३२॥ कुत्ता या शूद्र के द्वारा यदि कोई ब्राह्मण उच्छिष्ट से से होने वाले उच्छिष्ट का स्पर्श करे तो एक रात उपवास कर पञ्चगव्य लेने पर शुद्ध होता है ॥३३॥ प्रेषणकारी ब्राह्मण को शूद्र के लिये सर्वदा भूमि में अन्न पशु की भाँति देना चाहिए क्योंकि वह वैसा ही होता है ॥३४॥ बिना जल वाले जङ्गलों में और चोरों तथा व्याघ्रों से घिरे हुए मार्ग में मूत्र और मल का त्याग करके हाथ में यदि कोई द्रव्य (वस्तु) हो तो किस प्रकार शुद्धि की जाती है ?॥३५॥

मूत्रोच्चारं द्विजः कृत्वा अकृत्वा शौचमात्मनः ।
चोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रन्तु गव्यं पीत्वा विशुध्यति ।।३६
उदक्यां यदि गच्छेत्तु ब्राह्मणो मदमोहितः ।
चान्द्रायणेन शुध्येत ब्राह्मणानाञ्च भोजनैः ।।३७
भुक्तोच्छिष्टस्त्वनाचान्तश्चाण्डालैः श्वपचेनवा ।
प्रमादाद् यदि संस्पृष्टो ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः३८
स्नात्वा त्रिषवणं नित्यं ब्राह्मचारी धराशयः ।
स त्रिरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुध्यति ॥३९
चाण्डालेन तु संस्पृष्टो यश्चापः पिवति द्विजः ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा त्रिषवणेन शुध्यति ॥४०
सायं प्रातस्त्वहोरात्र पादं कृच्छ्रस्य तं विदुः ।
सायं प्रातस्तथैवैकं दिनद्वयमयाचितम् ॥४१
दिनद्वयञ्च नाश्नीयात् कृच्छ्रार्द्धं तद्विधीयते ।
प्रायश्चित्तं लघु ह्येतत्पापेषु तु यथाऽहतः ॥४२
कृष्णाजिनतिलग्राही हस्त्यश्वानांच विक्रयी ।
प्रेतनिर्यातकश्चैव न भूयः पुरुषोभवेत ॥४३

जो अन्नादि हाथ में हो, उसे भूमि में रखकर ठीक प्रकार शौच करके पुनः पक्वान्न को गोद में रखकर उपस्पर्शन करे तो शुचि हो जाता है ॥३६॥ द्विज मूत्र त्याग करके स्वयं अपने आप की शुद्धि न करे और अज्ञान से भोजन कर लेवे तो तीन रात्रि तक पञ्चगव्य पीने से शुद्धि होती है ॥३७॥ उदक्या (रज प्रवाह वाली) स्त्री का कोई ब्राह्मण मद

से मोहित होकर गमन करे तो चान्द्रायण व्रत और ब्राह्मणों को भोजन कराने से शुद्ध होता है ॥३८॥ भोजन करके आचमन न करे और उच्छिष्ट हो तथा इसी दशा में प्रमाद से श्वपच (महतर) या चाण्डाल से स्पर्श हो जावे तो वह ब्राह्मण ज्ञान में दुर्बल होता है उसे फिर स्नान करके नित्य त्रिषवण (त्रिकालोपासना) करनी चाहिए और ब्रह्मचर्य रखकर भूमि-शयन करे तीन रात्रि तक उपवास करे फिर पञ्चगव्य लेवे तब शुद्ध होता है ॥३९॥ चाण्डाल से संस्पृष्ट होकर जो ब्राह्मण जल पी लेता है तो एक अहोरात्र उपवास करके त्रिषवण करने से शुद्धि होती है ॥४०॥ सायंकाल–प्रातःकाल और अहोरात्र कृच्छ्र व्रत का चतुर्थ भाग कहा गया है। उसी प्रकार सायं–प्रातः और दो दिन अयाचित खावे। दो दिन तक बिल्कुल न खावे, यह कृच्छ्र का आधा भाग होता है। पापों का यह यथोचित छोटा प्रायश्चित होता है ॥४१-४२॥ काला चर्म और तिलों को ग्रहण करने वाला तथा हाथी और घोड़ों का बेचने वाला एवं प्रेतों का निर्यातक फिर पुरुष नहीं होता है ॥४३॥

———

अथ दशमोऽध्यायः

अथ मोक्षाधिकारिणामभिधानवर्णनम् ।

आचान्तोऽप्यशुचिस्तावद् यावन्नोद्ध्रियते जलम् ।
उद्धृतेऽप्यशुचिस्तावद् यावद्भूमिर्न लिप्यते ॥१
भूमावपि च लिप्तायां तावत् स्यादशुचिः पुमान् ।
आसनादुत्थितस्तमाद् यावन्नाऽऽक्रमते महीम् ॥२
न यमं यममित्याहुरात्मा वै यम उच्यते ।
आत्मा संयमितोयेन तं यमः किं करिष्यति ॥३
न तथाऽसिस्तथा तीक्ष्णः सर्पो वा दुरधिष्ठितः ।
यथा क्रोधो हि जन्तूनां शरीरस्थो विनाशकः ॥४

क्षमा गुणो हि जन्तूनामिहामूत्रसुखप्रदः।
अरिर्वानित्यसंक्रुद्धो यथाऽऽत्मादु रधिष्ठितः।
एकः क्षमावतांदोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥५
न शक्तिशास्त्राभिरतस्य मोक्षो नचैव रम्यानसथप्रियस्य।
न भोजनाच्छादनतत्परस्य एकान्तशीलस्य दृढव्रतस्य॥६
मोक्षोभवेत् प्रोतिनिवर्त्तकस्य अध्यात्मयोगैकरतस्य सम्यक्।
मोक्षो भवेन्नित्यमहिंसकस्य स्वाध्याययोगागतमानसस्य ॥७

आचान्त भी तव तक अशुद्ध रहता है—जब तक वह जल को उद्धृत नहीं करता है। जल के उद्धृत करने पर भो वह शुद्ध नहीं होता है, जब तक भूमि का लेप नहीं किया जाता है ॥१॥ भूमि के लिप्त करने पर भी पुरुष तब तक अशुचि रहता है—जब तक वह आसन से उठ कर भूमि पर पादक्रमण नहीं करता है ॥२॥ यमराज को यम नहीं कहते हैं, वल्कि अपना आत्मा ही वस्तुतः यम होता है। जिसने अपनी आत्मा को संयमशील बना लिया है, उसका यम क्या बिगाड़ सकता है? ॥३॥ कृष्ण–सर्प जो भीषणविष वाला और काबू से भी बाहर होत है, वह इतना तीक्ष्ण नहीं होता, जैसा कि शरीर हो में रहने वाला विनाशक क्रोध होता है ॥४॥ क्षमा प्राणियों का एक ऐसा अद्भुत गुण है, जो इस संसार में और परलोक में भी सुख प्रदान करता है। अपनी आत्मा को ही जो नियन्त्रित रख पाता है, वही उसका सदा क्रुद्ध परम शत्रु है। क्षमा-धारियों का सबसे बड़ा एक दोष होता है और अन्य कोई ष नहीं है कि वह तो अपने अनुपम गुण—'क्षमा' से युक्त होता। ही है, किन्तु अन्य सभी मनुष्य उसे शक्तिहीन मानने लगते हैं ॥५॥ शक्तिशाली और शास्त्रों मे अभिरित रखने वाले का मोक्ष नहीं होता। जो सुन्दर भवन में रहने का इच्छुक है, उसका भी संसार के आवागमन से छुटकारा नहीं होता। अपने ही भोजनाच्छादन में संलग्न व्यक्ति का भी मोक्ष नहीं हो सकता है, यह मोक्ष का निर्वाण पद तो एकान्त-वासी और दृढव्रत के पालक को ही प्राप्त होता है ॥६॥ साँसारिक वस्तु

एवं व्यक्तियों से प्रेम न करने वाले, केवल अध्यात्म योग में तत्पर और सदा अहिंसा वृत्ति से स्वाध्याय तथा योगस्थ पुरुष ही मोक्ष प्राप्त करता है ।।७।।

क्रोधयुक्तो यद् यजते यज्जुहोति यदर्च्चति ।
सर्वं हरति दत्तस्य आमकुम्भइवोदकम् ।।८
अपमानात्तपोवृद्धिः सम्मानात्तपसः क्षयः ।
अर्चितः पूजितो विप्रो दुग्धा गौरिव सीदति ।।९
आप्यायते तथाधेनुस्तृणैरमृतसम्भवैः ।
एवं जपश्च होमैश्च पुनराप्यायते द्विजः ।।१०
मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ।।११
रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम् ।
यो भुङ्क्ते भुक्तमेतेषां प्राजापत्यं विशोधनम् ।।१२
अगम्यागमनं कृत्वा अभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।
शुद्धि चान्द्रायणं कृत्वा अथर्वोक्तं तथैव च ।।१३
अग्निहोत्रं त्यजेद् यस्तु स नरोवीरहा भवेत् ।
तस्यशुद्धिर्विधातव्या नान्या चान्द्रायणादृते ।।१४
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके ।
सद्यः शुद्धि विजानीयात् पूर्वं सङ्कल्पितं चरेत् ।।१५
देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्रतरेषु च ।
कल्पितं सिद्धमन्नाद्यं नशौचं मृतसूतके ।।१६

क्रोध से युक्त व्यक्ति का किया हुआ यजन, हवन, और अर्चन सभी कुछ कच्चे कलश में स्थित जल की भाँति नष्ट हो जाता है ।।८।। समाज में अपमान होने से तप की वृद्धि होती है और सम्मान होने से तप का क्षय होता है। जो ब्राह्मण अत्यधिक अर्जित तथा समाज में पूजित होता है, वह दूध वाली गाय की भाँति दुखित रहता है ।।९।। जल में समुत्पन्न तृण से जिस प्रकार गौ तृप्त होती है, उसी प्रकार जप और होम से ब्राह्मण भी संतृप्त रहता है ।।१०।। सर्वदा पराई

स्त्रियों को माता की भाँति और पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान तथा समस्त प्राणियों को अपने ही समान जो देखता है, वही वास्तव में देखना जानता है ॥११॥ धोबी, शिकारी, नट, बाँस तथा चमड़े के काम से रोजी कमाने वाले के यहाँ जो भक्त (भात) को खाता है वह प्राजापत्य व्रत से विशोधन पाता है ॥१२॥ गमन न करने के योग्य स्त्री का गमन करके तथा जो भोजन के अयोग्य पदार्थ हो उसको खा करके चान्द्रायण करके शुद्धि करे तथा अथर्वोक्त विधान को करे ॥१३॥ जो अग्निहोत्र का त्याग करदे वह मनुष्य वार का हनन करने वाला होता है। उसकी शुद्धि चान्द्रायण के बिना नहीं होती है, अतः उसे यही करना चाहिए ॥१४॥ विवाहोत्सव, यज्ञों में, बीच में ही मृत–सूतक की सद्यः शुद्धि कर देनी चाहिए और जो पहिले से उक्त कार्यों के करने का सङ्कल्प हो उन्हें करना चाहिए ॥१५॥ देव–द्रोणी, विवाह यज्ञ और प्रतर में कल्पित अन्नादि—जो सिद्ध किया जा चुका हो, यदि मृत—सूतक हो जावे तो अशौच नहीं होता है ॥१६॥

———

हारीतस्मृतिः

अथ प्रथमोऽध्यायः

अथ वर्णाश्रमधर्मवर्णनम् ।

ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति ।
इतिपर्वं त्वया प्रोक्तं भूर्भुवः स्वर्द्विजोत्तमाः ॥१
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मान्नो ब्रूहि सत्तमः ! ।
येन सन्तुष्यते देवो नारसिंहः सनातनः ॥२
अत्राहं कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ।
ऋषिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ॥३
हारीतं सर्वधर्मज्ञमासीमिव पावकम् ।
प्रणिपत्याब्रुवन् सर्वे मुनयो धर्मकांक्षिणः ॥४
भगवन् ! सवधर्मज्ञ ! सर्वधर्मप्रवर्त्तक ! ।
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मान्नो ब्रूहि भार्गव ! ॥५
समासाद्योगशास्त्रञ्च विष्णुभक्तिकरं परम् ।
एतच्चान्यच्च भगवन् ! ब्रूहि न परमो गुरुः ॥६
हारीतस्तानुवाचाथ तैरेवं चोदितो मुनिः ।
शृण्वन्तु मुनयः ! सर्वे ! धर्मान् वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥७

भूर्भुवः स्वः इन व्याहृतियों के उपासक द्विज श्रेष्ठ जो चारों वर्ण और चारों आश्रमों में स्थित हैं भगवान् के भक्त होते हैं, यह आपने वर्णन किया॥१॥ हे श्रेष्ठ ! अब चारों वर्णों और आश्रमों के धर्म हमको बतलाइये, जिससे सिंह के समान सनातन पुरुष भगवान् सन्तुष्ट होते हैं ॥२॥ इस समय में ऋषियों के साथ होने वाला प्राचीन अत्युत्तम महात्मा हारीत का सम्वाद मैं वर्णन करूंगा ॥३॥ समस्त धर्मों के

ज्ञाता और अग्नि के तुल्य बैठे हुए हारीत मुनि से धर्म की आकांक्षा रखने वाले सब मुनि उन्हें प्रमाण करके बोले ॥४॥ हे भगवन् ! हे समस्त धर्मों के ज्ञाता ! हे सम्पूर्ण धर्मों के प्रवर्त्तक ! हे भार्गव ! आप वर्णों के तथा आश्रमों के धर्म हमें बतलाइये ॥५॥ संक्षेप में योग शास्त्र जो कि परम विष्णु भक्ति वाला है । यह तथा अन्य भी हमको बताओ । हे भगवन् ! आप हमारे परम गुरु हैं ॥६॥ मुनियो के द्वारा इस तरह प्रेरित होकर हारीत मुनि उनसे बोले—हे मुनियों ! मैं शाश्वत धर्मों को बतलाता हूँ, तुम सब सुनो ॥७॥

वर्णानामाश्रमाथाञ्च योगशास्त्रञ्च सत्तमाः ! ।
सन्धार्य्यं मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबन्धनात् ॥८
पुरा देवो जगत्स्रष्टा परमात्मा जलोपरि ।
सुष्वाप भोगिपर्य्यंके शयने तु श्रिया सह ॥९
तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत् पद्मप्रभूत् किल ।
पद्ममध्येऽभवद् ब्रह्मा वेदवेदाङ्गभूषणः ॥१०
स चोक्तो देवदेवेन जगत्सृज पुनः पुनः पुनः ।
सोऽपि सृष्ट्वा जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥११
यज्ञसिद्धयथमनघान् ब्राह्मणन्मुखतोऽसृजत् ।
असृजत् क्षत्रियान् वाह्वो वैश्यानप्युरुदेशतः ॥१२
शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषाञ्चैवानुपूर्वशः ।
यथा प्रोवाच भगवान् ब्रह्मयोनि पितामहः ॥१३
तद्वचः संप्रवक्ष्यामि श्रृणुत द्विजसत्तमाः ! ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं मोक्षफलप्रदम् ॥१४

हे श्रेष्ठ पुरुषो ! वर्णों के तथा आश्रमों के धर्म और योगशास्त्र को संधारण करके मनुष्य संसार के जन्म बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥८॥ पहिले किसी समय में इस जगत् की सृष्टि करने वाले परमात्मा शेष की शय्या पर जल में लक्ष्मी के साथ सो रहे थे ॥९॥ सोते हुए भगवान् की नाभि में एक महान् कमल उत्पन्न हुआ और उस कमल के मध्य में ब्रह्मा जो कि वेद और वेद के अङ्गों के भूषण हैं, उत्पन्न हुए।१०।

देवों के देव भगवान् नारायण ने ब्रह्मा से कहा कि पुनः-पुनः इस जगत् का सृजन करो। उस ब्रह्मा ने भी देव-असुर और मनुष्यों से युक्त इस समस्त जगत् की सृष्टि कर डाली ॥११॥ ब्रह्मा ने यज्ञों की सिद्धि के लिये निष्पाप ब्राह्मणों की मुख से सृष्टि की, क्षत्रियों की बाहु से और उरु भाग से वैश्यों की रचना की थी ॥१२॥ शूद्रों की ब्रह्मा ने अपने पैरों से रचना की और उनके विषय में क्रम से पितामह भगवान् ब्रह्म-योनि से जो भी कुछ बोले उन्हीं वचनों को मैं बतलाता हूँ। हे द्विजश्रेष्ठो ! तुम सुनो। वह वचन बहुत ही धन्य, यश देने वाला, आयु बढ़ाने वाला स्वर्ग प्रदान करने वाला और मोक्ष का फल देने वाला है ॥१३-१४॥

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैवमुत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः।
तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥१५
कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्त्तते।
तस्मिन्देशे वसेद्धर्मः सिद्धयति द्विजसत्तमाः ! ।१६
षट् कर्माणि निजान्याहुर्ब्राह्मणस्य महात्मनः।
तैरेव सततं यस्तु वर्त्तयेत् सुखमेधते ॥१७
अध्यापनं चाध्ययनं यजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चेति षट् कर्माणीति चोच्यते ॥१८
अध्यापनञ्च त्रिविधं धर्मार्थमृक्थकारणात्।
शुश्रूषाकरणञ्चेति त्रिविधं परिकीर्त्तितम् ॥१९
एषामन्यतमाभावे वृषाचारी भवेद्द्विजः।
तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैषिणा ॥२०
योग्यानध्यापयेच्छिष्यानयोग्यानपि वर्जयेत्।
विदितात् प्रतिगृह्णीयाद्गृहे धर्मप्रसिद्धये ॥२१
वेदंचैवाभ्यसेन्नित्य शुचौ देशे समाहितः।
धर्मशास्त्रं तथा पाठ्यं ब्राह्मणः शुद्धमानसैः ॥२२

ब्राह्मण के वीर्य से ब्राह्मणी में जो उत्पन्न होता है वह ब्राह्मण कहा गया है। उसका धर्म और उसके योग्य देश बतलाते हैं ॥१५॥

कृष्णसार मृग जहाँ स्वाभाविक रूप मे ही रहता है उसी देश में धर्म का निवास होता है और वह सिद्ध भी होता है ।।१६।। अध्यापन तीन प्रकार का होता है एक ऐसा है जो धर्म के विचार से ही अध्यापन किया जाता है, कहीं धन की लालसा तथा प्राप्ति से होता और तीसरा शुश्रूषा करने पर भी होता है, इस तरह तीन तरह का है ।। १७ ।। ब्राह्मण को करने के लिये लिये छः कर्म बतलाये गये हैं । जो उन अपने कर्मों को सर्वदा करता है वह सुख लाभ करता है ।।१८।। पढ़ना-पढ़ाना-यज्ञ करना-यज्ञ कराना-दान लेना और दान-देना ये ब्राह्मण के छः कर्म हैं ।।१९।। इन तीनों में से अन्यतम का अभाव होने पर ब्राह्मण वृष के से आचार वाला हो जाता है । जो स्वहित चाहने वाला है उसे ऐसे व्यक्ति को कभी भी विद्या का दान नहीं करना चाहिए ।।२०।। जो योग्य शिष्य हों उन्हीं का पढाना चाहिए तथा जो अयोग्य हों उनको वर्जित कर देवे । धर्म की प्रसिद्धि के लिये विदित से ही ग्रह में प्रतिग्रह लेना चाहिये ।।२१।। पवित्र स्थान पर सावधान चित्त हो कर ब्राह्मण को वेद का नित्य प्रति अभ्यास करना चाहिए और शुद्ध मन वाले ब्राह्मण को धर्म शास्त्र का भी अध्ययन करना चाहिए ।।२२।।

वेदवित्पठितव्यं च श्रोतव्यञ्च दिवा निशि ।
स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च ।
दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुलविनाशनम् ।।२३
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेद्द्विजः ।
श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते ।
काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्त्तितः ।।२४
गुरुशुश्रूणञ्चैव यथान्यायमतन्द्रितः ।
सायं प्रातरुपासीत विवाहाग्नि द्विजोत्तमः ! ।।२५
सुस्नातस्तु प्रकुर्वीत वैश्वदेवं दिने दिने ।
अतिथीनागताञ्छक्त्या पूजयेदविचारतः ।।२६

अन्यानभ्यागतान् विप्राः ! पूजयेच्छक्तितो गृही ।
स्वदारनिरतो नित्य परदारविवर्जितः ॥२७
कृतहोमस्तु भुञ्जीत सायं प्रातरुदारधीः ।
सत्यवादी जितक्रोधो नाधर्मे वर्त्तयेन्मतिम् ॥२८
स्वकर्मणि च संप्राप्ते प्रमादान्न निवर्त्तते ।
सत्यां हितां वदेद्वाचं परलोकहितैषिणीम् ॥२९
एष धर्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासतः ।
धर्ममेव हि यः कुर्यात् स याति ब्राह्मणः पदम् ॥३०
इत्येष धर्मः कथितो मयायं पृष्टो भवद्भिस्त्वखिलाघहारी ।
वदामि राज्ञामपि चैव धर्मान्पृथकपृथग्बोधतविप्रवर्य्याः ॥३१

जो वेद से विमुख है और स्मृति ज्ञान से रहित होता है ऐसे ब्राह्मण को दिया हुआ दान, भोजन तथा अन्य वस्तु कुल का विनाशकारक होता है ॥२३॥ अतएव ब्राह्मण को प्रयत्नपूर्वक धमशास्त्र का अध्ययन अवश्य ही करना चाहिए । श्रुति और स्मृति ब्राह्मणों के देव निर्मित दो नेत्र होते हैं । इनमें से एक से रहित काना और दोनों से हीन अन्धा कहा जाता है ॥२४॥ गुरु की शुश्रूषा यथोचित रूप से तन्द्रा रहित होकर करे द्विजोत्तम को सायंकाल और प्रातःकाल विवाहाग्नि की उपासना करनी चाहिए ॥२५॥ स्नान करके ब्राह्मण को प्रतिदिन बलिवैश्वदेव करना चाहिए और आये हुए अतिथियों की स्थिति आदि का कोई विचार न करते हुए यथाशक्ति अर्चा-सत्कृति करनी चाहिए ॥२६॥ हे विप्रो ! गृहाश्रमी पुरुष को अपने घर पर आये हुए अन्य सभी का सविधि शक्ति भर सत्कार करना चाहिए । सदा परस्त्री से विरत हो कर अपनी स्त्री में रति करने वाला रहे ॥२७॥ होम करके उदार बुद्धि वाले को सायं तथा प्रातः भोजन करना चाहिए । सदा सत्यवादी, क्रोध को जीतने वाला रहना चाहिए, कभी भी अधर्म में बुद्धि को न लगावे ॥२८॥ अपने कर्म को समय पर प्रमाद से कभी नहीं छोड़ना चाहिए । सर्वदा सत्य प्रिय और दूसरे लोगों के लिए हित करने वाली वाणी बोलनी चाहिए ॥२९॥ संक्षेप में यही ब्राह्मण का धर्म कहा गया है । जो इस प्रकार धर्म का

पालन करता है वह ब्राह्मण पद को प्राप्त करता है ।।३०।। हे विप्रवरो ! मैंने यह तुम्हारे पूछने पर समस्त पापों का नाशक धर्म कहा है । अब क्षत्रियों का धर्म बतलाता हूं । तुम इसे भली भाँति समझ लो ।।३१।।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

अथ चतुर्वर्णानां धर्मवर्णनम् ।

क्षत्रादीनां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।
येषु प्रवृत्ता विधिना सर्वे यान्ति परां गतिम् ।।१
राज्यस्थः क्षत्रियश्चापि प्रजाधर्मेण पालयन् ।
कुर्यादध्ययनं सम्यग्यजेद्यज्ञान् यथाविधि ।।२
दद्याद्दानं द्विजातिभ्यो धमबुद्धिसमन्वितः ।
स्वभार्य्या निरतो नित्यं षड्भागार्हः सदा नृपः ।।३
नीतिशास्त्रार्थकुशलः सन्धिविग्रहतत्त्ववित् ।
देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपरस्तथा ।।४
धर्मेण यजनं कार्यमधर्मपरिवर्जनम् ।
उत्तमां गति माप्नोति क्षत्रियोऽप्येवमाचरन् ।।५
गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि ।
दानं देयं यथाशक्त्या ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ।६
दम्भमोहविनिर्मुक्तस्तथा वागनसूयकः ।
स्वदारनिरतो दान्तः परदारविवर्जितः ।।७

अब क्षत्रियादि का धर्म यथानुपूर्वशः बतलाते हैं । जिनमें प्रवृत्त विधिपूर्वक धर्म हों तो सभी परम गति को प्राप्त होते हैं ।।१।। राज्यासन पर स्थित क्षत्रिय को भी धर्मपूर्वक अपनी प्रजा का पालन करते हुए भली भाँति अध्ययन करना चाहिए और यथाविधि यज्ञादि भी करने चाहिएँ ।।२।। धर्म की भावना से युक्त होते हुए राजा को द्विजातियों को दान देना चाहिए और सर्वदा अपनी ही स्त्री में रत रहते हुए भूमि की उपज का छठा भाग प्रजा से ग्रहण करे ।।३।। जो क्षत्रिय नीतिशास्त्र के अर्थ में कुशल हो और सन्धि तथा विग्रह के तत्व को भली-भांति जानता हो, देवता और ब्राह्मण का भक्त होवे तथा पितृगण के कार्य में परायण रहे,

धर्म पूर्वक यजन करे और अधर्म का निषेध करे—इस प्रकार से आचरण करने वाला क्षत्रिय उत्तम गति पाता है ।।४-५।। गवादि का पालन, खेती, वाणिज्य-व्यापार, वैश्य को यथाविधि करना चाहिए । यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन और दान देना चाहिए ।।६।। कपट और मोह से रहित होकर कभी अपनी वाणी से किसी की बुराई न करे । दमनशील होकर अपनी स्त्री में ही रत रहे और परस्त्री से सर्वदा दूर रहे ।।७।।

धनैर्विप्रान् भोजयित्वा यज्ञकाले तु याजकान् ।
अप्रभुत्वञ्च वर्तेत धर्म-वादेहपातनात् ।।८
यज्ञाध्ययनदानानि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ।
पितृकार्यपराश्चैव नरसिंहार्च्चनापरः ।।९
एतद्वैश्यस्य धर्मोयं स्वधर्ममनुतिष्ठति ।
एतदाचरते योहि स स्वर्गी नात्र संशयः ।।१०
वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्याच्छूद्रः प्रयत्नतः ।
दासवद्ब्राह्मणानाञ्च विशेषेण समाचरेत् ।।११
अयाचितप्रदाता च कष्टं वृत्यर्थमाचरेत् ।
पाकयज्ञविधानेन यजेद्देवमतन्द्रितः ।।१२
शूद्राणमधिकं कुर्यादर्च्चनं न्यायवर्तिनाम् ।
धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् ।
स्वदारेषु रतिश्चैव परदारविवर्जनम् ।।१३
इत्थं कुर्यात् सदा शूद्रो मनोवाक्कायकर्मभिः ।
स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापः सुपुण्यकृत् ।।१४
वर्णेषु धर्मा विविधा मयोक्ता यथातथा ब्रह्ममुखेरिताः पुरा ।
शृणुध्वमत्राश्रमधर्ममाद्यं मयोच्यमानं क्रमशो मुनींद्राः ।।१५

अपने धन से ब्राह्मणों को जो कि यज्ञ के समय याजक होते हैं, भोजन कराकर देह के पातन पर्यन्त अपना धर्म के कार्यों में प्रभुत्व नहीं दिखाना चाहिए ।।८।। नित्य प्रति यज्ञ, अध्ययन और दान निरालस्य होकर करना चाहिए । पितृगण को तृप्ति के कार्यों में परायण रहे और नरसिंह की अर्चना करे ।।९।। यह वैश्य का धर्म है । जो अपने शास्त्रोक्त

धर्म में रहता है और इस प्रकार का आचरण करता है वह स्वर्ग प्राप्त करने का अधिकारी होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१०॥ शूद्र को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन धर्मों की प्रयत्नपूर्वक सेवा करनी चाहिए विशेष कर ब्राह्मणों का तो सेवक बनकर उनके साथ व्यवहार करना चाहिए ॥११॥ बिना याचना के देने वाला होकर अपनी आजीविका के लिये कड़ा परिश्रम करे और सदा निरालस्य होकर पाक यज्ञ की विधि से देवार्चन करे ॥१२॥ न्यायवर्त्ती शूद्रों का विशेष सत्कार करना चाहिए। शूद्र को जीर्ण वस्त्र धारण करना चाहिए और ब्राह्मण का उच्छिष्ट खाना चाहिए। अपनी स्त्री में रति और पराई स्त्री का त्याग करे ॥१३॥ सर्वदा शूद्र को मन-वाणी और शारीरिक कर्मों द्वारा अपना कर्त्तव्य का पालन करने पर वह समस्त पापों को नष्ट कर पुण्यात्मा बन जाता है और अन्त में इन्द्र के पद को प्राप्त कर लेता है ॥१४॥ हे मुनीन्द्र वृन्द ! वर्णों के विषय में मैंने जैसा सभी कुछ ब्रह्माजी के मुख से पहिले सुना था तुमको अनेक प्रकार के धर्म बता दिये हैं। अब तुम लोग मेरे द्वारा बताये गये प्रथम आश्रम के धर्म को क्रम से सुनो ॥१५॥

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ ब्रह्मचर्याश्रमधर्मवर्णनम्।

उपवीतो माणवको वसेद्गुरुकुलेषु च।
गुरोः कुले प्रियं कुर्यात् कर्मणा मनसा गिरा ॥१
ब्रह्मचर्य्यमधः शय्या तथा वह्नेरुपासना।
उदकुम्भान् गुरार्दद्याद्गोग्रासञ्चेन्धनानि च।
कुर्य्यादध्ययनञ्चैव ब्रह्मचारी यथा विधि।
विधि त्यक्त्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥२
यः कश्चित् कुरुते धर्म विधिं हित्वा दुरात्मवान्।
न तत्फलमवाप्नोति कुर्व्वाणोऽपि विधिच्युतः ॥३
तस्माद्वेदव्रतानीह चरेत् स्वाध्याय सिद्धये।
शौचाचारमशेषं शिक्षयेद् गुरुसन्निधौ ॥४

अजिनं दण्डकाष्ठञ्च मेखलाञ्चोपवीतकम् ।
धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारी समाहितः ॥५
सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं भोज्यार्थं संयतेन्द्रियः ।
आचम्य प्रयतो नित्यं न कुर्याद्दन्तधावनम् ।
छत्रञ्चोपानहञ्चैव गन्धमाल्यादि वर्जयेत् ।
नृत्यगीतमथालापं मैथुनञ्च विवर्जयेत् ॥६
हस्त्यश्वारोहणञ्चैव सत्यजेत् संयतेन्द्रियः ।
सन्ध्योपास्ति प्रकुर्व्वीत ब्रह्मचारी व्रतस्थितः ॥७

यज्ञोपवीत संस्कार से सम्पन्न होकर मनुष्य को गुरुकुल में रहना चाहिए और वहाँ गुरु के सन्निधि में मन, वाणी और शरीर के द्वारा प्रिय कर्म करने चाहिए ॥१॥ गुरुकुल में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन, भूमि में शयन, अग्निहोत्रादि कर्म करे तथा गुरु के लिये जल के कलश लाना, गवादि के लिये तृण संग्रह करना और ईंधन लाने आदि की सेवा करनी चाहिए। ब्रह्मचारी को विधिपूर्वक गुरुकुल में अध्ययन भी करना चाहिए। विधि का त्याग करके स्वाध्याय करने पर भी कोई फल-लाभ नहीं होता है ॥२॥ जो कोई दुरात्मा विधि का त्याग करके धर्म करता है वह विधि से च्युत व्यक्ति धर्म-कृत्य करता हुआ भी उसका कोई फल नहीं पाता है ॥३॥ इसलिये यहां वेद के व्रतों को स्वाध्याय की सिद्धि के लिये करना चाहिए । गुरु की सन्निधि में रहकर सम्पूर्ण शुद्धि के आचार को सीखना चाहिए ॥४॥ ब्रह्मचारी को समाहित होकर अजिन, काष्ठ, दण्ड, मेखला और उपवीत प्रमाद से रहित होकर सर्वदा धारण करना चाहिए ॥५॥ इन्द्रियों का संयम रखते हुए प्रातःकाल और सायङ्काल में भिक्षाचरण भोजन के लिये करे और नित्य ही प्रयत होकर आचमन करे किन्तु मंजन नहीं करे। ब्रह्मचारी को छाता, जूता, सुगन्धित पदार्थ, पुष्पमाला, नाच, गाना, मैथुन तथा विशेष गप-शपादि का त्याग कर देना चाहिए ॥६॥ हाथी घोड़े की सवारी त्याग दे और सन्ध्योपासन अवश्य करे ॥७॥

अभिवाद्य गुरोः पादौ सन्ध्याकर्मावसानतः ।
तथा योगं प्रकुर्व्वीत मातापित्रोश्च भक्तितः ॥८

एतेषु त्रिषु नष्टेषु नष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।
एतेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ।।९
अधीत्य च गुरो र्वेदान् वेदौ वा वेदमेव वा ।
गुरुवे दक्षिणां दद्यात् संयमो ग्राममावसेत् ।।१०
यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं करः ।
संन्याससमयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्य्यया ।।११
तस्मिन्नेव कालमाचार्य्ये यावदायुषम् ।
तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वाथवा कुले ।।१२
न विवाहो न संन्यासो नैष्ठिकस्य विधीयते ।।१३
इमं योविधिमास्थाय त्यजेद्देहमतन्द्रितः ।
नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारो दृढव्रतः ।।१४
यो ब्रह्मचारी विधिना सवाहितश्चरेत् पृथिव्यां गुरुसेनने रतः ।
संप्राप्य विद्यायतिदुर्लभां शिवां फलञ्च तस्याः सुलभं तु विदन्ति१५

नैत्यिक सन्ध्योपासनादि कर्म करने के पश्चात् अपने गुरु के चरणों का अभिवादन करना चाहिए और इसी प्रकार भक्तिभाव से अपने माता-पिता के चरणों में जाकर प्रणाम करना चाहिए ।।८।। इन उक्त तीनों के प्रणाम करने के कर्म को त्याग देने पर सब देव अप्रसन्न हो जाते हैं । अतएव ब्रह्मचारी को माता-पिता और गुरु के शासन में मात्सर्य का त्याग कर सर्वदा रहना चाहिए ।।९। गुरु से एक वेद, दो वेद अथवा समस्त वेदों का अध्ययन करके गुरुजो को दक्षिणा देवे और संयम में रहकर घर में आ बसे ।।१०।। जिस पुरुष के जिह्वा-उपस्थ और हाथ भली-भांति सुरक्षित हैं अर्थात् अपने वश में होते हैं वह ब्राह्मण ब्रह्मचर्यावस्था स पार होकर भी ब्रह्मचर्य स सन्याप का समय ग्रहण करे और उसी में आचार्य के समोप में रहकर पूर्ण आयु तक यापन करे । यदि आचार्य न हों तो उनके शिष्य-पुत्र अथवा कुल म समय यापन करे ।।११-१२।। नैष्ठिक ब्रह्मचारी का न विवाह हो होता है और न संन्यास हो होता हैं ।।१३।। इस प्रकार जो इस विधि का आश्रय लेकर अतन्द्रित हो शरोर का त्याग करता है एसा व्रत में दृढ़ ब्रह्मचारी फिर इस संसार में जन्म नहीं

धारण करता है ॥१४॥ जो ब्रह्मचारी समाहित होकर विधि से आचरण करता है और इस पृथ्वी में गुरु की सेवा में निरत रहता है वह अत्यन्त दुर्लभ विद्या की प्राप्ति करके उसका जो सुलभ फल होता है उसे भी पाता है ॥१५॥

अथ चतुर्थोऽध्याय:

अथ गृहस्थाश्रमधर्मवर्णनम् ।

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतशास्त्रार्थ तत्त्ववित् ।
असमानार्षगोत्रां हि कन्यां सभ्रातृकां शुभाम् ॥१
सर्व्वावयवसपूर्णां सुवृत्तामुद्वहेन्नरः ।
ब्राह्मेण विधिना कुर्य्यात् प्रशस्तेन द्विजोत्तमः ॥२
तथान्ये वहवः प्रोक्ता विवाहा वर्णधर्मतः ।
औपसनञ्च विधिवदाहृत्य द्विजपुङ्गवाः ॥३
सायं प्रातश्च जुहुयात् सर्वकालमतन्द्रितः ।
स्नानं कार्य्यं ततोनित्य दन्तधावनपूर्व्वकम् ॥४
उषःकाले समुत्थाय कृतशौचो यथाविधिः ।
मुखे पर्य्युषित नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ॥५
तस्माच्छुष्कमथार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तकाष्टकम् ।
करञ्जं खादिरं वापि कदम्बं करवं तथा ॥६
सप्तपर्णपृश्निपर्णीजम्बुनिम्बं तथैव च ।
अपामार्गञ्च विल्वञ्चार्कञ्चोडुम्बरमेव च ॥७
एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्म्मणि ।
दन्तकाष्ठस्य भक्षश्च सभासेन प्रकीर्त्तितः ॥८

वेदों का अध्ययन करने के पश्चात् समस्त पठित शास्त्रों के तत्व के जानने वाले मनुष्य को भिन्न गोत्र में समुत्पन्न, भाई वाली, सर्वाङ्ग सुन्दरी, सच्चरित्र अच्छी कन्या के साथ उत्तम ब्राह्म विधि से विवाह करना चाहिए ॥१-२॥ वर्ण धर्म से इस प्रकार अन्य भी बहुत से विवाह बताये गये हैं। हे श्रेष्ठ द्विजवृन्द ! विधिवत् आहरण करके अपासना भी

कही गई हैं ।।३।। दांतुन पहिले करके नित्य ही स्नान अवश्य करना चाहिए । सदा निरालस्य होकर सायंकाल और प्रातःकाल हवन करना चाहिए ।।४।। उषा काल में अर्थात् पौ फटने के समय शय्या से उठ जावे और यथाविधि शौचादि करे । मुख के पर्युषित (बासी) रहने पर नित्य ही मनुष्य अप्रयत हो जाता है ।।५।। इसयिये सूखा अथवा गोला दाँतुन करे । करञ्ज, खदिर, कुरव, कदम्ब, सप्तपर्ण, पृश्निपर्णो, जामुन, नीम, अपामार्ग (औंगा), बिल्व, गूलर और आक की प्रशस्त कही गई हैं । दन्त धावन का करना यहाँ संक्षेप में कहा गया ।।६-८।।

सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः ।
आष्टांगुलेन मानेन दन्तकाष्ठमिहोच्यते ।
प्रादेशमात्रमथवातेनन्दतान तेन विशोधयेत् ।।९
प्रतिपत्पर्वषष्ठाषु नवम्यांचैव सत्तमाः ! ।
दन्तानां काष्ठसंयागाद्दहत्यासप्तमं कुलम् ।।१०
अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेषु च ।
अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धि समाचरेत ।।११
स्नात्वा मन्त्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत् ।
मन्त्रवत् प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकांजलिम् ।।१२
आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम राक्षसाः ।
युद्धयन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।।१३
उदकांजलिनिःक्षेपा गायत्र्या चाभिमन्त्रिताः ।
निघ्नन्ति राक्षसान् सर्वान् मन्देहाख्यान् द्विजेरिताः ।।१४

समस्त काँटेदार वृक्ष पवित्र होते हैं और समस्त दूध वाले वृक्ष यशस्वी होते हैं दाँतुन की लम्बाई आठ अगुल की कही गई है । जो दाँत रहित हों उनको दाँतों के स्थान को ही दाँतुन से शोधन कर लेना चाहिए ।।९।। हे श्रेष्ठवृन्द ! प्रतिपत्-पर्व का दिन, षष्ठी और नवमी में दाँतों का काष्ठ से संयोग करने से सात कुल का दहन होता है ।।१०।। जो दिन दन्त धावन करने में निषिद्ध बताये गये हैं उनमें दाँतुन के अभाव में बारह कुल्ली करके ही मुख को शुद्ध करे ।।११।। स्नान करके और मन्त्रों

से आचमन करके फिर आचमन करना चाहिए। मन्त्रों से अपने आपका प्रोक्षण करके जल की अञ्जलि को प्रक्षिप्त करना चाहिए ।।१२।। प्रातः काल में सूर्य के साथ मन्देहा नाम वाले राक्षस अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्मा के वरदान से युद्ध किया करते हैं ।।१३।। उन मन्देहा नाम वाले समस्त राक्षसों को गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित ब्राह्मणों के द्वारा दी हुई जल की अञ्जलियाँ मार देती हैं ।।१४।।

ततः प्रयाति सविता ब्राह्मणैरभिरक्षितः ।
मरीच्याद्यैर्महाभागैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ।।१५
तस्मान्न लङ्घयेत् सन्ध्यां सायं प्रातः समाहितः ।
उल्लङ्घयति यो मोहात् स याति नरकं ध्रुवम् ।।१६
सायं मन्त्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्य्यस्य चांजलिम् ।
दत्त्वा प्रदक्षिणं कुर्य्याज्जलं स्पृष्ट्वा विशुद्धयति ।।१७
पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद् यावदादित्यदर्शनात् ।।१८
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सादित्यांञ्च यथाविधि ।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावत्तारा न पश्यति ।।१९
ततश्चावसथं प्राप्य कृत्वा होमं स्वयं बुधा ।
संचिन्त्य पोष्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः ।।२०
ततः शिष्यहितार्थाय स्वाध्यायं किञ्चिदाचरेत् ।
ईश्वरञ्चैव कार्य्यार्थमभिगच्छेद्द्विजोत्तमः ।।२१

इसके पश्चात् अर्थात् गायत्री से अभिमन्त्रित जलाञ्जलि से मन्देहा राक्षसों के हनन होने के बाद महाभाग मरीचि आदि तथा योगी सनकादि ब्राह्मणों के द्वारा सुरक्षित होकर सूर्य देव प्रणाम करते हैं ।।१५।। इसलिये सायं और प्रातः संध्या कर्म की उपेक्षा न करनी चाहिये। जो अज्ञानवश इस नियम का पालन नहीं करता है वह निश्चय ही नर्क को जाता है ।।१६।। सायंकाल में मन्त्रोच्चारण पूर्वक आचमन एवं प्रोक्षण करके सूर्य को जलाञ्जलि देवे और प्रदक्षिणा करे। उस समय जल को स्पर्श करके शुद्ध हो जाता है ।।१७।। पहिली अर्थात् प्रातःकाल की सन्ध्या सूर्योदय

के पूर्व तारे रहते हुए विधिपूर्वक करनी चाहिए। जब तक सूर्य के दर्शन हों तब तक गायत्री का जप करना चाहिए ॥१८॥ पश्चिम अर्थात् सायं-कालीन सन्ध्योपासन सूर्यास्त होने के पूर्व ही करना चाहिए और जब तक तारागण दिखलाई दें तब तक विधि सहित गायत्री का जप करते रहना चाहिए। १९॥ इसके अनन्तर अवसथ को प्राप्त कर विद्वान स्वयं होम करे। विचक्षण गृहस्थ को अपने पोषण करने के योग्य लोगों के भरण करने के लिये चिन्तन करना चाहिए ॥२०। प्रातःकाल के समय श्रेष्ठ विप्र को शिष्यों के हित के लिये कुछ स्वाध्याय तथा ईश्वरोपासना करनी चाहिए फिर कार्य सम्पादन के लिये जाना चाहिए ॥२१॥

कुशपुष्पेन्धनादीनि गत्वा दूरं समाहरेत्।
ततो माध्याह्निकं कुर्य्याच्छुचौ देशे मनोरमे ॥२२
विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि समासात् पापनाशनम्।
स्नात्वा येन विधानेन मुच्यते सर्वकिल्विषात् ॥२३
स्नानार्थं मृदमानीय शुद्धाक्षततिलैः सह।
सुमनाश्च ततो गच्छेन्नदीं प्रद्धजलाधिकाम् ॥२४
नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादन्यवारिणी।
न स्नायादल्पतोयेषु विद्यमाने बहूदके ॥२५
सरिद्वरं नदीस्वानं प्रतिस्रोतःस्थितश्चरेत्।
तड़ागादिषु तोयेषु स्नायाच्च तदभावतः ॥२६
शुचिदेशं समभ्युक्ष्य स्थापयेत् सकलाम्बरम्।
मृत्तोयेन स्वकं देहं लिम्पेत् प्रक्षाल्य यत्नतः। २७
स्नानादिकञ्च संप्राप्य कुर्य्यादाचमनं बुधः।
सोऽन्तर्जलं प्रविश्याथ वाग्यतो नियमेन हि।
हरिं संस्मृत्य मनसा मज्जयेच्चोरुमज्जले ॥२८

दूर जाकर कुशा, पुष्प और ईंधन आदि लावे फिर किसी पवित्र स्थल में जो मनोरम भी हो, मध्यान्ह का कृत्य करे ॥२२॥ उसकी विधि भी मैं बतलाता हूँ जो समस्त पापों को नाशक है। f स विधि-विधान से स्नान करके सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाता है ॥२३॥ स्नान के लिये

मिट्टी लेकर और साथ ही में अक्षत और तिल लाकर किसी शुद्ध तथा अधिक जल वाली नदी पर प्रसन्न चित्त वाले को जाना चाहिए ॥२४॥ जब निकट में कोई नदी वर्त्तमान हो तो अन्य जल से कभी स्नान नहीं करना चाहिए। अधिक जल के होने पर थोड़े से जल में भी स्नान न करे ॥२५॥ जल के प्रवाह की ओर स्थित होकर नदी में स्नान गंगा के स्नान के समान है। जब कोई भी नदी न हो तो अभाव में तालाब आदि के जल में स्नान करे ॥२६॥ पवित्र भू-भाग में जल से अभ्युक्षण करके समस्त वस्त्रों को रक्खे। मिट्टी व जल से अपने शरीर को लिप्त कर प्रक्षालन करे ॥२७॥ स्नानादि करके विद्वान् पुरुष को आचमन करना चाहिए। उसको जल के भीतर प्रवेश करके वाग्यत (मौन) होकर नियम से भगवान का स्मरण करके और मन में ध्यान करके घुटने तक जल में मज्जन करना चाहिए ॥२८॥

ततस्तीरं समासाद्य आचम्यापः समन्त्रतः।
प्रोक्षयेद्वारुणैर्मन्त्रैः पातमानीभिरेव च ॥२९
कुशाग्रकृततोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः।
स्योनापृथिवीति मृद्गात्रे इदं विष्णुरिति द्विजाः ! ॥३०
ततो नारायणं देवं संस्मरेत् प्रतिमज्जनम्।
निमज्यान्तर्जले सम्यक् क्रियते चाघमर्षणम् ॥३१
स्नात्वा क्षितितिलैस्तद्वद्देवर्षिपितृभिः सहः।
तर्पयित्वा जलं तस्मान्निष्पीड्य च समाहितः ॥३२
जलतीरं समासाद्य तत्र शुक्ले च वाससी।
परिधायोत्तरीयंच कुर्य्यात् केशान्न धूनयेत् ॥३३
न रक्तमुल्वणं वासो न नीलञ्च प्रशस्यते।
मलाक्तं गन्धहीनंच वर्जयेदम्बरं बुधः ॥३४
ततः प्रक्षालयेत् पादौ मृत्तोयेन विचक्षणः।
प्रक्षणन्तु करं कृत्वा गोकर्णाकृतिवत् पुनः ॥३५
त्रिः पिवेदीक्षितं तायमास्यं द्विः परिमार्जयेत्।
पादौ शिरस्ततोऽभ्युक्ष्य त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत् ॥३६

इसके बाद तीर पर आकर मन्त्रों द्वारा जल का आचमन करे। वरुण देव के मन्त्रों से, जो परम पावन करने वाले हैं प्रोक्षण करे ॥२६॥ कुशा के अग्र भाग में स्थित जल से प्रयत्न पूर्वक प्रोक्षण करे । हे द्विजो ! "स्योना पृथिवी" इससे मिट्टी और "इद विष्णु" इस मन्त्र से शरीर में प्रोक्षण करने का विधान करना चाहिए ॥३० ॥ इसके पश्चात् देव देव भगवान् नारायण का स्मरण प्रति मज्जन करे। जल के अन्दर निमग्न होकर अघमर्षण कृत्य करना चाहिए ॥३१ ॥ स्नान करके अक्षत और तिलों से देव-ऋषि और पितरों का तर्पण करके समाहित होकर उससे जल का निष्पीड़ित करे ॥३२॥ जलाशय के किनारे पहुँच कर शुद्ध वस्त्र धारण करे। और उतरीय धारण करके केशों का धूनन (फटकारना) नहीं करे ॥ ३३॥ वस्त्र तेज लाल तथा नीला कभी प्रशस्त नहीं होता है । बुद्धिमान पुरुष मैल से भरा हुआ तथा दुर्गन्ध युक्त वस्त्र को वर्जित कर दे ॥३४॥ विचक्षण पुरुष को फिर पैर मिट्टी और जल से धोने चाहिए। फिर गोकर्णाकृति के तुल्य दक्षिण और हाथ करके तीन बार दृष्ट जल को पीवे और दो बार मुख का मार्जन करे। पैर तथा शिर का अभ्युक्षण करके तीन बार मुख का उपस्पर्शन करे ॥३५-३६॥

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यांच चक्षुषी समुपस्पृशेत् ।
तथैव पंचभिर्मूर्द्ध्नि स्पृशेदेवं समाहितः ॥३७
अनेन विधिनाचम्य ब्राह्मणः शुद्धमानसः ।
कुर्व्वीत दर्भपाणिस्तूदङ्मुखः प्रांमुखोऽपि वा ॥३८
प्राणायामत्रयं धीमान् यथान्यायमतन्द्रितः ।
जपयज्ञं ततः कुर्य्याद्गायत्रीं वेदमातरम् ॥३९
त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य तत्त्वं निबोधत ।
वाचिकश्च उपांशुश्च मानसश्च त्रिधाकृतिः ॥४०
त्रयाणामपि यज्ञानां श्रेष्ठः स्यादुत्तरोत्तरः ॥४१
यदुच्चनीचोच्चारितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ।
मन्त्रमुच्चारयन् वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः ॥४२

अँगूठा और अनामिका अँगुलि से नेत्रों का उपस्पर्श करे । उसी प्रकार समाहित होकर पाँचों से इसी प्रकार मूर्द्धा का उपस्पर्शन करना चाहिए । इस विधि से आचमनोपस्पर्शन करके ब्राह्मण शुद्ध मन वाला होता है ॥३७-३८॥ बुद्धिमान पुरुष को यथा विधि तीन बार प्राणायाम आलस्य का त्याग कर अवश्य ही करना चाहिए । इसके पश्चात् वेदमाता गायत्री का जप करना चाहिए ॥३९-४१॥ उच्च तथा नीचे स्वरों द्वारा वाणी से उच्चारण किये गये स्पष्ट शब्द, पद और वर्ण वाले मन्त्रों का उच्चारण करना ही वाचिक जप यज्ञ होता है ॥४२॥

शनैरुच्चारयन्मन्त्रं किञ्चिदोष्ठौ प्रचालयेत् ।
किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यात् स उपांशुजपः स्मृतः ॥४३
धिया पदाक्षरश्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम् ।
शब्दार्थचिन्तनाभ्यान्तु तदुक्तं मानसं स्मृतम् ॥४४
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ।
प्रसन्ने विपुलान् गोत्रान् प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ॥४५
राक्षसाश्च पिशाचाश्च महासर्पाश्च भीषणाः ।
जपितान्नोपसर्पन्ति दूरादेव प्रयान्ति ते ॥४६
छन्द ऋष्यादि विज्ञाय जपेन्मन्त्रमतन्द्रितः ।
जपेदहरहर्ज्ञात्वा गायत्रीं मनसा द्विजः ॥४७
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ।
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते ॥४८
अथ पुष्पांजलिं भूत्वा भानवे चोर्द्ध्ववाहुकः ।
उदुत्यञ्च जपेत् सूक्तं तच्चक्षुरिति चापरम् ॥४९

धीरे-धीरे मन्त्रों का उच्चारण करते हुए कुछ-कुछ ओठों को जिसमें चलाता जावे जोकि कुछ श्रवण के योग्य हो, वह उपांशु जप कहा गया है ॥४३॥ पद और अक्षरों की श्रेणी बुद्धिस्थ हो हो और वर्ण-पद तथा अक्षर रहित हो और शब्दार्थ का चिन्तन मानस में ही रहे उसे मानस जप कहा गया है ॥४४॥ जप के द्वारा नित्य ही स्तुति किये गये देवगण

प्रसन्न होते हैं और देवगण के प्रसन्न होने पर मनीषी लोग बहुत गोत्रों की प्राप्ति किया करते हैं ।।४५।। जप करने वाले पुरुषों के पास राक्षस, पिशाच, और भीषण महा सर्प नहीं आते हैं । वे सब जापक से बहुत दूर ही जाकर रहा करते हैं । ४६।। मन्त्रों के छन्द और ऋषि आदि का ज्ञान प्राप्त करके ही निरालस्य होकर उनका जप करना चाहिए । ब्राह्मण को प्रति दिन ज्ञाति से गायत्री का जप मन से करना चाहिए ।।४७।। एक सहस्र गायत्री का प्रतिदिन जप करे । यदि इतना न हो सके तो अष्टोत्तर शत (एक माला) जाप करना चाहिए । यह जाप मध्यम श्रेणी का है और यदि यह भी न बन पावे तो कम से कम दश बार तो अन्तिम श्रेणी का जप अवश्य ही कर लेना चाहिए। जो मनुष्य प्रतिदिन नियम से गायत्री जप करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ।।४८।। ऊपर को बाहु उठाकर सूर्य के लिये पुष्पाञ्जलि देवे 'उदुत्यम्' तथा ''तच्चक्षु'' इस सूक्त को भी जपना चाहिए ।।४९।।

प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कुर्य्याद्दिवाकरम् ।
ततस्तीर्थेन देवादीनद्भिः सन्तर्पयेद्द्विजः ।।५०

स्नानवस्त्रन्तु निष्पीड्य पुनराचमनं चरेत् ।
तद्वद्भक्तजनस्येह स्नानं दानं प्रकीर्तितम् ।।५१

दर्भासीनो दर्भपाणिर्ब्रह्मयज्ञविधानतः ।
प्रांमुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्य्याच्छ्राद्धसमन्वितः ।।५२
ततोऽर्घ्यं भानवे दद्यात्तिलपुष्पाक्षतान्वितम् ।
उत्थाय मूर्द्धपर्यन्तं हंसः शुचिषदित्यृचा । ५३
ततो देवं नमस्कृत्य गृहं गच्छेत्ततः पुनः ।
विधिना पुरुषसूक्तस्य गत्वा विष्णुं समच्चर्येत् ।।५४

वैश्वदेवं ततः कुर्याद्बलिकर्मविधानतः ।
गोदोहमात्रमाकांक्षेदतिथिं प्रति वै गृही ।।५५
अदृष्टपूर्वमज्ञानमतिथिं प्राप्तमच्चर्येत् ।
स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चाम्बुना ।।५६

फिर प्रदक्षिणा के लिये भावना से चारों ओर फिर कर दिवाकर को नमस्कार करे। फिर ब्राह्मण तीर्थ जल द्वारा देवादि का तर्पण करे ॥५०॥ स्नान करने पर भीगे हुए वस्त्र का निष्पीड़न (निचोड़ना) कर फिर आचमन करना चाहिए। यहाँ इस प्रकार से भक्त जन का स्नान और दान बताया गया है ॥५१॥ कुशा के आसन पर स्थित और हाथ में कुश लेने वाला ब्रह्मयज्ञ के विधान के अनुसार पूर्व की ओर मुख कर के श्रद्धायुक्त होकर फिर ब्रह्म यज्ञ करे ॥५२॥ इसके पश्चात् सूर्य के लिये तिल–पुष्प और अक्षतों से युक्त जल का अर्घ्य देवे। अर्घ्य से उठ कर 'मूर्द्ध' पर्यन्त हंस: शुचिवत्' इस ऋचा से देना चाहिए ॥५३॥ फिर सूर्य देव को नमस्कार करके गृह को जावे। फिर पुरुष सूक्त की विधि से घर में पहुँच कर भगवान् विष्णु की अर्चना करनी चाहिए ॥५४॥ इसके पश्चात् बलि कर्म की विधि से वैश्वदेव करना चाहिए। गृहस्थ को गाय जितनी देर में दुही जाती है उतने समय तक अतिथि की प्रतीक्षा अवश्य ही करनी चाहिये ॥५५॥ जिसको पहिले कभी नहीं देखा है और न उसका परिचय एवं ज्ञान ही है ऐसे अतिथि के घर पर आ जाने पर उसका गात्रोत्थान, (उठकर) आसन एवं जल पान आदि से पूर्ण सत्कार करना चाहिए ॥५६॥

स्वागतेनाग्नयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनः।
आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराट् ॥५७

पादशौचेन पितरः प्रीतिमायान्ति दुर्लभाम्।
अन्नदानेन युक्तेन तृप्यते हि प्रजापतिः ॥५८

तस्मादतिथये कार्यं पूजनं गृहमेधिना।
भक्त्या च शक्तितो नित्यं विष्णोरर्च्चादनन्तरम्। ५९

भिक्षांच भिक्षवे दद्यात् परिव्राडब्रह्मचारिणे।
अकल्पितान्नादुद्धृत्य सव्यञ्जनसमान्वताम् ॥६०

अकृते वैश्वदेऽपि भिक्षौ च गृहमागते।
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत् ॥६१

वैश्वदेवाकृतान् दोषाञ्छक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ।
नहि भिक्षुकृतान् दोषान् वैश्वदेवो व्यपोहितुम् ॥६२
तस्मात् प्राप्ताय यतये भिक्षां दद्यात् समाहितः ।
विष्णुरेव यतिच्छाय इति निश्चत्य भावयेत् ॥६३

गृहस्थ लोगों के अतिथि के स्वागत तथा आतिथ्य करने से अग्नि सन्तुष्ट होते हैं । अतिथि को बैठने के लिए आसन देने पर देवराज इन्द्र प्रसन्न होते हैं । ५७॥ अतिथि के जब गृहस्थ चरण होता है तो पितर अत्यन्त ही प्रीति प्राप्त करते हैं । युक्त अन्न-दान से प्रजापति तृप्त होते हैं ॥५८॥ इसलिये गृहस्थ के द्वारा अतिथि का पूजन अवश्य ही होना चाहिए । भगवान् विष्णु का अर्चन के पश्चात् भक्ति और शक्ति से नित्य ही अतिथि का अर्चन करे ॥५९॥ संन्यासी ब्रह्मचारी भिक्षु के लिये अकल्पित अन्न से लेकर व्यञ्जनों से समन्वित भिक्षा देनी चाहिए ॥६०॥ बलि वैश्वदेव न किये जाने पर भी यदि घर पर कोई भिखारी महोदय पधार आवें तो वैश्वदेव के लिये लेकर भिक्षा देकर उसे विसर्जित कर देना चाहिए ॥६१॥ बलि वैश्वदेव कृत्य न करने के दोषों को समर्थ भिक्षु दूर करने की शक्ति रखता है किन्तु भिक्षु को भिक्षा न मिलने के दोषों को दूर करने की वैश्वदेव में सामर्थ्य नहीं है ॥६२॥ गृहस्थाश्रमी को सावधान होकर घर में आये हुए यतियों को भिक्षा देनी चाहिए । यति साक्षात् विष्णु का ही स्वरूप होता है ऐसी भावना का मन में निश्चय करे ॥६३॥

सुवासिनी कुमारीञ्च भोजयित्वा नरानपि ।
बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुञ्जीत वा गृही ॥६४
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषकः ।
अन्नमादौ नमस्कृत्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥६५
एवं प्राणाहुतिं कुर्यान्मन्त्रेण च पृथक् पृथक् ।
ततः स्वादुकरान्नञ्च भुञ्जीत सुसमाहितः ॥६६
आचम्य देवतामिष्टां संस्मरन्नुदरं स्पृशेत् ।
इतिहासपुराणाभ्यां कञ्चित् कालं नयेद्बुधः ॥६७

ततः सन्ध्यामुपासीतः वहिर्गत्वा विधानतः ।
कृतहोमस्तु भुञ्जीत रात्रौ चातिथिभोजनम् ॥६८
सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ।
नान्तराभोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥६६
शिष्यानध्यापयेच्चापि अनध्याये विसर्जयेत् ।
स्मृत्युक्तानखिलांश्चापि पुराणोक्तानपि द्विजः ॥७०

गृही पुरुष सबसे पूर्ण सुवासिनी कन्याओं को भोजन करावे इसके पश्चात् बालक एवं वृद्ध पुरुषों को और शेष सबको भोजन कराकर बाद में स्वयं भोजन करे ॥६४॥ पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके, मौन होकर या बहुत ही कम बोलता हुआ आरम्भ में सामने उपस्थित अन्न को नमस्कार करे फिर हृदय में परम प्रसन्न होकर मन्त्रों से अलग-अलग प्राणाहुति करके रसास्वादन करते हुए भोजन करे ॥६५-६६॥ आचमन करके अपने इष्टदेव का स्मरण करता हुआ उदर का स्पर्श करना चाहिए। बुद्धिमान् पुरुष को कुछ समय फिर इतिहास और पुराणों के अवलोकन में यापन करना चाहिए॥ ६७ ॥ इसके पश्चात् ग्राम से बाहिर जाकर विधि-विधान के साथ सन्ध्योपासन करना चाहिए। होम करके रात्रि में अतिथि को भोजन कराकर स्वयं भोजन करे ॥ ६८ ॥ सायङ्काल और प्रातःकाल दो समय ही द्विजाति जो भोजन करने का विधान श्रुति द्वारा बताया गया है। बीच में भोजन नहीं करे। भोजनकी विधि भी अग्नि-होत्र के समान बताई गई है ॥६६॥ अनध्याय के दिन छोड़ कर प्रतिदिन ब्राह्मण को अपने शिष्यों को पढाना चाहिए। स्मृति के द्वारा कहे हुए समस्त कृत्य तथा पुराणों द्वारा प्रतिपादित कृत्यों को भी ब्राह्मण को पूर्ण करना चाहिए ॥७०॥

महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि पर्वसु ।
तथाक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्विजः ॥७१
माघमासे तु सप्तम्यां रथ्याख्यायां तु वर्जयेत् ।
अध्यापनं समभ्यञ्जन् स्नानकाले च वर्जयेत् ॥७२

नीयमानं शवं दृष्ट्वा महीस्थं वा द्विजोत्तमाः ।
न पठेद्रुदितं श्रुत्वा सन्ध्यायां तु द्विजोत्तमः ॥७३
दानानि च प्रदेयानि गृहस्थेन द्विजोत्तमाः ।
हिरण्यदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ॥७४
एवं धर्मो गृहस्थस्य सायभूत उदाहृतः ।
य एव श्रद्धया कुर्यात् स याति ब्रह्मणः पदम् ॥७५
ज्ञानोत्कषश्च तस्य स्यान्नारसिंहप्रसादतः ।
तस्मान्मुक्तिमवाप्नोति ब्राह्मणो द्विजसत्तमाः ! ॥७६
एवं हि विप्राः ! कथितो मया वः समासतः शाश्वतधर्मराशिः ।
गृही गृहस्थस्य सतो हि धर्मं कुर्वन्प्रयत्नाद्धरिमेतियुक्तम् ॥७७

महाननमो, द्वादशी, भरणी नक्षत्र और पर्व के दिनों में तथा अक्षय-तृतीया में ब्राह्मण के शिष्यों का अध्यापन कार्य नहीं करना चाहिए ।७१। माघ मास में सप्तमी तिथि में, रथ्या नाम वाली में और स्नान के समय में, अभ्यञ्जन करते हुए अध्यापन का कार्य विमर्जित कर देना चाहिए ।।७२।। ले जाते हुए शव को तथा भूमि में रक्खे हुए मुर्दे को देखकर और सन्ध्या के समय किसी का रोना सुनकर ब्राह्मण को नहीं पढ़ना चाहिए ।७३।। द्विजश्रेष्ठों को नित्य ही गृहस्थाश्रम में रहते हुए दान देने चाहिए । सुवर्ण का दान, गाय का दान और पृथ्वी का दान देवे ।।७४।। इस प्रकार से गृहस्थ का धर्म सायम्भूत कहा गया है । जो ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक अपना कर्म सविधि किया करता है, वह ब्राह्मण परमपद की प्राप्ति किया करता है ।।७५।। हे द्विजोत्तमो ! नरसिंह भगवान् के प्रसाद से ही ब्राह्मण को ज्ञान का उत्कर्ष होता है । उसी से ब्राह्मण मुक्ति की प्राप्ति करता है ।।७६।। हे विप्रवृन्द ! इस प्रकार मैंने शाश्वत धर्म का समूह संक्षेप में बता दिया है । गृही जो घर में स्थित रहता है, वह घर में रहते हुए ही अपने सम्पूर्ण धर्म का पूर्णतः परिपालन करते हुए अपने धर्म के प्रयत्न से ही भगवान् को प्राप्त कर लेता है ।।७७।।

॥ अथ पंचमोऽध्यायः ॥

अथ वानप्रस्थाश्रमधर्मवर्णनम्

अतः परं प्रवक्ष्यामि वानप्रस्थस्य सत्तमाः ! ।
धर्माश्रमं महाभागाः ! कथ्यमानं निबोधत ॥१
गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन् दृष्ट्वा पलितमात्मनः ।
भार्य्यां पुत्रेषु निःनिक्षिप्य सह वा प्रविशेद्वनम् ॥२
नखरोमाणि च तथा सितगात्रत्वगादि च ।
धारयन् जुहुयादग्नि वनस्थो विधिमाश्रितः ॥३
धान्यश्च वनसम्भूतैर्नीवाद्यैरनिन्दितैः ।
शाकमूलफलैर्वापि कुर्यान्नित्यं प्रयत्नतः ॥४
त्रिकालस्नानयुक्तस्तु कुर्य्यात्तीव्रं तपस्तदा ।
पक्षान्ते वा समश्नीयान्मासान्ते वा स्वपक्वभुक् ॥५
तथा चतुर्थकाले तु भुञ्जीयादष्टमेऽथवा ।
षष्ठे च कालेऽप्यथवा वायुभक्षोऽथवा भवेत् ॥६
धर्मे पंचाग्निमध्यस्थस्तथा वर्षे निराश्रयः ।
हेमन्ते च जले स्थित्वा नयेत् कालं तपश्चरन् ॥७
एवञ्च कुर्वता येन कृतबुद्धिर्यथाक्रमम् ।
अग्नि स्वात्मनि कृत्वा तु प्रव्रजेदुत्तरां दिशम् ॥८
आदेहपात वनगो मौनमास्थाय तापसः ।
स्मरन्नतीन्द्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥९
तपो हि यः सेवति वन्यवासः समाधियुक्तः प्रयतान्तरात्मा ।
विमुक्तपापो विमलः प्रशान्तःस याति दिव्यं पुरुषपुराणम्॥१०

हे सत्तम ! इससे आगे अब वानप्रस्थ के धर्मों को बताता हूँ। हे महाभागो ! मेरे द्वारा कहे हुए आश्रम के धर्मों को भली भाँति समझलो ॥१॥ तीनों काल में स्नान से युक्त होकर तीव्र तप करना चाहिए। एक पक्ष के अन्त में भोजन करे अथवा मास के अन्त में थोड़ा-सा भोजन करे ॥ ५ ॥ चौथे समय में अथवा छठे या आठवें समय में भोजन करे

अथवा वायु मात्र का ही भक्षण करे ।।६।। घाम में पाँच अग्नियों के मध्य में स्थित रहे अर्थात् यज्ञाग्नि तपे, वर्षा ऋतु में बिना किसी का आश्रम ले कर रहे और हेमन्त ऋतु में जल के मध्य में रहकर तपश्चर्या करते हुए काल का यापन करे ।। ७ ।। इस प्रकार करते हुए यथाक्रम कृतबुद्धि होकर अपनी आत्मा में अग्नि को करके प्रव्रजित होकर उत्तर दिशा में चला जावे ।।८।। जब तक शरीर का पालन हो, वन में जा कर तथा मौन हो कर तपस्वी को रहना चाहिए । इन्द्रियों से परे ब्रह्म का स्मरण करते हुए वह लोक में महानता की प्राप्ति करता है ।।९।। जो वन का वास करता हुआ समाधि में युक्त होता हुआ प्रयत आत्मा वाला तप का सेवन किया करता है वह समस्त पापों से युक्त होकर विमल और प्रशान्त हो जाता है और वह फिर परम पुराण दिव्य पुरुष की प्राप्ति कर लेता है ।।१०।।

।। अथ षष्ठोऽध्यायः ।।

अथ संन्यासाश्रमधर्मवर्णनम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुर्थाश्रममुत्तमम् ।
श्रद्धया तदनुष्ठाय तिष्ठन्मुच्येत बन्धनात् ।।१
एवं वनाश्रमे तिष्ठन् पातयश्चैव किल्विषम् ।
चतुर्थमाश्रमं गच्छेत् संन्यासविधिना द्विजः ।।२
दत्वा पितृभ्यो देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च यत्नतः ।
दत्वा श्राद्धं पितृभ्यश्च मानुषेभ्य स्तथात्मनः ।।३
इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राङ् मुखोदङ् मुखोऽपि वा ।
अग्निं स्वात्मनि संरोप्य मन्त्रवित् प्रव्रजेत् पुनः ।।४
ततः प्रभृति पुत्रादौ स्नेहालापादि वर्जयेत् ।
बन्धूनामभयं दद्यात् सर्वभूताभयं तथा ।।५
त्रिदण्डं वैणवं सम्यक् सन्ततं समपर्वकम् ।
वेष्टितं कृष्णगोवालरज्जुमच्चतुरंगुलम् ।।६

शौचार्थं मानसार्थञ्च मुनिभिः समुदाहृतम् ।
कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतनिवारिणीम् ॥७

इसके आगे सर्वोत्तम चौथे आश्रम को बतलाता हूँ। श्रद्धापूर्वक इसका पालन करके मनुष्य साँसारिक बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥१॥ द्विजाति को इस प्रकार उक्त वानप्रस्थ धर्म का पालन करते हुए वन में निवास कर अपने समस्त पाप एवं कुत्सित कर्मों का क्षय करके फिर चौथे सन्यास आश्रम में विधिपूर्वक प्रवेश करना चाहिए ॥२॥ पितृगणों को, देवगणों को और मनुष्यों को यत्नपूर्वक श्राद्ध देवे तथा फिर अपने एवं मनुष्यों को श्राद्ध देना चाहिए। ३॥ वैश्वानरी इष्टि का सम्पादन करके पूर्व की ओर अथवा उत्तर की ओर मुख वाला होकर अपनी आत्मा में अग्नि का समारोपण करे और फिर मन्त्रवेत्ता को प्रव्रजन (संन्यास) करना चाहिए ।४। संन्यासाश्रम में प्रविष्ट होने के बाद अपने पुत्रादि के साथ स्नेह-भरा वार्तालाप करना त्याग दे। समस्त बन्धुओं को तथा समस्त प्राणियों को अभयदान करना चाहिए ॥ ५ ॥ संन्यास के आश्रम को ग्रहण करने वाले को बाँस का सम पर्वों वाला त्रिदण्ड सदा धारण करना चाहिए जो कि वेष्टित हो और कृष्ण गाय के बाल तथा रज्जु वाला चार अंगुल होना चाहिए ॥ ६ ॥ शौच के लिए तथा मानस के लिए मुनियों ने संन्यासी के लिए कोपीन, आच्छादन वस्त्र और शीत के निवारण करने वाली कन्था बतलाई है ॥७॥

पादुके चापि गृह्णीयात् कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ।
एतानि तस्य लिङ्गानि यतेः प्रोक्तानि सर्वदा ॥८
संगृह्य कृतसन्यासो गत्वा तीर्थमनुत्तमम् ।
स्नात्वाचम्य च विधिवद्वस्त्रपूतेन वारिणा ॥९
तर्पयित्वा तु देवांश्च मन्त्रवद्भास्करं नमेत् ।
आत्मनः प्राङ् मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ॥१०
गायत्रीञ्च यथाशक्ति जप्त्वा ध्यायेत् परंपदम् ।
स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ॥११

सायंकाले तु विप्राणां गृहाण्यभ्यवपद्य तु ।
सम्यक् याचेच्च कवलं दक्षिणेन करेण वै ।।१२
पात्र वामकरे स्थाप्य दक्षिणेन तु शेषयेत् ।
यावतान्नेन तृप्तिः स्यात्तावद्भैक्षं समाचरेत् ।।१३
ततो निवृत्य तत्पात्रं संस्थाप्यान्यत्र संयमी ।
चतुर्भिरंगुलैश्छाद्य ग्रासमात्रं समाहितः ।।१४

संन्यासी को दो पादुका भी ग्रहण करना चाहिए । इसके अतिरिक्त अन्य वस्तु का संग्रह न करे । ये ही उपर्युक्त चिन्ह सर्वदा यति के बतलाये गये हैं।८।। सन्यास ग्रहण कर और उक्त यति चिन्ह स्वरूप वस्तुओं का सग्रह करके सर्वोत्तम तीर्थ में जावे और वहाँ स्नान करके आचमन करे । आचमनादि विधिपूर्वक वस्त्र से, पूत जल से करना चाहिए ।। ९ ।। देवों का तर्पण करके मन्त्रपूर्वक सूर्य का नमस्कार करे । स्वयं मौन धारण करके प्राङ्मुख होकर तीन बार प्राणायाम करे।।१०।। संन्यासी होकर भी निरन्तर गायत्री का जाप करते हुए परमद का ध्यान करना चाहिए और जीवन धारण करने के लिए नित्य भिक्षा करे ।।११।। संन्यासी को सांयकाल के समय ब्राह्मणों के घर पर दक्षिण हाथ से कवल (ग्रास) करनी चाहिए ।।१२।। पात्र को बाँये हाथ में रखकर दक्षिण हाथ से अन्न ग्रास, जितने अन्न से तृप्ति हा उतना ही ग्रहण करना चाहिए ।।१३।। इसके पश्चात् निवृत होकर उस पात्र को दूसरे स्थान पर रखकर संयम वाला होते हुये चार अंगुलियों से ढक कर समाहित रहकर ग्रास मात्र रक्खे ।।१४।।

सर्वव्यञ्जन सयुक्तं पृथक् पात्रे नियोजयेत् ।
सूर्यादिभूतदेवेभ्यो दत्वा संप्रोक्ष्य वारिणा ।।१५
भुञ्जीत पात्रपुटके पात्रे वावभ्यतो यतिः ।
वटकाश्वत्थपर्णेषु कुम्भीतैन्दुकपात्रके ।।१६
कोविदारकम्बेषु न भुञ्जीयात् कदाचन ।
मलाक्ताः सर्व उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ।।१७

कांस्यभाण्डेषु यत् पाको गृहस्थस्य तथैव च ।
कांस्ये भोजयतः सर्वं किल्विषं प्राप्नुयात्तयोः ॥१८
भुक्त्वा पात्रे यतिर्नित्यं क्षालयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।
न दूष्यते च तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव ॥१९
अथाचम्य निदिध्यास्य उपतिष्ठेत भास्करम् ।
जपध्यानेतिहासैश्च दिनशेषं नयेद्बुधः ॥२०
कृतसन्ध्यस्ततो रात्रिं नयेद्देवगृहादिषु ।
हृत्पुण्डरीकनिलये ध्यायेदात्मानमव्ययम् ॥२१
यदि धर्मरतिः शान्तः सर्वभूतसमो वशी ।
प्राप्नोति परमं स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥२२
त्रिदण्डभृद्यो हि पृथक् समाचरेच्छनैः शनैर्यस्तु वहिर्मुखाधः ।
संमुच्यससारसमस्तबन्धनात्सयातिविष्णोरमृतात्मनःपदम् ॥२३

समस्त व्यंजनों से संयुक्त को अलग पात्र में नियोजित करे । सूर्य आदि देव भूतों के लिये देवे तथा जल से प्रोक्षण करे ॥१५॥ यति को पात्र पुटक में या पत्र में भोजन करना चाहिए । बड़ पीपल के पत्तों में, कुम्भी तैन्दुक पात्र में और कोविदार, कदम्ब के पत्तों में कभी भी भोजन नहीं करना चाहिए । काँसे के पात्र में भोजन करने वाले यति सब मलाक्त कहे जाते हैं ॥१६-१७॥ काँसे के पात्र में जो पाक है तथा गृहस्थ के काँसे के पात्र में भोजन कराने वाला इन दोनों को समस्त पाप लगता है ॥१८॥ यति पात्र में खाकर नित्य ही पात्र को मन्त्र पूर्वक लाक्षित करे । यज्ञ में चमस की भाँति वह पात्र दूषित नहीं होता है ॥१९॥ इसके अनन्तर आचमन करके भास्कर का निदिध्यासन करके उपस्थान करे । बुध पुरुष को जप, ध्यान और इतिहासादि के द्वारा दिन के शेष भाग का यापन करना चाहिए ॥२०॥ सन्ध्योपासन करके शेष रात्रि को किसी देवालय आदि में व्यतीत करे और अपने हृदय-कमल में नित्य सनातन आत्मा का ध्यान करे । यदि धर्म में अनुराग है और पूर्ण शान्ति है तथा समस्त प्राणियों को साम्य भाव से देखता है तो सन्यासी अवश्य ही परमपद को प्राप्त हो जाता है । जिसे प्राप्त कर पुनः इस संसार में नहीं आता

है ।।२१-२२।। जो तीन दण्ड धारण करने वाला है उसे अलग समाचरण करना चाहिए और त्रिदण्डधारी यति धीरे-धीरे साँसारिक क्रियाकलाप को तुच्छ समझ कर उससे बहिर्मुख होवे । ऐसा यति समस्त संसार के बन्धनों से मुक्त होकर मृतात्मा विष्णु के परमपद को जाता है ।।२३।।

अथ सप्तमोऽध्याय

अथ योगवर्णनम् ।

वर्णानामाश्रमाणाञ्च कथितं धर्मलक्षणम् ।
येन स्वर्गापवर्गञ्च प्राप्नुवन्ति द्विजतयः ।।१
योगशास्त्रं प्रवक्ष्यामि संक्षेपात् सारमुत्तमम् ।
यस्य च श्रवणाद्यान्ति मोक्षञ्चैव मुमुक्षवः ।।२
योगाभ्यास बलेनैव नश्येत् सर्व पातकम् ।
तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियापरः ।।३
प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम् ।
धारणाभिर्वशे कृत्वा पूर्वं दुर्धषणं मनः ।।४
एकाकारमना मन्दं बुधैरुपमलामयम् ।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं ध्यायेत् जगदाधारमुच्यते ।।५
आत्मानं वहिरन्तस्थं शुद्धचामीकरप्रभम् ।
रहस्ये कान्तमासीनो ध्यायेदामरणान्तिकम् ।।६
यत्सर्वंप्राणि हृदयं सर्वेषाञ्च हृदिस्थितम् ।
यच्च सोर्वजनैर्ज्ञेयः सोऽहमस्मीति चिन्तयेत् ।।७

अब तक वर्णों तथा आश्रमों का धर्म का लक्षण बताया गया है । जिसके द्वारा द्विजातिगण स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं ।।१।। अब संक्षेप में योगशास्त्र का उत्तम सार बतलाते हैं, जिसके श्रवण करने से मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा वाले पुरुष मोक्ष की प्राप्ति करते हैं ।।२।। योग के अभ्यास की शक्ति से समस्त पातक नष्ट होते हैं । इसलिये

नित्य योग की क्रिया में संलग्न होते हुए योगाभ्यास परायण होना चाहिए ॥३॥ प्राणाम करने से वचन को, प्रत्याहार की क्रियाओं से इन्द्रियों को और धारणा की क्रियाओं से इस दुर्धर्ष मन को वश में करना चाहिए ॥४॥ मन को एकाकार वृत्ति वाला करने वाले पुरुष को धीरे से सूक्ष्म से सूक्ष्म का ध्यान करना चाहिए। जिसको कि इस सम्पूर्ण जगत का आधार कहा जाता है ॥५॥ बिल्कुल बिल्कुल निरापद एवं शून्य स्थान में एकान्त रूप से बैठ कर शुद्ध सुवर्ण की प्रभा के तुल्य प्रभा वाले बाहिर और अन्दर स्थित आत्मा का मरण पर्यन्त ध्यान करना चाहिए ॥६॥ जो समस्त प्राणियों का हृदय है, जो सभी प्राणियों के हृदय में स्थित है और जो सबके द्वारा जानने के योग्य है, वही मैं हूँ—ऐसा सदा चिन्तन करना चाहिए ॥७॥

आत्मलाभसुखं यावत्तपोध्यानमुदीरितम्।
श्रुतिस्मृत्यादिकं धर्मं तद्विरुद्धं न चाचरत् ॥८
यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वो रथिहीनकः।
एवं तपश्च विद्या च संयुतं भैषजं भवेत् ॥९
यथान्नं मधुसंयुक्तम मधुवान्नेन संयुतम्।
उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥१०
यथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम्।
विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥११
देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति बन्धनात्।
न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते क्वचित् ॥१२
मया ते कथितः सर्व वर्णाश्रमविभागशः।
संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा ! धर्मस्तेषां सनातनः ॥१३
श्रुत्वैवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम्।
प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदिताः स्वं स्वमाश्रमम् ॥१४

जिस प्रकार अश्वहीन रथ और रथी रहित अश्व कार्योपयोगी नहीं हो सकता, उसी प्रकार केवल तप या विद्या से कोई लाभ नहीं होता। ये तप और विद्या मिल कर ही मनुष्यों के हित सम्पादन में भेषज का काम

करते हैं ।।९।। जिस प्रकार अन्न मधु से संयुक्त हो या मधु अन्न से संयुक्त हो या जिस प्रकार आकाश में पक्षियों की गति दोनों ही पंखों से होती है ।।१०।। उसी प्रकार ज्ञान और कर्म दोनों से शास्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है विद्या और तपश्चर्या दोनों से युक्त ही ब्राह्मण योग परायण होता हैं ।।११।। दोनों तरह के शरीरों का त्याग कर बन्धन से मुक्त हो जाता है । क्षीण देह वाले आत्मा का शरीर की भाँति कहीं भी कभी विनाश नहीं होता है ।।१२।। हे द्विज श्रेष्ठ ! मैंने वर्णों और आश्रमों का विभाग के साथ समस्त धर्म संक्षेप से बतला दिया है । यही उसका सर्वदा से चले आने वाला धर्म है ।।१३।। मुनिगण ने इस प्रकार स्वर्ग और मोक्ष का प्रदान करने वाला धर्म सुनकर बहुत ही प्रसन्नता प्राप्त की और मुनि को प्रणाम करके अपने आश्रमों को मुदित होकर चले गये ।।१४।।

धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुख निःसृतम् ।
अधीत्य कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ! ।।१५
ब्राह्मणस्य तु यत् कर्म कथितं बाहुजस्य च ।
ऊरुजस्यापि यत् कर्म्म कथितं पादजस्य च ।
अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ।।१६
यो यस्याभिहितो धर्मः स तु तस्य तथैव च ।
तस्मात् स्वधर्मं कुर्व्वीत द्विजो नित्यमनापदि ।।१७
वर्णाश्चत्वारो राजेन्द्र ! चत्वारश्चापि चाश्रमाः ।
स्वधर्मं ये तु तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ।।१८
स्वधर्मेण यथा नृणां नारसिंहः प्रसीदति ।
न तुष्यति यथान्येन कर्मणा मधुसूदनः ।।१९
अतः कुर्वन्निजं कर्म्म यथाकालमतन्द्रितः ।
सहस्रानीकदेवेशं नारहिञ्च सालयम् ।।२०
उत्पन्नवैराग्यबलेन योगी ध्यायेत्परं ब्रह्म सदा क्रियावान् ।
सत्यं सुखं रूपमनन्तमाद्यं विहाय देहं पदमेति विष्णोः ।।२१

इस हारीत मुनि के मुख से निकले हुए धर्मशास्त्र को सम्पूर्णतया पढ़ कर जो धर्म करता है, वह परम गति को निश्चय ही प्राप्त हो जाता है ॥१५॥ ब्राह्मण का जो कर्म है वह तथा क्षत्रिय का कर्म, वैश्य का कर्म और शूद्र का कर्म सभी मैंने कह दिया है ॥१६॥ इस बताये हुए कर्म के विपरीत जो बरतता है, वह अपनी जाति से पतित तुरन्त ही हो जाता है। जिसका जो धर्म कहा गया है उसका वही वैसा ही धर्म होता है। इसलिए द्विज को अनापत्ति—काल में नित्य ही अपना धर्म करना चाहिए ॥१७-१९॥ इसलिये यथा समय अपना धर्म तथा कर्म निरालस्य होकर करता हुआ सहस्र अनीक के देवेश नरसिंह के निवास लोक को प्राप्त होता है ॥२०॥ हृदय में उत्पन्न वैराग्य के बल से क्रिया वाला योगी सर्वदा परब्रह्म का ध्यान करे। ऐसा ध्यान करने वाला योगी इस देह का त्याग कर विष्णु के सत्य, सुख स्वरूप, अनन्त और आद्य पद को प्राप्त होता है ॥२१॥

———

शंखस्मृति

।। प्रथमोऽध्यायः ।।

अथ ब्राह्मणादीनां कर्मवर्णनम् ।।८

स्वयंभुवे नमस्कृत्य सृष्टिसंहारकारिणे ।
चातुर्वर्ण्यहितार्थाय शंखः शास्त्रमथाकरोत् ।।१
यजनं याजनं दानं तथैवाध्यापनक्रियाम् ।
प्रतिग्रहञ्चाध्ययनं विप्रः कर्माणि कारयेत् ।।२
दानमध्ययनञ्चैव यजनञ्च यथाविधि ।
क्षत्त्रियस्य तु वैश्यस्य कर्मेदं परिकीर्तितम् ।।३
क्षत्त्रियस्य विशेषेण प्रजानां परिपालनम् ।
कृषिगोरक्ष वाणिज्यं वैश्यस्य परिकीर्तितम् ।।३
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वं शिल्पानि चाप्यथ ।
क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः ।।५
ब्राह्मणः क्षत्त्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
तेषां जन्म द्वितीयन्तु विज्ञेयं मौञ्जिबन्धनम् । ६
आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः सावित्री जननी तथा ।
ब्रह्मक्षत्त्रविशाञ्चैव मौञ्जिबन्धनजन्मनि ।।७
वृत्त्या शूद्रसमास्तावद्विज्ञेयास्ते विचक्षणैः ।
यावद्वेदेन जायन्ते द्विजा ज्ञेयास्ततः परम् ।।८

सृष्टि के संहार करने वाले स्वयंभू को नमस्कार करके चारों वर्णों के हित के लिये शंख ने शास्त्र की रचना की है ।।१।। यजन, यज्ञादि कराना, दान देना, अध्यापन करना, दान लेना और अध्ययन करना ये छै कर्म विप्र को करने चाहिए ।।२।। दान देना, अध्ययन करना और विधिपूर्वक

यज्ञादि करना क्षत्रिय और वैश्य के कर्म बताये गये हैं ॥३॥ क्षत्रिय का विशेष कर्म प्रजाजन का परिपाल करना होता है ॥४॥ द्विजाति की सेवा करना और सब प्रकार के शिल्प कर्म शूद्र का कर्तव्य है। सब वर्णों का सामान्य रूप से क्षमा रखना, सत्य भाषण तथा सच्चा व्यवहार, दम और शुचिता कर्त्तव्य होता है ॥५॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन वर्ण द्विजाति कहलाते हैं। उनका दूसरा जन्म मौञ्जी बन्धन (उपनयन संस्कार) ही होता है। इसी कारण द्विज या द्विजाति पद से युक्त होते हैं ॥६॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के मौञ्जी-बन्धन नामक जन्म के आचार्य ही पिता होता है और सावित्री माता होती है। मौञ्जी-बन्धन कर्म ये ही करते हैं ॥७॥ वृत्ति से ये तीनों वर्ण शूद्र के समान ही होते हैं। विद्वान लोग जन्म मात्र से सभी को शूद्र कहते हैं। जब तक वेद का संस्कार नहीं होता है। इस संस्कार से ही द्विज कहे जाते हैं ॥८॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

ब्राह्मणादीनां संस्कारवर्णनम्

गर्भस्य स्फुटताज्ञाने निषेकः परिकीर्तितः।
तत (पुरा)स्तु स्पन्दनात् कार्यं पुंसवनं विचक्षणैः ॥१
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तो जाते वै जातकर्म च।
अशौचे तु व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते।
नामधेयञ्च कर्तव्यं वर्णानाञ्च यमाक्षरम्।
माङ्गल्यं ब्राह्मणस्योक्तं क्षत्रियस्य बलान्वितम् ॥२
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्।
शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु ॥३
धनान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं चान्त्यजन्मनः।
चतुर्थे मासि कर्त्तव्यमादित्यस्य प्रदर्शनम् ॥४

षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूड़ा कार्या यथाकुलम् ।
गर्भाष्टमेऽब्दे कर्तव्यं ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥५
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ।
षोडशाब्दस्तु विप्रस्य द्वाविंशः क्षत्त्रियस्य तु ॥६
विंशतिः सचतुष्का च वैश्यस्य परिकीर्तिता ।
नाभिभाषेत सावित्रीमत उर्ध्वं निवर्तयेत् ॥७
विज्ञातव्यास्त्रयोऽप्येते कथाकालमसंस्कृता। ।
सावित्रीपतिता व्रात्याः सर्वधर्मवहिष्कृताः ॥८
मौञ्जीबन्धो द्विजानान्तु क्रमान्मौञ्जी प्रकीर्तिताः ।
मार्गवैयाघ्रवास्तानि कर्माणि ब्रह्मचारिणाम् ।
पर्णपिप्पलबिल्वानां क्रमाद्दण्डाः प्रकीर्तिताः ।
कर्णकेशललाटैस्तु तुल्याः प्रोक्ताः क्रमेण तु ॥१०
आवक्राः सत्वचः सर्वे नाग्निदग्धास्तथैव च ।
यज्ञो(वस्त्रो)पवीतं कर्पासक्षौमोर्णानां यथाक्रमम् ॥११
आदिमध्यात्रसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् ।
भैक्षस्य वरणं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥१२

गर्भ धारण करने का स्पष्ट ज्ञान हो जाने पर निषेक बताया गया है। इसके पश्चात् जब गर्भ में स्पनन्दन होने लगे तो विद्वान पुरुषों को पुंसवन संस्कार करना चाहिए ॥१॥ छठे या आठवें मास सीमान्त करे। जब वच्चा उत्पन्न हो जावे तो जातकर्म करे। जात का शौच के निवृत्त हो जाने पर नामकरण संस्कार किया जाता है। समान वर्णों वाला नाम रखना चाहिए। ब्राह्मण का नाम मङ्गलवाचक तथा क्षत्रिय का बलसूचक होना चाहिए ॥२॥ वैश्य का नाम धन सम्पन्नता का सूचक रखना चाहिए और शूद्र का नाम जुगुप्सितार्थ सूचक होना चाहिये। ब्राह्मण के नाम के अन्त में 'शर्मा" और क्षत्रिय के नाम के आगे 'वर्मा" शब्द कहा गया है ॥३॥ वैश्य के नाम के अन्त में "धन" और शूद्र के नाम के अन्त में "दास" शब्द रखना चाहिए। समुत्पन्न बालक को चौथे मास में आदित्य के दर्शन कराने चाहिए ॥४॥ छटे मास में अन्न प्राशन करना

चाहिए। चूड़ा कर्म अपने कुल की प्रथा के अनुसार ही करना चाहिए। गर्भ स्थित से आठवें वर्ष में ब्राह्मण का उपनयन संस्कार करना चाहिए ॥५॥ गर्भ से ग्यारवें वर्ष में क्षत्रिय का और गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य का उपनयन संस्कार करावे। ब्राह्मण का अधिक से अधिक सोलह वर्ष की आयु तक, क्षत्रिय का बाईस वर्ष तक और वैश्य का चौबीस वर्ष तक हो जाना चाहिए इसके ऊपर सावित्री उपदेश का अधिकार नहीं है ॥६॥ इन तीनों वर्णों के मौञ्जी–बन्धन संस्कार का समय नियत है। निश्चित काल पर संस्कार रहित होने पर सावित्री से पतित हो कर व्रात्य हो जाते हैं और सब प्रकार के धर्म कार्यों से बहिष्कृत रहते हैं ॥८॥ मौञ्जी-बन्ध द्विजाति का होता है किन्तु तीन वर्णों की मौञ्जी क्रम से बतलाई गई है। मृग, व्याघ्र सौर वास्त की मौञ्जी ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य की ब्रह्मचारी को अवस्था में होनी चाहिए ॥९॥ इसी प्रकार क्रम से पर्ण पीपल और बेल के दण्ड बताये गये हैं। कर्ण, केश और ललाट तीनों के समान ही कहे गए हैं ॥१०॥ दण्ड सीधे, बल्कल सहित और अग्नि से अदग्ध होने चाहिए। तीनों वर्णों के यज्ञोपवीत क्रम से कपास, क्षौम तथा ऊन निर्मित होने चाहिए ॥११॥ ब्रह्मचर्यावस्था में ब्रह्मचारी जब भिक्षा माँगने जावे तो ब्राह्मण भवत् शब्द का प्रयोग आदि में क्षत्रिय मध्य में तथा वैश्य अन्त में करे ॥१२॥

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

ब्रह्मचर्याद्याचारवर्णनम्

स गुरुयः क्रिया कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति।
उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च।
भृतकाध्या को यस्तु उपाध्याय स उच्यते ॥१
माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयाः सदा नृणाम्।
क्रियास्तथाऽफलाः सर्वा यस्यैतेऽनादृतास्त्रयः।

प्रयतः कल्पमुत्थाय स्नातो हुतहुताशनः ।
कुर्वीत प्रयतोभूत्वा गुरूणामभिवादनम् ॥२
अनुज्ञातश्च गुरुणा ततोऽध्ययनमाचरेत् ।
कृत्वा ब्रह्माजलिं पश्यन गुरोर्वदनमातनः ॥३
ब्रह्मावसाने प्रारम्भे प्रणवञ्च प्रकीर्त्तयेत् ।
अनध्यायेष्वध्ययनं वर्जयेच्च प्रयत्नतः ॥४
चतुर्द्दशीं पंचदशीमष्टमीं राहुसूतकम् ।
उल्कापातं महीकम्पमाशौचं ग्रामविप्लवम् ॥५
इन्द्रप्रया (णं) गं सुरतं घनसंघातनिस्वनम् ।
वाद्यकोलाहलं युद्धमनध्यायान् विवर्जयेत् ॥६
नाधीयीताभियुक्तोऽपि प्रयत्नान्न च वेगतः ।
देवायतनवल्मीकश्मशानशवसन्निधौ ।
भैक्षचर्य्यान्तथा कुर्याद् ब्राह्मणेषु यथाविधि ॥७

वह गुरु होता है जो क्रिया करके ब्रह्मचारी को वेद का ज्ञान प्रदान करता है । गुरु शिष्य का उपनयन संस्कार कराके आदि से शुद्धि करने की शिक्षा देवे । आचार, अग्नि कार्य और सन्ध्योपासन की शिक्षा देवे । जो वेतन लेकर अध्यापन का कार्य करता है, वह भृतकाध्यापक उपाध्याय कहा जाता है ॥१॥ माता-पिता और गुरु के मनुष्यों द्वारा सर्वदा पूजनीय होते हैं । जिसके द्वारा इन तीनों का समुचित आदर नहीं किया जाता है, उनकी समस्त क्रियाऐं असफल ही होती हैं । प्रयत होकर प्रातः उठकर स्नान करे और अग्नि में हवन करे तथा इसके अनन्तर पूर्ण प्रयत होकर भक्तिपूर्वक गुरुवृन्द का अभिनन्दन करना चाहिए ॥२॥ इसके अनन्तर गुरु की आज्ञा पाकर अध्ययन का आरम्भ करे । ब्रह्मांजलि करके गुरु के मुख के सामने नत होकर बैठना चाहिए ॥३॥ ब्रह्म (वेदाध्ययन) के अन्त मे तथा प्रारम्भ में प्रणव का उच्चारण करे । जिस दिन या जिस समय अनध्याय हो तो प्रयत्न पूर्वक वेदाध्ययन वर्जित रखना चाहिए ॥४॥ चतुर्दशी, पंचदशी, अष्टमी, राहु-सूतक (ग्रहण), उल्कापात भू-कम्प, किसी मृतकादि का अशौच, ग्राम विप्लव, इन्द्र-प्रयाण, सुरत, घन

के संघात से ध्वनि, कोलाहल और युद्ध ये अनध्याय हैं। इनमें वेदाध्ययन न करे ॥५-६॥ यदि कोई अभियोग में ग्रस्त हो तो अध्ययन नहीं करे। यान में जाने वाला, नौका में बैठा हुआ और वेग-ग्रस्त अध्ययन न करे। देवायतन, बाँमी, श्मशान और शव की सन्निधि में अध्ययन नहीं करे। ब्राह्मणों में ही विधि अनुसार भिक्षा-चर्या करनी चाहिए ॥७॥

गुरुणा चाभ्यनुज्ञातः प्राश्नीयात् प्राङ्मुखः शुचिः।
हितं प्रियं गुरोः कुर्यादहङ्कारविवर्जितः ॥८
उपास्य पश्चिमां सन्ध्या पूजयित्वा हुताशनम्।
अभिवाद्य गुरुं पश्चाद् गुरोर्वचनकृद्भवेत् ॥९
गुरोः पूर्वं समुत्तिष्ठेच्छयीत चरमं तथा।
मधुमांसाञ्जनं श्राद्धं गीतं नृत्यञ्च वर्जयेत् ॥१०
हिंसापवादवादांश्च स्त्रीलीला च विशेषतः।
मेखलामजिनं दण्डं धारयेच्च प्रयत्नतः।
अधःशायी भवेन्नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ॥११
एवं कृत्यन्तु कुर्वीत वेदस्वीकरणं बुधः।
गुरवे च धनं दत्वा स्नायाच्च तदनन्तरम् ॥१२

गुरु के द्वारा अनुज्ञात ही होकर ही शुचि होकर यथा पूर्व की ओर मुख वाला होकर भोजन करे। अहङ्कार से रहित सदा गुरु का प्रिय तथा हित करना चाहिए ॥८॥ पश्चिम सन्ध्या की उपासना करके और अग्नि की पूजा करके तथा गुरु का अभिवादन करके फिर गुरु के वचन का पालन करे, जो भी गुरु आज्ञा दें वही करे ॥९॥ गुरु के उठने से पूर्व उठना चाहिए और गुरु के शयन के पश्चात् अन्त में शयन करे। मधु, मांस, अंजन लगाना, श्राद्ध में भोजन गीत गाना, नाचना या नाच देखना वर्जित करे ॥१०॥ हिंसा, अपवाद, वाद, स्त्रियों की लीला विशेष रूप से वर्जित करे। मेखला, चर्म और दण्ड प्रयत्नपूर्वक ब्रह्मचारी को धारण करना चाहिए। भूमि-शयन नित्य करे और ब्रह्मचारी को सर्वदा समाहित रहना चाहिए ॥११॥ ब्रह्मचारी को यह कृत्य करने चाहिए और

तब वेद को स्वीकार करे । ब्रह्मचर्यावस्था की समाप्ति पर गुरु को दक्षिणा देवे और तब व्रत समापन करे ।।१२।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

विवाहसंस्कारवर्णनम् ।

विन्देत विधिवद्भार्यामसमानार्षगोत्रजाम् ।
मातृतः पंचमीञ्चापि पितृतस्त्वथ सप्तमीम् ।।१
ब्राह्मो दैवस्तथैवाऽऽर्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ।।२
एते धर्मास्तु चत्वारः पूर्वं विप्रो प्रकीर्तिताः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव क्षत्रियस्य प्रशस्यते ।।३
अप्रार्थितः प्रयत्नेन ब्राह्मस्तु परिकीर्तितः ।
यज्ञेषु ऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम् ।।४
प्रार्थितः संप्रदानेन प्राजापत्यः प्रकीर्तितः ।
आसुरोद्रविणादानाद् गान्धर्वः समयान्मिथः ।।५
राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात् ।
तिस्रस्तु भार्या विप्रस्य द्वे भार्या भार्य्ये क्षत्रियस्य तु ।।६
एकैव भार्य्या वैश्यस्य तथा शूद्रस्य कीर्तिता ।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या ब्राह्मणस्य प्रकीर्तिता ।।७
क्षत्रिया चैव वैश्या च क्षत्रियस्य विधीयते ।
वैश्यैव भार्य्या वैश्यस्य शूद्रा शूद्रस्य कीर्तिता ।।८

असमान अर्थात् अपने गोत्र से भिन्न गोत्र में समुत्पन्न को विधिपूर्वक भार्या बनानी चाहिए । माता का गोत्र पाँच पुश्त तक और पिता का गोत्र सात पीढ़ी तक सपिण्ड माना जाता है । सात पुश्त तक का ही सही ध्यान रह सकता है अतः भिन्न गोत्र में ही विवाह प्रशस्त माना गया है ।।१।। ब्राह्म दैव, आर्ष, प्राजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच

ये आठ प्रकार के विवाह होते हैं, जिनमें आठवाँ विवाह तो अत्यन्त अधम होता है ॥२॥ ब्राह्मण को पहिले ही चार विवाह परिस्थिति के अनुसार करने चाहिए। गान्धर्व और राक्षस विवाह क्षत्रिय वर्ण वाला व्यक्ति कर सकता है ।३॥ प्रयत्नपूर्वक जो प्रार्थित न हो, वह ब्राह्म-विवाह कहा गया है। यज्ञ में ऋत्विज को जो कन्या दी जाती है, वह दैव विवाह होता है। दो गौ देकर जो कन्या दान की जाती है, वह आर्ष विवाह है ॥४॥ प्रार्थना करने पर कन्या का सम्प्रदान जिसमें हो, वह प्राजापत्य विवाह है। धन देकर कन्या लेवें वह असुर विवाह है। वर-कन्या दोनों ही अमुकावस्था में परस्पर रजामन्दी से विवाह कर लेवें वह गान्धर्व विवाह होता है ॥५॥ युद्ध करके कन्या का हरण कर जो विवाह किया जावे वह राक्षस विवाह तथा छल से कन्या का अपहरण जिसमें हो वह पैशाच विवाह होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णों की कन्या ब्राह्मण कर सकता है अतः विप्र की तीन भार्या तथा क्षत्रिय की दो भार्या होती हैं वैश्य और शूद्र की एक ही भार्या होती है ॥६॥ ब्राह्मण अपने वर्ण की, क्षत्रिय वर्ण की और वैश्य वर्ण की कन्या से विवाह कर सकता है। क्षत्रिय अपनी और वैश्य वर्ण की कन्या से तथा वैश्य और शूद्र अपने ही वर्ण की कन्या से विवाह करें ॥७-८॥

आपद्यपि न कर्तव्या शूद्रा भार्य्या द्विजन्मना।
तस्यां तस्य प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥९
तपस्वी यशशीलश्च सर्व धर्मभृतां वरः।
ध्रुवं शूद्रत्वमाप्नोति शूद्रश्राद्धे त्रयोदशे ॥१०
नीयते तु सपिण्डत्वं येषां श्राद्धं कुलोद्गतम्।
सर्वे शूद्रस्यमायान्ति यदि स्वर्गजितास्तु ते ॥११
सपिण्डीकरण कार्यं कुलजस्य तथा ध्रुवम्।
श्राद्धं द्वादशकं कृत्वा श्राद्धे प्राप्ते त्रयोदशे ॥१२
सपिण्डी करणे चार्हे न च शूद्रस्तथार्हति।
तस्माद् सर्वप्रयत्नेन शूद्रां भार्य्या विवर्जयेत् ॥१३

पाणिग्राह्यः सवर्णासु गृहणीयात् क्षत्रिया शरम् ।
वैश्या प्रतोमादद्याद्वेदने त्वग्रजन्मनः ।।१४

सा भार्य्या या वहेदग्नि ता भार्य्या या पतिव्रता ।
सा भार्य्या या पतिप्राणा सा भार्य्या या प्रजावती ।।१५

लालनीया सदा भार्य्या ताड़नीया तथैव च ।
लालिता ताड़िता चैव स्त्री श्रीर्भवति नान्यथा ।।१६

द्विजन्मा को आपत्ति काल में भी शूद्र वर्ण की भार्या नहीं करनी चाहिए । उसमें प्रसूत को कोई भी निष्कृति नहीं होती है ।।९।। यज्ञ करने के स्वभाव वाला, तपस्वी और धर्म वाले पुरुषों में श्रेष्ठ भी शीघ्र ही शूद्रता को प्राप्त कर लेता है, यदि वह शूद्र के श्राद्ध तथा त्रयोदशी में भोजन कर लेता है ।।१०।। जिनका कुलोद्गत श्राद्ध होता है वे सपिण्डता को प्राप्त होते हैं। चाहे वे स्वर्ग को जीतने के भी अधिकारी क्यों न हो सब शूद्रत्व को प्राप्त हो जाते हैं ।।११।। कुल-जन्मा को अवश्य ही सपिण्डीकरण करना चाहिए । बारह श्राद्ध करके त्रयोदश प्राप्त होने पर सपिण्डीकरण की अर्हता होती है, किन्तु उसमें शूद्र योग्य नहीं होता है । इसलिए पूर्ण प्रयत्न के साथ शूद्रा भार्या का निषेध करे । १२-१३।। यदि सवर्णा भार्या हो तो उसका हाथ (पाणि) ग्रहण करना चाहिए । क्षत्रिया शर को ग्रहण करे और वैश्या प्रतोद को ग्रहण करे, यदि अग्र-जन्मा के साथ विवाह किया जावे ।।१४।। वही वस्तुतः भार्या है जो घर की रक्षा करे या अग्नि का हवन करे, वह भार्या है जो पतिव्रता है, वह भार्या होती है, जो पति को प्राण के समान समझे और वही भार्या है जो सन्तति वाली हो ।।१५।। भार्या के ऊपर सर्वदा लाड़ करना चाहिए और उसी प्रकार ताड़न भी करना चाहिए । इस प्रकार ललिता एवं ताड़िता स्त्री लक्ष्मी का स्वरूप धारण करती है अन्यथा नहीं ।।१६।।

———

अथ पंचमोध्याय:

पंचमाहयज्ञाः गृहाश्रमिणांप्रशंसा–अतिथिवर्णनम् ।

पंचसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कण्डनी चोदकुम्भश्च तस्य पापस्य शान्तये ।।१
पंचयज्ञविधानञ्च गृही नित्यं न हापयेत् ।
पंचयज्ञविधानेन तत्पापं तस्य नश्यति ।
देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च ।
ब्रह्मयज्ञो नृयज्ञश्च पंच यज्ञाः प्रकीर्तिताः ।।३
होमो दैवोवलिर्भौतः पित्र्यः पिण्डक्रियास्मृतः ।
स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञश्च नृयज्ञोऽतिथि पूजनम् ।।४
वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजः ।
गृहस्थस्य प्रसादेन जीवन्त्येते प्रथाविधि ।।५
गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः ।
दाता चैव गृहस्थः स्यात्तास्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी । ६
यथा भर्ता प्रभु स्त्रीणां वर्णानां ब्राह्मणो यथा ।
अतिथिस्तद्वदेवास्य गृहस्थस्य प्रभुः स्मृतः ।।७

गृहस्थ के पाँच मारने के (पाप के) स्नान हैं, चुल्ही, पेषणी उपस्कर, कण्डनी और उदकुम्भ । इनसे होने वाले पाप की शान्ति के लिये गृही को पाँच यज्ञों का विधान होता है जिस वह प्रतिदिन के पापों की शान्ति कर शुद्ध हो जावे । रोज पंचयज्ञ करने से उक्त पाँचों पाप शान्त हो जाता है ।।१-२।। गृहस्थ को देव यज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, और नृयज्ञ, ये पाँच यज्ञ प्रतिदिन करने चाहिए । इनसे गृहस्थियों में जो भी कोई दैनिक पाप बन जाते हैं वे नष्ट हो जाते हैं ।।२-३।। नित्य होम ही दैवयज्ञ है, बलि वैश्वेदेव करना भूतयज्ञ होता है, पितृगणों को तर्पण, पिण्डक्रिया पितृयज्ञ वेद का स्वाध्याय करना ब्रह्मयज्ञ और अतिथि सत्कार करना नृतज्ञ होता है ।।४।। वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और यति अर्थात् संन्यासी तीनों आश्रमों में स्थिर पुरुष केवल गृहस्थाश्रमी पुरुष के प्रसाद से

हो अपना-अपना यथाविधि जीवन यापन किया करते हैं ॥५॥ वस्तुतः गृहस्थाश्रमी ही यजन, तप प्रौर दान करता है, क्योंकि गार्हस्थ्य के पूर्ण प्रतिपालन करने ही से अन्य आश्रम चलते हैं, अतः गार्हस्थ्य सर्वश्रेष्ठ आश्रय होता है ॥६॥ जिस प्रकार स्त्रियों का भरणकर्त्ता स्वामी पुरुष होता है, ब्राह्मण अन्य तीनों वर्णों का स्वामो माना जाता है, वैसे ही गृहस्थाश्रमी का स्वामो उसका अतिथि होता है । अतः आतिथ्य कर्म का महान् महत्व होता है ॥७॥

न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च ।
नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पति पूजयात् ॥८
न स्नानेन न होमेन नैवाग्नि तर्पणात् ।
ब्रह्मचारी दिव याति स याति गुरुपूजनात् ॥९
नाग्नि शुश्रषया क्षान्त्या स्नानेन विविधेन च ।
वानप्रस्थो दिवं याति याति भोजनवर्जनात् ॥१०
न भैक्षैनं च मानेन शून्यागाराश्रयेण च ।
योगी सिद्धमवाप्नोनि यथा मैथुनवर्जनात् ॥११
न यज्ञैर्दक्षिणाभिश्च वह्निशुश्रूषया न च ।
गृही स्वर्गमवाप्नोति तथा चातिथिपूजनात् ॥१२
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गृहस्थोऽतिथिमागतम् ।
आहारशयनाद्येन विधिवत् परिपूजयेत् ॥१३
सायं प्रातश्च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ।
दर्शश्च पौर्णमासश्च जुहुयाच्च यथावि ध ॥१४

नारी व्रतोपवासादि विविध प्रकार के अन्य धर्मों के प्रति पालन करने से स्वर्ग प्राप्ति नहीं कर सकती, जैसा कि केवल अपने पति की पूजा उपासना करने से ॥८॥ स्नान, होम, अग्नि परिचर्यादि कर्मों से ब्रह्मचर्य में रहने वाला ब्रह्मचारी सद्गति प्राप्त नहीं करता है, वह सबमें मुख्य अपने गुरु के पूजन से ही स्वर्ग प्राप्त करता है ॥९॥ वानप्रस्थ केवल भोजन त्याग को विधि का पालन करने से हो स्वर्ग का अधिकारी होतो

है न कि अग्नि–सेवा, शान्ति और विविध स्नानादि से स्वर्ग प्राप्त करता है ।।१०।। योगी (संन्यासी) भिक्षा, दण्ड धारण, मौन व्रत और नितान्त एकान्त में निवासादि के पालन से सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता है, जैसा कि अपने उत्तम योग और स्त्री–त्याग से वह सिद्धि प्राप्त करता है ।।११।। गृहस्थ भी उसी भाँति यज्ञ, वह्नि सेवन, दक्षिणादि से स्वर्ग-प्राप्ति न कर केवल अतिथि पूजन से ही स्वर्ग प्राप्त करने का अधिकारी होता है ।।१२।। अतएव सब प्रयत्नों से गृहस्थ का घर पर आये हुए अतिथि का भोजन-शयनादि से विधिवत् भली भाँति पूजन करना चाहिए ।।१३।। गृहाश्रमी को सायङ्काल और प्रातःकाल विधिपूर्वक अग्निहोत्र करना चाहिए। दर्श तथा पौर्णमास भी यथाविधि करना चाहिए ।।१४।।

यज्ञैर्वा पशुबन्धैश्च मातुर्मास्यैस्तथैव च ।
त्रैवार्षिकाधिकान्नेन पिबेत् सोममतन्द्रितः ।।१५

इष्टिं वैश्वानरीं कुर्य्यात्तथा चाल्पधनो द्विजः ।
न भिक्षेत धनं शूद्रात् सर्व्वं दद्यादभीप्सितम् ।।१६

वृत्तिन्तु न त्यजेद्विद्वानृत्विज पूर्वमेव तु ।
कर्मणा जन्मना शुद्धं विद्यात् पात्र वलीततम् ।।१७
एतरेव गुणैर्युक्तं धर्मार्जितधनं तथा ।
याजयेत्तु सदा विप्रो ग्राह्यस्तस्मात् प्रतिग्रहः ।।१८

पशुबन्ध यज्ञों का यजन करे तथा चातुर्मास्य भी करे और त्रैवार्षिक से अधिक अन्न से अतन्द्रित होकर सोम पान करे ।।१५।। स्वल्प धन वाला भी द्विज वैश्वानर को इष्टि (यजन) करे और शूद्र से कभी भी याचना नहीं करनी चाहिए, चाहे अपना सभी कुछ दान में दे देवे ।।१६।। विद्वान् को अपनी वृत्ति का कभी त्याग नहीं करना चाहिए। सबसे प्रथम वह ऋत्विज धर्म का पालन करे, कर्म और जन्म दोनों से जो शुद्ध हो उसी सत्पात्र का वरण करना चाहिए ।।१७।। इन्हीं उक्त गुणों से युक्त धर्मपूर्वक कमाया हुआ धन श्रेष्ठ होता है। ब्राह्मण को सदा

यजन कर्म करना चाहिए और ऐसे ही धन का प्रतिग्रह भी स्वीकार करना चाहिए ॥१८॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

अथवानप्रस्थधर्मनिरूपणसंन्यासधमप्रकरणञ्च ।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदाऽरण्यं समाश्रयेत् ॥१
पुत्रेषु वारान्निक्षिप्य तया वाऽनुगतो वनम् ।
अग्नीनुपचरेन्नित्यं वन्यमाहारमाहरेत् ॥२
यदाहारोभवेत्तेन पूजयेत् पितृदेवताः ।
तेनैव पूजयेन्नित्यमतिथिं समुपागतम् ॥३
ग्रामाद् हृत्य चाश्नीयादष्टौ ग्रासान् समाहितः ।
स्वाध्यायञ्च सदा कुर्य्याज्जटाश्च विभृयात्तथा ॥४
तपसा शोषयेन्नित्यं स्वयञ्चैव कलेवरम् ।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते ग्रीष्मे पञ्चतपास्तथा ॥५
प्रावृष्याकशशायी स्यान्नक्ताशी च सदा भवेत् ।
चतुर्थकालिको वास्यात् स्यात्षष्टकालिक एव वा ।६
कृच्छ्रैर्वाऽपि नयेत् काल ब्रह्मचर्य्यञ्च पालयेत् ।
एवं नीत्वा वने कालं द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ।७

गृहस्थ जब अपने आपको बलि पलित देखे और पुत्र के भी पुत्रोत्पत्ति हो जावे तो उसे घर त्याग कर वन का आश्रय लेना चाहिए ॥ १ ॥ अपनी भार्याओं को पुत्रों के सुपुर्द करदे अथवा अपने साथ में ले लेवे । नित्य प्रति अग्निहोत्रादि और वन्य फल मूलादि का आहार करे ॥२॥ जो भी कुछ आहार करे उसी से पितृवृन्द और देवों का पूजन करना चाहिए तथा उसी से अपने यहाँ आए हुए अतिथि का सत्कार एवं आतिथ्य करे ॥३॥ ग्राम से भिक्षाचर्या करके लावे और समाहित होकर आठ

ग्रास खावे। नित्य स्वाध्याय करे और मस्तक पर जटा धारण करे ॥४॥ तत्पश्चर्या करे और उससे स्वयं अपने शरीर का शोषण करे। हेमन्त ऋतु में गीले वस्त्र धारण करे और ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि करे ॥५॥ वर्षा ऋतु में खुले आकाश में शयन करे और सर्वदा रात्रि में भोजन करे। चौथे समय में भोजन करने वाला अथवा छठे काल वाला बने ॥६॥ कृच्छ्र व्रतों में अपना समय यापन करे और ब्रह्मचर्य का पालन करे। इस प्रकार वन में समय निकाल कर द्विज को ब्रह्माश्रमी होना चाहिए ॥७॥

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथप्राणायामलक्षणं धारणध्यानयोगनिरूपणवर्णनम् ।

कृत्वेष्टिं विधिवत् पश्चात् सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥१
विधूमे न्यस्तमुसले व्यङ्गारे भुक्तवजने ।
अतीते पात्रसम्पाते नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत् ॥२
सप्तागाराश्चरेद्भैक्ष्यं भिक्षितं नानुभिक्षयेत् ।
न व्यथेत तथाऽलाभे यथा लब्धेन वर्तयेत् ।
नाऽऽस्वादयेत्तथैवान्नं नाश्नीयात् कस्यचिद्गृहे ॥३
मृण्मयालावुपात्राणि यतीनान्तु विनिर्दिशेत् ।
तेषां सम्मार्जनाच्छुद्धिरद्भिश्चैव प्रकीर्तिता ॥४
कौपीनाच्छादनं वासो विभृयादसखश्चरन् ।
शून्यागारनिकेतः स्याद्यत्र सायं गृहो मुनिः ॥५
दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिवेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ॥६
चन्दनैर्लिप्यतेऽङ्गं वा भस्मचूर्णैर्विगर्हितैः ।
कल्याणमप्यकल्याणं तयोरेव न संश्रयेत् ॥७

फिर समस्त वेद और दक्षिणा से युक्त इष्टि (याग) को विधिपूर्वक करके और आत्मा में अग्नियों का समारोपण करके द्विज ब्रह्माश्रमी होता

है ।।१।। यति के भिक्षा का नियम यह है कि जब घर चूल्हे की धुआँ से रहित हो जावे, अग्नि शान्त हो जावे, मुसल से कूटने का काम समाप्त हो जावे और घर में आना-जाना बन्द हो जावे तब यति गृहस्थो के यहाँ जाकर नित्य भिक्षा करे ।।२।। यदि को सम संख्या युक्ता घरों में जाकर भिक्षा लेना चाहिए। भिक्षा व्यथित न होवे और जितना भी प्राप्त हो उसी में निर्वाह कर लेवे ।।३।। संन्यासी को भिक्षा से प्राप्त अन्न का आस्वाद नहीं लेना चाहिए और किसी के भी घर पर बैठकर भक्षण नहीं करे। यति को या तो मिट्टी का पात्र काम में लेना चाहिए या तूँबी पात्र का व्यवहार करे। इन की शुद्धि मांजने और जल से ही हो जाती है ।।४।। यति को लज्जा निवारण के लिए केवल एक कोपीन के रूप में वस्त्र धारण करना चाहिए और किसी से भी लगाव न रखते हुए निर्द्वन्द्व होकर विचरण करे। किसी शून्य स्थान में जहाँ भी सन्ध्या हो जावे रह जावे ।।५।। नेत्रों से देखकर आगे की ओर पैर रक्खे, वस्त्र से छान कर सर्वदा जल पीवे, सत्यवाणी बोले और मन में विवेक बुद्धि से जो से जो भी भला जंचे वही करे। यही यति को सदा करना चाहिए ।।६।। यति को कभी इस बात का विचार नहीं करना चाहिए कि शरीर में चंदन से कल्याण होता है ।।७।।

सर्वभूतहितो मैत्रः समलोष्ट्राश्मकाञ्चनः।
ध्यानयोगरतो नित्यं भिक्षुर्यायात् परां गतिम् ।।८
जन्मना यस्तु निर्विणो मन्यते च तथैव च।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।।९

अशुचित्वं शरीरस्य प्रियस्य च विपर्य्ययः।
गर्भवासे च वसतिस्तस्मान्मुच्येत नान्यथा ।।१०
जगदेतन्निराक्रन्दं नतु सारमनर्थकम्।
भोक्तव्यमिति निर्विणो मुच्यते नात्र संशयः ।।११

प्राणायामैदहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्।
प्रत्याहारैरसत्सङ्गान् ध्यानेयानैश्वरान् गुणान् ।।१२

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
त्रिःपठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥१३
मनसः संयमस्तज्ज्ञैर्धारणेति निगद्यते ।
संहारश्चेन्द्रियाणाञ्च प्रत्याहारः प्रकीर्तितः ॥१४

संयासाश्रमी यति प्राणी मात्र से प्रेम करे और सुवर्ण तथा मिट्टी के ढेले को समान भाव से देखे । सदा ध्यान योग में संलग्न रहने वाला ही यति परमगति को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ जो जन्म से ही आधि (मानस व्याधि) और रोगादि से मरण पर्यन्त विरक्त रहे देवता उसी को ब्राह्मण कहते हैं ॥९॥ शरीर की अशुचिता और प्रिय वस्तुओं से अनुराग न करने से गर्भवास से मनुष्य की मुक्ति होती है अन्य किसी भी प्रकार से नहीं ॥१०॥ यह जगत रक्षा हीन है, इसमें कुछ भी नहीं है, यहाँ का सभी कुछ व्यर्थ है ? यहाँ भोग के लिए जीवात्मा आता है सो उसे भोगना ही होगा—इस प्रकार का हृदय में जिसको निर्वेद होता है वह इससे छुटकारा अवश्य ही पा जाता है इसमें सन्देह नहीं है ।११। प्राणायामों द्वारा यति को दोषों को जला देना चाहिए, धारणाओं द्वारा पापों को नष्ट कर देवे, प्रत्याहार द्वारा बुरों के सङ्ग दोषों का नाश करे और ध्यान योग से ईश्वर से भिन्न गुणों का विनाश करना चाहिए । ॥ १२ ॥ प्राण वायु को सविधि ब्रह्माण्ड में चढ़ाकर अर्थात् श्वासों को खींचकर व्याहृतियों और प्रणव से सहित वेदमाता गायत्री को आरम्भ से सादर तीन बार पढ़ने ही को प्राणायाम कहते हैं ॥१३॥ भोग के वेत्ता लोग मन के संयम करने ही को धारणा कहते हैं । विषयों से इन्द्रियों को हटा लेने का ही नाम प्रत्याहार होता है ॥१४॥

हृदयस्थस्य योगेन देवदेवस्य दर्शनम् ।
ध्यानं प्रोक्तं प्रवक्षामि सर्वस्माद्योगतः शुभम् ॥१५
हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।
हृदि ज्योतींषि भूयश्च हृदि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।१६
स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवञ्चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासात्तु विष्णुं पश्येद्धृदिस्थितम् ॥१७

हृद्यर्कश्चन्द्रमाः सूर्य्यः सोमा मध्ये हुताशनः ।
तेजोमध्ये स्थितं तत्त्वं तत्त्वमध्ये स्थितोऽच्युतः ॥१८
अणोरणीयान् महतो महीया नात्मास्य जन्तोर्न्निहितो गुहायाम् ।
तेजोमयं पश्यति वीतशोकोधातुःप्रसादान्महिमानमात्मनः॥१६
वासुदेवस्तमोऽन्धानां प्रत्यक्षो नैव जायते ।
अज्ञानपटटसवीतैरिन्द्रियैर्विषयेप्सुभिः ॥२०
एष वै पुरुषौविष्णुर्व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ।
एव धाता विधाता च पुराणोनिष्कलः शिवः ॥२१

योग की विधि से सबलता प्राप्त कर हृदय में स्थित अन्तर्यामी प्रभु का दर्शन कर लेने ही को ध्यान कहते हैं। इन्द्रियों की बहिर्मुखी वृत्ति को बदल कर अन्तर्मुखी वृत्ति करने ही पर ध्यान होता है ॥१५॥ हृदय में समस्त देव विराजते हैं, हृदय में प्राण प्रतिष्ठत है, हृदय में समस्त ज्योतियाँ (ग्रहादिक) है और हृदय में सभी कुछ विद्यमान है ॥१६॥ अपने देह को अरनी बनाले और प्रणव को दूसरी एक अरनी को डाल बनाले फिर ध्यान रूपी निर्मथन करे तो हृदय में स्थित विष्णु को देख लेता है। तात्पर्य यह है कि जैसे ही अरनी की लकड़ियों के मन्थन से अग्नि प्रत्यक्ष होती है उसी तरह हृदय प्रणव रूपी अरनी के ध्यान रूपी मन्थन से विष्णु प्रत्यक्ष हाते हैं ॥१७॥ हृदय में चन्द्र और सूय हैं तथा मध्य में अग्नि है। तेज के मध्य में तत्त्व की स्थति रहती है और उस तत्व में अच्युत भगवान् स्थित हैं ॥१८॥ इस जन्तु का यह आत्मा छोटे से भी छोटा बड़े से भी बड़ा है जो कि गुहा में निहित है। शोकादि रहित ही इस आत्मा की तेजोमय महिमा को धाता की कृपा से देख पाता है ॥१६॥ विषयों की चाह रखने वाली अतएव अज्ञान रूपी वस्त्र से ढकी हुई इन्द्रियों के तमान्ध पुरुषों को भगवान् वसुदेव का प्रत्यक्ष नहीं होंताहै ॥२०॥ यही पुरातन पुरुषविष्णु है जो व्यक्त, अव्यक्त और सनातन है। यहा धाता, विधाता और पुराण प्रतिपादित शिव है ॥२१॥

वेदाहमेतं पुरुष महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
मन्त्रैर्विदित्वा न विभेति मृत्योर्नान्यःपन्थाः विद्य तेऽनयनाय॥

पृथिव्यापस्तथा तेजोवायुराकाशमेव च ।
पञ्चेमानि विजानीयान्महाभूतानि पण्डितः ॥२३
चक्षुः श्रोत्रे स्पर्शनञ्च रसना घ्राणमेव च ।
बुद्धीन्द्रियाणि जानीयात् पञ्च मानि शरीरके ॥२४
शब्दो रूपं तथा स्पर्शो रसा गन्धस्तथैव च ।
इन्द्रियस्थान् विजानीयात् पञ्चैव विषयान् बुधः ॥२५
हस्तौ पादावुपस्थञ्च जिह्वा पायुस्तथैव च ।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव नित्य सति शरीरके ॥२६
मनो बुद्धिस्तथ वाऽऽत्मा व्यक्ताव्यक्तं तथैव च ।
इन्द्रियेभ्यः पराणीह चत्वारि प्रवराणि च ।२७
चतुर्विंशत्यथैतानि तत्त्वानि कथितानि च ।
तथाऽऽत्मानं तद्व्यतीतं पुरुषं पञ्चविंशकम् ।
तन्तु ज्ञात्वा विमुच्यन्ते ये जनाः साधुवृत्तयः ॥२८
इदन्तु परमं शुद्ध मेतदक्षरमुत्तमम् ।
अशब्दरसमस्पर्शमरूपं गन्धवर्जितम् ॥२९
निर्दुःखमसुखं शुद्धं तद्विष्णोः परमं पदम् ।
अजं निरञ्जनं शान्तमव्यक्तं ध्रुवमक्षरम् ।
अनादिनिधनं ब्रह्म तद्विष्णोः परम पदम् ।
विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहबन्धनः ॥३०
सोऽध्वमः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ।
बालाग्रशतशो भागः कल्पितस्तु सहस्रधा ॥३१
तस्यापि शतशा भागाज्जीवः सूक्ष्म उदाहृतः ॥ ३२
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धे रात्मा तथा परः ॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ॥३३
एषु सर्वेषु भूतेषु तिष्ठत्यविरलः सदा
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः । ४

तम से परे, महान् और सूर्य के समान तेज वाले इस पुरुष को मैं जानता हूँ। मन्त्रों के द्वारा इसे जानकर मृत्यु से भय नहीं रहता है। इसके अतिरिक्त इसको प्राप्त करने का अन्य कोई भी मार्ग नहीं है ॥२२॥ पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच महाभूतों को पण्डित को जान लेना चाहिए ॥२३॥ नेत्र, कान, त्वक् रसना और घ्राण ये पाँच शरीर में बुद्धिन्द्रिय होती हैं भी जान लेना चाहिए ॥२४॥ शब्द, रूप, स्पर्श, रस और गन्ध ये पाँच इन्द्रियों में रहने वाले विषय हैं जिनका ज्ञान भी पण्डित को कर लेना चाहिए ॥२५॥ हाथ पाद उपस्थ, जिव्हा और पायु ये पाँच इस शरीर में कर्मेन्द्रियाँ होती हैं ॥२६॥ मन, बुद्धि, आत्मा और व्याक्ताव्यक्त ये चार श्रेष्ठ हैं और उक्त इन्द्रियों से परे हैं। इस प्रकार चौबीस तत्व कहे गये हैं। आत्मा और उससे भी आगे पुरुष पच्चीसवाँ है। उसे जानकर साधु वृत्ति वाले पुरुष विमुक्ति प्राप्त करते हैं ॥२७-२८॥ यह परम शुद्ध नाश रहित, उत्तम और शब्द, रस, स्पर्श, गन्ध और रूप रहित है ॥२९॥ वह विष्णु भगवान् का पद दुःख और सुख दोनों से रहित, अज, निरञ्जन, शान्त, अव्यक्त, ध्रुव और क्षर रहित है। यह अनादि, अन्तशुन्य ब्रह्म ही उस विष्णु को परम पद (स्थान) है जिसका विज्ञान सारथि है और मन प्रग्रह स्वरूप बन्धन है ॥३०॥ विज्ञान को सारथि बनाकर मन को प्रग्रह बना ले वही पुरुष उस विष्णु से परम पद के मार्ग का पार प्राप्त करता है। बाल के अग्रभाग का सौवाँ भाग जो कि हजारों प्रकार का कल्पित है ॥३१॥ उसका भी सौवाँ भाग से सूक्ष्म जीव बताया गया है ॥३२॥ इन्द्रियों से परे अर्थ हैं और अर्थों से परे मन है। मन से भी परे बुद्धि है और बुद्धि से भी परे आत्मा है। महत्तत्व से परे अव्यक्त है और अव्यक्त (प्रकृति से परे पुरुष है। पुरुष से परे कुछ भी नहीं है। वही पराकाष्ठा है और वहं परागति है ॥३३॥ इन समस्त प्राणियों में अविरल रूप से सर्वदा यह रहता है। सूक्ष्मदर्शियों के द्वारा परम सूक्ष्म और तीक्ष्ण बुद्धि से यह देखा जाता है ॥३४॥

।। अष्टमोऽध्याय ।।

अथनित्यनैमित्तिकादिस्नानानां लक्षणवर्णनम् ।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ।
क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम् ।।१
अस्नातः पुनरानर्हो जप्याग्निहवनादिषु ।
प्रातःस्नानं तदर्थं च नित्यस्नान प्रकीर्तितम् ।।२
चाण्डालशवयूपाद्यं स्पृष्ट्वा स्नानं रजस्वलाम् ।
स्नानातर्हस्तु यः स्नाति स्नानं नैमित्तिकंचतत् ।।३
पुष्यस्नादिकं स्नानं दैवज्ञविधिचोदितम् ।
तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ।।४
जप्तुकामः पवित्राणि अर्चिष्यन्देवताः पितॄन् ।
स्नानं समाचरेद्यस्तु क्रियाङ्गं तत्प्रकीर्तितम् ।।५
मलापकर्षणार्थं तु स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ।
मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तस्य नान्यथा ।।६
सरित्सु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ।
क्रियास्नानं समुद्दिष्टं स्नानं तत्र महाक्रिया ।।७

स्नान छै प्रकार का होता है जैसे—नित्य नैमित्तिक, इच्छापूर्वक जब भी चाहा, क्रिया का अंग स्वरूप, शरीर के मल को हटाने वाला, क्रिया स्वरूप—ये ही उसके छै नाम है ।।१।। स्नान के बिना नित्य जप, हवनादि कर्म नहीं होते हैं अतः उसके सम्पादन के लिये जो प्रातःकाल में स्नान किया जाता है वह नित्य स्नान कहलाता है ।।२।। चाण्डाल, मुर्दा, यूपादि तथा रजस्वला स्त्री को स्पर्श करने पर स्नान के योग्य न होने पर भी शुद्धि के निमित्त ही अनावश्यक भी जो स्नान किया जाता है उसी को नैमित्तिक स्नान कहा जाता है ।।३।। पुष्प नक्षत्रादि के योग में ज्योतिष शास्त्र द्वारा कामना पूरक प्रतिपादित जो स्नान किया जाता है वही काम्य स्नान है । जिसके मन में कुछ भी कामना न हो

उसे नहीं करे ॥४॥ मन्त्र जप करने की इच्छा वाला पवित्र होने के लिये अथवा देवोपासना के वास्ते और पितृगण के श्राद्धादि कर्म के अवसर पर जो स्नान किया जाता है वह क्रियांग स्नान होता है ॥५॥ केवल शरीर की सफाई के लिये उबटन आदि पूर्वक शारीरिक मल को छुड़ाने ही के लिये जो स्नान की प्रवृत्ति होती है अन्य किसी कारण से नहीं वह मलापकर्षण स्नान होता है ॥६॥ नदियों में, तालाबों में, तीर्थों में तथा सरोवरों में महान पुण्योपार्जन के लिये विधि सहित जो स्नान किया जाता है वह क्रिया-स्नान के नाम से प्रसिद्ध है ॥७॥

तत्र काम्यं तु कर्तव्यं यथावद्विधिचोदितम् ।
नित्यं नैमित्तिकं चैव क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ॥८
तीर्थाभावे तु वह्नितप्तेन परवारिणा ॥९
शरीरशुद्धिर्विज्ञेया न तु स्नानफलं लभेत् ।
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति तीर्थस्नानात्फलं लभेत् ॥१०
सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ।
स्नानमेव क्रिया तस्मात्स्नानात्पुण्यफलं स्मृतम् ॥११
तीर्थं प्राप्यानुषङ्गेण स्नानं तीर्थे समाचरेत् ।
स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राफलं न तु ॥१२
सर्वतीर्थानि पुण्यानि पापघ्नानि सदा नृणाम् ।
परस्परानुपेक्षाणि कथितानि मनीषिभिः ॥१३
सर्वे प्रस्रवणाः पुण्याः सरांसि च शिलोच्चयाः ।
नद्यः पुण्यास्तथा सर्वा जाह्नवी तु विशेषतः ॥१४
यस्य पादौ च हस्तौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥१५
नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् ।
यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ॥१६

काम्य कर्म की जिस प्रकार शास्त्र विधि बतलाया है उसी तरह उसे करना चाहिए। नित्य और नैमित्तिक कर्म भी मल कर्षण के लिये करना

एक क्रिया का अङ्ग होता है ॥८॥ यदि तीर्थ कोई न हो तो उसके अभाव में वह्नि से तप्त या परिवार से स्नान करना चाहिए ॥९॥ इस तरह के स्नान से शरीर की शुद्धि ही होती है किन्तु स्नान का फल प्राप्त नहीं होता है क्योंकि जल से शरीर शुद्ध हो जाते हैं, वास्तविक स्नान का फल तो तीर्थ के स्नान से ही होता है ॥१०॥ सर, देवखात, तीर्थ और नदी में ही स्नान करने की क्रिया है उस स्नान से हो पुण्य का फल होता है ॥११॥ यदि किसी तीर्थ में अनुषङ्गिक प्राप्त होकर भी स्नान करले तो स्नान का फल अवश्य ही प्राप्त हो जाता है, किन्तु तीर्थ यात्रा का फल उससे नहीं मिलता है ॥१२॥ समस्त तीर्थ पुण्यप्रद हैं और और सदा मनुष्यों के पापों का नाश करने वाले होते हैं। मनीषियों ने तीर्थों को परस्पर में अपेक्षा न करने वाला बताया गया है ॥१३॥ बहने वाला जल जिनमें हो ऐसे सभी सरोवर और गिरि निर्झर परम पवित्र एव पुण्य फल देने वाले होते हैं और समस्त नदियाँ भी पुण्य-दायिनी हैं किन्तु इन सब में गङ्गा नदी का सबसे पुण्य फल कहा जाता है ॥१४॥ जिसके पैर, हाथ और मन सुसंयत हैं और जिसमें विद्या, ज्ञान, तप तथा कीर्ति हो, वही व्यक्ति वस्तुतः तीर्थ के फल प्राप्त करने का अधिकारी होता है ॥१५। पाप करने वाले मनुष्यों को तीर्थ में जाने पर पाप का शमन हो जाता है। जो शुद्ध आत्मा वाले मनुष्य होते हैं उनके लिये तीर्थ जैसा भी उसका फल गया है वैसा होता है ॥१६॥

नवमोध्याय:

अथ क्रियास्नानविधिवर्णनम् ।

क्रियास्नानं प्रवक्ष्यामि यथावद्विधिपूर्वकम् ।
मृद्भिरद्भिश्च कर्तव्यं शौचमादौ यथाविधि ॥१

जले निमग्न उन्मज्य उपस्पृश्य यथाविधि ।
जलस्याऽऽवाहनं कुर्य्यात्तत्प्रवक्ष्याम्यतः परम् ।
तीर्थस्यावाहनं कुर्य्यात् तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ।।२
प्रपद्य वरुणं देवमम्भसां पतिमूर्जितम् ।
याचितं देहि मे तीर्थं सर्वपापापनुत्तये ।।३
तीर्थमावाहयिष्यामि सर्व्वाघविनिषूदनम् ।
सान्निध्यमस्मिन् स्तोये च क्रियतां मदनुग्रहात् ।।४
रुद्रान् प्रपद्य वरदान् सर्व्वानप्सु पः स्तथा ।
सर्व्वानप्सु सदश्चैव प्रपद्ये प्रयतः स्थितः ।।५
देवमंशुमदं वह्निं प्रपद्येऽघनिषूदनम् ।
आपः पुण्याः पवित्राश्च प्रपद्ये शरणं तथा ।।६
रुद्राश्चाग्निश्च सपश्च वरुणस्त्वाप एव च ।
शमयन्त्वाशु मे पाप माञ्च रक्षन्तु सर्वशः ।।७

अब यथावत् पूर्ण विधि के साथ क्रिया स्नान को बतलाते हैं । आरम्भ में यथाविधि मिट्टी और जल से शौच करना चाहिए ।।१।। जल में निमग्न होकर और उन्मज्जन करके यथा विधि उपस्पर्श करे और जल का आवाहन करे । इसके आगे जो भी करना चाहिए उसे बतलाया जाता है । तीर्थ का आवाहन अवश्य ही करना चाहिए वह सभी पूर्ण रूप से बताया जाता है ।।२।। प्रथम जल के स्वामी वरुण देव की प्रार्थना करे और कहे कि "मैं अपने समस्त पापों के नाश के लिये तीर्थ की याचना करता हूँ सो हे वरुण देव ! वह मुझे प्रदान करो ।।३ । समस्त पापों के नाशक तीर्थ का आवाहन करता हूँ सो इस जल में मेरे ऊपर अनुग्रह करके सान्निध्य करें ।।४।। वर प्रदान करने वाले रुद्रों की शरण में जाता हूँ जिनका कि जल में स्थान है । मैं पूर्णतः प्रयत होकर जो भी जल में स्थित हैं उनकी प्रपत्ति में जाता हूँ ।।५।। जल में स्थित और समस्त अघों के नाशक वह्नि देव की शरण में जाता हूँ और परम पवित्र तथा पुण्यप्रद जल की शरण में जाता हूँ ।।६।। रुद्र, अग्नि, सर्प,

वरुण तथा जल ये सब मेरे पापों का शमन करें और सब प्रकार से मेरी रक्षा करें" ॥७॥

इत्येव मुक्त्वा कर्तव्य स्ततः समार्जनं जले ।
आपो हिष्ठेति तिसृभिर्यथावदनपूर्वशः ।
हिरण्यवर्णेति तिसृभिर्ज्जगतीति चतसृभिः ।
शं नो देवीति तथा शं न आप स्तथैव च ॥८
इदमापः प्रवहते तथा मन्त्र मुदीरयेत् ।
एवं सम्मार्जनं कृत्वा च्छन्द आर्षञ्च देवताः ॥९
एवं मन्त्रान्समुच्चार्यच्छन्दांसि ऋषिदेवताः ।
अघमर्षणसूक्तञ्च प्रपदेत् प्रयतः सदा ।
छन्दोऽनुष्टुप् च तस्यैव ऋषिश्चैवाघमर्षणः ॥१०
देवता भाववृत्तश्च पापक्षये प्रकीर्तितः ॥११
ततोम्भसि निमग्नः स्यात्त्रिः पठेद्घमर्षणम् ।
प्रपद्य मूर्द्धनि तथा महाव्याहृतिभिजलम् ॥१२
यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः ।
तथाऽघर्षणं सूक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१३
अनेन विधिना स्नात्वा स्नातवान् धौतवाससा ।
परिवर्जितवासास्तु तीर्थ नामानि संजपेत् ॥१४
उदकस्याप्रदानात्तु स्नानशाटीं न पीड़येत् ।
अनेन विधिना स्नातस्तीर्थस्य फलमश्नुते ॥१५

इस प्रकार कह कर फिर जल में सम्मार्जन करना चाहिए। "हिरण्य वर्णा" इस से तीन बार और "जगतो" इत्यादि से चार बार "शनो देवी" इस से तथा "शं न आपः" इसमें मार्जन करे ॥८॥ 'इदमाप प्रवहते"—इस मन्त्र का उच्चारण करे। इस प्रकार उच्चारण करके छन्द, ऋषि, देवता और अघमर्षण सूक्त का प्रयत होकर पाठ करे। इसका छन्द अनुष्टुप है और ऋषि अघमर्षण है ॥९-१०॥ देवता और भाववृत्त पापों के क्षय में कहा गया है ॥११॥ इसके पश्चात् जल में निमग्न होकर तीन बार अघमर्षण जप करे और महा व्याहृतियों से जल को मस्तक पर

डाले ।।१२।। क्रतुओं का राजा अश्वमेध यज्ञ जिस प्रकार समस्त पापों का अपनोदन करता है उसी प्रकार अघमर्षण सूक्त समस्त पापों का नाश करने वाला होता है ।।१३।। इस विधि के स्नान करने वाला वस्त्रों को धोकर उनसे ही, परिवर्जित वस्त्र वाला होते हुए तीर्थ के तट को उपस्पर्शन करे और तीर्थ के नामों का जप करे ।।१४।। जल प्रदान करने के पूर्व स्नान की शाटी को न धोवे । इस विधि से स्नान किया हुआ पुरुष तीर्थ के स्नान का फल प्राप्त करता है ।।१५।।

।। अथ दशमोऽध्यायः ।।

अथाचमनविधिवर्णनम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि शुभाचमनक्रियाम् ।
कायं कनिष्ठिकामूले तीर्थमुक्तं मनीषिभिः ।।१
अङ्गुष्ठमूले च तथा प्राजापत्यं विचक्षणैः ।
अङ्गुल्यग्रे स्मृतं दिव्यं पित्र्यं तर्जनिमूलकम् ।।२
प्राजापत्येन तीर्थेन त्रिः प्राश्नीयाज्जलं द्विजः ।
द्विः प्रमृज्य मुखं पश्चात्खान्यद्भिः समुपस्पृशेत् ।।३
हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः ।
तालुगाभिस्तथा वैश्यः शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः ।।४
अन्तर्जानुः शुचौ देशे प्राङ्मुखः सुसमाहितः ।
उदङ्मुखो वा प्रयतो दिशश्चानवलोकयन् ।।५
अद्भिः समुद्धृताभिस्तु हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ।
वह्निना चाप्यतप्ताभिरक्षाराभिरुपस्पृशेत् ।।६
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम् ।
अङ्गुष्ठमध्यायोगेन स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः ।।७

इसके आगे शुभ आचमन की क्रिया बतलाते हैं । मनीषियों ने शरीर में कनिष्ठिका के मूल में तीर्थ बतलाया है ।।१।। अंगुष्ठ के मूल में प्राजा-

पत्य तीर्थ है जो कि विचक्षणों ने कहा है अङ्गुलि के अग्रभाग में दैव्य तीर्थ है और तर्जनी के मूल पित्र्य तीर्थ है ॥२॥ प्राजापत्य तीर्थ से ब्राह्मण को तीन बार जल का आचमन करना चाहिए। दो बार मुख पर डाले और पीछे जल को आकाश की ओर डाले या उपस्पर्शन करे ।३॥ ब्राह्मण हृदय तक आने वाले जल में स्नान से शुद्ध होता है, क्षत्रिय कण्ठ पयन्त जल में निमज्जित होने पर शुद्ध होता है और तालु पर्यन्त जल में वैश्य शुद्ध होता है। शूद्र तो जल के स्पर्श मात्र से शुद्ध हो जाता है ॥४॥ शुचि (पवित्र) देश में अन्तर्जानु होकर, पूर्व की ओर मुख करके अथवा उदङ्मुख होकर सुसमाहित रहते हुए तथा दिशाओं की ओर न देखते हुए प्रयत होकर स्नान करे ॥५॥ समुद्धृत जल से जो कि झाग तथा बुद्बुदों से रहित हो और अग्नि के ताप से शून्य एवं क्षार स रहित हो उपस्पर्शन करे। ६॥ तर्जनी अङ्गुली और अंगूठे से दोनों नासापुटों का उपस्पर्शन करे। अङ्गुष्ठ और मध्याङ्गुलि के योग्य से नेत्रद्वय का स्पर्श करे ॥७॥

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु श्रवणौ समुपस्पृशेतु ।
कनिष्ठांगुष्ठयोगेन स्पृशेत्स्कन्धद्वय ततः ॥८
सर्वासामेव योगेन नाभि च हृदय तथा ।
संस्पृशेच्च तथा मूर्ध्नि एष आचमने विधिः ॥९
त्रिः प्राश्नीयाद्यदम्भस्तु प्रीतास्तेनास्य देवताः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवन्तीत्यनुशुश्रुम ॥१०
गंगा च यमुना चैव प्रीयेते परिमार्जनात् ।
नासत्यदस्रौ प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये ॥११
स्पृष्टे लोचनयुग्मे तु प्रीयेते शशिभास्करौ ।
कर्णयुग्मे तथा स्पृष्ट प्रीयेते अनिलानलौ ॥१२
स्कन्धयो स्पर्शनादस्य प्रीयन्ते सवदेवताः ।
मूर्ध्नः संस्पर्शनादस्य प्रीतस्तु पुरुषो भवत् ॥१३
विना यज्ञोपवीतेन तथा मुक्तशिखो द्विजः ।
अप्रक्षालितपादस्तु आचान्तोऽप्यशुचिभवेत् ॥१४

अङ्गुष्ठ एवं अनामिका अंगुलि के योग से दोनों कानों का स्पर्श करे तथा अंगूठा और कनिष्ठिका के योग से दोनों कन्धों का स्पर्श करे ॥८॥ समस्त अंगुलियों के योग से नाभि और हृदय तथा मस्तक स्पर्श करे। यही आचमन की विधि है॥९॥ जल को तीन बार पान करे। इससे देवता प्रसन्न होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी प्रसन्न होते हैं ऐसा सुना जाता है ॥१०॥ गंगा और यमुना परिमार्जन से प्रसन्न होती हैं। नासापुटों के स्पर्श करने से नासत्य दस्र प्रसन्न होते हैं ॥११॥ दोनों नेत्रों के स्पर्श से चन्द्र और सूर्य प्रसन्न होते हैं दोनों कानोंके स्पर्श करने से अग्नि और वायु प्रसन्न होते हैं ॥१२॥ दोनों कन्धों के स्पर्श करने से समस्त देवगण प्रसन्न होते हैं और मस्तक के स्पर्श से परम पुरुष प्रसन्न होते हैं ॥१३॥ यज्ञोपवीत के बिना और मुक्त शिखा वाला द्विज अप्रक्षालित पैरों वाला आचान्त होकर भी अशुचि रहता है ॥१४॥

वहिर्जानुरुपस्पृश्य एकहस्तार्पितैर्जलैः।
सोपानत्कस्तथा तिष्ठनैव शुद्धिमवाप्नुयात् ॥१५
आचम्य च पुराप्रोक्तं तीर्थसमार्जनं तु यत्।
उपस्पृशेत्ततः पश्चान्मंत्रेणानेन धर्मतः ॥१६
अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम् ॥१७
आचम्य च ततः पश्चादादित्याभिमुखो जलम्।
उदु त्वं जातवेदसमिति मन्त्रेण निक्षिपेत् ॥१८
एष एव विधिः प्रोक्ताः संध्ययोश्च द्विजातिषु।
पूर्वां संध्यां जपस्तिष्ठेदासीनः पश्चिमां स्तथा ॥१९
ततो जपेत्पवित्राणि पवित्रं वाऽथ शक्तितः।
ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुवाप्नुयुः ॥२०
सर्ववेदपवित्राणि वक्ष्याम्यहमतः परम्।
येषां जपैश्च होमैश्च पूयन्ते मानवाः सदा ॥२१

घुटनों के बाहिर हाथ रखकर तथा एक ही हाथ से दिये हुए जल से, एवं जूते पहिने हुए और खड़े होकर उपस्पर्शन करने पर भी शुद्धि को

प्राप्त नहीं होता है ।।१५।। आचमन करके पहिले जो तीर्थ संमार्जन कहा गया है उसे करे और फिर उपस्पर्शन करे जो कि धर्मानुसार और समन्त्र हो ।।१६।। मन्त्र यही है– प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से चरण करते हो, गुहा में रहते हुए भी विश्व गोमुख हो। तुम यज्ञ रूप हो, तुम हो वषट्-कार, जल, ज्योति रस और अमृत हो ।।१७।। आचमन करके इसके अनन्तर सूर्य की ओर मुख करके 'उदुत्यं जात वेदसम्—इत्यादि मन्त्र से जल का निक्षेप करे ।।१८। द्विजातियों के लिये दोनों सन्ध्या कालों में यही विधि बताई गई है । पूर्व सन्ध्या में तो खड़े होकर जप करे और पश्चिम सन्ध्या में बैठकर जप करना चाहिए ।।१९।। इसके पश्चात् पवित्रों या पवित्र सूक्तादि का जप करे जितनी शक्ति हो उतना ही करे। ऋषियों की बड़ी लम्बी सन्ध्या होती है इसलिये वे दीर्घ आयु भी प्राप्त किया करते हैं ।।२०।। समस्त वेदों के समान पवित्रों को अब बतलाया जायगा जिसके जप तथा होम से सदा मनुष्य पवित्र होते हैं ।।२१।।

।। अथ एकादशोऽध्यायः ।।

अथाघमर्षणविधिवर्णनम् ।

अघमर्षणं देवकृतं शुद्धवत्यस्तरत्समाः ।
कूष्माण्ड्यः पावमान्यश्च सावित्र्यश्च तथैव च । १
अभिष्टुं द्रुपदा चैव स्तोमानि व्याहृतिस्तथा ।
भारुण्डानि च सामानि गायत्री चौशनं तथा ।।२
पुरुषव्रतं च भाष च तथा सोमव्रतानि च ।
अब्लिगं बार्हस्पत्यं च वाक्सूक्तंममृतं तथा ।।३
शतरुद्रीयमथर्वशिरस्त्रिसुपर्णं महाव्रतम् ।
गोसूक्तमश्वसूक्तं च इन्द्रसक्तं च सामनी । ४

त्रीण्याज्यदोहानि रथंतरं च अग्निव्रतं वासदेवव्रतं ।
एतानि गीतानि पुनन्तिजन्तून्जातिस्मरत्वं लभते यदीच्छेत्।।५

देवकृत, अघमर्षण, शुद्धवत्य स्तरत्समाः कूष्माण्ड्यः, पावमान्यः, सावित्र्यः, त्र्यभिष्टवं द्रुपदा, स्तोम, व्याहृति, भारुण्ड, साम गायत्री, ओशमं, पुरुषव्रत, भाष, सोमव्रत, अब्लिङ्ग, बार्हस्पत्य, वाक्सूक्त, अमृत, शत रुद्रीय, अथर्वशिर, त्रिसुपर्ण, महाव्रत गोसूक्त, इन्द्र सूक्त, अश्वसूक्त, सामनी, त्रीण्याज्यदोह, रथन्तर, अग्निव्रत और वामदेव व्रत—ये गीत किये हुए प्राणियों को पवित्र बनाते हैं और जाति में प्रमुखता तथा अभीष्ट कराते हैं ।।१-५।।

।। द्वादशोऽध्यायः ।।

अथ गायत्रीजपविधिवर्णनम् ।

इतिवेदपवित्राण्यभिहितानि, एभ्यः सावित्री विशिष्यते ।।१
नास्त्यघमर्षणात्परमन्तजले ।।२
न सावित्र्या समं जप्यं न व्याहृतिसमं हुतम् ।।३
कुशमध्यामासीनः कुशोत्तरीयवान्कुशपवित्राणिः प्रांमुखः
सूर्याभिमुखो वाऽक्षमालामुपादाय देवताध्यायी जतं कुर्यात् ।।४
सुवर्णमणिमुक्तास्फटिकपद्माक्षरुद्राक्षपुत्रजीवकानामन्यतमेना-
ऽऽदाय मालां कुर्यात् ।।५
कुशग्रन्थि कृत्वा वामहस्तीपयमेवां गणयेत् ।।६

अब तक वेदवत् पवित्र सूक्तादि को बताया किन्तु इन सबसे सावित्री विशेषता रखती है । जल के अन्दर अघमर्षण से विशेष अन्य कुछ भी

नहीं है ।।१-२ । सावित्री के समान अन्य जपने के योग्य कुछ भी नहीं है और व्याहृति के तुल्य हुत नहीं है ।।३।। कुशमय आसन पर आसीन होकर कुश का ही उत्तरीय वाला कुशा की हवित्री हाथ में रखकर पूर्वाभिमुख होकर अक्ष माला लेकर देवताध्यायी को जप करना चाहिए ।।४।। सुवर्ण, मणि, मुक्ता, स्फटिक, पद्माक्ष, रुद्राक्ष, पुत्र जोवन इनमें से किसी भी एक को लाकर माला बना लेना चाहिए ।।५।। कुश ग्रन्थि बनाकर बाँये हाथ के उपमय सेवा गणना करे ।।६।।

आदौ देवता ऋषिच्छन्दः स्मरेत् ।।७
ततःसप्रणवांसव्याहृतिकामादावन्तेच शिरसा गायत्रीमावर्तयेत्
अथास्याः सविता देवता, ऋषिर्विश्वामित्रो गायत्री छन्दः ।।९
ॐकारः प्रणवाख्यः ।।१०
ॐ भूः । ॐ भुवः । ॐ स्वः । ॐ महः । जनः । ॐ तपः ।
ॐ सत्यमिति व्याहृतयः ।।११
ओमापो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोमिति शिरः ।।१२
भवन्ति चात्र श्लोकाः ।।१३
सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
ये जपन्ति सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित् ।।१४
शत जप्त्वा तु सा देवी दिनपापप्रणाशिनी ।
सहस्रं जप्त्वा तु तथा पातकेभ्यः समुद्धरेत् ।।१५
दशसहस्रं जप्त्वा तु सर्वकल्मषनाशिनी ।
सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।।१६
सुरापश्च विशुध्येत लक्षजाप्यान्न संशयः ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा स्नानकाले समाहितः ।।१७
अहोरात्रकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते ।
सव्याहृतिकाः सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश । १८
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृतः ।
हुता देवी विशेषेण सर्वकामप्रदायिनी ।१९

सर्वपापक्षयकरी वरदा भक्तवत्सला।
शान्तिकामस्तु जुहुयात्सावित्रीमक्षतैः शुचिः ॥२०
हन्तुकामोऽपमृत्युं च घृतेन जुहुयात्तथा।
श्रीकामस्तु तथा पद्मैर्बिल्वैः काञ्चनकामुकः ॥२१

आदि में देवता, ऋषि तथा छन्द का स्मरण करना चाहिए ॥७॥ इसके अनन्तर प्रणव से सहित व्याहृतियों से युक्त आदि अन्त में फिर से गायत्री की आवृत्ति करे। इसके अनन्तर सविता देवता, विश्वामित्र, ऋषि और गायत्री छन्द कहे ॥९॥ ॐयही प्रणव कहा जाता है ॥१०॥ ॐभुः ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम्–ये व्याहृतियाँ हैं ॥११॥ ॐ आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्—यह शिर है ॥१२॥ इस विषय को बताने वाले निम्न श्लोक हैं—व्याहृतियों के साथ और प्रणव के साथ शिर के सहित जो पुरुष सदा गायत्री का जप करते हैं उनको कहीं भी कोई भय नहीं होता है ॥१४॥ गायत्री का एक सौ जप करने पर दिन भर के पापों का नाश हो जाता है और यदि एक सहस्र जप करे तो गायत्री देवी समस्त पातकों से उद्धार कर देती है ॥१५॥ दश हजार गायत्री का जप करके मनुष्य सारे कल्मषों का नाश कर देता है। सुवर्ण की चोरी करने वाला ब्राह्मण, ब्राह्मण की हत्या करने वाला, गुरुतल्प गामी, सुरा पीने वाला एक लक्ष गायत्री का जप करने से शुद्ध हो जाता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। स्नान के समय तीन बार प्राणायाम समाहित होकर करने से अहोरात्र में किये हुए पाप से तुरन्त ही मुक्त हो जाता है। व्याहृतियों के साथ और प्रणव के साथ सोलह प्राणायाम एक मास पर्यन्त प्रतिदिन करने से भ्रूण हत्या के पाप से पवित्र करते हैं। विशेष रूप से सावित्री का हवन करने पर गायत्री माँ समस्त अभीष्टों को प्रदान करने वाली होती है ॥१६-१९॥ समस्त पापों का क्षय करने वाली, वर प्रदान करने वाली, भक्तों पर प्रेम करने वाली सावित्री देवी है। जो शान्ति की कामना रखता हो उसे पवित्र होकर अक्षतों से गायत्री का हवन करना चाहिये ॥२०॥ अपमृत्यु का नाश करने की इच्छा वाले को घृत से हवन

करना चाहिए। श्री की कामना वाला पद्मों से और कञ्चन की इच्छा वाला विल्वों से हवन करे॥२१॥

ब्रह्मवर्च सकामस्तु पयसा जुहुयात्तथा ।
घृतप्लुतंस्तिलैर्वह्नि जुहुयात्सुसमाहितः ॥२२
गायत्र्ययुतहोमाच्च सवपापैः प्रमुच्यते ।
पापात्मा लक्षहोमेन पातकेभ्यः प्रमुच्यते ॥२३
अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममभीप्सितम् ।
गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ॥२४
गायत्र्या परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ।
हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ॥२५
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः ।
गायत्रीजाप्यनिरतं हव्यकव्येषु भोजयेत् ॥२६
तस्मिन्न तिष्ठते पापमब्बिन्दुरिव पुष्करे ॥२७
जपे नैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥२८
उपांशु स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ।
नोच्चं जपं बुधः कुर्यात्सावित्र्यास्तु विशेषतः ॥२९
सावित्रीजाप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः ।
गायत्रीजप्यनिरतो मोक्षोपायं च विन्दति ॥३०
तस्मातसवप्रयत्नेन स्नातः प्रयतमानसः ।
गायत्री तु जपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥३१

जो ब्रह्मवर्चस की कामना रखने वाला हो उसे पय से अथवा घृतप्लुत तिलों से सुसमाहित होकर हवन करना चाहिए॥२२॥ दश हजार गायत्री के हवन करने से सब पापों से छुटकारा पा जाता है। एक लक्ष होम करने से पापात्मा पुरुष पापों से मुक्त होता है॥२३॥ गायत्री का जप करने वाला अभीष्ट लोक की प्राप्ति करता है और अभीप्सित कामों को पा जाता है। गायत्री वेद की जननी है और पापों का नाश करने वाली है॥२४॥ इस संसार में और स्वर्ग में गायत्री से बड़ा पवित्र करने

वाला कोई भी नहीं है। नरक रूपी समुद्र में गिरने वालों को यह देवी हाथ से रक्षा करने वाला हैं ॥२५॥ अतएव इस गायत्री का नित्य ही पवित्र होकर नित्य रूप से अभ्याप करना चाहिए। गायत्री के जप में निरत रहने वाले को हव्यकव्य का भोजन करना चाहिए ॥२६॥ गायत्री जापक में कमल पत्र पर जल बिन्दु की भाँति कोई भी पाप नहीं ठहरता है। ब्राह्मण का जप से हा सिद्धि होनी है इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।२७॥ अन्य कुछ करे अथवा न करे ब्राह्मण मैत्र कहा जाता है। उपांशु जप का सौगुना तथा मानस जप का हजार गुना फल होता विद्वान् को गायत्री का उच्च स्वर से विशेष रूप से जप नहीं करना चाहिए ॥२८-२९॥ सावित्रो देवी के जप निरत मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करता है। गायत्री का जाप में निरत मोक्ष के उपाय पा जाता है ॥३०॥ अतएव सब प्रकार के प्रयत्नों से स्नान करके प्रयत मन से समस्त पापों के प्रणाश करने वाली गायत्री का भक्ति के साथ जप करना चाहिए ॥३१॥

॥ त्रयोदशोऽध्यायः ॥

अथ तपणविधिवर्णनम्।

स्नातः कृतजप्यस्तदनु प्रङ्मुखो।
दिव्येन तीर्थेन देवानुदकेन तपयेत् ॥१
अथ तर्पणविधिः ॥२
ॐभगवन्तं शेषं तर्पयामि ॥३
कालाग्निरुद्रं तु ततो रुक्मभौमं तथैव च।
श्वेतभौमं ततः प्रोक्तं पातालानां च सप्तकम् ॥४
जम्बूद्वीपं ततः प्रोक्तं शाकद्वीपं ततः परम्।
गोमेदपुष्करे तद्वच्छावराख्यं च ततः परम् ॥५

शार्बरं ततः स्वधामानं ततो हिरण्यरोमाणं ।
ततः कल्पस्थायिनो लोकांस्तर्पयेत् ।।६
लवणोदकं ततः क्षीरोदं ततो घृतोदं तत इक्षूदं ततः
स्वादूदं तत इति सप्तसमुद्रकं प्रत्यृचं पुरुषसूक्तेनोदका-
ञ्जलीन्दद्यात्, पुष्पाणि च तथा भक्त्या ।।७

स्नान करके और जपादि करके पूर्वाभिमुख होकर दिव्य तीर्थ के जल से देवों का तर्पण करना चाहिए ।।१।। अब तर्पण की निम्न विधि है ।।२।। ॐ भगवान् शेष का तर्पण करता हूँ ।।३।। इसके आगे कालाग्निरुद्र, रुक्मभौम, श्वेतभौम, सप्तपातालादि, जम्बूद्वीप, शाकद्वीप, गोमेद पुष्कर शाकाख्य, शार्कर, स्वधाम, हिरण्य रोमाण का तर्पण करे । इसके बाद कल्प पर्यन्त स्थायी रहने वाले लोकों का तर्पण करे ।।४-६।। 'तर्पयामि" अन्त में और प्रवण आदि में प्रत्येक के नाम के साथ लगावे और द्वितीयान्त का नाम के साथ प्रयोग करे । ॐ लवणोदकं तर्पयामि—इसी प्रकार क्षीरोद, घृतोद, इक्षुद, स्वादूद का तर्पण करे और इसके पश्चात् सातों समुद्रों का पुरुष सूक्त के द्वारा प्रत्येक ऋचा से जलाञ्जलि देवे तथा भक्ति के साथ पुष्प भी रक्खे ।।७।।

अथ कृतापसव्योदक्षिणामुखोऽन्तर्जानुः पित्र्येण ।
पितृणां यथाश्राद्धं प्रकाममुदकं दद्यात् ।।८
सौवर्णेन पात्रेण राजतेनौतुम्बरेण खड्गपात्रेणान्य ।
पात्रेण वोदक पितृतीर्थं स्पृशन्दद्यात् ।।९
पित्रे पितामहाय प्रपितामहाय मात्रे पितामह्यै
प्रपितामह्यै मातामहाय (?) प्रमातामहायमात्रे (?)
मातामह्यै प्रमातामह्यै सप्तमातपुरुषात्पितृपक्षे यावतां नाम
जानीयात्पितृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा गुरूणां मातृपक्षाणां
तर्पणं कुर्यात् ।।१०
मातृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा संबन्धिबान्धवानां कुर्यात्,
तेषां कृत्वा सुहृदां कुर्यात् ।।११
भवन्ति चात्र श्लोकाः ।।१२

विना रौप्यसुवर्णेन विना ताम्रतिलेन च ।
विना दर्भैश्च मन्त्रैश्च पितृणां नोपतिष्ठते ॥१३
सौवर्णराजताभ्यां च खड्गेनौदुम्बरेण च ।
दत्तमक्षय्यतां याति पितृणां तु तिलोदकम् ॥१४
हेम्ना तु सह यद्दत्तं क्षारेण मधुना सह ।
तदप्यक्षय्यतां याति पितृणां तु तिलोदकम् ॥१५
कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।
पयोमूलफलैर्वापि पितृणां प्रीतिमाहवन् ॥१६
स्नातः संतर्पणं कृत्वा पितृणां तु तिलाम्भसा ।
पितृयज्ञमवाप्नोति प्रीणाति च पितृंस्तथा ॥१७

इसके अनन्तर अपसव्य होकर दक्षिणाभिमुख बैठकर घुटनों के अन्दर हाथ रखकर पितृगण का जिस प्रकार श्राद्ध होता है उसी तरह पित्र्य विधि से प्रकामतया जल से तर्पण करे ॥८॥ सुवर्ण के पात्र से, चाँदी के पात्र द्वारा, उदुम्बर पात्र से, खड्ग पात्र से अथवा अन्य पात्र से पितृतीर्थ का स्पर्श करते हुए उदक देवे ॥६॥ पिता, पितामह और प्रपितामह के के लिये तथा माता-पितामही और प्रपितामही के लिये जलदान दे। इसके बाद मातामह, प्रमातामह, वृद्ध प्रमातामह के लिये तथ माता-पितामही और प्रमातामही के लिये तर्पण करे। पिता के पक्ष में सात पुश्त तक जितने भी नातों का ज्ञान हो उनका तर्पण करना चाहिए। गुरु वर्ग का तथा मातृ-पक्ष में मातुलादि का तर्पण करे ॥१०॥ मातृ-पक्ष के मनुष्यों का तर्पण करके सम्बन्धी तथा बान्धवों तक तर्पण करना चाहिए ॥११-१२। रौप्य और सुवर्ण के बिना तथा ताम्र एवं तिलों के बिना, दर्भ और मन्त्रों के बिना पितृगण का उपस्थान नहीं होता है ॥१३॥ सोने-चाँदी के तथा खड्ग और उदुम्बर के पात्रों द्वारा दिया हुआ तिलोदक पितृगण को अक्षय होता है ॥१४॥ सुवर्ण के साथ क्षीर एवं मधु के साथ दिया हुआ भी तिलोदक पितृगण को अक्षय होता है ॥१५॥ पितृगण की प्रीति बढ़ाता हुआ प्रतिदिन अन्नादि से तथा उदक से श्राद्ध करना चाहिए अथवा पय, मूल और फलों से भी श्राद्ध

करे ॥१६॥ स्नान करके पितृगण का तिलोदक से तर्पण करके पितृ यज्ञ का फल पाता है और पितृगण को प्रसन्न करता है ॥१७॥

चतुर्दशोऽध्याय:

अथ श्राद्धेब्राह्मणपरीक्षावर्णनम् ।

ब्राह्मणान्न परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ।
पित्र्ये कर्मणि संप्राप्ते युक्तमाहुः परीक्षणम् ॥१
ब्राह्मणा ये विकर्मस्था बैडालव्रतिकास्तथा ।
ऊनाङ्गा अतिरिक्ताङ्गा ब्राह्मणाः पङ्क्तिदूषकाः ॥२
गुरूणां प्रतिकूलाश्च वेदाग्न्युत्सादिनश्च ये ।
गुरूणां त्यागिनश्चैव ब्राह्मणाः पङ्क्तिदूषकाः ॥३
अनध्यायेष्वधीयानाः शौचाचारविवर्जिताः ।
शूद्रान्नरससंपुष्टा ब्राह्मणा पङ्क्तिदूषकाः ॥४
षडङ्गवित्त्रिसुपर्णो बह्वृचो ज्येष्ठसामगः ।
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निर्ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥५
ब्रह्मदेयानुसंतानो ब्रह्मदेयाप्रदायकः ।
ब्रह्मदेयापतिर्यश्च ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥६
ऋग्यजु पारगो यश्च साम्नां यश्चापि पारगः ।
अथर्वाङ्गिरसोऽध्येता ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः ॥७

धर्म के वेत्ता व्यक्ति को दैव कर्म में ब्राह्मणों की परीक्षा नहीं करनी चाहिए। पित्र्य कर्म में ब्राह्मणों का परीक्षण उचित है ॥१॥ जो ब्राह्मण अपने कर्मों का त्याग कर दूषित हेय कर्म करने वाले हों, ऊपर से शान्त शिष्ट हों तथा अन्दर जिन के बुरी भावना भरी हो एसे बैडालिक व्रतिक एवं हीन अङ्ग वाले या विशेषाङ्ग वाले ब्राह्मण पितृकर्म में पंक्ति दूषित अर्थात् वर्जित होते हैं ॥२॥ जो अपने गुरू के प्रतिकूल हों वेदाग्नि त्याग करने वाले और गुरु के द्वारा बहिष्कृत किये गये हों एसे ब्राह्मण

पंक्ति दूषक होते हैं। दैव कर्मों में भले विचार न करे किन्तु पितृ कर्म में विचार अवश्य ही कर्त्तव्य है ॥३॥ अनाध्याय के दिन अध्ययन करने वाले, शौच और आचार से हीन तथा शूद्रों के अन्न से पोषण प्राप्त करने वाले ब्राह्मण भी पंक्ति दूषक होते हैं ।४॥ छै अङ्गों का ज्ञाता, त्रिसुपर्ण, बह्वृच, साम का गायक, त्रिणाचिकेत और पञ्चाग्नि ब्राह्मण पंक्ति पावन श्रेष्ठ होते हैं ॥५॥ ऋक् और यजुर्वेद का पारगामी पण्डित और सामवेद का भी जो पारगामी विद्वान हो तथा अथर्वाङ्गिरस का अध्येता ब्राह्मण पंक्ति पावन जाना जाता है ॥६-७॥

नित्यं योगरतो विद्वान्समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
ध्यानशीलो यतिर्विद्वान्ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः ॥८
द्वौदैवे प्राङ्मुखौ त्रीन्वा पित्र्ये चोदङ्मुखांस्तथा ।
भोजयेद्विविधान्विप्रानेकैकमुभयत्र वा ॥९
भोजयेदथवाऽप्येकं ब्राह्मणं पङ्क्तिपावनम् ।
दैवे कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चाद्वह्नौ तु तत्क्षिपेत् ॥१०
उच्छिष्टसंनिधौ कार्यं पिण्डनिर्वपणं बुधैः ।
अभावे च तथाकार्यमग्निकार्यं यथाविधि ॥११
श्राद्धं कृत्वा प्रयत्नेन त्वराक्रोधविवर्जितः ।
उष्णमन्नं द्विजातिभ्यः श्रद्धया विनिवेदयेत् ॥१२
अन्यत्र पुष्पमूलेभ्यः पीठकेभ्यश्च पण्डितः ।
भोजयेद्विविधान्विप्रान्गन्धमाल्यसमुज्ज्वलान् ॥१३
यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं वा भोज्यमेव वा ।
अनिवेद्य न भोक्तव्यं पिण्डमूले कदाचन ॥१४

जो विद्वान् नित्य ही योग में रत हो और लोष्ठ (मिट्टी का ढेला) तथा सुवर्ण को समान समझने वाला, ध्यानशील और यति, विद्वान्, ब्राह्मण पंक्ति पावन होता है ।८॥ दैव कार्य में दो ब्राह्मण पूर्वाभिमुख हों, पितृ कार्य (श्राद्ध) में तीन ब्राह्मण जो उत्तर की ओर मुख वाले हों, भोजन करावे । दोनों कार्यों में एक-एक ही अथवा विविध ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥९॥ अथवा एक ही पंक्ति पावन ब्राह्मण को

भोजन करावे। नैवेद्य को दैव में करके पीछे अग्नि में डाल दे ॥१०॥ उच्छिष्ट के समीप में ही विद्वानों को पिण्ड निर्वपण कराना चाहिए। इसके अभाव में यथाविधि अग्नि कार्य करे ॥११॥ श्राद्ध में त्वरा (शीघ्रता) और क्रोध न करे और उष्ण अन्न ब्राह्मणों को श्रद्धा के साथ निवेदन करे ॥१२॥ पण्डित व्यक्ति को आसनों पर बिठाकर पुष्प मूलादि से गन्धमाला से समुज्जवल विविध ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ॥१३॥ जो कुछ भी घर में पकाया जावे चाहे भक्ष्य हो अथवा भोज्य, उसे पिण्ड मूल पर निवेदन न करके कभी भी नहीं खाना चाहिए ॥१४॥

उग्रगन्धान्यगन्धानि चैत्यवृक्षभवानि च।
पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥१५
तोयोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः।
ऊर्णासूत्रं प्रदातव्यं कार्पासमथवा नवम् ॥१६
दशां विवर्जयेत्प्राज्ञो यद्यप्यहतवस्त्रजाम्।
घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः ॥१७
धूपार्थं गुग्गुलुं दद्याद् घृतयुक्तं मधुत्कटम्।
चन्दनं च तथा दद्यात्पिष्टा कुङ्कुमं शुभम् ॥१८
भूतृणं सुरसं शिग्रुं पालकं सिन्धुक तथा।
कूष्माण्डालाबुवार्ताककोविदारांश्च वर्जयेत् ॥१९
पिप्पलीं मरीच चैव तथा वै पिण्डमूलकम्।
कृतं च लवणं सर्वं वंशाग्रंतु विवर्जयेत् ॥२०
राजमाषान्मसूरांश्च कोद्रवान्कोरदूषकान्।
लोहितान्वृक्षनिर्यासान् श्राद्धलमणि वर्जयेत् ॥२१

उग्र गन्ध वाले या बिना गन्ध वाले तथा श्मशान में उगने वाले वृक्षों से उत्पन्न एवं रक्तवर्ण के पुष्प काम में न लावे ॥१५॥ जल में उत्पन्न होने वाले खास कर रक्त वर्ण वाले भी दे देवे। ऊन के वस्त्र अथवा कपास के वस्त्र जो नवीन हों देने चाहिए। वस्त्रहीन दशा को वर्जित करे घृत का दीपक देवे अथवा तिल के तेल का देवे ॥१६-१७॥ धूप के लिये गूगल का प्रयोग करे जो कि घृत से युक्त और मधुत्कट हो। कुंकुम को

पीस कर चन्दन देना चाहिए ।।१८।। श्राद्ध में भूतृण, सुरस, शिग्रु, पालक सिन्धुक, कुष्माण्ड, अलाबु, वार्त्ताक और कोविदार को वर्जित करना चाहिए ।।१९।। श्राद्ध में पीपल, मिर्च, पिण्ड मूलक, बनाया हुआ लवण और सब वंशाग्र को वर्जित कर देना चाहिए ।।२०।। श्राद्ध कर्म में राज-माष, मसूर, कोद्रव, कोर दूषक, लाल वस्तु और वृक्षों का निर्यास (गोंद) वर्जित होते हैं ।।२१।।

आम्रमामलकीमिक्षं मृद्वीकादधिदाडिमान् ।
विदार्यश्चैव रम्भाद्यादद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नतः ।।२२
धानालाजे मधुयुते सक्तूञ्शर्करया सह ।
दद्याच्छ्राद्ध प्रयत्नेन शृङ्गाटकविसेतकान् ।।२३
भोजयित्वा द्विजान्भक्त्या स्वाचान्तान्दत्तदक्षिणान् ।
अभिवाद्य पुनर्विप्राननुव्रज्य विसर्जयेत् ।।२४
निमन्त्रितस्तु यः श्राद्ध मैथुनं सेवते द्विजः ।
श्राद्धं दत्वा च भुक्त्वा च युक्तः स्यान्महतैनसा ।।२५
कालशाकं सशल्कांश्च मांसं वाध्रोणसस्य च ।
खड्गमांस यथाऽनन्तं यमः प्रोवाच धर्मवित् ।।१६
यद्ददाति गयाक्षेत्रे प्रभासे पुष्करे तथा ।
प्रयागे नैमिषारण्ये सर्वमानन्त्यमश्नुते ।।२७
गङ्गायमुनयोस्तीरे पयोष्ण्यामरकण्टके ।
नर्मदायां गयातीरे सर्वमानन्त्यमुच्यते ।।२८

श्राद्ध में आम्र, आँवला, इक्षु, मृद्वीक, दधि दाड़िम, बिदारी और केला आदि प्रयत्न के साथ देना चाहिए ।।२२।। धान की खील, मधु से युक्त, सत्तु शर्करा से युक्त, शृंगाटक (सिंघाड़े) और बिसेतक प्रयत्न-पूर्वक श्राद्ध में देवे ।।२३।। भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराकर आच मन करावे और दक्षिणा देवे और ब्राह्मणों को अभिवादन करके कुछ दूर तक पीछे चल कर बिदा करे ।।२४।। श्राद्ध में निमन्त्रित जो ब्राह्मण मैथुन का सेवन करता है, श्राद्ध देकर या श्राद्ध में खाकर वह महान् पाप से युक्त हो जाता है ।।२५-२६।। गया के क्षेत्र में, प्रभास में और पुष्कर में,

प्रयाग में, तथा नैमिषारण्य में जो भी दिया जाता है वह अनन्त फल देता है ॥२७॥ गंगा-यमुना के तट पर, पयोष्ण्या में, अमरकण्टक में, नर्मदा में और गया तीर पर सब आनन्त्य को प्राप्त होता है ॥२८॥

वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे भृगुतुंगे महालये ।
सप्तण्वेयृषि कूपे च तदप्तक्षय्यमुच्यते ॥२६
म्लेच्छदेशे तथा रात्रौ संध्यायां च विशेषतः ।
न श्राद्धमाचरेत्प्राज्ञो म्लेच्छदेशे न च व्रजेत् ॥३०
हस्तिच्छायासु यद्दत्तं यद्दत्तं राहुदर्शने ।
विषुवत्ययने चैव सर्वमानन्त्यमुच्यते ॥३१
प्रोष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् ।
प्राप्त श्राद्धं तु कर्तव्यं मधुना पायसेन वा ॥३२
प्रजां पुष्टिं यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा ।
नृणां श्राद्धैः सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहः । ३३

वाराणसी में, कुरुक्षेत्र में, भृगुतुंग में, महालय में, सप्तवेणी में और ऋषि कूप में दान अक्षय होता है ॥२६॥ म्लेच्छ देश में, रात्रि में, विशेष करके सन्ध्या समय में बुद्धिमान को श्राद्ध नहीं करना चाहिए और म्लेच्छों के देश में जाना भी नहीं चाहिए ॥३०॥ हस्तिछाया में, राहु दर्शन में और विषुवती के अयन में जो भी दिया जाता है सब अनन्त्य को प्राप्त होता है ॥३१॥ प्रौष्ठपदी में मघायुक्त त्रयोदशी को पाकर श्राद्ध मधु और पायस से करना चाहिए ॥३२॥ श्राद्धों से सदा प्रसन्न पितामह मनुष्यों को प्रजा, पुष्टि, यश, स्वर्ग, आरोग्य धन देते हैं ॥३३॥

———

अत्रिस्मृतिः

हुताग्निहोत्रमासीनमत्रिं वेदविदां वरम् ।
सर्वशास्त्रविधिज्ञातमृतिभिश्च नमस्कृतम् ॥१
नमस्कृत्य च ते सर्वं इदं वचनमब्रुवन् ।
हितार्थं सर्व लोकानां भगवन् ! कथयस्वनः ॥२

॥ अत्रिरुवाच ॥

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा । यन्मे पृच्छथसंशयम् ।
तत् सर्वं संप्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥३
सर्वतीर्थान्युपस्पृश्य सर्वान् देवान् प्रणम्य च ।
जप्त्वा तु सर्वसूक्तानि सर्वशास्त्रानुसारतः ॥४
सर्वपापहरं नित्यं सर्वसंशयनाशनम् ।
चतुर्णामपि वर्णानामत्रिः शास्त्रमकल्पयत् ॥५
ये च पापकृतो लोके ये चान्ये धर्मदूषकाः ।
सर्वैः पापैः प्रमुच्यन्ते श्रुत्वेदं शास्त्रमुत्तमम् ॥६
तस्मादिदं वेदविद्भिरध्येतव्यं प्रयत्नतः ।
शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सद्वृत्तेभ्यश्च धर्मतः ॥७

वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ, अग्निहोत्र किये हुए, समस्त शास्त्रों की विधि के ज्ञान वाले, बैठे हुए अत्रि महर्षि को ऋषियों ने नमस्कार किया ॥१॥ उन सबों ने नमस्कार करके समस्त लोकों के हित के लिये यह वचन कहा--हे भगवन् ! आप हमको बतलाइये ॥ २ ॥ अत्रि ने कहा—हे वेद और शास्त्रों के तत्व के जानने वालो ! तुमने जो मुझ से अपना संशय पूछा है उस सबको मैंने जैसा भी देखा है और सुना है तुमको बतलाता है ॥३॥ समस्थ तीर्थों के जल का उपस्पर्शन करके,

सब देवों को प्रणाम करके, समस्त शास्त्रों के अनुसार सम्पूर्ण सूत्रों का जप करके समस्त पापों के हरण करने वाले तथा नित्य ही सम्पूर्ण संशयो का नाश करने वाले चारों वरणों के शास्त्र को अत्रि महर्षि ने कहा ॥ ४-५ ॥ संसार में जो पाप करने वाले तथा धर्म के दूषित करने वाले लोग हैं वह सब पापों में इस उत्तम शास्त्र को सुन-सुन कर मुक्त हो जाते हैं ।६॥ इसलिये वेद के ज्ञाताओं को यह शास्त्र प्रयत्नपूर्वक पढना चाहिए और सच्चरित्र शिष्यों को भी धर्मानुसार इसे पूजना चाहिए ॥७।

अकुलीने ह्यसद्वृत्ते जडे शूद्रे शठे द्विजे ।
एवेष्वेव न दातव्यमिदं शस्त्रं द्विजोत्तमैः ॥८।
एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत्
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा ह्यनृणो भवेत् ॥९।
एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिमन्यते ।
शुनां योनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वपि जायते ॥१०।
वेदं गृहीत्वा यः कश्चिच्छास्त्रञ्चैवावमन्यते ।
स सद्यः पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम् ॥११
स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे सन्तोऽपि मानवाः ।
प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिता ॥१२
कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः ।
प्रतिग्रहोऽध्यापनञ्च याजनञ्चेति वृत्तयः ॥१३
क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः ।
शस्त्रोपजीवनं भूतरक्षणंचेति वृत्तयः ॥१४

द्विजों में श्रेष्ठतम इस शास्त्र को अकुलीन चरित्रहीन, जड़ शूद्र शठ ब्राह्मण को नहीं पढावें या बतावे ॥८॥ यदि गुरु शिष्य को एक भी अक्षर का ज्ञान प्रदान करे तो उस शिष्य के लिये इस पृथ्वी में तो ऐसा कोई भी द्रव्य नहीं है जिसे अपने गुरु की भेंट कर उऋण हो सके ॥९॥ एक भी अक्षर ज्ञान प्रदान करने वाले गुरु का जो सत्कार नहीं करता है वह

कुत्ते की योनि में सौ बार जन्म लेकर फिर चाण्डाल के घर में भी जन्म ग्रहण करता ।। १० ।। वेद की शिक्षा प्राप्त करके भी यदि कोई शास्त्र का तिरस्कार करता है तो वह तुरन्त ही पशुता को प्राप्त हो जाता है और इक्कीस बार वही जन्म धारण किया करता है ।। ११ ।। अपने कर्मों को करते हुए मनुष्य यदि दूर देश में भी रहते हैं तो भी स्वकर्म में निष्ठित लोग सब के प्रिय हो रहते हैं ।। १२ ।। ब्राह्मण का कर्म यजन, दान, तप, अध्ययन, प्रतिग्रह और अध्यापन होता है और याजन उसकी वृत्ति है ।। १३ ।। क्षत्रिय का भी यजन, दान, अध्ययन और तपश्चर्या है । शास्त्रा से उपजीवन चलाना और प्राणियों की रक्षा करना उसकी वृत्तियाँ हैं ।।१४।।

दानमध्ययनं वार्ता यजनं चेति वै विशः ।
शूद्रस्य वार्ता शुश्रूषा द्विजानां कारुकर्म च ।।१५
मयैष धर्मोऽभिहितः संस्थिता यत्र वर्णितः ।
बहुमानविह प्राप्य प्रयान्ति परमां गतिम् ।।१६
ते व्यपेताः स्वधर्मभ्य परधर्मे व्यवस्थिता. ।
तेषां शास्तिकरो राजा स्वर्गलोके महीयते । १७
आत्मीये संस्थितो धर्मे शूद्रोऽपि स्वर्गमश्नुते ।
परधर्मो भवेत्त्याज्यः सुरूपपरदारवत् ।।१८
बध्यो राज्ञा स वै शूद्रा जपहोमपरश्च यः ।
ततो राष्ट्रस्य हन्ताऽसौ यथा वह्नेश्च वै जलम् ।।१९
प्रतिग्रहोऽध्यापनञ्च तथाऽविक्रेयविक्रयः ।
याज्यं चतुर्भिरप्येतैः क्षत्त्रविट्पतनं स्मृतम् ।।२०
सद्यः पतित मांसेन लाक्षया लवणेन च ।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ।।२१

वैश्य का कर्म दान, अध्ययन, वार्ता और यजन होता है । शूद्र का कर्म वार्ता, द्विजातियों की सेवा और शिल्प कार्य है ।। १५ ।। मैंने वर्ण वालों का धर्म कह दिया है जो कि उन्हें उचित रूप से करना

चाहिए । इस संसार में स्वकर्म में रत वर्ण बहुमान प्राप्त होते हैं ॥१६॥ जो अपने धर्म से दूर हटकर पराये धर्म में व्यवथित हो जाते हैं उनके ऊपर शासन करने वाला राजा ही होता है जो उन्हें स्वकर्मरत करावे । ऐसा राजा स्वर्ग मे प्रतिष्ठित होता है ॥१७॥ अपने धर्म में स्थित रहने वाला शूद्र भी स्वर्ग की प्राप्ति करता है । पराया धर्म तो सर्वदा सुन्दर स्वरूप वाली पराई स्त्री के सान त्यागने के ही योग्य होता है ॥१८॥ जो शूद्र जप और होम करने वाला हो वह राजा के द्वारा दण्ड देने के योग्य है । वह समस्त राष्ट्र का हनन करने वाला होता है जैसे जल अग्नि का नाश कर देता है ॥ १९ ॥ दान लेना, वेद पढ़ाना तथा न बेचने के योग्य वस्तुओं को बेचना और यज्ञादि कराना ये चारों काम क्षत्रिय और वैश्य का पतन कर देने वाले बताये गये हैं ॥ २० ॥ मांस लाख और नमक के बेचने से ब्राह्मण तुरन्त ही पतित होते हैं । दूध के बेचने से ब्राह्मण तीन ही दिन में शूद्र हो जाता है ॥२१॥

अव्रताश्च नधीयाना यत्र भैक्षचराद्विजाः ।
तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चौरभक्तप्रदं बुधैः ॥२२
विद्वद्भोज्यमविद्वांसो येषु राष्ट्रेषु भुञ्जते ।
तेऽप्यनावृष्टिमिच्छन्ति महद्वा जायते भयम् । २३
ब्राह्मणान् वेदविदुषः सर्वशास्त्रविशारदान् ।
तत्र वर्षति पर्जन्यो यत्रैतान् पूजयेन्नृपः ॥२४
त्रयो लोकास्त्रयो वेदा आश्रमाश्च त्रयोऽग्नयः ।
एतेषां रक्षणार्थाय ससृष्टा ब्राह्मणाः पुरा ॥२५
उभे सन्ध्ये समाधाय मौनं कुर्वन्ति ये द्विजाः ।
दिव्यवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥२६
य एवं कुरुते राजा गुणदोषपरीक्षणम् ।
यशः स्वर्गं नृपत्वञ्च पुनः कोष समृद्धयेत् । २७
दुष्टस्य दण्डः सुजनस्य पूजा न्यायेन कोषस्य च संप्रवृद्धिः ।
अपक्षपातोऽर्थिषु राष्ट्ररक्षाःपञ्चैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम्॥२८

जहाँ बिना व्रत वाले और बिना अध्ययन वाले द्विज भिक्षा किया करते हैं उस ग्राम को राजा के द्वारा दण्ड देना चाहिए क्योंकि वुधों को वह चोर भक्त प्रद होता है ॥२२॥ जिन राष्ट्रों में विद्वानों के भोज्य को मूर्ख अविद्वान् लोग उपभाग में लाते हैं वे वहाँ अनावृष्टि कराना चाहते हैं या कोई महापाप वहाँ उत्पन्न कराना चाहते हैं ॥२३॥ समस्त शास्त्रों के पण्डित तथा वेद के विद्वान ब्राह्मणों को जहाँ राजा पूजन से सत्कृत करता है वहां पर्जन्य यथाभीष्ट जल बरसाता है ॥२४॥ तीन वेद, तीन लोक, तीन आश्रम और तीन अग्नि इनकी रक्षा के लिये ही पहिले ब्राह्मणों की सृष्टि की गई है ॥ २५ ॥ दोनों सन्ध्याओं में समाधिस्थ रहकर जो ब्राह्मण मौन धारण किया करते हैं वे दिव्य एक हजार वर्ष पर्यन्त स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित रहते हैं ॥ २६ ॥ जो क्षत्रिय राजा इस प्रकार करता है और गुण दोष का भली भांति परोक्षण करता है वह यश, स्वर्ग और नृप का धर्म तथा पुनः कोष की समृद्धि किया करता है ॥२७॥ राजा के लिये दुष्टों को दण्ड देना, सज्जन पुरुष का सत्कार करना, न्यायपूर्वक अपने कोष की वृद्धि करना, याचना करने वालों में पक्षपात का न होना तथा अपने राष्ट्र की रक्षा करना ये पाँच ही यज्ञ बताये गये हैं ॥२८॥

यत् प्रजापालने पुण्यं प्राप्नुवन्तीह पार्थिवाः ।
न तु क्रतुसहस्रेण प्राप्नुवन्ति द्विजोत्तमाः ॥२९
अलाभे देवखातानांहृदेषु च सरःसु च।
उद्धृत्य चतुरः पिण्डान् पारके स्नानमाचरेत् ॥३०
वसाशुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रविट् कर्णविण्णखाः ।
श्लेष्मास्थि दूषिकाः स्वेदो द्वादशते नृणां मलाः ॥३१
षण्णां षण्णां क्रमेणैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ।
मृद्वारिभिश्च पूर्वेषामुत्तरेषान्तु वारिणा ॥३२
शौचमङ्गलनायासाअनसूयाऽस्पृहा दमः ।
लक्षणानि च विप्रस्य तथा दानं दयापि च ॥३३

न गुणान् गुणनोहन्ति स्तौति चान्यान् गुणानपि ।
न हसेच्चान्नदोषांश्च सानसूया प्रकीर्तिता ।।३४
अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितै। ;
आचारेषु व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते ।।३५

राजा लोग जो अपनी प्रजा के प्रतिपालन करने में जिस पुण्य की प्राप्ति करते हैं ब्राह्मण वृन्द सहस्र क्रतु(यज्ञ करने पर भी उतना पुण्य नहीं पा सकते हैं ।।२९।। देवखात, हृदय और सरों के प्राप्त न होने पर चार पिण्डों का उद्धरण कर पारक में ही स्नान कर लेना चाहिए ।। ३० ।। वसा, वीर्य रक्त मज्जा, मूत्र, कर्णविट, नख कफ, हड्डी, दूषिक और स्वेद ये बारह मनुष्यों के मल होते हैं ।।३१।। मनीषी लोगों ने बारहों में छै छै की मिट्टी और जल से शुद्धि बतलाई है। पहिले छै की मिट्टी और जल दोनोंसे तथा पिछले छै को केवल-जल से शुद्धि होती है ।।३२।। शौच, मंगल, अनायास, अनसूया, अस्पृहा, दम दया और दान ये ब्राह्मण के लक्षण सोते हैं ।।३३।। जो किसी भी गुणी के गुणों का हनन नहीं करते हैं और अन्य के गुणों की भी प्रशंसा किया करते हैं तथा अन्य के दोषों पर हास नहीं करते हैं वे अनसुया कहे जाते हैं, ।।३४।। जो वस्तु अभक्ष्य है उसका त्याग करना और निन्दा रहित सत्पुरुषों के साथ संसर्ग रखना और आचारों में पूर्णतया व्यवस्थित रहना ही शौच कहलाता है ।।३५।।

प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशप्रशस्तविवर्जनम् ।
एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तमृषिभिर्धर्मदर्शिभिः ।।३६
शरीरं पाडयते येन शुभेन त्वशुभेन वा ।
अत्यन्तं तन्न कुर्व्वीत अनायासः स उच्यते ।।३७
यथोत्पन्नेन कर्त्तव्यं सन्तोषः सर्ववस्तुषु ।
न स्पृहेत् परदारेषु साऽस्पृहा परिकीर्त्तिता ।।३८
वाह्यमध्यात्मिकं वाऽपि दुःखमुत्पाद्यतेऽपरैः ।
न कुप्यन्ति न चाहन्ति दम इत्यभिधीयते ।।३९

अहन्यहनि दातव्यमदानेनन्तरात्मना ।
स्तोकादपि प्रयत्नेन दानमित्यभिधीयते ।।४०
परस्मिन् बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा ।
आत्मवद्वर्त्तितव्यं हि दयैषा परिकीर्त्तिता: ।।४१
यश्चैतैर्लक्षणैर्युक्तो गृहस्थोऽपि भवेद्द्विजा ।
स गच्छति परं स्थान जायते नेह वै पुनः ।।४२

नित्य प्रशस्त अपना आचरण रखना और जो बुरा है उस आचरण का त्याग करना यही धर्म के देखने वाले ऋषियों ने मङ्गल बतलाया है ।।३६।। जिस कर्म से चाहे वह शुभ हो या अशुभ हो, अपने शरीर को पीड़ा होती है उस कर्म को अत्यधिक नहीं करना चाहिए । यही अनायास कहा जाता है । ।।३७।। जो भी स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो ऐसा सभी वस्तुओं में सन्तोष करना चाहिए । पराई स्त्रियों की कभी चाह न करे । यही अस्पृहा कही जाती है ।। ३८ ।। दूसरों के द्वारा बाह्य अथवा आध्यात्मिक यदि कुछ दुःख उत्पन्न किया जावे तो उस पर क्रोध न करना तथा न आहनन करना ही दम कहा जाता है ।। ३९ ।। अदीनता पूर्वक उदार मन से प्रतिदिन कुछ न कुछ देना ही चाहिए । चाहे कुछ थोड़ा भी हो उसमें से भी ही उसमें से भी प्रयत्नपूर्वक देना ही दान कहलाता है ।।४० । दूसरे में, बन्धुवर्ग में, मित्र मे और अपने से द्वेष रखने वाले में जो आत्मवत् व्यवहार करता है वही दया कही गई है ।। ४१।। इस प्रकार के लक्षणों से जो द्विज युक्त होता है, वह चाहे गृहस्थाश्रमी ही क्यों न हो, वह अवश्य ही परम गति को प्राप्त होता है और फिर इस संसार मे जन्म नहीं लेता है ।।४२।।

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानाञ्चैव पालनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ।।४३
वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च ।
अन्नप्रदानमारामाः पूर्त्तमित्यभिधीयते ।।४४
इष्टं पूर्त्तं प्रकर्त्तव्यं ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ।
इष्टेन लभते स्वर्गं मोक्षमवाप्नुयात् ।।४५

इष्टापूर्त्तौ द्विजातीनां सामान्यौ धर्मसाधनौ।
अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्त्ते धर्मे न वैदिके ॥४६
यमान् सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः।
यमाम् पतत्यकुर्व्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥४७
आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दानमाजवम्।
प्रीतिः प्रसादो माधुर्य्यं मार्दवञ्ज यमा दश ॥४८
शोचमिज्या तपोदानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः।
व्रतमौनोपवासाश्च स्नानञ्च नियमा दश ॥४९

अग्निहोत्र, तप सत्य, वेदों का पालन करना, अतिथि सत्कार और बलि वैश्वदेव करना यही इष्ट कहा जाता है ॥४३॥ बावड़ो, कुआ, तालाब, देव मन्दिर बनवाना, अन्न दान करना और बाग लगाना—यह पूर्त्त कहा जाता है ॥४४॥ ब्राह्मण को इष्ट और पूर्त्त दोनों ही प्रयत्नपूर्वक करने चाहिए। इष्ट के करने से स्वर्ग मिलता है और पूर्त्त के करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥४४॥ इष्ट और पूर्त्त ये दोनों द्विजातियों के सामान्य धर्म साधन हैं। अधिकारी वैदिक पूर्त्त धर्म के न करने पर शूद्र हो जाता है ॥४६॥ बुध पुरुष को यम और नियमों का नित्य ही सेवन करना चाहिए। केवल नियमों का ही पालन करते वाला यमों को न करने वाला पुरुष हो तो उसका पतन हो जाता है ॥४७॥ क्रूरता का न करना, क्षमा रखना, सत्य भाषण तथा सत्य का व्यवहार रखना, अहिंसा दान, सरलता, प्रीति, प्रसन्नता, मधुरता और कोमलता ये दश यम कहलाते हैं ॥४८॥ शोच, इज्या, तप, दान स्वाध्याय, उपस्थ (जननेन्द्रिय) का निग्रह, व्रत, मौन, उपवास और स्नान करना ये दश नियम कहे जाते हैं ॥४९॥

प्रतिकृतिं कुशमयीं तीर्थवारिषु मज्जयेत्।
यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टभागं लभेत् सः ॥५०
मातरं पितरं वाऽपि भ्रातारं सुहृदं गुरुम्।
यमद्दिश्य निमज्जेत् द्वादशांशफलं लभेत् ।'५१

अपुत्रेणैव कर्त्तव्य पुत्रप्रतिनिधिःसदा ।
पिण्डोदकक्रियाहेतोर्यस्मात्तस्मात् प्रयत्नतः ।।५२
पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम् ।
ऋणमस्मिन् संनयति अमृतत्वञ्च गच्छति ।।५३
जातमात्रेणपुत्रेण पितृणामनृणी पिता ।
तदह्नि शुद्धिमाप्नोति नरकात्त्रायते हि सः ।।५४
जायन्ते बहवः पुत्रा यद्यर्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।
यजते चाश्वमेधञ्च नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।।५५
कांक्षन्ति पितरः सर्वे नरकान्तरभीरवः ।
गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ।।५६

कुश की विरचित प्रतिकृति को तीर्थ के जल में मज्जन करावे जिसका उद्देश्य लेकर निमज्जन करे उसका अष्ट भाग वह प्राप्त करता है ।।५०।। माता, पिता, भाई, सुहृद, गुरु—इनमें जिसको भी उद्देश्य करके निमज्जन करे तो द्वादशांश फल प्राप्त करे ।।५१।। जिसके पुत्र न हो उसे पुत्र प्रतिनिधि सदा करना चाहिए। जिस किसी से भी प्रयत्नपूर्वक पिण्डादक क्रिया के लिये यह करना अत्यावश्यक है ।।५२।। यदि पिता जीवित जन्म लेने वाले पुत्र का मुख देखता है तो इस संसार में ऋण को चुका देता है और अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है ।।५३।। पुत्र के उत्पन्न होने मात्र से ही पिता अपने पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है। जिस दिन शुद्धि को प्राप्त होता है वह नरक से रक्षा कर देता है ।।५४।। पुत्र तो अधिक संख्या में उत्पन्न होते है किन्तु उन सबमें एक भी कोई यदि गया का चला जावे तो वह अश्वमेध यज्ञ का यजन करता है तथा नील वृषभ का उत्सर्ग करता है ।।५५।। नरकों से भयभीत पितर सभी यह इच्छा रक्खा करते हैं कि जो पुत्र गया जायगा वही हमारा त्राण करने वाला होगा ।५६।।

फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ।
गयाशीर्षं पदाऽऽक्रम्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ।।५७

महानदीमुपस्पृश्य तर्पयेत् पितृदेवताः ।
अक्षयान् लभते लोकान् कुलञ्चैव समुद्धरेत् ।।५८
शकास्थाने समुत्पन्ने भक्ष्यभोग विवर्जते ।
आहारशुद्धि वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ।।५९
अक्षारलवणां भैक्षं पिवेद्ब्राह्मीं सुवर्च्चसम् ।
त्रिरात्रं शंखपुष्पीरबा ब्राह्मणः पयसा सह ।।६०
मद्यभाण्डाद्द्विजः कश्चिदज्ञानात् पिवते जलम् ।
प्रायश्चित्तं कथं तस्य मुच्यते केन कर्मणा ।।६१
पलासविल्वपत्राणि कुशान् पद्मान्युदुम्बरम् ।
क्वाथयित्वा पिबेदापस्त्रिरात्रेणैव शुद्धयति ।।६२
सायं प्रातस्तु यः सन्ध्यां प्रमादाद्विक्रमेत् सकृत् ।
गायत्र्यास्तु सहस्रं हि जपेत् स्नात्वा समाहितः ।।६३

मनुष्य गया में फल्गु तीर्थ में स्नान करके गदाधर देव के दर्शन करके गया शीर्ष को पैरों से आक्रमण करता है वह ब्रह्म हत्या से मुक्त हो जाता है ।।५७।। गया तीर्थ की महानदी के जल में उपस्पर्शन करके जो मनुष्य अपने पितरों तथा देवों का तर्पण करता है वह अक्षय लोकों की प्राप्ति करता है और अपने कुल का भी उद्धार कर देता है ।।५८।। भक्ष्य भोग से विवर्जित शङ्का का स्थान उत्पन्न होने पर मैं अब आहार की शुद्धि बतलाता हूँ सो तुम सब मेरे वचनों को भली भाँति सुनो ।।५९।। क्षार रहित लवण भैक्ष सुवर्चन ब्राह्मी को या शंखपुष्पी को तीन दिन तक दूध के साथ ब्राह्मण को पीना चाहिए ।।६०।। यदि कोई ब्राह्मण मद्य के बरतन से अज्ञानपूर्वक जल पीवे तो उसका प्रायश्चित किस कर्म के करने से किस तरह होता है जिससे कि उस पाप से मुक्ति हो ? ।।६१।। ढाक और बेल के पत्तों को, कुशा, कमल और गूलर का क्वाथ करके पीने से तीन रात्रि में शुद्धि हो जाती है ।।६२।। सायंकाल तथा प्रातःकाल की संध्या का जो प्रमाद से एक बार भी व्यतिक्रम करे तो समाहित होकर एक हजार गायत्री का जप स्नान करके करना चाहिए ।।६३।।

शोकाक्रान्तोऽथवा श्रान्तः स्थितः स्थितः स्नान जपाद्बहिः ।
ब्रह्मकूर्च्चं चरेद्भक्त्या दान दत्वा विशुद्धिचत । ६४
गवां श्रृङ्गोदके स्नात्वा महानद्युपसङ्गमे ।
समुद्रदर्शनेनैव व्यालदष्टः शुचिर्भवेत् । ६५
वृकश्वानश्रृगालैस्तु यदि दष्टश्च ब्राह्मणः ।
हिरण्योदकममिश्रं घृतं प्राश्य विशुद्धयति ।६६
ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जम्बुकेन वृकेण वा ।
उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिभवेत् ॥६७
सव्रतश्च शुना दष्टस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ।
सघृतं यावकं प्राश्य व्रतशेषं समापयेत् ॥६८
मोहात् प्रमादात् संलोभाद्व्रतभंगं तु कारयेत् ।
त्रिरात्रेणैव शुद्धचेत पुनरेव व्रती भवेत् । ६९
ब्राह्मणान्नं यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ।
दिनद्वयं तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुद्धयति । ७०

शोक से आक्रान्त हो अथवा थका हुआ तो बाहिर स्थित होकर स्नान-जप से तथा ब्रह्मकूर्च को भक्तिपूर्वक दान देकर करे तो शुद्धि होती है ॥६४॥ महानदी के उप सङ्गम में गायों के श्रृङ्गोदक में स्नान करके व्याल से दंष्ट पुरुष समुद्र के दर्शन से ही शुद्ध हो जाता है ॥६५॥ भेड़िया कुत्ता और गीदड़ के द्वारा यदि ब्राह्मण काट लिया जावे तो हिरण्योदक से संमिश्रित घृत पीकर विशुद्ध होता है ॥६६॥ यदि कोई ब्राह्मणी वृक कुत्ता तथा जम्बुक के द्वारा काट ली गई हो तो वह उदित हुए ग्रह नक्षत्रों को देख कर ही तुरन्त शुद्ध हो जाती है ॥६७॥ व्रतयुक्त पुरुष यदि कुत्ते से काट लिया गया हो तो वह तीन दिन तक उपवास करे और घृत के सहित यावक खाकर शेष व्रत पूर्ण करना चाहिए ॥६८॥ मोह से, लापरवाही से और लालच से यदि व्रत का भंग कर दे तो फिर वह तीन रात्रि तक प्रायश्चित्त करने से शुद्ध होकर पुनः व्रती हो जाता है ॥६९॥ द्विज यदि अज्ञान से उच्छिष्ट ब्राह्मण के अन्न को खा लेवे

तो रात्रि में शुद्ध होता है। क्षत्री और वैश्य की भी इसी प्रकार से शुद्धि होती है ॥७०॥

क्षत्रियान्नं यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतोद्विजः।
त्रिदात्रेण भवेच्छुद्धिर्यथा क्षत्रे तथा विशि ॥७१
अभोज्यान्नं यथा भुक्त्वा स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव व।
जग्ध्वा मांसमभक्ष्यन्तु सप्तरात्रं यवान् पिवेत् ॥७२
शुना चैव तु संस्पृष्टस्तस्य स्नानं विधीयते।
तदुच्छिष्टन्तु संप्राश्य षण्मासान् कृच्छ्रमाचरेत् ॥७३
असंस्पृष्टेन संस्पृष्ठः स्नानं तेन विधीयते।
तस्य चोच्छष्टमश्नीयात षण्मासान कृच्छमाचरेत् ॥७४
अज्ञानात् प्राच्य विण्मूत्र सुरासंस्पृष्टमेव च।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥७५
वपनं मेखला दण्डो भैक्षचर्यंव्रतानि च।
निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि। ७६
गृहशुद्धि प्रवक्ष्यामि अन्तःस्थशवदूषितात्।
प्रायोज्यं मृण्मयं भाण्डं सिद्धमन्नं तथैव च ॥७७

ब्राह्मण यदि अज्ञान से क्षत्रिय के उच्छिष्ट अन्न को खा ले तो वह तीन रात तक गायत्री का जप करने से शुद्ध होता है। इसी तरह क्षत्रिय और वैश्य भी होते हैं ॥७१॥ अभोज्य अन्न को, स्त्री और शूद्र के उच्छिष्ट को और अभक्ष्य मांस को खाकर सात दिन तक यवों को पीना चाहिए ॥७२॥ कुत्ता के द्वारा स्पर्श होने वाला शुद्धि के लिये स्नान करे यदि उसके उच्छिष्ट को खा लेवे तो छे मास तक कृच्छ्र व्रत करने पर शुद्धि होती है ॥७३॥ असंस्पृष्ट के द्वारा संस्पृष्ट हो तो उसे स्नान करना चाहिए, यदि उसका उच्छिष्ट खा लेवे तो छे मास तक कृच्छ्रव्रत करे ॥७४॥ अज्ञान से यदि मल तथा मूत्र खा लेवे और मदिरा से स्पर्श हुई वस्तु खा लेवे तो द्विजाति के तीनों वर्ण वालों का पुनः संस्कार होना चाहिए ॥७५॥ पुनः संस्कार कर्म में द्विजातियों के वपन, मेखला दण्ड, भिक्षाचरण और व्रत निवृत्त हो जाया करते हैं ॥७६॥ अन्तस्थ शव से

दूषित गृह की शुद्धि बताते हैं कि मिट्टी के पात्र और सिद्ध अन्न का प्रयोग करना चाहिए । ७७॥

गृहन्निष्क्रम्य तत्सर्वं गोमयेनोपलेपयेत् ।
गोमयेनोपलिप्याथ छागेनाघ्रापयेत् पुनः ॥७८
ब्राह्मैर्मन्त्रैस्तु पूतन्तु हिरण्यकुशारिभिः ।
तेनैवाभ्युक्ष्य तद्वेश्म शुद्धते नात्र संशयः ॥७९
राज्ञान्यै श्वपचैर्वापि बलाद्विचालितो द्विजः ।
पुनः कुर्वीत सस्कारं पश्चात् कृच्छ्रत्रयञ्चरेत् ॥८०
शुना चैव तु संस्पृष्टस्तस्य स्नानं विधीयते ।
तदुच्छिष्टन्तु मंप्राश्य यत्नेनकृच्छ्र माचरेत् ॥८१
अतः परं प्रवक्ष्यामि सूतकस्य विनिर्णयम् ।
प्रायश्चित्त पुनश्चैव कथयिष्याम्यतः परम् ॥८२
एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योग्निवेदसमन्वितः ।
त्र्यहात् केवलवेदस्तु निर्गुणो दशभिर्दिनैः ॥८३
व्रतिनः शास्त्रपूतस्य आहिताग्नेस्तथैव च ।
राज्ञस्तु सूतकं नास्ति यस्य चेच्छति ब्राह्मणः ॥८४

घर से निकल कर उस सबको गोबर से लीपना चाहिए, गोमय से लीप कर फिर बकरी से सुंघाना चाहिए ॥७८॥ हिरण्य (सोना), कुशा के जल से ब्राह्म मन्त्रों के द्वारा पवित्र घर को उसी जल से अभ्युक्षण करे तो घर शुद्ध हो जाता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥७९॥ राजा तथा अन्य श्वपचों के द्वारा बलपूर्वक विचलित किया हुआ द्विज पुनः शुद्धि के लिये अपना संस्कार करे और पीछे तीन कृच्छ्र व्रत करे ॥८०॥ कुत्ते को छू लेने पर स्नान द्वारा शुद्ध होना चाहिए । यदि कुत्ते का झूठा खा लिया जाय तो उसके प्रायश्चित स्वरूप कृच्छ्र व्रत करना आवश्यक है ॥८१॥ इसके आगे सूतक का विनिर्णय बतलाते हैं फिर उसके पीछे प्रायश्चित कहेंगे ॥८२॥ जो ब्राह्मण अग्नि और वेद दोनों से समन्वित होता है वह एक ही दिन में शुद्ध हो जाता है । जो केवल वेद से ही युक्त होता है वह तीन दिन में शुद्ध होता है और जो इन

दोनों गुणों से हीन होता है वह दश दिन में सूतक से शुद्धि प्राप्त करता है ।।८३।। व्रती, शास्त्र से पवित्र, अहिताग्नि और राजा को सूतक नहीं होता है । जिसको ब्राह्मण चाहता है उसे भी सूतक नहीं होता है ।।८४।।

ब्राह्मणो दशरात्रेण द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्य पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्धयति ।।८५
सपिण्डानान्तु सर्वेषां गोत्रजः सप्तपौरुषः ।
पिण्डाश्चोदक दानञ्च शावशौचं तथाऽनुगम् ।।८६
चतुर्थे दशरात्रं स्यात् षडहः पञ्चमे तथा ।
षष्ठे चैव त्रिरात्रं सप्तमे त्र्यहमेव वा ।।८७
अष्टमे दिनमेकं तु नवमे प्रहरद्वयम् ।
दशमे स्नानमात्रेण सूतके तु शुचिर्भवेत् ।।८८
मृतसूतके तु दासीनां पत्नीनाञ्चानुलोमिनाम् ।
स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते स्वामिनि यौनिकम् ।।८९
शवस्पृष्टतृतीयस्तु सचैलः स्नानमाचरेत् ।
चतुर्थे सप्तभक्ष्यं स्यादेष शावविधिः स्मृतः ।।९०
एकत्र संस्कृतानान्तु मातृणामेकभोजिनाम् ।
स्वामितुल्यं भवेच्छौचं विभक्तानां पृथक्पृथक् ।।९१

सामान्यतः ब्राह्मण दश रात्रि में, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है ।।८५।। सात पुश्त तक गोत्र में समुत्पन्न पुरुष अपने पिण्ड लोगों के लिये सपिण्ड दान तथा जलदान करे और उसे शव का आशौच भी होता है ।।८६।। चौथी पुस्त में सूतक दश रात्रि तक होता है । पाँचवीं में छैं दिन तक, छठी में तीन रात्रि तक सातवीं में भी तीन दिन तक, आठवीं में एक दिन, नवमी में दो प्रहर तक और दशमी में तो केवल स्नान कर लेने से ही शुद्धि सूतक में हो जाती है ।।८७ ८८।। मृत के सूतक में दासियों को और अनुलोम वाली पत्नियों को स्वामी के तुल्य ही शौच होता है और स्वामी के मरने

पर तो योनिक सूतक होता है ।।८९।। शव (मुर्दा) से स्पर्श किया हुआ तीसरा व्यक्ति वस्त्र सहित स्नान करे। चौथे को सप्त भैक्ष्य होना चाहिए। यही शव (मुर्दा से सबन्धित) विधि होती है ।।९०।। एक ही स्थान में संस्कार किये हुए एकजगह भोजन करने वाली माताओं का सभी के समान ही शौच होता है। जो पृथक्-पृथक् विभक्त होते हैं उनका पृथक् ही शौच भी होता है ।।९१।।

उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरं यच्चान्नं मृतसूतके।
पाचकान्नं नवश्राद्धं भुक्त्वाचान्द्रायण चरेत् ।।९२
सूतकान्नमधर्माय यस्तु प्राश्नातिमानवः ।
त्रिरात्रमुपवासः स्यादेकरात्रं जले वसेत् ।।९३
महायज्ञविधानन्तु न कुर्यान्मृतजन्मनि ।
होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा ।।९४
बालस्त्वन्तर्दशाहेतु पञ्चत्वं यदि गच्छति ।
सद्यएव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नैव सूतकम् ।।९५
कृतचूडस्तु कुर्वीत उदकं पिण्डमेव च।
स्वधाकारं प्रकुर्वीत नामोच्चारण मेव च ।।९६
ब्रह्मचारी यतिश्चैवं मन्त्रे पूर्वकृते तथा।
यज्ञ विवाहकाले च सद्यःशौचं विधीयते ।।९७
विवाहोत्सवयज्ञेष्वनन्तरामृतसूतके।
पूर्वसङ्कल्पितार्थस्य न दोषश्चात्रिरब्रवीत् ।।९८

ऊँटनी का दूध, अवी का दूध, मृत सूतक वाले का अन्न और पाचक का अन्न तता नवश्राद्ध को खाकर चान्द्रायण व्रत करे ।। ९२ ।। सूतक वाले का अन्न खाना अधर्म के लिए होता है इसे जो भी खा लेवे तो उसे तीन दिन तक उपवास करना चाहिए और एक रात्रि जल में वास करे ।।९३।। मृत सूतक और जात के शौच में मनुष्य को कभी भी महायज्ञ का विधान न करना चाहिए। इसमें सूखे हुये अन्न और फलों से केवल होम कर लेना चाहिए ।।९४।। दश दिन के अन्दर ही जन्मने

वाला बालक यदि मृत्युगत हो जावे तो तुरन्त ही स्नानादि करने पर शुद्धि हो जाया करती है। न वह प्रेत ही होता है और न उसका कोई सूतक ही लगता है ॥९५॥ जिसका चूड़ा संस्कार हो गया हो उसके लिये उदक दान तथा पिण्ड दान दोनोंही किये जाते हैं। स्वधाकार भी उसके लिये करे और उसके नाम का भी उच्चारण करे ॥९६॥ ब्रह्मचारी और यति पूर्वोक्त मन्त्र के करने पर तथा यज्ञ में और विवाह के समय में तुरन्त ही शुद्धि हो जाती है ॥९७॥ अत्रि मुनि ने कहा है कि विवाहोत्सव में और यज्ञ में तथा अनन्तमृत सूतक में पहिले से संकल्पित अर्थ वाले को कोई दोष नहीं होता है ॥९८॥

मृतसंजननादूर्द्धव सूतकादौ विधीयते।
स्पर्शनाचमानाच्छुद्धिः सूतकाञ्चेन्न सस्पृशेत् ॥९९
पञ्चमेऽहनि विक्षेयं सस्पर्शं क्षत्रियस्य तु।
सप्तमेऽहनि वैश्यस्य विज्ञेयं स्पर्शनं बुधैः ॥१००
दशमेऽहनि शूद्रस्य कर्त्तव्यं स्पर्शनं बुधैः।
मासेनैवात्मशुद्धिः स्यात् सूतके मृतके तथा ॥१०१
व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा।
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥१०२
व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः।
स्वाध्यायव्रतहीनस्य सततं सूतकं भवेत् ॥१०३
द्वे कृच्छ्रे परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्रमेव च।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं मातुः स्याद्दैतु सान्तपनं स्मृतम् ॥१०४
कुब्जवामनखञ्जेषु गर्हितेऽथ जडेषु च।
जात्यन्धबधिरेमूके न दोष परिवेदने ॥१०५

मृतक और संजनन से ऊर्ध्व में ही सूतकादि में विधान है। यदि सूतक वालों का स्पर्श न करे तो केवल स्पर्शन एवं आचमन करने ही से शुद्धि होती है ॥९९॥ क्षत्रिय का पांचवें दिन स्पर्श जानना चाहिए, वैश्य का सातवें दिन बुधों के द्वारा स्पर्श बताया गया है ॥ १०० ॥ शूद्र का

दशम दिन में स्पर्श करे। वैसे तो शूद्र की शुद्धि जनन तथा मृताशौच की एक मास में होती है ॥१०१॥ व्याधि से ग्रस्त, कदर्य, ऋण से ग्रसित, क्रिया से हीन, मूर्ख, स्त्री के द्वारा जीते हुये, व्यसनों में आसक्त चित्त वाला, नित्य पराधीनता में रहने वाले स्वाध्याय व्रत से हीन पुरुष का सर्वदा ही नित्य सूतक रहा करता है ॥१०२-१०३॥ परिवित्ति करने वाले को दो कृच्छ्र व्रत और कन्या को एक ही कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। माता के वेत्ता को अर्थात् परिवित्ता करने वाले पुरुष को कृच्छ्रातिकृच्छ्र, सान्तपन व्रत करना चाहिए ॥१०४॥ कुबड़ा, बौना, लंगड़ा, गर्हित, जड़ जन्म से ही अन्धा, बहिरा और गूंगा को परिवेदन करने में कोई दोष नहीं होता है ॥१०५॥

क्लीवे देशान्तरस्थे च पतिते व्रजितेऽपि वा।
योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥१०६
पिता पितामहो यस्य अग्रजो वापि कस्यचित्।
नाग्निहोत्राधिकारोऽस्ति न दोषः परिवेदने। १०७
भार्यामरणपक्षे वा देशान्तरगतेऽपि वा।
अधिकारी भवेत् पुत्रस्तथा पातकसंयुते ॥१०८
ज्येष्ठो भ्राता यदा नष्टो नित्यं रोगसमन्वितः।
अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शङ्खस्य वचनं यथा ॥१०९
नाग्नयः परिविन्दन्ति न वेदा न तपांसि च।
न च श्राद्धं कनिष्ठो वै विना चैत्राभ्यनुज्ञयं ॥११०
तस्माद्धर्मं सदा कुर्याच्छ्रुतिस्मृत्युदितञ्च यत्।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्च स्वर्गस्य साधनम् ॥१११
एकैकं वर्द्धयेन्नित्यं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत्।
अमावस्यां न भुञ्जीत एष चान्द्रायणोविधिः ॥११२

जो क्लीव हो, दूसरे देश में रहता हो, पतित हो, व्रजित अर्थात् संन्यस्त हो गया हो और योगशास्त्र में अभियुक्त हो गया हो उसके परिवेदन में भी कोई दोष नहीं होता है ॥१०६॥ जिस किसी का पिता,

पितामह या बड़ा भाई हो उसे अग्निहोत्र का अधिकार नहीं है और न परिवेदन में कोई दोष होता है ।। १०७ ।। भार्या के मरने के पक्ष में अथवा देशान्तर गत होने पर तथा पातकयुक्त होने पर पुत्र अधिकारी हो जाता है ।। १०८ ।। ज्येष्ठ भाई यदि नष्ट हो चुका हो अथवा नित्य ही रोग से युक्त रहता हो तो अनुज्ञा प्राप्त करके छोटा भाई भी करे– ऐसा शंख का वचन है ।।१०६।। अग्नि–वेद और तप–इनका परिवेदन नहीं होता है बिना आज्ञा के प्राप्त किये हुये कनिष्ठ को श्राद्ध नहीं करना चाहिये ।।११०।। इसलिए नित्य, नैमित्तिक, काम्य और जो स्वर्ग प्राप्ति का साधन धर्म हो तथा जिसका श्रुति एवं स्मृति ने प्रतिपादन किया हो उसे सदा करना चाहिए ।।१११। शुक्ल पक्ष में एक एक ग्रास बढ़ावे और कृष्ण पक्ष में एक-एक ग्रास घटावे तथा अमावस्या के दिन बिलकुल ही न खावे यही चान्द्रायण व्रत की विधि है ।।११२।।

एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।
त्र्यहं परञ्च नाश्नीयादतिकृच्छ्रं तदुच्यते ।।११३
इत्येतत् कथितं पूर्वंमहापातकनाशनम् ।
वेदाभ्यासरतं क्षान्तं महायज्ञक्रियापरम् ।।११४
न स्पृशन्तीह पापानि महापातकजान्यपि ।
वायुभक्षो दिवा तिष्ठेद्रात्रिञ्चैवाप्सु सूर्यदृक् ।।११५
जप्त्वा सहस्रं गायत्र्याः शुद्धिर्ब्रह्मबधादृते ।
पद्मोदुम्बरविल्वैश्च कुशाश्वत्थपलाशयोः ।।११६
एतेषामुदकं पीत्वा पर्णकृच्छ्रन्तदुच्यते ।
पञ्चगव्यञ्च गोक्षीरदधिमूत्रशकृद्घृतम् ।।११७
जग्ध्वा परेऽह्न्युपवसेदेष सान्तपनो विधि ।
पृथक्सान्तपनैर्द्रव्यैः षडहः सोपवासकः ।।११८
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनं स्मृतम् ।
त्र्यहं साह त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं भुङ्क्ते त्वयाचितम् ।।११९

तीस दिन तक एक-एक ग्रास खावे और पूर्ववत् तीन दिन तक तीन ग्रास खावे । इसके बाद कुछ न खावे । इसे अतिकृच्छ्र व्रत कहा जाता

है ॥११३॥ यह पूर्व पुरुषों ने महापातकों के नाश करने वाला व्रत बतलाया है। जो पुरुष वेदों के अभ्यास करने में रत हो, क्षान्तिवाला हो और महायज्ञों की क्रिया में परायण रहता हो उसे महापातकों से उत्पन्न भी पाप स्पर्श नहीं किया करते हैं। जो दिन मे सूर्य को देखता हुआ केवल वायु का भक्षण करके खड़ा रहे और रात में जल में खड़ा रहे तथा एक सहस्र गायत्री का जप करे तो ब्राह्मण के वध के अतिरिक्त समस्त पापों से शुद्धि हो जाती है ॥११४-११५॥ कमल, गूलर, बेल, कुशा, पीपल और ढाक के पत्तों के जल को पीवे तो इस व्रत को पर्ण कृच्छ कहा जाता है। गाय का दूध, दही, गामूत्र, गोबर और घृत का पञ्चगव्य खाकर दूसरे दिन उपवास करे तो इसका नाम सान्तपन व्रत है। सान्तपन व्रत में बतलाई हुई वस्तुओं को छै दिन तक उपवास के साथ ग्रहण करे तो एक सप्ताह में यह कृच्छ्र महासान्तन व्रत कहा गया है ॥११६-११९॥

त्र्यह परञ्च नाश्नोयात् प्राजापत्योविधिः स्मृतः ।
सायं तु द्वादशः ग्रासाः प्रातः पञ्चदश स्मृताः ॥१२०
अयाचिते चतुर्विंशः परेऽह्नचनशनं स्मृतम् ।
कुक्कुटाण्डप्रमाणं स्याद्यावद्यस्य मुखं विशेत् ॥१२१
एतद्ग्रासं विजानीयाच्छुद्ध्यर्थं कायशोधनम् ।
त्र्यहमुष्णं पिवदापस्त्र्यमुष्णं पिवेत् पयः ॥१२२
त्र्यहमुष्णं घृत पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रयम् ।
षट्पलानि पिवेदापस्त्रिपल तु पयः पिवेत् ॥१२३
पलमेकन्तु वै सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ।
दध्ना च त्रिदिनंभुंक्ते त्र्यह भुंक्ते च सर्पिषा ॥१२४
क्षीरेण तु त्र्यहं भुंक्ते वायुभक्षो दिनत्रयम् ।
त्रिपलं दधिक्षीरेण पलमेकं तु सर्पिषा ॥१२५
एतदेव व्रतं पुण्यं वैदिकं कृच्छ्रमुच्यते ।
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ २६

तीन दिन सायंकाल और तीन दिन प्रातःकाल जो अयाचित (न माँगा हुआ) खावे और इसके बाद तीन दिन फिर कुछ भी न खावे तो यह प्राजापत्य विधि कही गई है। सायङ्काल बारह ग्रास और प्रातःकाल पन्द्रह ग्रास बताये गये हैं ॥१२०॥ जो अयाचित हो उसके चौबीस ग्रास लेवे और दूसरे दिन बिल्कुल ही अनशन करे। ग्रास भी मुर्गे के अण्डे के प्रणाम का हो जितना कि मुख प्रवेश कर सके। यही ग्रास का विधान है जो शरीर के शोधन करने वाला तथा शुद्धि के लिये होता है ॥१२१-१२२॥ तीन दिन तक गर्म जल और तीन दिन एक दम गर्म दूध पीवे। तीन दिन गर्म घृत पीवे और तीन दिन तक केवल वायु का भक्षण करे। तीन पल तो दूध पीवे और छै पल जल पीना चाहिए ॥१२३। एक पल घृत पीवे। इस व्रत का नाम तप्त कृच्छ्र होता है। तीन दिन घृत और तीन दिन दूध लेवे और तीन दिन केवल वायु का भक्षण करे। दही और दूध तीन पल, घृत एक पल लेवे। यह बहुत ही पुण्यप्रद वैदिक कृच्छ्र व्रत होता है ॥१२४-१२६॥

उपावासेन चैकेन पादकृच्छ्रः प्रकीर्त्तित।
कृच्छातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम् ॥१२७
द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्त्तितः।
पिण्याकदधिशक्तूनां प्रतिवासरम् ॥१२८
एकैकमुपवासः स्यात् सौम्यकृच्छ्रः प्रकीर्तितः।
एषां त्रिरात्रसभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम् ॥१२९
तुलापुरुषइत्येषु ज्ञेयः पञ्चदशाहिकः।
कपिलागोस्तु दुग्धाया धरोष्णं यत्पयः पिवेत् ॥१३०
एष व्यासकृतः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत्।
निशायां भोजनञ्चैव तज्ज्ञेयं नक्तमेव तु ॥१३१
अनादिष्टेषु पापेषु चान्द्रायण मथोदितम्।
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टैर्द्विगुणदक्षिणैः ॥१३२
यत्फलं समवाप्नोति तथा कृच्छैस्तपोधनः।
वेदाभ्यासरतः क्षान्तो धर्मशास्त्राण्यवेक्षयेत् ॥१३३

शौचाचारसमायुक्तो गृहस्थोऽपि हि मुच्यते ।
उक्तमेतद्द्विजातीनां महर्षे ऽश्रूयतामिति ॥१३४

एक वक्त रात में अयाचित खावे और बाद में एक दिन उपवास करे तो पादकृच्छ्र होता है। कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत उसे कहते हैं जिसमें इक्कीस दिन तक दूध ही लेकर रहे। बारह दिन तक जिस में उपवास किया जावे उसे पराक व्रत कहा गया है ॥१२७॥ प्रतिदिन पिण्याक, दधि, और सत्तू का ग्रास लेवे और एक-एक उपवास भी करे तो यह सौम्य कृच्छ्र कहा जाता है। क्रम से एक--एक का इनमें से तीन रात्रि तक अभ्यास करने से यह पन्द्रह दिन वाला तुला पुरुष नाम वाला जानना चाहिए। कपिला गौ का धारोष्ण दूध जो पीता है, व्यास मुनि के द्वारा कृत यह कृच्छ्र व्रत है जो श्वपच को भी शोधित कर देता है। निशा में भोजन किया जावे उसे नक्त ही समझना चाहिए ॥११८-१२६॥ जो पाप अनादिष्ट अर्थात् नहीं बताये गये हैं उन सब में शुद्धि के लिये चान्द्रायण व्रत कहा गया है। अग्निष्टोमादि किये हुए यज्ञों से जो कि दुगुनी दक्षिणा वाले हों, जो फल प्राप्त होता है तपस्वी व्यक्ति उस उपर्युक्त कृच्छ्र व्रतों से ही प्राप्त कर लेता है ॥१३२॥ वेदों के अभ्यास में सर्वदा रत रहने वाला, शान्ति वाला और धर्म शास्त्रों का सदा अवलोकन करने वाला तथा शौच और आचार स युक्त गृहस्थ भी मुक्त हो जाता है। हे महर्षिवर! यह मैंने द्विजातियों के लिये बताये हैं सो तुम सुनो ॥१३३-१३४॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्त्रीशूद्रपतनानि च ।
जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मन्त्रसाधनम् ॥१३५
देवताराधनञ्चैव स्त्रीशूद्रपतानि षट् ।
जीवद्भर्त्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ॥१३६
आयुष्यं हरते भर्त्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ।
तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥१३७
शंकरस्यापि विष्णोर्वा प्रयाति परमं पदम् ।
जीवद्भर्त्तरि वामाङ्गी मृते वापि सुदक्षिणे । १३८

श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा ।
सोमः शौचं ददौ तासां गन्धर्वाश्च तथाङ्गिराः ॥१३९
पावकः सर्वमेध्यं च मेध्यं वै योषितां सदा ।
जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ॥१४०
विद्यया याति विप्रत्वं श्रोत्रियस्त्रिभिरेव च ।
वेदशास्त्राण्यधीते यः शास्त्रार्थञ्च निषेवते ॥१४१

अब इसके आगे स्त्री और शूद्र के पतन बतलाये हैं। जप—तीर्थ, तप प्रव्रज्या (संन्यास) और मन्त्रों का साधन तथा देवों की आराधना ये छः स्त्रियों और शूद्रों के पतन कहे जाते हैं । अपने स्वामी के जीवित रहने पर जो व्रताचार रखने वाली स्त्रीउपवास करती है वह अपने स्वामी की आयु का हरण किया करती है और अन्त में नरक में चली जाती है । तीर्थ स्नान की इच्छुक स्त्री को अपने पति के पैरों को धोकर वह जल पी लेना चाहिए । शिव तथा विष्णु का भी चरणामृत पीने से परम पद मिलता है । स्वामी के जीवित रहने पर वाम भाग में रहने वाली नारी अथवा मर जाने पर सुदक्षिण में रहने वाली स्त्री श्राद्ध, यज्ञ और विवाह में सदा ही दक्षिण भाग में रहती है । उनको चन्द्रमा शौच देता है और गन्धर्व तथा अङ्गिरा एवं पावक सर्व प्रकार की शुद्धता देते हैं अतः स्त्रियाँ सदा मेध्य (पवित्र) होती है ॥१३५-१३९॥ जन्म से ब्राह्मण होता है फिर जब उसके समस्त संस्कार होते हैं तो उनके होने पर वह द्विज कहा जाता है । विद्या प्राप्त कर लेने पर वह विप्र होता है और इन तीनों के द्वारा श्रोत्रिय कहा जाता है । जो वेदों और शास्त्रों को पढ़ता है और शास्त्रों के अर्थ का सेवन करता है तब वह वेदवित् अर्थात् वेदों का ज्ञाता कहा गया है । उसके वचन पवित्र करने वाले होते हैं ॥१४०-१४१॥

तदासौ वेदवित् प्रोक्तो वचनन्तस्य पावनम् ।
एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः ॥१४२
स ज्ञेयः परमो धर्मो नाज्ञानामयुतायुतैः ।
पावकाइव दीप्यन्ते जपहोमैर्द्विजोत्तमाः ॥१४३

प्रतिग्रहेण नश्यन्ति वारिणा इव पावकः।
तान् प्र तग्रहजान् दोषान् प्राणायामैर्द्विजोत्तमाः ॥१४४
उत्सादयन्ति विद्वांसो वायुर्मेघानिवाम्बरे।
भुक्त्वाचम्य यदा विप्र आर्द्रपाणिस्तु तिष्ठति ॥१४५
लक्ष्मीर्बलं यशस्तेज आयुश्चैव प्रहीयते।
यस्तु भोजनशालायामासनस्थ उपस्पृशेत् ॥१४६
तस्यान्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत्।
पात्रोपरिस्थितं पात्रं यः संस्थाप्य उपस्पृशेत् ॥१४७
तस्यान्ने नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणचरेत्।
न देवास्तृप्तिमायान्ति दातुर्भवति निष्फलम् ॥१४८

कोई एक भी वेदविद ब्राह्मण धर्म का निर्णय कर देवे तो उसे सबको अपना परम धर्म मान लेना चाहिए। ज्ञान से हजारों भी कहें तो उनके वचन पर विश्वास नहीं करे। द्विज श्रेष्ठ जप और होम से अग्नि की भाँति दीप्तिमान होते हैं ॥१४२-१४३॥ प्रतिग्रह लेने से पानी से अग्नि की भाँति द्विज नष्ट हो जाते हैं। उन प्रतिग्रह लेने से उत्पन्न दोषों को द्विज श्रेष्ठ विद्वान् प्राणायामों के द्वारा नष्ट कर दिया करते हैं जिस तरह वायु आकाश में घुमड़े हुए मेघों को नष्ट कर देता है। भुक्ति (भोजन) करके और आचमन करके विप्र यदि गीले हाथों से स्थित रहता है तो उसकी लक्ष्मी, बल, यश, तेज और आयु क्षीण हो जाते हैं ॥१४४-१४५॥ जो भोजन शाला में आसन पर स्थित होता हुआ उपस्पर्शन करता है उसका अन्न नहीं खाना चाहिए। यदि खा लेवे तो शुद्धि के लिये चान्द्रायण व्रत करे। पात्र के ऊपर पात्र रखकर जो उपस्पर्शन करे उसका अन्न नहीं खावे और खाकर चान्द्रायण करे। उसके देवता तृप्त नहीं होते हैं और दान देने वाले का वह दान भी निष्फल होता है ॥१४६-१४८॥

हस्तं प्रक्षाल्य यस्त्वापः पिवेद्भुक्त्वा द्विजोत्तमः।
तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरो गताः ॥१४९

नास्ति वेदात् परं शास्त्रं नास्ति मातुः गरो गुरुः ।
नास्ति दानात् परं मित्रमिह लोके परत्र च ॥१५०
अपात्रे ह्यपि यद्दत्तं दहत्यासप्तमं कुलम् ।
हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यञ्च पितरस्तथा ॥१५१
आयसेन तु पात्रेण यदन्ननुपदीयते ।
अन्नं विष्ठासमं भोक्तुर्दाता च नरकं व्रजेत् ॥१५२
इतरेण तु पात्रेण दीयमानं विचक्षणः ।
न दद्याद्वामहस्तेन आयसेन कदाचन ॥१५३
मृण्मयेषु च पात्रेषु यः श्राद्धे भोजयेत् पितॄन् ।
अन्नदाता च भोक्ता च तादेव नरकं व्रजेत् । १५४

जो द्विजोत्तम खाकर हाथ धोकर जल पीवे उसका अन्न असुरों ने ही खाया है और पितर तो निराश होकर चले जाते हैं ॥१४६॥ वेद से बड़ा कोई शास्त्र नहीं है और माता से बड़ा संसार में कोई गुरु नहीं है । दान से परम कोई मित्र (हितकारी) नहीं है। इस लोक और परलोक दोनों ही में दान से कल्याण एवं हित होता है ॥१५०॥ अपात्र को जो कुछ भी दान दिया जाता है वह सात पुश्त तक कुल को जला देता है । उसके हव्य को देवगण ग्रहण नहीं करते हैं और कव्य को पितृगण स्वीकार नहीं करते हैं ।।१५१।। लोहे के पात्र द्वारा जो अन्न दिया जाता है वह अन्न विष्ठा के समान होता है । उसको देने वाला तथा खाने वाला दोनों ही नरक को जाते हैं ॥१५२॥ दूसरे पात्रों से दिया हुआ भी बुद्धिमान पुरुष को बाँये हाथ से कभी नहीं देना चाहिए । लोहे के पात्र से भी न देवे ॥१५३॥ मिट्टी के पात्र में जो श्राद्ध में पितरों का भोजन करावे, वे अन्न के दाता और भोक्ता दोनों ही नरक में जाते हैं ॥१५४॥

अभावे मृण्मये दद्यादनुज्ञातस्तु तद्द्विजैः
तेषां वच प्रमाणं स्तादृतञ्चानृतमेव च ॥१५५
सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च ।
भिक्षादातुर्न धर्मोऽस्ति भिक्षुर्भुंक्ते तु किल्विषम् ॥१५६

न च कांस्येषु भञ्जीयादापद्यपि कदाचन ।
पलाशे यतयोऽश्नन्ति गृहस्थः कांस्यभाजने ॥१५७
कांस्यकस्य च यत्पापं गृहस्थस्य तथैव च ।
कांस्यभोजी यतिश्चैव प्राप्नुयात् किल्विषं तयो ॥१५८

यदि अन्य कोई भी पात्र न हो तो उनके अभाव में द्विजों की आज्ञा प्राप्त करके मिट्टी के पात्र में भी भोजन करा देवे। उनका वचन चाहे सत्य हो या मिथ्या हो सभी प्रमाण होता है ॥१५५॥ सुवर्ण, लोहा और ताम्र, काँसा चाँदी के निर्मित पात्रों में भिक्षा देने से भिक्षा देने वाले का कोई भी धर्म नहीं होता है और भिक्षुक भी पाप भोगता है ॥१५६॥ आपत्ति काल में भो कभी भी काँसे के पात्रों में भोजन नहीं करना चाहिए। यति लोग तो पलाश पत्र (ढाक) में खाते हैं और केवल गृहस्थ काँसे के पात्रमें खाता है ॥१५७॥ काँसे के पात्रमें भोजन करने वाले और गृहस्थ का जो भी पाप होता है उन दोनों का पाप काँसेके पात्र में भोजन करने वाला यति भोगता है ॥१५८॥

॥ अत्राप्युदाहरन्ति ॥

सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरोप्यमयेषु च ।
भुञ्जन् भिक्षुर्वैदुष्येत दुष्येच्चैवपरिग्रहे ॥१५९
यदिहस्ते जलं दद्याद्भिक्षां दद्यात् पुनर्जलम् ।
तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥१६०
चरेन्माधुकरीं वृत्तिमपि म्लेच्छकुलादपि ।
एकान्नं नैव भोक्तव्यं बृहस्पतिकुलादपि ॥१६१
अनापदि चरेद्यस्तु सिद्धं भैक्षं भक्षं गृहे वसन् ।
दशरात्रं पिवेद्व्रत्रमापस्तु त्र्यहमेव च ॥१६२
गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं घृतपाचितम् ।
एतद्व्रत्रमिति प्रोक्तं भगवानत्रिरब्रवीत् ॥१६३
ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः ।
अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षडेते भिक्षुकाः स्मृतः ॥१६४

यक्ष्मासान् कामयेन्मर्त्योगर्भिणीमेव च स्त्रियम् ।
आ दन्तजनादूर्ध्वमेव धर्मो विधीयते ।।१६५
ब्रह्महा प्रथमञ्चैव द्वितीयं गुरुतल्पगः ।
तृतीयन्तु सुरापोऽयं चतुर्थं स्तेयमुच्यते ।।१६६

इन सम्बन्ध में अन्य ऋषियों का भी कथन है कि सोना, लोहा, तांबा, काँसी, चाँदी के पात्र में भोजन करने से वह संन्यासी और सामिग्री दोनों दूषित हो जाते हैं ।।१५९।। पहले संन्यासी के हाथों को जल से धुलाकर उनमें ही भिक्षा दे और खा लेने पर फिर जल देने से वह अन्न मेरु पर्वत के समान तथा जल समुद्र के समान हो जाता है ।।१६०।। संन्यासी को एक स्थान से भिक्षा ग्रहण करना अत्यन्त गर्हित है चाहे वह दाता देवगुरु वृहस्पति ही क्यों न हो इसकी अपेक्षा म्लेक्ष वंश के यहाँ से भिक्षा ग्रहण करना उत्तम है ।।१६१।। जो संन्यासी बिना किसी विशेष आपत्ति काल के घर में रहकर वहां बना भोजन ग्रहण करता है वह दश रात्रि 'वज्र' और तीन दिन तक जल पीने से शुद्ध होता है ।।१६२।। जौ के आटे को घी में भून कर और गोमूत्र मिलाने से वज्र कहा जाता है, यह भगवान अत्रि का कथन् हैं।।१६३।। ब्रह्मचारी, संन्यासी, विद्यार्थी, गुरु का पालन करने वाला, मार्ग में चलने वाला, और बिना आजीविका वाला—ये ६ व्यक्ति भिक्षुक कहे जाते हैं ।।१६४।। गर्भ रहने के पश्चात् छः मास तक और संन्तानोत्पत्ति होने पर बच्चा को दाँत निकल आने के पश्चात् स्त्री-गमन करने से दोष नहीं लगता है ।।१६५।। सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् पहले मास स्त्री गमन करने से ब्रह्महत्या का, दूसरे गुरुतल्प गमन का, तीनरे मास मदिरापान का और चौथे मास चोरी का पाप लगता है ।।१६६।।

आपो गावतिलाभूमिगन्धो वास्तेयते तथा ।
पापानाञ्चैव संसर्गः पञ्चम पातकं महत् ।
एणामेव विशुद्ध्यर्थं चरेद्वर्षाण्यनुक्रमात् ।।१६७
त्रीणि कृच्छ्राण्यकामश्चे द्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
अर्द्धन्तु ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियेषु विधीयते ।।१६८

षड्भागो द्वादशश्चैव विट्शूद्रयोस्तथा भवेत् ।
त्रीन् नासान्नक्तमश्नीयाद्भूमौ शयनमेव च ॥१६९
स्त्रीघातः शुद्धयतेऽप्येवं चरेत् कृच्छाद्धमेव च ।
रजकः शैलुषश्चैव वेणुकर्मोपजीवनः ॥१७०
एतेशां यस्तु भुङ्क्ते वै द्विजश्चान्द्रायणञ्चरेत् ।
सर्व्वान्त्यजानां गमने भोजने सम्प्रवेशने ॥१७१
पराकेण विशुद्धिः स्याद्भगवानत्रिरब्रवीत् ।
चाण्डालभाण्डे यत्तोयं पीत्वा चैव द्विजोत्तमः ॥१७१
गोमूत्रयावकाहारः सप्तत्रिंशदहान्यपि ।
संस्पृष्टं यस्तु पक्वान्नमन्त्यजैर्वाऽप्युदक्ययः ॥१७०
अज्ञानाद्ब्राह्मणोऽश्नीयात् प्राजापत्यार्धमाचरेत् ।
चाण्डालान्नं यदा भुङ्क्ते चातुर्वर्णस्य निष्कृतिः ॥१७४
चान्द्रायणं चरेद्विप्रः क्षेत्रः सान्तपनं चरेत् ।
षड्रात्रमाचरेद्वैश्य पंचगव्यं तथैव च ॥१७५
त्रिरात्रमाचरेच्छूद्रो दानं दत्वा विशुद्धयति ।
ब्राह्मणो वृक्षमारूढश्चाण्डालो मूलसंस्पृशः ॥१७६

बिना रंग का वस्त्र, तिलक, भूमि पर अधिकार, सुगन्ध लगाना, पापियों का संसर्ग—ये पाँच कर्म संन्यास के लिये बड़े पातक स्वरूप हैं ॥१६७॥ इन पापों को शुद्धि के लिये तीन वर्ष कृच्छ्र व्रत करना चाहिये। जो ऐसा नहीं करता उसे ब्रह्म हत्या का पाप लगता है। यह ब्रह्म हत्या क्षत्रिय को आधी, वैश्य को छठा भाग और शूद्र को बारहवाँ भाग लगती है ॥१६८-१६९॥ स्त्री को हत्या करने पर तीन मास तक रात्रि में भोजन करे, पृथिवी पर शयन करे और एक वर्ष पर्यन्त कृच्छ्र व्रत करे, तो शुद्ध हो सकता है ॥१७०॥ धोबी, नट, बाँस के काम से आजीविका कमाने वालों का अन्न खाने पर ब्राह्मण को चान्द्रायण व्रत द्वारा प्रायश्चित करना चाहिये ॥१७१॥ अंत्यजों के साथ चलने फिरने, भोजन करने, पास बैठने से जो पाप लगता है उसका प्राय-

श्चित स्वरूप पराक व्रत करना चाहिये ।।१७२।। अगर ब्राह्मण चाण्डाल के पात्र का जल पीले तो उसे शुद्धि के लिये ७३ दिन तक गोमूत्र और जौ खाने चाहिये ।।१७३।। अन्त्यज अथवा रजस्वला के छुये हुये पक्वान्न को यदि ब्राह्मण भूल से खाले तो उसे आधा प्राजापत्य व्रत करना चाहिने ।।१७४।। चाण्डाल का अन्न खा लेने पर चारों वर्णों के व्यक्तियों के लिये यह प्रायश्चित है कि ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत, क्षत्रिय पराक व्रत करे। वैश्य छः दिन तक पंचगव्य भक्षण करे और शूद्र तीन दिन तक। शूद्र दान देकर भी शुद्ध हो जाता है ।।१७५-१७६।।

फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्त कथं भवेत् ।
ब्राह्मणान् समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ।।१७७
नक्तभोजी भवेद्विप्रो घृतं प्राश्य विशुद्धचति ।
एकवृक्षसमारूढश्चाण्डालो ब्राह्मणस्तथा ।।१७८
फलान्यत्ति स्थितं तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।
ब्राह्मणान् समनुज्ञाप्य सवासा। स्नानमाचरेत् ।।१७९
अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्धचति ।
एकशाखासमारूढश्चाण्डालो ब्राह्मणो यदा ।।१८०
फलान्यत्ति स्तित्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्धचति ।।१८१
स्त्रिया म्लेच्छस्य सम्पर्काच्छुद्धि। सान्तपने तथा ।
तप्तकृच्छ्रं पुनः कृत्वा शुद्धिरेषाऽभिधीयते ।।१८२
सम्वर्तेत यथा भार्यां गत्वा म्लेच्छस्य सङ्गताम् ।
सचैलं स्नानमादाय घृतस्य प्राशनेन च ।।१८३

यदि ब्राह्मण किसी वृक्ष के ऊपर चढकर फल खा रहा हो और चाण्डाल नीचे खड़ा उसके मूल को छू रहा हो तो उसका क्या प्रायश्चित है ? इसके लिये ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर वस्त्रों सहित स्नान करके दिन भर उपवास रखे और रात्रि को भोजन करके घी खावे तो वह शुद्ध हो

सकता है ॥१७७-१७८॥ यदि चाण्डाल और ब्राह्मण एक ही पेड़ पर चढे फलों को खा रहे हों तो इसके प्रायश्चित्त के निमित्त ब्राह्मणों से आदेश ग्रहण करके सवस्त्र स्नान करे और एक रात्रि उपवास करके पंचगव्य पिये तो दोष दूर हो सकता है ॥१७९-१८०॥ यदि ब्राह्मण और चाण्डाल एक ही शाखा पर चढे फल खा रहे हों तो इसके प्रायश्चित् के लिए तीन रात्रि तक उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्धि होती है और म्लेच्छ स्त्री के साथ सम्पर्क रखने से सांतपन कृच्छ्र व्रत द्वारा शुद्ध होता है ॥ १८१-१८२ ॥ फिर तप्त कृच्छ् व्रत करे, यह शास्त्र का आदेश है। म्लेच्छ से जिसका सम्पर्क हुआ है ऐसी अपनी स्त्री के साथ जो गमन करता है उसे शुद्धि के लिए वस्त्रों सहित स्नान करे और केवल घृत खावे और नदी के जल में स्नान करे॥ १८३ ॥

स्नात्वा नद्युदकैश्चैव घृतं प्राश्य विशुद्धयति ।
संगृहीतामपत्यार्थं मन्यैरपि तथा पुनः ॥१८४

चाण्डालम्लेच्छश्वपचकपालव्रातधारिणः ।
अकामतः स्त्रियो गत्वा पराकेण विशुद्धयति ॥१८५
कामतस्तु प्रसूतो वा तत्समो नत्रसंशयः ।
स एव पुरुषस्तत्र गर्भो भूत्वा प्रजायते ॥१८६
तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तो विण्मूत्रं कुरुते द्विजः ।
तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तश्चाण्डालं स्पृशते द्विज ॥१८७

अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्धयति ।
केशकीटनखस्नायु अस्थिकण्टकमेव च ॥१८८
स्पृष्ट्वा नद्युदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुद्धयति ।
मत्स्यास्थिजम्बुकास्थीन नखशुक्तिकपर्दिकाः ॥१८९
स्पृष्ट्वा स्नात्वा होमतप्तघृतं पीत्वा विशुद्धयति ।
गोकुले कन्दुशालायां तैलचक्रे क्षुचक्रयोः ॥१९०
अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीणाञ्च व्याधितस्य च ॥१९१

संतान के लिए अन्य मनुष्यों द्वारा ग्रहण की हुई स्त्री का संग करके अथवा चाण्डाल, म्लेच्छा, श्वपच अघोरी की स्त्रियों के साथ बिना इच्छा के गमन करने पर पराक द्वारा शुद्ध होना चाहिये ॥१८४-१८५॥ पर यदि ऐसी स्त्रियों का संग इच्छापूर्वक किया जाय और उनके सन्तान भी उत्पन्न की जाय तो वह व्यक्ति पतित होकर उन्हीं की जाति का हो जाता है, क्योंकि पुरुष ही गर्भ रूप होकर उत्पन्न होता है ॥१८६-१८७॥ जो द्विज तेल या घी की मालिश करके शौच या लघुशंका को जाता है अथवा चाण्डाल का स्पर्श कर लेता है वह दिन रात का पूरा उपवास करके पचगव्य पीने पर शुद्ध हो सकता है। केश, कीट मछली, गीदड़ की हड्डी, नख, सीप और कौड़ी इनके स्पर्श से जो दोष होता है, उसके लिए हवन का बचा उष्ण घी पी लेना चाहिए। गोशाला, भड़भूजा का भाड़, तेल निकालने का कोल्हू गन्ना के कोल्हू, में और स्त्रियों के रोग की अवस्था में शुद्धता का विचार नहीं किया जाता ॥१८८-१९१॥

नाऽपो मूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा।
पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववह्निभिः ॥१९२
भुञ्जते मानवाः पश्चान्न ता दुष्यन्ति कर्हिचित्।
असवर्णस्तु यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते ॥१९३
अशुद्धा सा भवेन्नारी यावद्गर्भं न मुञ्चति।
विमुक्ते तु ततः शल्ये रजश्चापि प्रदृश्यते ॥१९४
तदा सा शुद्ध्यते नारी विमलं काञ्चनं यथा।
स्वयं विप्रतिपन्ना या यदि वा विप्रतारिता ॥१९५
बलान्नारी प्रभुक्ता वा चौरभुक्ता तथाऽपि वा।
न त्याज्या दूषिता नारी न कामोऽस्या विधीयते ॥१९६

मूत्र, विष्टा आदि का स्पर्श हो जाने से हल और शव आदि का दाह करने से अग्नि अशुद्ध नहीं हो सकती। इसी प्रकार स्त्रियों को पहले चन्द्रमा, गन्धर्व तथा अग्निदेव द्वारा भोगा हुआ कहा गया है,

तत्पश्चात् मनुष्य उन्हें भोगता है, यह शास्त्र का वचन है। इसके अनुसार स्त्रियाँ कभी दूषित नहीं होतीं। यदि कभी परिस्थितिवश वे अन्य वर्णों के पुरुष से गर्भ धारण करलें तो वे तभी तक अशुद्ध मानी जाती हैं जब तक वह गर्भ बना रहता है। गर्भ के त्यागने और प्रथम बार मासिक धर्म हो जाने पर वे फिर पूर्ववत् सर्वदा शुद्ध और निर्मल हो जाती हैं जैसे आग में तपाने से सोना निखर जाता है। यदि स्त्री का सम्पर्क किसी व्यक्ति से हो गया हो अथवा किसी ने उसे बहका लिया हो, अथवा किसी ने बल पूर्वक या चोरी से उसका सतीत्व भंग किया हो, तो उस स्त्री का त्याग करना उचित नहीं है, क्योंकि वह दुष्कर्म उसकी इच्छा से नहीं किया गया है ॥१९१-१९६॥

ऋतुकाल उपासीत पुष्पकालेन शुद्धयति।
रजकश्चर्मकारश्च नटो वुरुड एव च ॥१९७
कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते चान्त्यजा स्मृताः।
एषां गत्वा स्त्रियो मोहाद्भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ॥१९८
कृच्छाद्धमाचरेज्ज्ञानानज्ञानादैन्दवद्वयम्।
सकृद्भुक्ता तु या नारी म्लेच्छैर्या पापकर्मभिः ॥१९९
प्राजापत्येन शुद्धयेत ऋतुप्रसवणेन तु।
बलाद्धृता स्वयं वाऽपि परप्रेरितया यदि ॥२००
सकृद्भुक्ता तु या नारीं प्राजापत्येन शुद्धयति।
प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् ॥२०१
न तेन तद्व्रतं तासां विनश्यति कदाचन।
मद्यसंस्पृष्टकुम्भेषु यत्तोयं पिबति द्विजः ॥२०२
कृच्छ्रपादेन शुद्धयेत पुनः संस्कारमर्हति।
अन्त्यजस्य तु ये वृक्षा बहुपुष्पफलोपगाः ॥२०३
उपभोग्यास्तु ते सर्वे पुष्पेषु च फलेषु च।
चण्डालेन तु संस्पृष्टं यत्तोयं पिबति द्विजः ॥२०४
कृच्छ्रपादेन शुद्धयेत आपस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः।
श्लेष्मोपानहविण्मूत्रस्त्रीरजोमद्यमेव च ॥२०५

एभिः सन्दूषिते कूपे तोयं पीत्वा कथं विधिः ।
ऐकं द्वयहं त्र्यहञ्चैव द्विजातीनां विशोधनम् ॥२०६

स्त्री के मासिक धर्म होने के पश्चात् सोलह दिन तक उससे गमन करना चाहिए। फिर मासिक धर्म होने पर वह शुद्ध हो जाती है। धोबी, चमार, नट, बाँस की डलिया बनाने वाले, धीमर, मेदया, कलाल और भील—ये सात जातियाँ अन्त्यज कही गई हैं। अगर कोई द्विज इनकी स्त्रियों का संग करे, उनका भोजन करले, उनसे दान ग्रहण करे तो अनजान में किया हो तो एक वर्ष तक और जान-बूझकर किया हो तो दो वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करने से शुद्धि होती है। म्लेच्छ आदि पापिष्ठों ने यदि किसी स्त्री को बलपूर्वक पकड़कर या छल से बहका कर भ्रष्ट कर दिया हो तो वह प्राजापात्य व्रत करने और मासिक धर्म हो जाने पर शुद्ध हो जाती है। जिन स्त्रियों ने बहुत दिनों से कोई व्रत आरम्भ किया हो और बीच में मासिक धर्म हो जाय तो उससे उन स्त्रियों का वह व्रत नष्ट नहीं होता यदि कोई ब्राह्मण मदिरा से स्पर्श हुए घड़े में रखे हुए जल को पीले तो वह चौथाई कृच्छ्र करने से शुद्ध होता है और संस्कार करने योग्य हो जाता है। अन्त्यजों के वृक्षों पर जो फल-पुष्प पैदा होते हों उनका उपयोग करने में कोई दोष नहीं होता। चाण्डाल के छुये जल को यदि कोई ब्राह्मण पीले तो वह चौथाई कृच्छ्र करने से शुद्ध हो जाता है, यह आपस्तम्ब मुनि की सम्मति है। कफ, जूता, विष्ठा, मूत्र, स्त्री का रज और मदिरा- इनके स्पर्श से जिस कुए का जल दूषित हो जाय उसे पी लेने पर ब्राह्मण को तीन दिन का, क्षत्री को दो दिन का और वैश्य को एक दिन का व्रत करना चाहिए ॥१९७-२०६॥

प्रायश्चित्तं पुनश्चैव नक्तं शूद्रस्य दापयेत् ।
सद्यो वान्ते सचैलं तु विप्रस्तु स्नानमाचरेत् ॥२०७
पर्युषिते त्वहोरात्रमतिरिक्ते दिनव्रतम् ।
शिरःकण्ठोरुपादांश्च सुरया यस्तु लिप्यते ॥२०८
दशषट्त्रितयैकाहं चरेदेवमनुक्रमात् ।

अत्राप्युदाहरन्ति ।।

प्रमादाग्मद्यप: सुरां सकृत्पीत्वा द्विजोत्तम: ।
गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेण शुद्धयति ।।२०९
मद्यपस्य निषादस्य यस्तु भुङ्क्ते द्विजोत्तम। ।
न देवा भुञ्जते तत्र न पिवन्ति हविर्जलम् ।।२१०
चितिभ्रष्टा तु या नारी ऋतु भ्रष्टा च व्याधित: ।
प्राजापत्येन शुध्येत ब्राह्मणन् भोजयेच्छशा ।।२११
ये च प्रव्रजिता विप्रा: प्रव्रज्याग्निजलावहा: ।।२१२
अनाशकान्निवर्त्तन्ते चिकीर्षन्ति गृहस्थितिम् ।
धारयेन्त्रीणि कृच्छ्राणि चान्द्रायणमथापि वा । २१३
जातकर्मादिकं प्रोक्तं पुन: सस्कांरमर्हति ।
नाशौचं नोदकं नाश्रु नोपवादानुकम्पने।।२१४
ब्रह्मदण्डहतानां तु न कार्यं कटधारणम् ।
स्नेहं कृत्वा भयादिभ्यो यस्त्वेतानि समाचरेत् ।।२१५

अगर शूद्र ऐसे जल को पीले तो उसे तुरन्त वस्त्रों सहित स्नान करके केवल रात्रि में ही भोजन करना चाहिए ।।२०७।। अगर उक्त कुये का जल वासी हो तो एक रात-दिन और अधिक दिन का हो तो तीन दिन का उपवास करे । अगर कोई अपने शिर, कंठ जांघ, पैरों को मंदरा से भिगो ले तो ब्राह्मण हो तो दश, क्षत्री छ: दिन, वैश्य तीन दिन और शूद्र एक दिन का व्रत करे । इस सम्बन्ध में अन्य ऋषियों का भी कथन है कि यदि कोई द्विज जाति का व्यक्ति एक बार भी मदिरा पान करले तो व्रत दश रात्रि तक गोमूत्र और जो पोने पर शुद्ध होता है । इस प्रकार मदिरा पोने और निषाद के यहाँ भोजन करने वाला भी दश रात्रियों तक गोमूत्र और जो का सेवम करने पर शुद्ध होता है । द्विजों में से जो इस प्रकार मदिरा पान और निषाद (अन्त्यज) के यहाँ भोजन करता है उसके यहां देवता हवि को ग्रहण नहीं करते न उसके जल को स्वीकार करते हैं ।। २०८-२१२ ।। जो स्त्री ज्ञान से भ्रष्ट

(बावली) हो गई हो या जिसे मासिक धर्म की खराबी का रोग लग गया हो तो वह प्राजापत्य व्रत करके तथा ब्राह्मणों को भोजन कराके शुद्ध होती है। जो ब्राह्मण संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् असमर्थ होकर पुनः सन्यास को त्याग घर में रहने की इच्छा करते हैं वे तीन कृच्छ्र अथवा चान्द्रायण व्रत करें। ॥२१३॥ ऐसे लोगों को शास्त्रोक्त जात कर्म आदि संस्कार फिर से कराने चाहिए, तभी वे समाज में रहने योग्य होते हैं जो व्यक्ति ब्राह्मणों द्वारा शाप दिये गए हों उनकी मृत्यु पर न तो उनका सूतक मानना चाहिए,न उनको जल दान करना चाहिए, न उनके लिए शोक करना चाहिए और न उनके शव को उठाना चाहिए। यदि कोई स्नेहवश ऐसे व्यक्ति के लिए शोच, जलदान आदि करता है तो गोमूत्र और जो खाते हुए एक कृच्छ्र व्रत करने पर उसकी शुद्धि होती है। ॥२१४-२१५॥

गोमूत्रयावकाहरः कृच्छमेकं विशोधनम् ।
वृद्धः शौचस्मृतेलुप्तः प्रप्रत्याख्यातभिषक्क्रियः ॥२१६
आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशानाम्बुभिः ।
तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसञ्चयम् ॥२१७
तृतीये तूदक कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ।
यस्यैकाऽपि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी ॥२१८
मङ्गलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तमः क्षयः ।
अतिदोहातिवाहाभ्यां नासिकाभेदनेन वा ॥२१९
नदिपर्वतसंरोधे मृते पादोनमाचरेत् ।
अष्टागवं धर्महलं षड्गवं व्यावहारिकम् ॥२२०
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गवबध्यकृत् ।
द्विगवं वाहयेत् पादं मध्यान्हं तु चतुर्गवम् ॥२२१
षड्गवं तु त्रिपादोक्तं पर्णाहस्त्वष्टभिः स्मृतः ।
काष्ठलोष्ट्रशिलागोघ्नः कृच्छ्रं सान्तपनञ्चरेत् ॥२२२
प्राजापत्यं चरेन्मृत्सा अतिकृच्छ्रन्तु आयसैः ।
प्रायश्चित्तं ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥२२३

जो व्यक्ति वृद्ध हो, अशुद्ध रहता हो जिसे कुछ ज्ञान न रहा हो, जीवन से निराश हो, जिसने वैद्य की चिकित्सा भी त्याग दी हो और वह पशु द्वारा, अग्नि या जल द्वारा या भोजन का त्याग करके प्राण त्यागे तो उसका सूतक केवल तीन रात्रि का पालन किया जाय । दूसरे ही दिन उसका अस्थि-संचय, तीसरे दिन जलदान तथा चौथे दिन श्राद्ध कर दिया जाता है । जिस घर में एक भी बछड़े देने वाली गौ न हो उस घर में मंगल और कल्याण का अभाव रहता है और अन्धकार ही बना रहता है । बहुत दूध निकालने, बहुत जोतने, नाक के छेदने से, और पहाड़ में रोकने से यदि पशु की मृत्यु हो जाय तो उसमें सामान्यतः किये जाने वाले प्रायश्चित का चौथाई भाग प्रायश्चित ही करना होता है । आठ बैलों से चलाया जाने वाला हल धर्म-हल होता है और छः बैलों वाला व्यवहार-हल कहा जाता है ।।२१६-२२०।। चार बैलों वाला हल नृशंसों का होता है और दो बैलों का तो अधिक अथवा कसाइयों का समझना चाहिए । दो बैलों के हल को प्रातःकाल चौथाई दिन ही चलाया जाय । चार बैलों वाले से मध्यान्ह तक काम लिया जा सकता है । छः बैलों को तीसरे पहर तक चलावे और आठ बैलों का सम्पूर्ण दिन काम कर सकता है । अगर कोई व्यक्ति लकड़ी, ढेला, पत्थर मार कर गौ की हत्या कर डाले वह सांतपन कृच्छ्र करे, जो घूंसा मारकर गौ को मार कर दे वह प्राजापत्य व्रत द्वारा प्रायश्चित करे और जिसने लोहे के हथियार से हत्या की हो उसे अति कृच्छ्र व्रत करके ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए । २२१-२२३।

अनुडुत्सहिता गाञ्च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।
शरभोष्ट्रहयान्नागान् सिंहशार्दूलगर्दभान् ।।२२४

हत्वा च शूद्रहत्यायाः प्रायश्चित्तं विधीयते ।
मार्जारगोधानकुलमण्डूकांश्च पतत्रिणः ।।२२५

हत्वा त्र्यहं पिबेत् क्षीरं कृच्छ्रं वा पादिकञ्चरेत् ।
चाण्डालस्य च संस्पृष्टं बिण्मूत्रस्पृष्टमेव वा ।।२२६

त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्यादभुक्त्वोच्छिष्ट (समा) तथाचरेत् ।
वापीकूपतडागानां दूषितानाञ्च शोधनम् ॥२२७
उद्धरेद्घटशतं पूर्णं पञ्चगव्येन शुद्धयति ।
अस्थिचर्मावसिक्तेषु खरश्वानादिदूषिते ॥२२८
उद्धरेदुदकं सर्वं शोधनं परिमार्जनम् ॥२२९

साथ ही उसे एक बैल के सहित एक गौ भी ब्राह्मण को दक्षिणा में देनी चाहिए। शरफ, ऊँट, घोड़ा, हाथी, सिंह, शार्दूल और गधा की हत्या करने पर वही प्रायश्चित करना चाहिए जो शूद्र के घातक को बतलाया गया है। बिल्ली, गोह, न्यौला, मेंढक और पक्षी की हत्या हो जाने पर तीन दिन तक दूध पीकर रहे और कृच्छ्र व्रत करे। चाण्डाल से छू जाने पर, विष्ठा-मूत्र से स्पर्श किए पदार्थ को खालेने पर तीन रात्रि तक शुद्ध होकर उच्छिष्ट भक्षण का जो प्रायश्चित बताया जाता है उसे करे। अशुद्ध पदार्थ के गिर जाने से जो कुआ, बावड़ी और ताल भ्रष्ट हो गए हैं उनको शुद्ध करने का उपाय यह है कि छः सौ भरे हुए घड़े जल निकाल कर फेंक दे और उनमें पंच गव्य डाल दे। जिन जलाशयों में हड्डी चमड़ा पड़ गया हो या जिनमें गधा, कुत्ता आदि गिर गये हों तो उनका सम्पूर्ण जल निकाल देना चाहिए ॥२२४-२२९॥

गोदोहने चर्मपुटे च तोयं यन्त्राकरे कारुकशिल्पिहस्ते ।
स्त्रीबालवृद्धाचरितानि यान्यप्रत्यक्षदृष्टानि शुचीनितानि ॥२३०
प्राकाररोधे विषमप्रदेशे सेनानिवेशे भवनस्य दाहे ।
आरब्धयज्ञेषु महोत्सवेषु तथैव दोषा न विकल्पनीयाः॥२३१
प्रपास्वरण्ये घटकस्थ कूपे द्रोण्यां जलं कोशविनिर्गतञ्च ।
श्वपाकचण्डालपरिग्रहे तु पित्वा जलं पञ्चगव्येन शुद्धिः॥ २३२
रेतोविण्मूत्रसंस्पृष्टं कौपं यदि जलं पिवेत् ।
त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यात् कुम्भे सान्तपनं तथा ॥२३३
क्लिन्नभिन्नशवं यत् स्यादज्ञानादुदकं पिवेत् ।
प्रायश्चित्तं चरेत् पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥२३४

उष्ट्रीक्षीरं खरीक्षीरं मानुषीक्षीरमेव च।
प्रायश्चित्तं चरेत् पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥२३५
वर्णबाह्येन संस्पृष्ट उच्छिष्टस्तु द्विजोत्तमः।
पञ्चरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्धयति ॥२३६

गौ को दुहने के पात्र का, चमड़े से बने चरस आदि का, यंत्र से निकाला हुआ, शिल्पकार और कलाकार के हाथ का, स्त्री बालक और वृद्ध का छुपा हुआ जो जल है, और जिस जल का कोई दोष प्रत्यक्ष देखने में न आया हो, उसे शुद्ध ही मानना चाहिए। इसी प्रकार नगर के घेर लिये जाने पर, संकटपूर्ण प्रदेश में पहुँच जाने पर, सेना के स्थान में, घर में आग लग जाने पर, अधूरे यज्ञकार्य में, बड़े महोत्सवों में सामान्य दोषों को शंका न करनी चाहिए। प्याऊ का, वन में रहट के कुँए का, कुँए के पास रखे द्रोण (बड़े बर्तन) का और कोश (हौद या टंकी) का जल शुद्ध ही माना जाता है। श्वपाक और चाण्डाल के घर के जल को पी लेने पर पंचगव्य का सेवन करके शुद्ध होना चाहिए। जिस कुँए में वीर्य, विष्ठा, मूत्र का स्पर्श हो गया हो उसका जल पी लिया जाय तो तीन रात्रि के व्रत से शुद्धि होती है। अगर ये पदार्थ किसी घड़े में पड़ गये हों और उसका जल पी लिया जाय तो शुद्धि के लिये सान्तपन व्रत करना आवश्यक होता है। जो जल गले-सड़े मुर्दे के पड़े होने से दूषित हो गया हो और उसे भूल से पी लिया जाय तो उसके प्रायश्चित के लिये द्विज को उत्तम तप्तकृच्छ्र करना चाहिए। इसी प्रकार ऊटनी, गधी और स्त्री का दूध पी लेने पर भी उत्तम तप्तकृच्छ्र करना आवश्यक है। यदि ब्राह्मण को कोई यवन, म्लेच्छ आदि स्पर्श कर ले तो उसे पाँच दिन का व्रत करके पंच गव्य का सेवन करना चाहिए तब शुद्धि होती है ॥२३०-२३६॥

शुचि गोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थ महीगतम्।
चर्मभाण्डैस्तु धाराभिस्तथा यन्त्रोद्धृतं जलम् ।२३७
चण्डालेन तु संस्पृष्टः स्नानमेव विधीयते।
उच्छिष्टस्तु च संस्पृष्टस्त्रिरात्रेण शुद्धयति ।२३८

आकराहृतवस्तूनि नाशुचीनि कदाचन ।
आकराः शुचयः सर्वे वर्जयित्वा सुराकरम् ।।२३९
भ्रष्टाभ्रष्टयवाश्चैव तथैव चणकाः स्मृताः ।
खर्जूरञ्चैव कर्पूरमन्यद्भ्रष्टतरं शुचि ।।२४०
अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीभिराचरितानि च ।
अदुष्टाः सततं धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ।।२४१
बहूनामेव लग्नानामेकश्चेदशुचिर्भवेत् ।
अशौचमेकमात्रस्य नेतरेषां कथञ्चन ।।२४२
एकपङ्क्त्युपविष्टानां भोजनेषु पृथक्-पृथक् ।
यद्येको लभते नीलीं सर्वे तेऽशुचयः स्मृताः ।।२४३
यस्य पटे पट्टसूत्रे नीलीरक्तो हि दृश्यते ।
त्रिरात्रं तस्त दातव्यं शेषाश्चैवोपवासिनः ।।२४४

किसी पोखर या पृथ्वी के गड्ढे में भरा हुआ इतना जल जिसमें पीकर गौ तृप्त हो जाय शुद्ध समझना चाहिए । चमड़े से बने चरस का, धारा रूप में गिरने वाला, यन्त्र से निकला हुआ जल शुद्ध होता है । चाण्डाल से छू जाने पर केवल स्नान करने से शुद्धि हो जाती है । अगर उच्छिष्ट दशा में चाण्डाल से स्पर्श हो जाय तो तीन रात्रि में शुद्ध होता है । मदिरा के स्थान को छोड़कर खानों से निकाली हुई वस्तुएं अशुद्ध नहीं होतीं । भुने हुए जौ और चने शुद्ध होते हैं । खजूर, कपूर और समस्त भुने पदार्थ शुद्ध होते हैं । स्त्रियों के आचरणों के विषय में अशुद्धि का विचार करना अनावश्यक है । निरन्तर पड़ने वाली धारा और वायु से उड़ती हुई धूल को भी अपवित्र नहीं माना जाता । एक बिछौने पर बैठे हुये अनेक मनुष्यों से यदि कोई एक अपवित्र हो जाय तो उसके कारण सब लोगों को अपवित्र नहीं माना जा सकता । वही एक ही अशुद्ध समझा जायगा । भोजन करने के समय एक पंक्ति में बैठे मनुष्यों में यदि एक व्यक्ति के देह में नील की लकड़ी का स्पर्श हो जाय तो वे सब शुद्ध हो जाते हैं । यदि पूर्वोक्त प्रकार भोजन

के लिये बैठे मनुष्यों में से किसी के वस्त्र पर नील का रङ्ग दिखलाई पड़ जाय तो मनुष्य को तीन रात्रि उपवास करना चाहिए और शेष व्यक्तियों को एक-एक दिन का व्रत करना चाहिए ॥२३७-२४४॥

आदित्येऽस्तमिते रात्रावस्पृश्यं स्पृशते यदि ।
भगवन् ! केन शुद्धिः स्यात्ततो ब्रूहि तपोधन । २४५
आदित्येऽस्तमिते रात्रौ स्पृशन् हीन दिवा जलम् ।
तेनैव सर्व शुद्धिः स्याच्छवस्पृष्टन्नु वर्जयेत् ॥२४६
देशंकालं वयः शक्ति पापञ्चावेक्षयेत्ततः ।
प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद्यस्य चोक्ता न निष्कृतिः ॥२४७
देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च ।
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टिर्न विद्यते ॥२४८
आरनालं तथा क्षीरं कन्दुकं दधिसक्तवः ।
स्नेपपक्वञ्च तक्रञ्च शूद्रास्यापि न दूष्यति ॥२४९
आर्द्रशाकं घृतं तैल स्नेहाश्च फलसम्भवाः ।
अन्त्यभाण्डस्थिता एते निष्क्रान्ताः शुद्धिमाप्नुयुः ॥२५०
अज्ञानात् पिबते तोयं ब्राह्मणः शूद्रजातिषु ।
अहोरात्रोषितः स्नात्वा पञ्चगव्येन शुद्धयति ॥२५१
आहिताग्निस्तु यो विप्रो महापातकवान् भवेत् ।
अप्सु प्रक्षिप्य पात्राणि पश्चादग्निं विनिर्दिशेत् ॥१५२

हे तपोधन ! यदि कभी सूर्य छिपने के अनन्तर कोई स्पर्श न करने योग्य वस्तु छू ली जाय तो उसकी शुद्धि किस प्रकार होती है ?॥२४५॥ महर्षि अत्रि ने कहा—सूर्य छिपने के अनन्तर यदि किसी प्रकार की अशुद्धि हो जाय तो उसको दूर करने का उपाय दिन में रखे हुए जल का प्रयोग करना ही है। पर जिसने शव का स्पर्श किया हो उसकी शुद्धि उससे नहीं हो सकती ॥२४६॥ जिस पाप का प्रायश्चित शास्त्र में नहीं बतलाया गया है उसका निर्णय देश, काल, सामर्थ्य और पाप को गुरुता को देख कर लेना चाहिए ॥२४७॥ देवताओं को उत्सव यात्रा विवाह, यज्ञ समारोह और विभिन्न प्रकार के उत्सवों मे स्पर्शास्पर्श का

विचार नहीं करना पड़ता ॥२४८॥ आरनाल (चने के पौधे आदि) दूध, भाड़ की भुनी चीज, दही, सत्तू, घी, तेल, मठा आदि शूद्र के हाथ से ग्रहण करने में दोष नहीं होता ॥२४९॥ हरे शाक, फल घी तेल आदि शूद्र के बर्तन में रखे हों तो भी उससे निकाल लेने पर शुद्ध ही माने जाते हैं ॥२५०॥ अगर ब्राह्मण भूल से शूद्र जाति वालों का जल पी लेतो एक दिन रात्रि उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध हो जाता है ॥२५१॥ अगर अग्निहोत्र करने वाले ब्राह्मण से कोई महापातक हो जाय तो उसे अपने यज्ञ-पात्रों का जल में फेंक कर फिर से अग्निहोत्र को ग्रहण करना चाहिए ॥२५२॥

योऽगृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते ।
अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि सः स्मृतः ॥२५३
वृथापाकस्य भुञ्जानः प्रायश्चित्तं चरेद्द्विजः ।
प्राणानप्सु त्रिराचम्य घृतं प्राश्य विशुद्धयति ॥२५४
वैदिके लौकिके वाऽपि हुतोच्छिष्टे जले क्षितौ ।
वैश्वदेवं प्रकुर्वीत पञ्चसूनापनुत्तये ।२५५
कनीयान् गुणवान् श्रेष्ठ श्रेष्ठश्चेन्निर्गुणो भवेत् ।
पूर्वं पाणिं गृहीत्वा च गृह्याग्निं धारयेद्बुधः ॥२५६
ज्येष्ठश्चेद्यदि निर्दोषो गृह्णीयादग्निमग्रतः ।
नित्यं नित्यं भवेत्तस्य ब्रह्महत्या न संशयः ॥२५७
महपातकसंस्पृष्टः स्नानमेव विधीयते ।
संस्पृष्टस्य यदाभुङ्क्ते स्नानमेव विधीयते ॥२५८
पतितैः सह संसर्गं मासार्द्धं मासमेव वा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्धेन विशुद्धयति ॥२५९
कृच्छ्रार्धं पतितस्यैव सकृद्भुक्त्वा द्विजोत्तमः ।
अविज्ञानाच्च तद्भुक्त्वा कृच्छ्रं सान्तपनञ्चरेत् ॥२६०

जिसने विवाह की अग्नि को लेकर गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया हो उसे अग्नि की रक्षा करनो चाहिये। जो ऐसा नहीं करता है उसे धर्मज्ञाताओं ने वृथापाक, कहा है, उसका अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिए

।।२५३।। जो ब्राह्मण 'वृथापाक' का अन्न खाले तो उसको प्रायश्चित स्वरूप जल के मध्य में तीन बार प्राणायाम करके घी खाना चाहिए। ।।२५४।। पाँच प्रकार की हिंसाओं से छूटने के निमित्त वैदिक मन्त्रों से अथवा लौकिक विधि से अग्नि, जल अथवा भूमि पर बलि-वैश्वदेव कर्म करना चाहिए ।।५५।। यदि घर में छोटा भाई विद्वान् और बड़ा अशिक्षित रह जाय तो पहले छोटे को ही विवाह करके घर के अग्निहोत्र को स्थिर रखना चाहिये। पर यदि बडे भाई के योग्य होने पर भी छोटा भाई अग्निहोत्र को ग्रहण करले तो उसे प्रतिदिन ब्रह्महत्या का पाप लगता है।।२५६-२५७।। महापातकी ने जिसको स्पर्श कर लिया हो और किसी अन्य ने उस स्पर्श किये हुए का भोजन कर लिया हो तो वे दोनों केवल स्थान द्वारा शुद्ध हो जाते हैं ।।२५८।। जिसने आधा या एक मास तक पतित का संसर्ग किया हो वह पन्द्रह दिन तक गौ-मूत्र और जौ को खाने पर शुद्ध होता है ।।२५९।। अगर किसी पतित व्यक्ति के अन्न को जान कर एक बार खा लिया जाय तो प्रायश्चित के लिये सांतपन कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ।।२६०।।

पतितान्नं यदः भुक्तं भुक्तं चाण्डालवेश्मनि।
मासार्धन्तु पिवेद्वारि इति शाततपोऽब्रवीत् ।।२३१
गोब्राह्मणहतानाञ्च पतितानां तथैव च।
अग्निना न च संस्कारः शङ्खस्य वचनं यथा ।।२६२
यश्चाण्डालीं द्विजो गच्छेत् कथञ्चित् काममोहितः।
त्रिभिः कृच्छ्रै विशुध्येत प्राजापत्यानुपूर्वशः ।।२६३
पतिताच्चान्नमादाय भुक्त्वा वा ब्राह्मणो यदि।
कृत्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं विनिर्दिशेत् ।।२६४
अन्त्यहस्ताच्छवे क्षिप्त काष्ठलोष्ट्रतृणानि च।
न स्पृशेत्तु तथोच्छिष्टमहोरात्र समाचरेत् ।।२६५
चाण्डालं पतितं म्लेच्छ मद्यभाण्ड रजस्वलाम्।
द्विज स्पृष्ट्वा न भुञ्जीत भुञ्जानो यदि संस्पृशेत् ।।२६६

अतः परं न भुञ्जीत त्यक्त्वाऽन्नं स्नानमाचरेत् ।
ब्राह्मणैः समनुज्ञात स्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥२६७
सघृतं यावकं प्राश्य व्रतशेषं समापयेत् ।
भञ्जानः सस्पृशेद्यस्तु वायसं कुक्कुट तथा ।
त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादथोच्छिष्टस्त्वहेन तु (!) ॥२६८

पर शतातप ऋषि का मत है कि यदि पतितों का या चाण्डाल के घर का भोजन किया हो तो पन्द्रह दिन तक केवल जल पीने से शुद्ध हो जाता है ॥२६१॥ शङ्ख ऋषि का कथन है कि गो तथा ब्राह्मण द्वारा मारे गये और पतितों का अग्नि संस्कार नहीं करना चाहिए ॥२६२॥ यदि कोई ब्राह्मण कामवश होकर चाण्डालनो से गमन करे तो उसे प्राजापत्य व्रत करके तीन कृच्छ् वृत करने चाहिए ॥२६३॥ पतित के अन्न को ग्रहण करके अथवा खाकर ब्राह्मण उसके प्रायश्चित स्वरूप अतिकृच्छ् वृत करे॥२६४॥ अन्त्यज के हाथ फंके हुए काठ, ढेला, घास आदि का अथवा उनके उच्छिष्ट स्पर्श का हो जाने पर अहोरात्रि का वृत करना चाहिए ॥२६५॥ चाण्डाल, पतित, म्लेच्छ, मदिरा का पात्र और रजस्वला का स्पर्श हो जाने पर द्विज भोजन न करे। यदि भोजन करते हुऐ इनका स्पर्श हो जाय तो उसके पश्चात् भोजन करना बन्द कर दे और उस भोज्य-सामग्री का त्याग करके स्नान करे। फिर ब्राह्मणों की आज्ञा ले कर तीन रात्रि उपवास रखे ॥२६६-२६७॥ उसे व्रत के अन्त में घो मिला हुआ सत्तू खाना चाहिए। यदि भोजन करते हुये कौआ या मुर्गे का स्पर्श हो जाय तो तीन रात्रि में शुद्धि होतो है ॥२६८॥

आरूढो नैष्ठिके धर्मे यस्तु प्रच्यवते पुनः ।
चान्द्रायणं चरेन्मासमिति शातातपोऽब्रवीत ॥२६९
पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ।
गवां गमने मनुप्रोक्तं व्रत चान्द्रायणञ्चरेत ।
अमानुषीषु गोवर्जमुदक्यायामयोनिषु ।
रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनञ्चरेत् ॥२७१

उदक्यां सूतिका वाऽपि अन्त्यजां स्पृशते यदि ।
त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्याद्विधिरेष पुरातनः ॥२७२
संसर्गं यदि गच्चेच्चेदुदक्यायाया तथाऽन्त्यजैः ।
प्रायश्चित्ती स विज्ञेयः पूर्वं स्नानं समाचरेत् ॥२७३
एकरात्रञ्चरे मूत्रं पुरीषं तु दिनत्रयम् ।
दिनत्रयं तथा पाने मैथुने पंच सप्त वा ॥२७४
भोजने तु प्रसक्तानां प्राजापत्यं विधीयते ।
दन्तकाष्ठे त्वहोरात्रमेष शौचविधिः स्मृतः ॥२७५
रजस्वला यदा स्पृष्टां श्वानचाण्डालवायसैः ।
निराहारा भवेत्तावत् स्नात्वा कालेन शुद्धयति ॥२७६

जो व्यक्ति वेद पढ़ कर जन्म भर गुरु की सेवा में ही रहने का का सङ्कल्प करले और बाद में उस निश्चय को बदलना चाहे तो शातातप ऋषि के मतानुसार उसे एक मास का चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । जो नीच व्यक्ति पशु, वैश्या आदि के साथ कुकर्म करे तो उसे प्राजापत्य व्रत करना आवश्यक है । गौ के साथ ऐसा कार्य करने से मनु के कथनानुसार चान्द्रायण व्रत करे । अन्य प्रकार वीर्य नष्ट करने पर सांतपन कृच्छ्र करे । रजस्वला को यदि प्रसूतिका, अन्त्यज स्त्री का स्पर्श हो जाय तो तीन रात्रि में शुद्धि होती है, यह पुराने धर्म—शास्त्र-वेत्ताओं का मत है ॥२६९-२७२॥ चाण्डाली और अन्त्यज से संसर्ग हो जाय तो उसे प्रायश्चित्त के योग्य जानना चाहिए । इसके लिये पहले स्नान करके एक रात्रि गौ-मूत्र तथा तीन दिन गोमय का भक्षण करे । उपर्युक्त जाति की स्त्रियों के यहाँ जल पी लेने से और समागम करने से पाँच या सात दिन पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करना चाहिए।२७३-२७४। जो चाण्डाल आदि के भोजन में आसक्त रह चुके हैं, उनको प्राजापत्य व्रत करके प्रायश्चित्त करना चाहिए । अन्त्यजों की दाँतुन करने पर एक रात्रि व्रत करे । जिस स्त्री को रजस्वला अवस्था में चाण्डाल, कुत्ता, कौआ स्पर्श करले तो वह रज की शुद्धि होने तक निराहार

रहे। इस प्रकार चौथे दिन रजस्राव समाप्र होने पर शुद्ध हो जाती है ॥२७६॥

रजस्वला यदा स्पृष्टा यदा उष्ट्रजम्बुकशम्बरैः।
पंचरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुध्यति ॥२७७
स्पृष्ट पजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मण्या ब्राह्मणी च या।
एकरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुध्यति ॥२७८
स्पृष्टा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मण्या क्षत्रियी च या।
त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्याद्व्यासस्य वचनं यथा ॥२७९
स्पृष्टा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मण्या वैश्यसम्भवा।
चतूरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुध्यति ॥२८०
स्पृष्टा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मण्या शूद्रसम्भवा।
षड्रात्रेण विशुद्धिः स्याद्ब्राह्मणोकामकारतः ॥२८१
अकामतश्चरेदेवं ब्राह्मणी सर्वत स्पृशेत्।
चतुर्णामपि वर्णानां शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥२८२
उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो ब्राह्मणो ब्राह्मणेन यः।
भोजने मूत्रचारे च शंखस्य वचनं यथा ॥२८३
स्नानं ब्राह्मणसंस्पर्शे जपहोमौ तु क्षत्रिये।
वैश्ये वक्तञ्च कुर्वीत शूद्रे चैव उपोषणम्। २८४

अगर रजस्वला ऊँट, गीदड़, शम्बर को स्पर्श करले तो उसे पाँच रात्रि तक निराहार रहना चाहिए और फिर पंचगव्य का सेवन करे ॥२७७॥ यदि ब्राह्मणी रजस्वला का अन्य अपनी जाति की हो रजस्वला से स्पर्श हो जाय, तो एक रात्रि और क्षत्रिया रजस्वला को स्पर्श करले तो उसे तीन रात्रि का व्रत करना चाहिए। यदि वह वैश्य रजस्वला से स्पर्श करले तो चार रात्रि और शूद्र रजस्वला को छूकर छः रात्रि तक व्रत करे। इस प्रकार दूसरों की इच्छानुसार ब्राह्मणी प्रायश्चित करे और फिर सबका स्पर्श करे। इस प्रकार चारों वर्णों की शुद्धि बतला दी गई ॥२७८-२८२॥ अगर कोई ब्राह्मण ने उच्छिष्ट अवस्था में अन्य

उच्छिष्ट ब्राह्मण का स्पर्श कर लिया हो, मूत्र की उच्छिष्ट अवस्था में अन्य ब्राह्मण से छू गया हो तो वह स्नान करने से शुद्ध हो सकता है। इसी प्रकार का दोष उपस्थित होने पर क्षत्रिय को जप होम, वैश्य को रात्रि का व्रत और शूद्र को एक पूरा उपवास करना बतलाया गया है ।।२८३-२८४।।

चर्मको रजको वैण्यो धीवरो नटकस्तथा ।
एतान् स्पृष्ट्वा द्विजो मोहादाचामेत् प्रयतोऽपिसन् ।।२८५
एतैः स्पृष्टो द्विजो नित्यमेकरात्रं पयः पिवेत् ।
उच्छिष्टैस्ततैस्त्रिरात्रं स्याद्घृत प्राश्य विशुध्यति ।।२८६
यस्तु छायां श्वपाकस्य ब्राह्मणस्त्वधिगच्छति ।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुध्यति ।।२८७
अभिशस्तो द्विजोऽरण्ये ब्रह्महत्याव्रत चरेत् ।
मासोपवास कुर्वीत चान्द्रायणमथापि वा ।।२८८
वृथा मिथ्योपयोपयोगेन भ्रूणहत्याव्रतञ्चरेत् ।
अभक्षो द्वादशाहेन पराकेणैव शुद्धयति ।।२८९
शठञ्च ब्राह्मणं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ।
निर्गुणं सगुणी हत्वा पराकव्रतमाचरेत् ।।२९०
उपपातकसंयुक्तो मानवी म्रियते यदि ।
तस्य संस्कारकर्त्ता च प्राजापत्यद्वयञ्चरेत् ।।२९१
अभुञ्जानोऽतिसस्नेहं कदाचित् स्पृशते द्विजः ।
त्रिरात्रमाचरेन्नक्तैर्निःस्नेहमथवा चरेत् ।।२९२

चमार, धोबी, बंसफोड़, धीवर और नट—इनको भूल से छू लेने पर ब्राह्मण को सावधान होकर आचमन करना चाहिए। यदि ये जान कर ब्राह्मण को छूलें तो उसे एक रात्रि भोजन त्याग करके दुग्धपान ही करना चाहिए और यदि उपर्युक्त अन्त्यज जाति वाले उच्छिष्ट ब्राह्मण का स्पर्श करलें तो उसे घी खाकर शुद्ध होना चाहिए ।।२८५-२८६।। यदि ब्राह्मण श्वपाक (कुत्ता रखने वाले) की छाया में चले तो स्नान

करके घी खाने पर शुद्ध हो जाता है ।।२८७।। अगर ब्राह्मण को किसी प्रकार का कलंक लगा हो तो वह वन में जाकर ब्रह्म हत्या का व्रत करे। एक मास तक उपवास करे या चान्द्रायण व्रत करे ।।२८८।। यदि उसे झूंठा हिंसा का दोष लगा हो तो भ्रूण हत्या का व्रत करे - वह बारह दिन तक केवल जल पर रहकर पराक व्रत से शुद्ध होजाता है ।।२८९।। अगर ब्राह्मण किसी दुष्ट ब्राह्मण को मार दे तो शूद्र की हत्या के तुल्य व्रत करे। सगुण ब्राह्मण निर्गुणी को मार देने पर पराक व्रत द्वारा प्रायश्चित करे ।।२९०।। जिस व्यक्ति को उपपातक लगा हो, वह मर जाय तो उसका दाह-सस्कार करने वाला प्राजापत्य करे ।।२९१।। बहुत अधिक चिकनाई वाले पदार्थ को खाते हुए ब्राह्मण को यदि कोई स्पर्श करले तो तीन रात्रि तक नक्त-व्रत करे अथवा बिना घी का रूखा भोजन खावे ।।२९२।।

विडालकाकाद्युच्छिष्टं जग्ध्वा श्वनकुलस्य च।
केशकीटावपन्नञ्च पिवेद्‌ब्राह्मीं सुवर्च्चसम्। २९३
उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानञ्च कामतः।
स्नात्वाविप्रोजितग्रासप्राणायामेन शुद्धयति ।।२९४
सव्याहृतीं सप्रणवां गायत्रं शिरसा सह।
त्रिः पठेदायतः प्राणः प्राणायामः स उच्यते ।।२९५
सकृद्‌द्विगुणगोमूत्रं सर्पिर्दद्याच्चतुर्गुणम्।
क्षीरमष्टगुण देयं पंचगव्ये तथा दधि ।।२९६
पंचगव्यं पिवेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तु सुरां पिवेत्।
उभौ तौ तुल्यदोषौ च वसतो नरके चिरं ।।२९७
अजा गावो महिष्यश्च भक्षयन्ति याः।
दुग्ध हव्ये च कव्ये च गोमयं न विलेपयेत् ।।२९८
ऊनस्तनीर्माधकां वा या चान्या स्तनपायिनी।
तासां दुग्धं न होतव्यं हुतं चैवाहुतं भवेत् ।।२९९

बिल्ली, काक, कुत्ता, न्योला के द्वारा उच्छिष्ट किए गये पदार्थ को खा लेने पर या जिस पदार्थ में बाल या कीड़े पड़े हुए निकल उसे खाने

से अशुद्धि होती है उसके लिए ब्राह्मी को पीस कर पीना चाहिए ।।२९३।। जो व्यक्ति अपनी इच्छा से ऊंट या गधा की गाड़ी पर बैठकर यात्रा करे तो उसे स्नान और सूक्ष्म भोजन करके प्राणायाम द्वारा शुद्ध होना होता है । सात व्याहृति और शिर: मंत्र के सहित गायत्री मंत्र को तीन बार जपने को एक प्राणायाम कहते हैं ।।२९४-२९५।। गोमय से दूना गोमूत्र और चौगुना घी, आठ गुना दूध, आठ गुना दही–यह पञ्च गव्य शूद्र को नहीं पीना चाहिए । शूद्र के लिए पञ्च गव्य पीना वैसा ही है जैसे ब्राह्मण के लिए मदिरा पीना । उन दोनों को तुल्य दोषी माना जाता है ।।२९६-२९७।। जो बकरी, गाय, भैंस अशुद्ध वस्तु को खाती हों तो उनके दूध को यज्ञ, पूजा आदि कार्यों में प्रयुक्त न करे । उनके गोबर से लीपे नहीं । जिस पशु के थन छोटे हों या संख्या में चार से अधिक हों, जो रोगी हो या जो अपने थन का दूध स्वयं पी लेती हो उनके दूध से होम न करें । यदि होम किया जायगा तो उसका परिणाम नहीं निकलता ।।२९८-२९९।।

ब्राह्मौदने च सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा ।
जातश्राद्धे नवश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।३००

राजान्नं हरते तेजः शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ।
स्वतान्नञ्च यो भुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम् ।।३०१
स्वसुता अप्रजा तावन्नाश्नीयात्तद्गृहे पिता ।
अन्नं भुङ्क्ते तु यो मोहात्पूयं स नरकं व्रजेत् ।।३०२
अधीत्य चतुरो वेदान् सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
नरेन्द्रभवने भुक्त्वा विष्ठायां जायते कृमिः ।।३०३
नवश्राद्धे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकेऽब्दिके ।
पतन्ति पितरस्तस्य यो भुंक्तेऽनापदि द्विजः ।।३०४
चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा ।
त्रिपक्षे चैव कृच्छ्रः स्यात् षण्मासे कृच्छ्रमेव च ।
आब्दिके पादकृच्छ्रः स्यादेकाहः पुनराब्दिके ।।३०५

ब्रह्मचर्यमनाधाय मासश्राद्धेषु पर्वसु ।
द्वादशाहे त्रिपक्षेऽब्दे यस्तु भुंक्ते द्विजोत्तमाः ॥३०६
पतन्ति पितरस्तस्य ब्रह्मलोके गता अपि ॥३०७
एकादशाहेऽहोरात्रं भुक्त्वा संचयने त्र्यहम् ।
उपोष्य विधिवद्विप्रः कुष्माण्डीं जुहुयाद्घृतम् ॥३०८

यज्ञोपवीत के समय पकाये जाने वाले 'ब्रह्मोदन' (भात) को जो खाता है, अथवा सोमयज्ञ, सीमन्त और जातकर्म के श्राद्ध और नवक श्राद्ध में भोजन करता है उसे चान्द्रायण व्रत करके शुद्ध होना चाहिए ॥३००॥ राजा का अन्न खाने से तेज घटता है और शूद्र का अन्न खाने से ब्रह्मतेज कम पड़ जाता है। जो अपनी बेटी का अन्न खाता है है वह पृथ्वी के मल को भक्षण करता है ॥३०१॥ अपनी सन्तान हीन लड़की के घर का भी अन्न जो पिता खाता है वह पूय नरक में जाता है ॥३०२॥ चाहे किसी ने चारों वेद पढ़ लिये हों और समस्त शास्त्रों के तत्व को हृदयंगम कर लिया हो तो भी यदि वह राजा के घर में भोजन करता हैतो उसे विष्ठा का कीड़ा बना पड़ता है ॥३०३॥ नवान्ह श्राद्ध, तीन पक्ष का श्राद्ध मासिक, छमाही और वार्षिक श्राद्धों में जो ब्राह्मण बिना आपत्ति के भोजन करलेता है उसके पितर नर्क में गिर जाते हैं ॥३०४॥ नवान्ह श्राद्ध में भोजन करने पर चान्द्रायण, मासिक श्राद्ध में पराक और त्रिपक्ष, छमाही तथा वार्षिक श्राद्धों में पादकृच्छ्र व्रत करना चाहिए। दूसरे वार्षिक श्राद्ध में भोजन करने पर एक दिन का उपवास ही पर्याप्त होता है ॥३०५॥ मासिक श्राद्ध, पौर्ण-मास आदि पर्वों पर, मृतक के द्वादशाह (तेरहीं) त्रिपक्ष, वार्षिक श्राद्ध आदि में जो ब्रह्मचर्य का पालन किये बिना भोजन कर लेता है तो उसके पितर आदि ब्रह्मलोक गये हों तो भी नरक में आ पड़ते हैं। एकादशाह आदि में भोजन करके एक दिन रात और अस्थि सचय के दिन तक ब्राह्मण को विधिवत् उपवास करके पेठा और घी से हवन द्वारा अपनी शुद्धि करनी चाहिए ॥३०६-३०८॥

पक्षे वा यदि वा मासे यस्य नाश्नन्ति वै द्विजाः ।
भुक्त्वा दुरात्मनस्तस्य द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ।।३०९

यन्न वेदध्वनि ध्वान्तं न च गोभिरलंकृतम् ।
यन्न बालैः परिवृतं श्मशानमिव तद्गृहम् ।।३१०

हास्येऽपि बहवो यत्र विनाधर्मं वदन्ति हि ।
विनाऽपि धर्मशास्त्रेण स धर्मः पावनः स्मृतः ।।३११

हीनवर्णे च यः कुर्यादज्ञानादभिवादनम् ।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुद्धयति ।।३१२

समुत्पन्ने यदा स्नाने भुंक्ते वाऽपि पिबेद्यदि ।
गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत् स्नात्वा समाहितः ।।३१३

अंगुल्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथा
मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्य गोमांसभक्षणाम् ।।३१४

दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधि शमीषु च
कार्पासं दन्तकाष्ठं च विष्णोरपि हरेच्छ्रियम् ।।३१५

जिस गृहस्थ के घर में एक पक्ष या एक मास में ब्राह्मण भोज न कराया जाता हो उस दुरात्मा के यहाँ भोजन कर लेने पर ब्राह्मण को चान्द्रायण करना चाहिए ।।३०९।। जो घर वेद ध्वनी से पवित्र नहीं होता रहता, जो गौओं द्वारा शोभायमान नहीं, जो बालकों से भरा हुआ नहीं है, उस घर को श्मशान के तुल्य ही समझना चाहिए ।।३१०।। जहां बहुत से विद्वान हास्य-विनोद की भाँति भी वार्तालाप करते हों, तो उनका कथन बिना धर्म शास्त्र के प्रमाण के भी धर्म आदेश की भाँति माननीय होता है।।३११।। जो नीच वर्ण वाले को अज्ञानवश अभिवादन करता है उसे पाप लगता है जिसके लिये उसे स्नान करके घी चाटना चाहिए ।।३१२।। स्नान करने योग्य जो व्यक्ति बिना स्नान किये भोजन कर लेता है अथवा जलपान कर लेता है, उसे स्नान करके आठ हजार गायत्री का जप करना होता है ।।३१३।। अंगुली से दाँत साफ करना, केवल नमक का खाना, मिट्टी का खाना ये कार्य गोमाँस खाने के समान

है ।।३१४।। दिन में कैथ की छाया में रहना, रात्रि में दही खाना शमी (छोंकरा) या कपास की दाँतुन करना—ये ऐसे कार्य हैं जिनसे साक्षात् विष्णु भी श्रीहीन हो सकते हैं ।।३१५।।

शूर्पवातनखाग्राम्बुस्नानं वस्त्रपदोदकं ।
मार्जनीरेणु केशाम्बु हन्ति पुण्य दिवाकृतम् ।।३१६
मार्जनीरजकेशाम्बु देवतायनतोद्भवम् ।
तेनावगुण्ठितं तेषु गङ्गाम्भःप्लुतः एव सः ।।३१७
मृत्तिकाः सप्त न ग्राह्या वल्मीके मूषिकस्थले ।
अन्तर्जले श्मशानान्ते वृक्षमूले सुरालये ।।३१८
वृषभैश्च तणोत्खाते श्रेयष्कामैः सदा बुधः ।।३१९
शुचौ देशे तु संग्राह्या शर्कराश्मविवर्जिता ।।३२०
पुरीषे मैथुने होमे प्रस्रावे दन्तधावने ।
स्नानभोजनजप्येषु सदा मौनं समाचरेत् ।।३२१
यस्तु सवत्सरं पूर्णं भुंक्ते मौनेन सर्वदा ।
युगकोटिसहस्रेषु स्वर्गलोके महीयते ।।३२२
स्नानं दानं जपं होमं भोजनं देवतार्चनम् ।
प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ।।३२३
सर्वस्वमपि यो दद्यात् पातयित्वा द्विजोत्तमम् ।
याशयित्वा तु तत्सर्वं भ्रूणहत्याफलं लभेत् ।।३२४
ग्रहणोद्वाहसंक्रान्तौ स्त्रीणांच प्रसवे तथा ।
दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रौ चापि प्रशस्यते ।।३२५

सूप द्वारा हवा, नखों के अग्रभाग का जल, झाड़ू से उड़ी धूल और बालों से टपकता जल—इनके कारण दिन में किया हुआ पुण्य नष्ट हो जाता है ।।३१६।। पर झाड़ू की धूलि, केशों का जल देवता स्थान का हो तो उनमें लोटना गंगाजल में लोटने के समान है ।।३१७।। कल्याण चाहने वालों को सात स्थानों की मिट्टी ग्रहण करने योग्य नहीं होती-१. बाम्बी २. मूसों का बिल ३. जल के भीतर की ४. श्मशान ५. वृक्ष की जड़

६. देवता के स्थान की ७. जो बैलों ने खोदा हो ।।३१८-३१९।। मिट्टी सदैव शुद्ध पवित्र स्थान से लेनी चाहिए जिसमें कंकड़ पत्थर आदि न हो ।।३२०।। शौच जाते, मैथुन, होम, पेशाव-दन्त, धावन, स्नान, भोजन जप करते समय सदैव मौन रहना चाहिए ।।३२१।। जो व्यक्ति एक वर्ष तक भोजन करते समय मौन धारण किये रहता है वह करोड़ो वर्ष तक स्वर्ग में पूजनीय स्थान प्राप्त करता है ।।३२२।। स्नान, दान, जप होम, भोजन देव पूजा, वेद का स्वाध्याय, पितरों का तर्पण—इन कार्यों को कभी पैर पसार कर नहीं करना चाहिए ।।३२३।। जो किसी उत्तम ब्राह्मण को किसी तरह का पाप लगाकर फिर उसे सर्वस्व भी दे डाले तो भी उसका दान निष्फल जाता है और उस भ्रूण हत्या के पातक का फल प्राप्त होता है ।। ३२४ ।। ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति और स्त्रियों के प्रसव के अवसर पर दिया हुआ दान नैमित्तिक होता है, अतः वह रात्रि के समय देना भी उत्तम माना जाता है ।।३२५।।

दान फल वर्णनम् ।

क्षौमजं वाऽथ कार्पास पट्टसूत्रमथापि वा ।
यज्ञोपवीतं यो दद्याद्वस्त्रदानफलं लभेत् ।।३२६

कांस्यस्य भाजनं दद्याद्घृतपूर्णं सुशोभनम् ।
तथा भक्त्या विधानेन अग्निष्टोमफलं लभेत् ।।३२७

श्राद्धकाले तु यो दत्ताच्छोभनौ च उपानहौ ।
स गच्छत्यन्यमार्गेऽपि अश्वदानफलं लभेत् ।।३२८
तिलपात्रं तु यो दद्यात् संपूर्णं तु समाहितः ।
स गच्छति ध्रुवं स्वर्गे नरो नास्त्यत्र संशयः ।।३२९

दुर्भिक्षे अन्नदाता च सुभिक्षे च हिरण्यदः ।
पानीयदस्त्वरण्ये च स्वर्गलोके महीयते ।।३३०

यावदर्धप्रसूता गौस्तावत् सा पथिवी स्मृता ।
पृथिवीं तेन दत्ता स्यादीदृशीं गान्ददाति यः ॥३३१
तेनाग्नयो हुताः सम्यक् पितरस्तेन तर्पिताः ।
देवाश्च पूजिताः सर्वे यो ददाति गवाह्निकम् ॥३३२

क्षौम, कपास का बना हुआ, पट्ट सूत्र और यज्ञोपवीत जो भी दान देता है वह वस्त्र के दान का फल पाता है ॥३२६॥ सुन्दर काँसे का पात्र घृत से भरा हुआ यदि कोई भक्तिपूर्वक और विधि के साथ दान देता है तो अग्निष्टोम यज्ञ का फल पाता है ॥३२७॥ श्राद्ध के समय में जो सुन्दर जूते का दान करता वह श्रेष्ठ मार्ग में जाता है और अश्व के दान का फल प्राप्त करता है ॥३२८॥ जो तिलों से भर कर किसी पात्र का दान समाहित होकर करता है वह निश्चय हो स्वर्ग में जाता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है। अकाल के समय में अन्न देने वाला और सुभिक्ष में सुवर्ण का दान करने वाला तथा जंगल में जल देने वाला स्वर्ग में प्रतिष्ठित होता है ॥३२९-३३०॥ जब तक गौ अर्ध प्रसव वाली होती है तब तक पृथिवी के तुल्य होता है। एसी गौ का जो दान करता है उसको पृथ्वी के दान का पुण्य होता है ॥३३१॥ जो व्याने वाली गौ को उसी दिन दान करता है उसने अग्नि में हवन भला-भाँति करने से पुण्य प्राप्त कर लिया है, उसको अपने पितरों को भी तृप्त करने का पुण्य मिल जाता है। गौ दान करने वाले ने सभी देवों का पूजन भी कर लिया है ॥३३२॥

जन्मप्रभृति यत्पापं मातृकं पैतृकं तथा ।
तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं वस्त्रदानान्न संशयः ॥३३३
कृष्णाजिनञ्च यो दद्यात् सर्वोपस्करसंयुतम् ,
उद्धरेन्नरकस्थानात् कुलान्येकोत्तर शतम् ॥३३४
आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ।
शूलपाणिस्तु भगवानभिनन्दन्ति भूमिदम् ॥३३५
बालुकानां कृता राशि र्यावत् सप्तर्षिमण्डलम् ।
गते वर्षशते चैव पलमेकं विशीर्यति ॥३३६

क्षयञ्च दृश्यते तस्य कन्यादाने न चैव हि ।
आतुरे प्राणदाता च त्रीणि दानफलानि च (!) ॥३३७
सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं ततोऽधिकम् ।
तुत्रादिस्वजने दद्याद्विप्राय च न कैतवेः ॥३३८
सकामः स्वर्गमाप्नोति निष्कामो मोत्रमाप्नुयात् ।
ब्राह्मणे वेदविदुषि सर्वशास्त्रविशारदे ॥३३९

वस्त्र के दान देने से जन्म से लेकर मातृ कुल सम्बन्धी तथा पैतृक जो कुछ पाप होता है वह सब तुरन्त ही नष्ट हो जाता है । जो कृष्ण मृग छाला समस्त अन्य वस्तुओं के साथ देता है वह अपने एक सौ एक कुलों को भी नरक के स्थान से मुक्त कराकर उद्धार कर देता है ॥ ३३३-३३४॥ सूर्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा सोम, अग्नि और भगवान् शिव सभी दान करने वाले व्यक्ति का अभिनन्दन करते है ॥३३५॥ जब तक सप्त ऋषियों का मण्डल विद्यमान रहेगा तब तक बालू के ढेर में से सौ वर्ष बीत जाने पर एक पल विशीर्ण होता है ॥३३६॥ कन्या के दान में उसका क्षय दिखलाई नहीं देता है । आतुर को प्राण के दाता को दान के तीन फल होते हैं ॥३३७॥ समस्त दानों में विद्या का दान सबसे बड़ा होता है । वह ज्ञान (विद्या) का दान अपने लोगों, पुत्र आदि तथा विप्र के लिये देना चाहिए, धूर्त्त व्यक्ति को कभी न देवे ॥३३८॥ कामना से मुक्त होकर दान देने वाला स्वर्ग प्राप्त करता है और निष्काम होकर दान दे तो मोक्ष प्राप्ति होती है । दान वेद के विद्वान् और समस्त शास्त्रों के पण्डित को देना चाहिए ॥३३९॥

मातृ पितृपरे चैव ऋतुकालाभिगामिनि ।
शीलचारित्रसम्पूर्णे प्रातःस्नानपरायणे ॥३४०
तस्यैव दीयते दानं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।
सपूज्य विदुषो विप्रानन्येभ्योऽपि प्रदीयते ।
तत्कार्यं नैव कर्तव्यं न दृष्टं न श्रुतं मया ॥३४१
अतः परं प्रवक्ष्यामि श्राद्धकर्मणि ये द्विजः ।
पितृणामक्षयं दानं दत्तं येषान्तु निष्फलम् ॥३४२

न हीनाङ्गो न रोगी श्रुतिस्मृति विवर्जितः ।
नित्यञ्चानृतवादी च तांस्तु श्राद्धे न भोजयेत् ॥३४३
हिंसारत च कपटं उपगूह्य श्रुतं च यः ।
किङ्करं कपिलं काणं श्वित्रिणं रोगिणं तथा ॥३४४
दुश्चर्माणं शीर्णकेश पाण्डुरोगं जटाधरं ।
भारवाहकमुग्रञ्च द्विभार्यं वृषलीपतिम् ॥३४५
भेदकारी भवेच्चैव बहुपीडाकरोऽपि वा ।
हीनातिरिक्तगात्रो का तमप्यपनयेत्तथा ॥३४६

माता और पिता की सेवा में परायण, ऋतु काल में गमन करने वाला शील और चरित्र से पूर्ण और नित्य हो प्रातःकाल में स्नान करने में तत्पर जो हो उसी को दान देना चाहिए यदि अपने कल्याण की चाह रखते हों। विद्वान् विप्रों को पूजन करके अन्यों का भी दान दिया जाता है किन्तु वह कार्य नहीं करना चाहिए। मैंने कभी ऐसा न सुना और न देखा है ॥३४०-३४१॥ इसके आगे श्राद्ध के विषय में बताते हैं कि श्राद्ध के कर्म में पितरों को नक्षय दान दिया गया है पर वह निष्फल हो जाता है ॥३४२॥ जो हीन अङ्ग वाला हो, जो श्रुति एवं स्मृतियों से रहित हो, सदा मिथ्या बोलने वाला हो ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्ध में कभी भी भोजन नहीं कराना चाहिए ॥३४३॥ सदा हिंसा में रत, कपटी, श्रुत को छिपाने वाला, किङ्कर, कपिल, काना, श्वित्रकुष्ठ वाला, रोगी, दुष्ट चर्म वाला, शीर्ण केशों वाला, पाण्डु रोग वाला, जटाधारी, बोझा ढोने वाला, उग्र स्वभाव वाला, दो स्त्री रखने वाला, शूद्र वर्ण की स्त्री का पति, भेद करने वाला और जो बहुतों को पीड़ा देने वाला हो ऐसों को तथा हीन एवं अतिरिक्त अङ्ग वाला हो, इनको भी श्राद्ध में दूर रक्खे ॥३४४॥

बहुभोक्ता दीनमुखो मत्सरी क्रूरबुद्धिमान् ।
एतेषां नैव दातव्यः कदाचिद्व प्रतिग्रहः ॥३४७
अथ चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः ।
अदूष्यं तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः ॥३४८

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे प्रकीर्तिते ।
काणः स्यादेकहीनोऽपि द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ।।३४९
न श्रुतिर्न स्मृतिर्यस्य न शीलं न कुलं यतः ।
तस्य श्राद्धं न दातव्यं त्वन्धकस्यात्रिरब्रवीत् ।।३५०
तस्माद्वेदेन शास्त्रेण ब्राह्मण्यं ब्राह्मणस्य तु ।
न चैकेनैव वेदेन भगवानत्रिरब्रवीत् ।।३५१
योगस्थैर्लोचनैर्युक्तः पादाग्रञ्च प्रयच्छति ।
लौकिकज्ञश्च शास्त्रोक्तं पश्येच्चैवाधरोत्तरम् ।।३५२
वेदंश्च ऋषिभिर्गीतं दृष्टिमान् शास्त्रवेदवित् ।।३५३
व्रतिनं च कुलीनं च श्रुतिस्मृतिरतं सदा ।
तादृशं भोजयेच्छ्राद्धे पितॄणामक्षयं भवेत् ।।३५४
यावतो ग्रसतेग्रासान् पितॄणां दीप्ततेजसाम् ।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।।३५५
नरकस्था विमुच्यन्ते ध्रुवं यान्ति त्रिविष्टपम् ।
यस्माद्विप्रं परीक्षेत श्राद्धकाले प्रयत्नतः ।।३५६

बहुत खाने वाला, दीन मुख वाला, मात्सर्य दोष वाला और क्रूर बुद्धि वाला इनको कभी भी दान नहीं देना चाहिए । यदि शारीरिक पंक्ति के दोषों से युक्त भी हो पर मन्त्रवेत्ता हो तो उसको यम ने अदूष्य एवं पंक्तिपावन ही कहा है । श्रुति और स्मृति विप्रों को दो नेत्रों के समान बताये गये हैं । दोनों में से जो एक से रहित होता है वह काना है और जो दोनों से हीन है वह अन्धा होता है ।।३४७-३४९ । अत्रि महर्षि ने कहा है जो न तो श्रुति का ज्ञाता है और न स्मृति ही जानता है, न जिसका शील है और न कुल ही अच्छा है उसको कभी भी श्राद्ध नहीं देना चाहिए और नेत्रान्ध को भी श्राद्ध न देवे । ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व वेद तथा शास्त्र दोनों से ही होता है—ऐसा अत्रि ने बताया है ।।३५०-३५१।। योगस्थ नेत्रों से युक्त पुरुष ही आगे पैर देता है । लौकिक के ज्ञाता शास्त्रों में कथित अधरोत्तर को देखता है । ऋषियों के द्वारा कथित वेदों से जाना जाता है और शास्त्र का विद्वान् दृष्टि वाला होता है । व्रत धारण

करने वाला, सत्कुल में समुत्पन्न, श्रुति और स्मृति में रति रखने वाले ब्राह्मण को श्राध्द में भोजन कराना चाहिए जोकि पितरों का अक्षय होता ...२-३५४।। दीप्त तेज वाले पितरों में जितने भी ग्रास ग्रसित होते हैं उनसे पिता, पितामह और प्रपितामह सब नरक में स्थित होने वाले भी मुक्ति पाकर निश्चय ही स्वर्ग को जाते हैं। इसीलिये श्राद्ध के समय में प्रयत्नपूर्वक भली भाँति ब्राह्मण की जाँच कर लेनी चाहिए ।।३५५-३५६।।

वैश्वदेवे च होमे च देवताभ्यर्च्चने जपे ।
अमृतं तेन विप्रान्नमृग्यजु। साम सस्कृतम् ।।३५७
व्यवहारनुपूर्वेण धर्मेण बलिर्भिजितम् ।
क्षत्रियान्नं पयस्तेन घृतान्नं यज्ञपालने ।।३५८
देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्यः शुद्रो निषादकः ।
पशुर्म्लेच्छोऽपि चाण्डालो विप्रा दशविधाः स्मृताः ।।३५९
सन्ध्यां स्नानं जपं होमं देवतानित्यपूजनम् ।
अतिथिं वैश्वदेवञ्च देवब्राह्मण उच्यते ।।३६०
शाके पत्रे फले मूले वनवासे सदा रतः ।
निरतोऽहरहः श्राद्धे स विप्रो मुनिरुच्यते ।।३६१

वैश्वदेव में, होम में, देवार्चन में, जप में ऋग्-यजु और साम वेद से संस्कार किया हुआ ब्राह्मण का अन्न अमृत के तुल्य है। व्यवहार के अनुपूर्व धर्म से बलियों के द्वारा जीता हुआ क्षत्रिय का अन्न दूध के समान है और यज्ञ के पालन करने में घृत के तुल्य है ।।३५७-३५८।। ब्राह्मण भी दश प्रकार के होते हैं। देव, मुनि, द्विज, राजा, वैश्य, शूद्र, निषाद, पशु, म्लेच्छ और चाण्डाल ये उसके प्रकार हैं। सन्ध्या, स्नान जप, होम, नित्य देवों का पूजन, अतिथि और वैश्वदेव करने वाला देव ब्राह्मण कहलाता है। शाक, फल, मूल और वन के निवास में सदा रति रखने वाला और प्रतिदिन श्राद्ध में निरत रहने वाला ब्राह्मण मुनि कहा जाता है ।।३५९-३६१।।

वेदान्तं पठते नित्यं सर्वसङ्गं परित्यजेत् ।
साङ्ख्य्योगविचारस्थः स विप्रो द्विज उच्यते ।।२६२
अस्त्राहताश्च धन्वानः संग्रामे सर्वसंमुखे ।
आरम्भे निर्जिता येन स विप्रः क्षत्र उच्यते ।।३६३
कृषिकर्मरतो यश्च गवाञ्च प्रतिपालकः ।
वाणिज्यव्यवसायश्च स विप्रो वैश्य उच्यते ।।३६४
लाक्षालवणसमिश्रं कुसुम्भं क्षीरसर्पिषः ।
विक्रेता मधुमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ।।३६५
चौरश्च तस्करश्चैव सूचको दंशस्तथा ।
मत्स्यमांसे सदालुब्धो विप्रो निषाद उच्यते ।।३६६
ब्रह्मतत्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः ।
तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः ।।३६७
वापीकूपतड़ागानामारामस्य सरः सु च ।
निःशङ्कं रोधकश्चैव स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ।।३६८
क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्वधर्मविवर्जितः ।
निर्दयः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ।।३६६

जो नित्य ही वेदान्त पढ़ता रहता है और सबके संग का त्याग कर देता है तथा साङ्ख्य और योग-दर्शन के विचार में स्थित है वह द्विज कहा गया है । अस्त्रों से आहत, धनुषधारी, संग्राम में सबका मुकाबिला करने में कटिबद्ध और आरम्भ में हा जिसने जीत लिया हो ऐसा राजा या क्षत्रिय विप्र होता है ।।३६२-३६३।। खेती के काम में निरत, गो पालक, वाणिज्य तथा व्यवसाय करने वाला वैश्य विप्र कहा गया है । लाख, लवण, कुसुम्भ, दूध और घृत का बेचने वाला एवं मधु तथा आमिष का बेचने वाला शूद्र विप्र होता है । चोर, तस्कर, सूचक दंशक और मत्स्य तथा माँस का लालची निषाद विप्र होता है ।।३६४-३६६।। ब्रह्म के तत्व को बिल्कुल भी नहीं जानकर केवल जनेऊ धारण करने से गर्व रखने वाले इसी पाप से पशु ब्राह्मण होता है ।बावड़ी कुआ, तालाब, बाग और नदी का निःशङ्क होकर रोध करने वाला म्लेच्छ विप्र होता

है। क्रिया से हीन, मूर्ख, दया रहित और समस्त धर्म के कार्यों से रहित चाण्डाल विप्र कहा जाता है ॥३६७-३६९॥

वदविहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं ण हीनाश्च पुराणगाठाः ।
पुराणहीनाःकृषिणोभवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति।।३७०
ज्योतिर्विदो ह्यथर्वाणः कीराः पौराणपाठका: ।
श्राद्धे यज्ञे महादाने वरणीयाः कदाचन ॥३७१
श्राद्धञ्च पितरं घोरं दानं व चैनु निष्फलम् ।
यज्ञे च फलहानिः स्यात्तस्मात्तान् परिवर्जयेत् ॥३७२
आविकश्चत्रकारश्च वैद्यो नक्षत्रपाठकः ।
चतुर्विप्रा न पूज्यन्ते बृहस्पतिसमा यदि ।।३७३
मागधो माथुरश्चैव कापटः कोटकानजौ ।
पञ्च विप्रा न पूज्यन्ते वृहस्पतिसमा यदि ।।३७४
क्रयक्रीता च या कन्या पत्नी सा न विधीयते ।
तस्यां जाताः सुतास्तेषां हितृपिण्ड न विद्यते ॥३७५
अष्टशल्यागतो नोरं पाणिना पिवत द्विजः ।
सुरापानेन तत्तल्य तुल्य गोमांसभक्षणम् ।।३७६

जो वेदों के ज्ञान से वञ्चित होते हैं वे शास्त्रों को पढ़ते हैं। जो शास्त्र ज्ञान से भी हीन होते हैं वे पुराणों के पाठ को किया करते हैं। जो पुराणों से भी रहित होते हैं वे खेती करते हैं और इस काम से भी भ्रष्ट होने वाले भागवत बन जाते हैं ।।३७०।। ज्योतिष के ज्ञाता, अथर्व वेद के विद्वान् की और पुराणों के पाठक श्राद्ध, महादान में कभी भी वरणीय नहीं होते हैं ॥३७१॥ पितरों का श्राद्ध, महादान सब निष्फल हो जाता है और यज्ञ में फल की हानि होती है अतएव इनमें उनको वर्जित कर देना चाहिए। आविक (भेड़ चराने वाला) चित्रकार, वैद्य और नक्षत्र पाठक (ज्योतिषी) से चार प्रकार के ब्राह्मणों की पूजा नहीं करनी चाहिए चाहे वे बृहस्पति के समान ही क्यों न हों ॥३७२-३७३॥ मागध, माथुर, कापट, कीट, कानज ये पांच ब्राह्मण भी बृहस्पति के तुल्य भी हों तो भी पूज्य नहीं होते हैं। मूल्य देकर जो कन्या खरीदी

गई हो उसे कभी पत्नी नहीं बनावे क्योंकि उससे जो पुत्र उत्पन्न होंगे उनका पितृपिण्ड नहीं होता है। अष्टशल्य से आये हुए जल को जो हाथ से द्विज पीता है वह सुरा पान के समान होता है अथवा गोमाँस के भक्षण के बराबर होता है ॥३७४-३७६॥

ऊर्द्ध्वजङ्घेषु विप्रेषु प्रक्षाल्य चरणद्वयम्।
तावच्चाण्डलरूपेण यावद्गङ्गां न मज्जति ॥३७७
दीपशय्यासनच्छाया कार्पासं दन्तधावनम्।
अजारेणुस्पृशं चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥३७८
गृहाद्दशगुणं कूपं कूपाद्दशगुणं तटम्।
तटाद्दशगुणं नद्यां गङ्गासंख्या न विद्यते ॥३७९
स्रवद्यद्ब्राह्मणं तोयं रहस्यं क्षत्रियं तथा।
वापीकूपे तु वैश्यस्य शौद्रं भाण्डोदकं तथा ॥३८०
तीर्थं स्नानं महादानं यच्चान्यत्तिलतर्पणम्।
अब्दमेकं न कुर्वीत महागुरुनिपाततः ॥३८१
गङ्गा गया त्वमावस्या वृद्धिश्राद्ध क्षयेऽहनि।
मघापिण्डप्रदानं स्यादन्यत्र परिवर्ज्जयेत् ॥३८२
घृतं वा यदि वा तैलं पयोवा यदि वा दधि।
चत्वारो ह्याज्यसंस्थानं हुत नैव तु वर्जयेत् ॥३८३
श्रुत्वैतानृषयो धर्मान् भाषितानत्रिणा स्वयम्।
इदमूचुर्महात्मानं सर्वे ते धर्मनिष्ठिताः ॥३८४
य इदं धारयिष्यन्ति धर्मशास्त्रमतन्द्रिता।
इह लोके यशः प्राप्य ते यास्यन्ति त्रिपिष्टपम् ॥३८५
विद्यार्थी लभते विद्यां धनकामो धनानि च।
आयुष्कामस्तथैवायुः श्रीकामो महतीं श्रियम् ॥३८६

जाँघों से ऊपर तक विप्र दोनों चरण धोकर जब तक गङ्गा में स्नान नहीं करता है तब तक चाण्डाल के स्वरूप वाला रहता है ॥३७७॥ दीप, शय्या, आसन की छाया और कपास का दन्त धावन, बकरी के रेणु का स्पर्श ये सब सामान्य व्यक्ति की तो बात ही क्या है इन्द्र की भी लक्ष्मी

का हरण करते हैं। घर से दश गुना उत्तम कुए का स्नान है और कुए से दश गुना नदी तट का तथा तट से भी दश गुना मध्य नदी का स्नान उत्तम होता है तथा गङ्गा स्नान को तो कोई संख्या ही नहीं बतलाई जा सकती है ॥३७८-३७९॥ जो जल स्रव रहा है वह ब्राह्मण स्वरूप है। एकान्त स्थित क्षत्रिय तुल्य है। वापी और कुए का जल वैश्य रूप है। जो बरतन में रक्खा है वह शूद्र तुल्य होता है। तीर्थ का स्नान, महादान और अन्य तिलों के साथ तर्पण एक वर्ष महागुरु निपात से नहीं करना चाहिए ॥३८०-३८१॥ गङ्गा, गया, अमावस्या, वृद्धिश्राद्ध और क्षय दिन में मघापिण्ड करे इसके अतिरिक्त अन्य में वर्जित कर देना चाहिए। घृत, तेल, दूध अथवा दही ये चारों घी संस्थान हैं। इनका हवन वर्जित नहीं करे। महर्षि भगवान् अत्रि के द्वारा कहे हुए इन धर्मों को सुनकर धर्म में निष्ठा रखने वाले वे समस्त ऋषिगण महान् आत्मा वाले महर्षि अत्रि से यह बोले—जो इस धर्म्म शास्त्र को निरालस्य होकर धारण करेंगे वे इस लोक में यश प्राप्त कर स्वर्ग लोक को जायेंगे। विद्या के प्रयोजन वाले विद्या प्राप्त करते हैं, धन की कामना वाले धन पाते हैं, आयु चाहने वाले आयु पाते हैं और श्री की कामना वाले बहुत बड़ी श्री की प्राप्ति किया करते हैं ॥३८२-३८६॥

———

बृहस्पति स्मृतिः

।। प्रथमोऽध्यायः ।।

तत्रादौ सुवर्णपृथिवीदानफलमहत्त्ववर्णनम् ।

इष्ट्वा क्रतुशतं राजा समाप्तवरदक्षिणम् ।
मघवान् ! वाग्विदां श्रेष्ठं पर्य्यपृच्छद् बृहस्पतिम् ।।१
भगवन् केन दानेन सर्वतः सुखमेधते ।
यद्दत्तं यन्महार्घं च तन्मे ब्रूहि महातय ! ।।२
एवमिन्द्रेण पृष्टोऽसौ देवदेवपुरोहितः ।
वाचस्पतिर्महाप्राज्ञो बृहस्पतिरुवाच ह ।।३
सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं च वासव !
एतत् प्रयच्छमानस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।४
सुवर्णं रजतं बस्त्र मणिरत्नं च वासव ! ।
सर्वमेव भवेद्दत्तं वसुधां यः प्रयच्छति ।।५
फालकृष्टां महीं दत्त्वा सबीजां शस्यशालिनीम् ।
यावत् सूर्य्यकरा लोकास्तावत् स्वर्गे महीयते ।।६
यत्किंचित् कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्शितः ।
अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ।।७

देवराज इन्द्र ने श्रेष्ठ दक्षिणादि कार्य समाप्त करते हुए सौ क्रतु (यज्ञ) पूर्ण करने वाले में श्रेष्ठ सुर-गुरु बृहस्पतिजी से पूछा ।।१।। हे महान् तपस्वी भगवन् ! प्राणी किस दान के देने से सब प्रकार का सुख भोगता है ? ऐसा दिया हुआ दान जो सबसे विशेष महत्त्व रखता हो, मुझे कृपा कर बतलाओ ।।२।। इस प्रकार इन्द्र के द्वारा देवताओं के

पुरोहित जब पूछे गये तो महा महिम पण्डित वृहस्पति बोले ।।३।। वृहस्पतिजी ने कहा—इन्द्रदेव ! सुवर्ण का दान, गादान और भूमि का दान देने वाला व्यक्ति समस्त प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है ।।४।। जो व्यक्ति का दान देता है उसके एक मात्र वसुधा दान से ही सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र, मणि-रत्न आदि के दान का फल प्राप्त हो जाता है, अर्थात् भूमि-दान इनमें सबसे श्रेष्ठ होता है ।।५।। हल से जुती हुई, बीजयुक्त अर्थात् बोई हुई और शस्य वाली भूमि का जो दान करता है, वह जब तक संसार में सूर्य की किरणों का प्रकाश रहता है, तब तक स्वर्ग में निवास करता है ।।६।। वृत्ति से कर्शित पुरुष जो कुछ भी पाप करता है, वह गाय के चर्म के बराबर भूमि का दान करने से अपने कृत पाप से शुद्ध हो जाता है ।।७।।

दशहस्तेन दण्डेन त्रिशद्दण्डानि वर्त्तनम् ।
दश तान्येव विस्तारो गोचर्मं तन्महाफलम् ।।८
सवृषं गोसहस्रं च यत्र तिष्ठत्यतन्द्रितम् ।
बालवत्सप्रसूतानां तद् गोचर्म इतिस्मृतम् ।।९
विप्राय दद्याच्च गुणान्विताय तपोवियुक्ताय जितेन्द्रियाय ।
यावन्मही तिष्ठति सागरान्ता तावत् फलं तस्य भवेदनन्तम् ।१०
यथा बीजानि रोहन्ति प्रकीर्णानि महीतले ।
एवं कामाः प्ररोहन्ति भूमिदानसमार्जिताः ।।११
यथाप्सु पतितः सद्य स्तैलबिन्दुः प्रसर्पति ।
एवं भूमिकृतं दानं सश्ये सश्ये प्ररोहति ।।१२
अन्नदाः सुखिनो नित्यं वस्त्रदश्चैव रूपवान् ।१३
स नरः सर्वदो भूप यो ददाति वसुन्धराम् ।
यथा गौर्भरते वत्स क्षीरमुत्सृज्य क्षीरिणी ।।१४

दश हस्त दंड से तीन दंड का वर्त्तन होता है और दश वर्त्तन का विस्तार होता है, उसका गो-चर्म में महान् फल होता है ।।८।। वृषों के साथ एक हजार गो जहाँ पर अतन्द्रित रूप से स्थित हो सकें जो कि ब्याई हुई और बच्चों वाली भी हों, वह गो चर्म कहा गया है ।।९।। भूमि

दान गुणों से युक्त, तपस्वी, जितेन्द्रिय ब्राह्मण को देना चाहिए । ऐसे दान का अनन्त फल होता है और समुद्र के सहित जब तक पृथ्वी रहती है तब तक वह फल होता है ।।१०।। पृथ्वी में फैलाये हुए बीज जिस तरह उगते हैं, उसी तरह भूमि दान से समार्जित अभीष्ट भी सफल होते हैं ।।११।। जिस प्रकार जल में पड़ी हुई तेल की बूंद चारों ओर फैल जाती है उसी प्रकार भूमि का दिया हुआ दान प्रत्येक शस्य में उगता है ।।१२।। अन्न के दान करने से सुखी होते हैं और वस्त्र के दान करने वाले रूपवान् होते हैं। वह मनुष्य सभी का दान करने वाला राजा होता है, जो पृथ्वी का दान देता है ।।१३।। जिस तरह गौ अपने वत्स का भरण करती है। और उसे पुष्ट करने को क्षीर का प्रदान करती है। हे सहस्राक्ष ! उसी प्रकार दान में दी हुई भूमि दान देने वाले का भरण किया करती है । १४।।

एवं दत्ता सहस्राक्ष ! भूमिर्भरति भूमिदम् ।
शंखं भद्रासनं छत्रं चरस्थावरवारणाः ।।१५
भूमिदानस्य पुण्यानि फलं स्वर्गः पुरन्दर ! ।
आदित्यो वरुणो वह्निर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ।।१६
शूलपाणिश्च भगवानभिनन्दति भूमिदम् ।
आस्फोटयन्ति पितरः प्रहर्षन्ति पितामहाः ।।१७
भूमिदाता कुले जातः स नस्त्राता भविष्यति ।
त्रीण्याहुरति दानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ।।१८
तारयन्ति हि दातारं सर्वात्पापादशशयम् ।
प्रावृता वस्त्रदा यान्ति नग्ना यान्ति त्ववस्त्रदाः ।।१९
तृप्ता यान्त्यन्नदातारः क्षुधिता यान्त्यनन्नदाः ।
कांक्षन्ति पितरः सर्वे नरकाद्भयभीरवः ।।२०
गयां यो यास्यति पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ।
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।।२१

हे पुरन्दर ! शंख, भद्रासन, छत्र और चर एवं स्थावर के कारण भूमि दान के ही पुण्य होते हैं। इसका फल स्वर्ग होता है। सूर्य, वरुण,

अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्र और हुताशन, शूलपाणि तथा भगवान भूमि के दान करने वाले का अभिनन्दन करते हैं। पितृगण तृप्त होते हैं और पितामह परम हर्षित होते हैं ।।१५-१७।। प्रमुख तीन दान बतलाये गये हैं । गौ दान, भूमिदान और विद्या का दान। ये तीनों दान करने वाले दाता को समस्त पापों से उद्धार कर देते हैं। जो वस्त्र का दान किया करते हैं, वे वस्त्रावृत होते हुए जाते हैं जो कभी वस्त्र का दान नहीं करते हैं, वे नंगे ही जाया करते हैं ।।१८-१९।। जो अग्नि दाता हैं वे तृप्त होते हुए जाते हैं। और जो कभी भी अन्न का दान नहीं करते हैं, वे भूखे ही जाते हैं। नरक के भय से डरे हुए पितृगण सभी इच्छा रखते हैं कि जो कोई भी पुत्र गया को जाता है वह (पितृगण कहते हैं) हमारी रक्षा करने वाला होता है। बहुत से पुत्रों की इच्छा रखनी चाहिए, जिनमें से कोई एक तो चला ही जायगा ।।२०-२१।।

यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।
लोहितो यस्तु वर्णेन पुच्छाग्रे यस्तु पाण्डुरः ।।२२
श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ।
नीलः पाण्डुरलांगूलस्तृणमुद्धरते तु यः ।।२३
षष्टिवर्षसहस्राणि पितरेस्तेन तर्पिताः ।
यच्च शृङ्गगतम्पङ्कं कूलास्तिष्ठति चोद्धृतम् ।।२४
पितरस्तस्य नश्यन्ति सोमलोकं महाद्युतिम् ।
पृथोयदोर्दिलीपस्य नृगस्य नहुषस्य च ।।२५
अन्येषाञ्च नरेन्द्राणां पुनरन्या भविष्यति ।
बहुभिर्वसुधा दत्ता राजभि सगरादिभिः ।।२६
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य यस्य तदा फलम् ।
यस्तु ब्रह्मघ्नः स्त्रीघ्नो वा यस्तु वै पितृघातकः ।।२७
गवां शतसहस्राणां हन्ता भवति दुष्कृती ।
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धराम् ।।२८
श्वविष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते ।
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तमेव नरकं व्रजेत् ।।२९

अश्वमेध यज्ञ का यजन करे अथवा नील वृष (बैल) का उत्सर्ग करे। जो रंग लाल हो और पूँछ के अग्र भाग में पाण्डुर वर्ण का हो तथा खुर और सींग सफेद हों, वह नील वृष कहा जाता है ॥२३॥ जो नीला, पाण्डु और लाँगुल रहित होता है और जो तृण को लेता या खाता है, उससे साठ हजार तक पितृगण तृप्त होते हैं। और जो शृंग में रहने वाला उद्धृत पंक कूल रहता है, उसके पितर महा कान्ति वाले सोम-लोक को नष्ट कर देते हैं। पृथु, यदु, दिलीप, नृग और नहुष तथा अन्य राजाओं की, फिर अन्य की हो जाती है। बहुत से राजा सगरादि के द्वारा पृथ्वी दी गई है ॥२६॥ जिस-जिस की जब थी, तब उस उस का फल हुआ। जो ब्रह्मघ्न, स्त्री-हन्ता अथवा पितृ-घातक है, वह दुष्कृत वाला हजार गायों का हन्ता होता है ॥२७॥ अपने हाथ से दी हुई या अन्य किसी के द्वारा दान की हुई भूमि का जो अपहरण करता है, वह श्वान के मल का कीड़ा वन कर अपने पितरों के साथ यातना भोगता है। ऐसी भूमि के अपहरण कर्म में आक्षेप करने वाला तथा उपका अनुमोदन करने वाला भी उसी नरक का भागी होता है ॥२८-२६॥

भूमिदो भूमिहर्त्ता च नापर पुण्यपापयोः ।
उर्द्ध्वाधो वाऽवतिष्ठेत यावदाभूतसंप्लवम् ॥३०
अग्नेरपत्य प्रथमं हिरण्यं भूर्वैष्णवा सूर्य सुताश्च गावः ।
लोकास्त्रयस्तनभवन्तिदत्तः यःकाञ्चनंगाञ्चमहीञ्चदद्यात् ।
षडशीति सहस्राणां योजनानां वसुन्धराम् ।
स्वनो दत्ता तु सर्वत्र सर्वकामप्रदायिनी ॥३२
भूमिं यः प्रतिगृह्णाति भूमिं यश्च प्रयच्छति ।
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियत स्वर्गगामिनौ ॥३३
सर्वेषामेव दानानां एकजन्मानुगं फलम् ।
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥३४
यो न हिंस्यादहं ह्यात्मा भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
तस्य देहाद्वियुक्तस्य भयं नास्ति कदाचन ॥३५

भूमि के दान करने वाला और भूमि के अपहरण करने वाला अपने इस पुण्य और पाप के कारण ही जब तक समस्त भूतों का संप्लवन (लय) हो ऊर्ध्व और अधो भाग में रहते हैं। केवल इसी का यह परिणाम भोगना पड़ता है अन्य का नहीं ।३०।। अग्नि का अपत्य सुवर्ण प्रथम दान होता है, वैष्णवी भूमि, सूर्यसुत (घोड़ा) और गो का भी दान होता है, किन्तु जिसने सुवर्ण, गो और पृथ्वी का दान दिया है उसने तीनों लोकों का दिया हैं ।।३१।। छयासी हजार योजन वसुन्धरा को जो स्वयं दान कर चुका हो उसको वह सर्वत्र समस्त लाभों को प्रदान करने वाली होती है ।।३२।। भूमि को जो ग्रहण करता है और जो भूमि को दान में देता है ये दोनों पुण्य कर्म करने वाले होते है और नियत रूप से स्वर्गगामी होते हैं ।।३३।। अन्य समस्त दानों का एक ही जन्म में रहने वाला फल होता है किन्तु सवर्ण, भूमि और गौरी के दान का फल सात जन्म तक रहता है ।।३४।। जो चारों प्रकार के प्राणियों को अपनी जैसी एक ही आत्मा का स्वरूप मानकर हिंसा नहीं करता है वह अपना शरीर के त्यागने पर भी कहीं भययुक्त नहीं रहता है ।।३५।।

अन्यायेन हृता भूमिर्यै न नरैरपहारिता ।
हरन्तो हारयन्तश्च हनुस्ते सप्तमकुलम् ।।३६
हरते हरयेद्यस्तु मन्दबुद्धिस्ततो वृतः ।
स बध्यो वारुणैः पाशैस्तिर्यग्योनिषु जायते ।।३७
अश्रुभिः पतितैस्तेषां दानानामपकोर्त्तनम् ।
ब्राह्मणस्य हृते क्षेत्रे हृतं त्रिपुरुष कुलम् ।।३८
वापीकूपसहस्रेण अश्वमेधशतेन च ।
गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता न शुध्यति ।।३९
गामेकां स्वर्णमेकं वा भूमेरप्यर्द्ध मंगुलम् ।
रुन्धन्नरकमायाति यावदाभूतसम्प्लवम् ।
हुतं दत्तं तपोऽधीत यत्किञ्चिद्धर्मसञ्चितम् ।।४०
अर्द्धांगुलस्य सीमाया हरणेन प्रणश्यति ।
गोवीथीं ग्रामरथ्याञ्च श्मशान गोपितं तथा ।।४१

सम्पीड्य नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ।
ऊषरे निजले स्थाने प्रस्तं शस्यं विसर्जयेत् ।.४२

अन्याय से जो भूमि का हरण किया जाता है और जिन मनुष्यों के द्वारा वह अपहृत कराई जाती है वे अपने सात कुल का नाश कर देते हैं ।।३६।। जो हरण करता है और जो हरण कराता है वह बहुत ही मन्द बुद्धि वाला मनुष्य है और वरुण के पाश से वध्य होता है तथा तिर्यग् योनि में जन्म लेता है ।।३७।। जिनकी भूमि का अपहरण किया जाता है उनके गिरे हुए आँसुओं से दानों को अकीर्ति होती है । ब्राह्मण के क्षेत्र का अपहरण करने पर तीन पुश्त तक कुल का अपहरण होता है ।।३८।। भूमि के हरण करने वाला हजार कूप तथा बावड़ो के निर्माण से, सौ अश्व मेध यज्ञ करने से और एक करोड़ गौओं के दान करने से भी शुद्ध नहीं होता है ।।३९।। एक गौ, स्वर्ण और अर्ध अंगुल भूमि को जो रोकता है वह नरक में जाता है और भूत संप्लव होने तक वहाँ रहता है ।।४०।। हवन, दान, तप और अध्ययन आदि जो कुछ भी धर्म का सञ्चय किया हो आधी अंगुल सीमा की भी भूमि के हरण से सब नष्ट हो जाता है ।।४१।। गायों की वीथी, ग्राम की रथ्या (गली) श्मशान और गोपित इन का संपीडन करके लय पर्यन्त नरक गामी होता है ।।४२।।

जलाधारश्च कर्त्तव्यो व्यासस्य वचनं यथा ।
पच कन्यानृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।।४३
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ।
हन्ति जाता नजाताश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदेत् ।। ४
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मास्म भूम्यनृतं वदीः ।
ब्रह्मस्वे मा रतिं कुर्याः प्राणैः कण्ठगतैरपि ।।४५
अनौषधमभेषज्यं विषमेतद्धलाहलम् ।
न विषं विषमित्याहुः ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ।।४६
विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ।
लोहखण्डाश्मचूर्णं च विषञ्च जरयेन्नरम् ।।४७

ब्रह्मस्वं त्रिषुलोकेषु कः पुमानः ज्वरयिष्यति ।
मन्युप्रहरणा विप्रा राजानः शस्त्रपाणयः ।।४८
शस्त्रमेकाकिन हन्ति विप्रमन्युः कुलक्षयम् ।
मन्युप्रहरणा विप्रा श्चक्रप्रहरणो हरिः ।।४९

ऊसर (अनउपजाऊ भूमि) निर्जल स्थान में अच्छी फसल का त्याग कर देना चाहिए ।। ४३ ।। जल का आधार अवश्य ही करना चाहिए जैसा कि व्यास का वचन है । अनृत भाषण में पञ्च कन्या, दश गाय, सौ अश्व और हजार पुरुष का हनन करता है । जो सुवर्ण के लिए अनृत बोलता है वह जात और अजात का हनन करता है । भूमिके अमृत (मिथ्या) में सब का हनन करता है अतः भूमि के लिए झूठ न बोले । ब्राह्मण के धन के लिए झूठ न बोले । ब्राह्मण के धन के लिए कभी प्रेम न करे चाहे प्राण कण्ठगत भी क्यों न हो जावें ।।४४-४५।। जिसकी कोई भी औषध तथा भेषज नहीं है यह एक ऐसा हलाहल विष है । वस्तुतः विष कुछ भी नहीं है ब्राह्मण का धन ही एक भयानक विष होता है ।।४६।। साधारण विष तो केवल खाने वाले एक ही पुरुष का मारक होता है किन्तु ब्रह्मस्व रूपी पुत्र पौत्रादि का भी मारक होता है । लोह खण्ड और अश्म चूर्ण तथा विष मनुष्य को जला देता है किन्तु तीनों लोकों में कौन ऐसा है जो ब्रह्मस्व को जला सके ।।४७।। ब्राह्मणों का प्रहरण (अस्त्र) एक क्रोध ही होता है । राजा शस्त्रधारी होते हैं । शस्त्र तो एकाकी का हनन करता है किन्तु विप्र का क्रोध पूरे कुल का नाश कर देता है । जिस तरह भगवान् का शस्त्र चक्र होता है वैसे ही ब्राह्मणों का शस्त्र क्रोध है ।।४८-४९।।

चक्रात्तीव्रतरो मन्युस्तमाद्विप्रं न कोपयेत् ।
अग्निदग्धाः प्ररोहन्ति सूर्यदग्धास्तथैव च ।।५०
मन्युदग्धस्य विप्राणामंकुरो न प्ररोहति ।
अग्निदहति तेजसा सूर्यो दहति रश्मिभिः ।।५१

राजा दहति दण्डेन विप्रो दहति मन्युना।
ब्रह्मस्वेन तु यत् सौख्यं देवस्वेन तु या रतिः ।।५२
तद्धनं कुलनाशाय भवत्यात्मविनाशकम् ।
ब्रह्मस्वं ब्रह्महत्या च दरिद्रस्य च यद्धनम् ।।५३
गुरुमित्रहिरण्यञ्च स्वर्गस्थमपि पीडयेत् ।
ब्रह्मस्वेन तु यच्छिद्रं तच्छिद्रं न प्ररोहति ।।५४
प्रच्छादयति तच्छिद्रमन्यत्र तु विसर्पति ।
ब्रह्मस्वेन तु पुष्टानि साधनानि बलानि च ।।५५
संग्रामे तानि लीयन्ते सिकतासु यथोदकम् ।
श्रोत्रियाय कुलीनाय दरिद्राय च वासव ! ।।५६

विष्णु के चक्र से भी तीक्ष्ण ब्राह्मण का क्रोध होता है अतः ब्राह्मण को कभी भी क्रोधित नहीं करना चाहिए । अग्नि से जले हुए भी उग आते हैं और सूर्य ताप से दग्ध भी पुनः जम जाया करते हैं किन्तु ब्राह्मण के क्रोध से जला हुआ अंकुर नहीं होता है ।।५०।। अग्नि तेज से जलाता है और सूर्य अपनी किरणों से जलाता है किन्तु ब्राह्मण क्रोध से ही जला देता ब्रह्मस्व से सौख्य और देवस्व से रति का नाश होता है ।।५२।। यह ऐसा धन कुल का नाशक तथा आत्मा का विनाशक होता है ब्रह्मस्व, ब्रह्महत्या, दरिद्र का धन, गुरु तथा मित्र का सुवर्ण स्वर्ग में स्थित पुरुष को भी पीडित किया करता है । ब्रह्मस्व से जो छिद्र होता है वह कभी फलता फूलता नहीं ।।५४।। यह ऐसा छिद्र है जो ढक जाता है और दूसरे स्थान में जाकर फैल जाया है । ब्राह्मण के धन से जो भी पुष्ट हों चाहे वे कोई भी साधन हों या सैन्य हो, संग्राम में वे सब बालू में जल की भाँति नष्ट या लीन हो जाते हैं । अतः हे इन्द्र ! दान वेदज्ञाता, कुलीन और दरिद्र के लिए ही देना चाहिए । ।।५६।।

सन्तुष्टाय विनीताय सर्वभूतहिताय च ।
वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।।५७
ईदृशाय सुरश्रेष्ठ ! यद्दत्तं हि तदक्षयम् ।
आमपात्रे यथान्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ।।५८

विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं विनश्यति ।
एवं गाञ्च हिरण्यञ्च वस्त्रमन्नं महीं तिलान् ।।५९
अविद्वान् प्रतिगृह्णाति भस्मीभवति काष्ठवत् ।
यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चापि बहुश्रुतः ।।६०
बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ।
कुलं तारयते धीरः सप्त सप्त च वासव ! ।।६१
यस्तडागं नवं कुर्य्यात् पुराणं वाऽपि खानयेत् ।
स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गे लोके महीयते ।।६२
वापीकूपतडागानि उद्यानोपवनानि च ।
पुनः संस्कारकर्त्ता च लभते मौलिकं फलम् ।।६३

दान सर्वदा योग्य पात्र को ही देना चाहिए । जो सदा सन्तोषी हो, विनम्र व्यवहार वाला हो, समस्त प्राणिमात्र का भला करने वाला हो, तप और ज्ञानयुक्त हो और इन्द्रियों को संयम में रखने वाला हो उसी को दान का योग्य पात्र कहा जाता है ।।५७।। बृहस्पिति जी ने कहा–हे सुर-श्रेष्ठ ! उपर्युक्त गुणगण विशिष्ट ब्राह्मण को जो दान दिया जाता है वह अक्षय होता है और सर्वदा उसका फल प्राप्त होता है । कच्चे पात्र में रक्खा हुआ दूध, दही घृत और मधु जिस प्रकार पात्र की कमजोरी के कारण नष्ट हो जाता है और वह पात्र भी स्वयं नष्ट हो जाता है उसी प्रकार जो अयोग्य एवं मूर्ख गाय, सुवर्ण, वस्त्र अन्न, भूमि और तिल का दान लेता है वह काष्ठ की भाँति भस्म हो जाता है । दाता और दान लेने वाला दोनों ही पाप-भागी होते हैं ।।५८-५९।। जिसके चाहे कोई मूर्ख ब्राह्मण घर में ही रहता हो और बहुश्रुत अर्थात् विद्वान घर से दूर हो तो भी बहुश्रुत को ही बुलाकर दान देना चाहिए, मूर्ख को कभी नहीं देवे हे इन्द्र ! ऐसा दाता अपने सात पुरुषों का उद्धार कर देता है ।।६०-६१।। जो कोई नया तालाब बनवाए या पुराने तालाब को खुदवाकर उसका जीर्णोद्धार करवाये वह अपने समस्त कुल का उद्धार करके स्वर्ग लोक में वास करता है ।।६२।। बावड़ी-कुआ-तालाब-उद्यान (बाग) और उपवन

का पुनः संस्कार कराने वाला व्यक्ति भी मौलिक फल प्राप्त किया करता है ॥६३॥

निद घकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वासव ! ।
स दुर्गं विषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाप्नुयात् ॥६४
एकाह तु स्थितं तोयं पृथिव्यां राजसत्तम ! ।
कुलानि तारयेत्तस्य सप्त सप्त पराण्यपि ॥६५
दीपालोकप्रदानेन वपुष्मान् स भवेन्नरः ।
प्रोक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधाञ्च विंदति ।।६६
कृत्वापि पापकर्माणि यो दद्यादन्नमर्थिने ।
ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन लिप्यते ॥६७
भूमिर्गाव स्तथा दाराः प्रसह्य ह्रियते यदा ।
नचाऽऽवेदयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥६८
निवेदितस्तु राजा वै ब्राह्मणैर्मन्युपीडितैः ।
तं न तारयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥६९
उपस्थिते विवाहे च यज्ञे दाने च वासव ।
मोहाच्चरति विघ्नं यः मृतो जायते क्रिमिः ॥७०

हे इन्द्र ! गर्मी के मौसम में जिसके जल विद्यमान रहता है, वह बड़े विषम दुःख की कभी प्राप्ति नहीं किया करता है ॥६४॥ एक दिन भी पृथिवी में यदि जल स्थित रहे तो हे राजाओं में श्रेष्ठ ! उस पुरुष के आगे पीछे के सात-सात कुलों का उद्धार कर देता है ॥६५॥ दीपालोक के प्रदान से मनुष्य वपुष्मान् होता है । प्रोक्षणीय के दान से स्मृति और बुद्धि को प्राप्त करता है ।.६६॥ गर्हित कर्म करके भी जो मनुष्य याचक को अन्न का दान करता है और विशेष रूप से ब्राह्मण को जो दान करता है उसे फिर कोई भी पाप लिप्त नहीं करता है ॥६७॥ जो भी कोई बलपूर्वक भूमि–गौ–स्त्री का हरण करता है और जो आवेदन भी नहीं करता है वह ब्रह्मघातक कहा जाता है ॥६८॥ क्रोध से पीड़ित ब्राह्मणों के द्वारा जो राजा से प्रार्थना की जावे और वह भी उनके कष्ट को दूर न करे तो वह राजा भी ब्रह्मघातक ही कहा जाता है

।।६९।। हे इन्द्र ! विवाह, यज्ञ और दान देते समय जो व्यक्ति व्यर्थ में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित करता है वह मरने पर कीड़ा मकोड़ा की योनि में जाता है ।।७०।।

घनं फलति दानेन जीवितं जीवरक्षणात् ।
रूपमैश्वर्यमारोग्यमहिंसाफलमश्नुते ।।७१
फलमूलाशनात् पूज्य स्वर्गं सत्येन लभ्यते ।
प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्वत्र सुखमश्नुते ।।७२
गवाढ्यः शक्रदीक्षाया स्वर्गगामी तृणाशनः ।
स्त्रिय स्त्रिषवणस्नायी वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ।।७३
नित्यस्नायी भवेदकः सन्ध्ये द्वे च जपन् द्विजः ।
न तत्साधयते राज्यं नाकपृष्ठमनाशके ।।७४
अग्निप्रवेशे नियतं ब्रह्मलोके महीयते ।
रत्नानां प्रति संहारे पशून् पुत्रांश्च विदन्ति ।।७५
नाके चिरं स वसते उपवासी च यो भवेत् ।
सततं चंकशायी यः स लभेदीप्सितांङ्गतिम् ।।७६
वीरासनं वीरशय्यां वीरस्थानमुपश्रितः ।
अक्षय्यास्तस्य लोकाः स्युः सर्वकामगमास्तथा ।।७७
उपवासञ्च दीक्षाञ्च अभिषेकञ्च वासव ! ।
कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते ।।७८
अधीत्य सर्ववेदान् वै सद्यो दुःखात् प्रमुच्यते ।।७९
पावनं चरते धर्मं स्वर्गलोके महीयते ।।८०
बृहस्पति मतं पुण्य ये पठन्ति द्विजातयः ।
चत्वारि तेषां वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ।।८१

घन दान देने ही से फलप्रद होता है । दूसरे के जीवन की रक्षा करने से जीवन सफल होता है । अहिंसा से रूप, ऐश्वर्य, आरोग्य प्राप्त होते है ।।७१।। फल और मूल के खाने से पूज्य स्थान और सत्य से स्वर्ग की प्राप्ति होती है । प्रायोपवेशन (बिल्कुल ही न खाना) से राज्य मिलता है जो कि सर्वत्र सुख का भोग कराता है ।।७२।। गवाढ्य, शक्र दीक्षा से

स्वर्गगामी और तृण खाने वाला, तीनों काल में स्नान सन्ध्योपासन करने वाला, स्त्रीत्यागो तथा पवन को पीने वाला क्रत (यज्ञ) का फल प्राप्त करता है ॥७३॥ नित्य स्नान करने वाला और दोनों सन्ध्याओं में जप करने वाला ब्राह्मण सूर्य होता है। नाश रहित राज्य और स्वर्ग पृष्ठ को वह नहीं साधता है ॥७४॥ अग्नि प्रवेश में नियत रूप से ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठित होता है। रत्नों के प्रति संहार में पशु और पुत्रों को प्राप्त करता है ॥७५॥ जो उपवास करने वाला होता है वह स्वर्ग में चिरकाल तक वास करता है और सर्वदा एकशायी होता है वह इच्छित गति को प्राप्त किया करता है ॥७६॥ वोरासन, वीरशय्या और वीर स्थान की उपवास करने वाला जो पुरुष होता है उसको समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले सब लोक अक्षय होते हैं ॥७७॥ हे इन्द्र ! उपवास, दोक्षा और अभिषेक करके जो बारह वर्ष व्यतीत करता है, वह वीर स्थान से भी विशेष होता है ॥७८॥ समस्त वेदों का अध्ययन करके द्विज तुरन्त ही दुःख से बिमुक्त हो जाता है ॥७९॥ पावन धर्म का आचरण करता है और स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है ॥८०॥ इस वृहस्पति के पुण्य मत को जो द्विजगण पढ़ते हैं उनके आयु, विद्या, यश और बल ये चारों बढ़ते हैं ॥८१॥

———

परिशिष्ट—

(इस ग्रन्थ में संग्रहीत बीस स्मृतियों के अतिरिक्त प्राचीन धर्मशास्त्र वेत्ताओं ने और भी बहुसंख्यक स्मृतियों की रचना की है जिनमें देश-काल की विविधताओं को देखते हुए तदनुकूल नियमों की व्याख्या की है। इनमें से कई स्मृतियां बहुत विस्तृत और विशिष्ट नियमों से परिपूर्ण हैं। नीचे उनके कुछ महत्वपूर्ण अंश, जिनसे पाठकों को अनेक नवीन तथ्यों की जानकारी होगी, संग्रहीत करके दिये जाते हैं।)

बौधायन स्मृतिः

अथादौ सशिष्टधर्मलक्षणम्

उपदिष्टो धर्मः प्रतिवेदम् ।१। तस्यानुव्याख्यास्यामः ।२। स्मार्तो द्वितीयः ।३। तृतीयः शिष्टागमः ।४। शिष्टाः खलु विगतमत्सरा निरहङ्काराः कुम्भीधान्याअलोलुपा दम्भदर्पलोभमोहक्रोधविवर्जिताः ।५। धर्मेणाधिगतो येषां वेदः सपरिबृंहणः शिष्टास्तदनुमानज्ञाः श्रुति प्रत्यक्षहेतवः इति ।६। तदभावे दशावरा परिषत् ।७। अथाप्युदाहरन्ति ।८। चातुर्वैद्यं विकल्पी च अङ्गविद्धर्मपाठकः। आश्रमस्थास्त्रयो विप्राः पर्यदेषा दशावरा ।९।

प्रत्येक वेद में धर्म का उपदेश किया गया है अर्थात् वेद ने जिसका विधान बताया है वह धर्म है और सर्व प्रथम है ।।१।। उस धर्म की व्याख्या की जायगी ।।२।। स्मार्त्त धर्म दूसरी श्रेणी में आता है। तात्पर्य यह है कि सिद्धान्ततः स्मृतियाँ श्रुति के कहे हुए अर्थ का ही प्रतिपादन

किया करते हैं। अतः स्मृतियों ने जिसको बतलाया है वह स्मार्त्त धर्म कहा जाता है और वह दूसरी श्रेणी में कहा जाता है ।।३।। शिष्ट पुरुषों के द्वारा जिसका उपदेश या ज्ञान प्राप्त होता है वह धर्म शिष्टागम धर्म कहा जाता है और वह तीसरी श्रेणी का धर्म है। निष्कर्षार्थ यह है कि धर्म का ज्ञान वेद स्मृति और शिष्ट इन तीनों के द्वारा ही होता है। इसीलिये इसकी तीन श्रेणियाँ बताई गई हैं। वेदार्थ समझने में जिनकी गति नहीं है वे स्मृतियों से और इसमे भी जो साधारणतः असमर्थ हों उन्हें शिष्टों से धर्म का ज्ञान अथवा उपदेश प्राप्त करना चाहिए ।।४।।

अब शिष्ट का ज्ञान यथार्थ रूप से प्राप्त करने के लिये बताते हैं— जो पुरुष मत्सरता से रहित होते हैं, मत्सरता—दूसरों के अच्छे गुण एवं सम्पन्नता को देख कर हृदय में एक प्रकार की कुढ़न एव जलन रखते हैं, इसे कहते हैं। शिष्ट पुरुष इस अवगुण से रहित होते हैं। उनमें लेशमात्र भी मत्सरता नहीं हाती है। दूसरा गुण शिष्ट में अहंकार हीनता का होता है। उन्हें अपने रूप, गुण, बल-पद एवं सम्पन्नता आदि किसी भी बात का अहंकार नहीं होता है। तीसरा विशेष गुण शिष्ट पुरुषों में होता है कि वे कुम्भीधान्य होते हैं अर्थात् धान्य का आवश्यकता के अनुसार ही संग्रह रखते हैं, वे अलोलुप अर्थात् लोभ से रहित होते हैं और दम्भ (पाखण्ड) दर्प (घमण्ड), लोभ (लालच), मोह (अपने पन का अज्ञान प्रयुक्त साँसारिक प्राणी एवं वस्तुओं में मन का भाव) और क्रोध से रहित होते हैं ।।५।। जिन्होंने समस्त अङ्ग और उपाङ्गों के सहित धार्मिक विधि से वेद का ज्ञान प्राप्त किया है. उसके अनुमान के ज्ञाता हैं तथा श्रुति के प्रत्यक्ष हेतु हैं, वे शिष्ट पुरुष होते हैं। ऐसे उपर्युक्त गुणों से विशिष्ट शिष्ट जो कुछ कहते हैं, वह धर्म है और प्रामाणिक माना जाता है ।।६।। उपर्युक्त तीन (वेद, स्मृति, शिष्ट) प्रमाणों के अभाव में एक परिषत् जिसमें दश सदस्य हों, प्रमाण स्वरूप मानी जाती है। इस परिषत् का निर्णय ही आगम होता है। अब यहाँ इस

परिषत् के विषय में बतलाया जाता है कि इसमें कौन-कौन सदस्य होने चाहिए ॥७-८॥ चार वैद्य, एक विकल्पी, अङ्गों का वेत्ता, धर्म का पाठक, तीनों आश्रमों में रहने वाले या तीन आश्रमों के धर्म का पालन करने वाले ब्राह्मण इस तरह दशावरा एक परिषत् होती है ॥६॥

पञ्च वा स्युस्त्रयो वा स्युरेको वा स्यादनिन्दितः। प्रतिवक्ता तु धर्मस्य नेतरे तु सहस्रशः ॥१०॥ यथा दारुमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः। ब्राह्मणश्चानधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ।११। यद्वदन्ति तमो मूढा मूर्खा धर्ममजानतः। तत्पापं शतधा भूत्वा वक्तॄन्सतधिगच्छति ।१२। बहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्मा दुरनुगा गतिः। तस्मान्न वाच्योह्येकेन बहुज्ञेनापि संशये ।१३। धर्मशास्त्र-रथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः। क्रीडार्थमपि यद्ब्रूयुः सः धर्मः परमः स्मृतः ॥१४॥

पाँच, तीन अथवा अनिन्दित एक ही पुरुष का धर्म का प्रवक्ता होता है अर्थात् धर्म के विषय में यथार्थ निर्णय देने वाले होते हैं। इसके अति-रिक्त अन्य सहस्र भी क्यों न हों वे धर्म का निर्णय नहीं कर सकते हैं ॥१०॥ शेर वन का राजा होता है और समस्त पशुओं में परम सम्मानित है—हाथी सब पशुओं में अपने विशाल शरीर का महत्व रखते हुए सब में बड़ा एवं प्रतिष्ठित होता है इसी तरह ब्राह्मण मानव मात्र में श्रेष्ठ होता है और समस्त वर्णों का गुरु माना जाता है किन्तु इसका महत्व तभी है जब पूर्ण वेद-वेदाङ्गों का विद्वान् हो। जिसने कुछ भी अध्ययन नहीं किया है वह ब्राह्मण होते हुए भी, महत्वशाली रूप में होने पर भी, लकड़ी के बने हुए हाथी और चमड़े के निर्मित शेर की तरह केवल नाम मात्र के ही हाथी, शेर और ब्राह्मण होते हैं। इनका महत्त्व लेशमात्र भी नहीं होता है ॥११॥

तमोगुण की अधिकता के कारण मूढ़ता से युक्त एवं मूर्ख अर्थात् कुछ भी न पढ़े-लिखे हुए तथा धर्म के विषय में कुछ भी ज्ञान न रखने वाले लोग धर्म के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहते हैं वे पाप कमाते हैं और वह पाप सौगुना होकर उन बोलने वालों को लगता है ॥१२॥ धर्म एक ऐसा गहन विषय है कि इसके अनेक द्वार होते हैं। इस धर्म की गति बहुत सूक्ष्म होती है जिसका अनुगमन करना अत्यन्त कठिन है। अतएव किसी एक व्यक्ति को, चाहे वह कितना ही अधिक ज्ञान रखने वाला क्यों न हो, संशय उपस्थित होने पर धर्म के विषय में अपना निर्णय नहीं देना चाहिए ॥१३॥ जो द्विज धर्मशास्त्र रूपी रथ पर आरूढ़ हों अर्थात् धर्मशास्त्र को भली भाँति जानते हों और वेदरूपी खड्ग (तलवार) को धारण करने वाले अर्थात् धर्मशास्त्र के पूर्ण एवं परिपक्व ज्ञान के साथ वेद के अच्छे विद्वान् ब्राह्मण क्रीड़ा के लिए भी यदि कुछ कह देवें तो उसे परम धर्म समझना चाहिए ॥१४॥

अथाऽश्मनि स्थितं तोयं मारुतोऽर्कश्च नाशयेत्। तद्वत्कर्तरि यत्पापं जलवत्संप्रतीयते।१५। शरीरं बलमायुश्च वयः कालं च कर्म च। समीक्ष्य धर्मविद्बुद्ध्या प्रायश्चित्तानि निर्दिशेत।१६। अव्रतानाममन्त्राणां जाति मात्रोपजीविनाम्। सहस्रशः समेतानां परिषत्वं न विद्यते इति।१७। पञ्चधा विप्रतिपत्तिः।१८। पञ्चधा विप्रतिपत्तिर्दक्षिणस्तथोत्तरतः।१९। यानि दक्षिणतस्तानि-व्याख्यास्यामः।२०। तथैतदनुतेपेन सह भोजनं पर्युषितभोजनं-मातुलपितृष्वसृदुहितृगमनमिति।२१।

जिस प्रकार पाषाण (पत्थर) पर रहने वाले जल को वायु और सूर्य की किरणें नष्ट कर देते हैं अर्थात् जो जल किसी पत्थर पर रुका हुआ रहता है उसका शोषण तो अशोषक पत्थर पर होता नहीं है उसे तो वायु और सूर्य का ताप ही सुखाता है उसी तरह पाप कर्म करने वाले व्यक्ति में किया हुआ पाप जल की भाँति प्रतीत होता रहता है। प्राय-श्चित्तादि द्वारा ही उसका क्षय होता है ॥१५॥ पाप नाशक प्रायश्चित्तों

के विषय में धर्म शास्त्र जो आज्ञा देता है उसमें भी धर्म के पूर्ण ज्ञाता पुरुष को पाप कर्म करने वाले की शक्ति, शरीर, आयु, वय अर्थात् दशा, काल और कर्म की अच्छी तरह से समीक्षा अर्थात् विचार करके ही बुद्धिपूर्वक प्रायश्चित्तों का निर्देश करना चाहिए। जिसको अपनी दशा में सम्यक् ता किया जा सके वही प्रायश्चित्त कराना उचित होता है ॥१६॥

जो अव्रत हैं अर्थात् जिनका कोई व्रत (नियम) नहीं है जो अमन्त्र है अर्थात् मन्त्र रहस्य का ज्ञान नहीं रखते हैं केवल जाति मात्र के सहारे अपना जीवन निर्वाह करने वाले है। तात्पर्य यह है कि ज्ञान, विद्या, तप और यम नियमादि सबसे शून्य होते हुए भी ब्राह्मण जाति में उत्पन्न होने के कारण अपने आपको उच्च बताते हुए रोजी चलाते हैं, ऐसे चाहे सहस्रों ही क्यों न एकत्रित हो जावें, ऐसों की कभी धर्म निर्णायक नहीं हो सकती है ॥१७॥ विप्रतिपत्ति पांच प्रकार से हुआ करती है। वह पांच प्रकार से होने वाली विप्रतिपत्ति दक्षिण से तथा उत्तर से होती है। जो दक्षिण से विप्रतिपत्तियाँ होती हैं अब उनके विषय में व्याख्या की जाती है ॥१६-१०॥ दक्षिण विप्रतिपत्ति जैसे--किसी अनुपेत के साथ भोजन करना, स्त्री के साथ भोजन करना, पर्युषित भोजना करना और मामा, भुआ की पुत्री के साथ गमन करना ये दक्षिण विप्रतिपत्ति कही जाती हैं ॥२१॥

अथोत्तरत ऊर्णाविक्रयः सीधुपानमुनमुभयतोदद्भिर्व्यंहार-आयुधीयकं समुद्रसंयानमिति २२। इतरदितरस्मिन्कुर्वन्दुष्यतीतरदितरस्मिन् ।२३। तत्र तत्र देशप्रामाण्यमेव स्यात् ।२४। मिथ्यैतदिति गीतमः ।२५ उभयं चैव नाऽऽद्रियेत शिष्टस्मृतविरोधदर्शनात् ।२६। प्राग्विनशनात्प्रत्यक्कालकाद्वनाद्दक्षिणेन हिमवन्तमुदक्पारियात्रमेतदार्यावर्तं तस्मिन्य आचारः स प्रमाणम् ।२७। गङ्गायमुनयोरन्तरमित्येके ।२८।

अब उत्तर से होने वाली विप्रतिपत्ति बतलाते हैं—ऊन का वेचना, मदिरा का पान करना, दोनों ओर से आयुधों का व्यवहार करना और समुद्र का संयान करना ये सब उत्तर से होने वाली विप्रतिपत्ति कही जाती हैं ।।२२। इतर को इतर में करने में दोष होता है । उस-उस विषय में देश का ही प्रामाण्य होता है । किन्तु महर्षि गौतम का मत है हैं कि यह मिथ्या है । दोनों का आदर नहीं करना चाहिए क्योंकि शिष्टागम और स्मृति के विरोध को देखा जाता है ।।२३-२६।। पूर्व में विनशन से, पश्चिम कालक वन से, दक्षिण हिमवान् और उत्तर में परियात्र पर्वत यही आर्यावर्त है । उसमें जो भी आचार है वह प्रमाण होता है अर्थात् आर्यावर्त में जो कि ऊपर बताया गया है जैसा भी आचार माना जाता है वह प्रामाणिक है ।।२७।। कुछ विद्वानों का मत है कि गंगा और यमुना के मध्य भाग में जो आचार है वह प्रमाण स्वरूप है ।।२८।।

अप्राप्यत्र भाल्लविनो गाथामुदाहरन्ति ।२९। पश्चात्सिन्धुर्विधरणी सूर्यस्योदयनं पुरः । यावत्कृष्णा विधावन्ति तावद्धि ब्रह्मवर्चसमिति ।३०। अवन्तयोऽङ्गमगधाः सुराष्ट्रा दक्षिणापथाः उपावृत्सिन्धुसौवीरा एते संकीर्णयोनयः ।३१। आरट्टान्कारस्करान्पुण्ड्रान्सौवीरान्वङ्गकलिङ्गान्प्रानूनानिति च गत्वा पुनः स्तोमेन यजेत, सर्वपृष्ठया वा ।३२। अथाप्युदाहरन्ति ।३३। पद्भ्यां स कुरुते पापं यः कलिङ्गान्प्रपद्यते । ऋषयो निष्कृतिं तस्य प्राहुर्वैश्वानरं हविः ।३४। बहूनामपि दोषाणां कृतानां दोषनिर्णये । पवित्रेष्टिं प्रशंसन्ति सा हि पावनमुत्तमम् इति ।३५। अथाप्युदाहरन्ति ।३६ वैश्वानरीं व्रातपतीं पवित्रेष्टिं तथैव च । ऋतावृतौ प्रयुञ्जानः पापेभ्यो विप्रमुच्यतेपापेभ्यो विप्रमुच्यते, इति ।३७।

पश्चिम में सिन्धु विधरणी है और पूर्व में सूर्य का उदयन है जहाँ तक कृष्ण विधावित अर्थात् प्रवाहित होती है वहाँ तक ब्रह्मवर्चस रहता

हे ।।३०।। अवन्तिका, अङ्ग, मगध, सौराष्ट्र, दक्षिणपथ, उपावृत्, सिन्धु और सौवीर ये सब सङ्कीर्ण योनि वाले देश हैं। अरह, कारस्कर, पुण्ड्र, सौवीर, बङ्ग, कलिग और प्रातून—इन देशों में जाकर फिर स्तोम से या सर्वपृष्ठि से यजन करना चाहिए। उपर्युक्त नाम भारत के कुछ भू-भागों के हैं जो कि प्राचीन पौराणिक काल में प्रचलित थे। अधिक समय हो जाने पर अब इन नामों का बंग, सौराष्ट्र आदि दो-एक को छोड़कर कोई भी ज्ञान नहीं रहा है ।।३१-३२।। इसके विषय में उदाहरण देते हैं। जो व्यक्ति कलिग आदि देशों को जाता है वह पैरों से पाप करता है। ऋषि लोगों ने उसका प्रायश्चित वैश्वानर हवि बतलाया है ।।३४।। बहुत से किये हुए दोषों के दोष निर्णय हो जाने पर उसकी निष्कृति के लिये पवित्र इष्टि की प्रशंसा करते हैं और वह इष्टि ही सबसे श्रेष्ठ पावन अर्थात् पवित्र करने वाली है ।।३५।। वैश्वानरी, व्रातपती और पवित्रेष्टि इनको ऋतु-ऋतु में अर्थात् प्रत्येक ऋतु में करने वाला मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता और निश्चय ही छुटकारा पा जाता है ।।३७।

अथाष्टविवाहप्रकरणवर्णनम्।

अष्टौ विवाहाः।१। श्रुतशीले विज्ञाय ब्रह्मचारिणेऽर्थिने दीयते स ब्राह्मः।२। आच्छाद्यालंकृत्येषा सह धर्मश्चर्यतामिति प्राजापत्यः।३। पूर्वां लाजाहुतं हुत्वा गोमिथुनं कन्यावते दद्यात्स आर्षः।४। दक्षिणासु नीयमानास्वन्तर्वेद्यृत्विजे स दैवः।५। धनेवोपतोष्याऽऽसुरः।६। सकामेन सकामाया मिथः संयोगो गान्धर्वः।७। प्रसह्य हरणाद्राक्षसः।८।

।अथाष्ट विवाह प्रकरण वर्णनम्।।

विवाह आठ प्रकार के होते हैं ।।१।। श्रुत और शील को अच्छी तरह जानकर चाह वाले एवं याचना करने वाले ब्रह्मचारी को जो कन्या दी जाती है वह ब्राह्म नाम का विवाह कहा जाता है ।।२।। सुन्दर वस्त्रों से आच्छादित कर और भूषणों अलंकृत से करके कन्या को देते समय

यह कहा जावे कि अब इसके साथ गार्हस्थ धर्म का आचरण करें, इस प्रकार से जो कन्या का दान किया जाता है उसे प्राजापत्य नाम का विवाह कहते हैं ॥३॥ पूर्व लाजाओं की आहुति द्वारा हवन करके गायों का जोड़ा कन्या वाले को देकर कन्या ग्रहण की जावे—इस प्रकार के विवाह का 'आर्ष' यह नाम कहा जाता है ।'४॥ दक्षिणा के लेने पर अन्तर्वेदी ऋत्विज को जो कन्या का दान किया जाता है उस विवाह को दैव नाम का विवाह कहते हैं ॥५॥ धन के द्वारा तुष्टि कर कन्या ग्रहण की जाती है उस विवाह को आसुर नामक विवाह कहा जाता है ॥६॥ काम वासना से परिपूर्ण हृदय वाले पुरुष का सकामा कन्या के साथ परस्पर में संयोग जिसमें दोनों ही अपने आप कर लेवें उस विवाह को गान्धर्व नामक विवाह कहते हैं ॥७॥ कन्या तथा कन्या का पितादि की इच्छा के भी विपरीत बल पूर्वक कन्या का अपहरण कर जो विवाह बलात् किया जाता है उसे राक्षस विवाह कहा जाता है ॥८॥

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वोपयच्छेदिति पैशाचः ।९। तेषां चत्वारः ब्राह्मणस्य ।१०। तेष्वपि पूर्वः पूर्वः श्रेयान् ।११। उत्तरेषामुत्त-रोत्तरः पापीयान् ।१२। अत्रापि षष्ठसप्तमौ क्षत्रधर्मानुगतौ तत्प्र-त्ययत्वात्क्षत्रस्य ।१३। पञ्चमाष्टमौ वैश्यशूद्राणाम् ।१४। अय-न्त्रितकलत्रा हि वैश्यशूद्रा भवन्ति ।१५। कर्षणशुश्रूषाधिकृतत्वात् ।१६। गान्धर्वमप्येके प्रशंसन्ति सर्वेषां स्नेहानुगतत्वात् ।१७। यथायुक्तो विवाहः । यथा युक्तो विवाहस्तथा युक्ता प्रजा भवतीति विज्ञायते ।१८।

सोती हुई, मत्तावस्था में अवस्थित अथवा प्रमत्त कन्या को लाकर विवाह कर लेवे उस विवाह का नाम पैशाच होता है ॥९॥ इस प्रकार ब्राह्म-प्राजापत्य-आर्ष-दैव-आसुर-गान्धर्व-राक्षस और पैशाच ये आठ प्रकार के विवाह होते हैं । इनमें प्रथम चार विवाह ब्राह्मण के लिए विहित

हते हैं। इन चारो में भी जो पूर्व-पूर्व है वही उत्तम है अर्थात् सबसे प्रथम सबसे श्रेष्ठ उससे दूसरा कुछ कम, इसी तरह चारों की श्रेष्ठता का क्रम होता है। जो उत्तरोत्तर पापीयान माने गये हैं ॥९-१२॥ इनमें भी छठा और सातवाँ विवाह क्षत्रिय के धर्म के अनुगत है क्योंकि क्षत्रिय का उस पर विश्वास होता है। पाँचवाँ और आठवाँ वैश्य तथा शूद्रों के होते हैं। ये विवाह वैश्य शूद्रों के धर्म के अनुगत होते हैं क्योंकि वैश्य और शूद्रों की स्त्रियाँ अनियन्त्रित रहा करती हैं। वैश्य और शूद्र क्रम से खेतों के जोतने तथा सेवा के काम करने के अधिकार वाले ही होते हैं ॥१३-१६॥ कुछ विद्वान गान्धर्व विवाह को भी अच्छा विवाह बतलाते हैं क्योंकि समस्त वर्णों में पारस्परिक स्नेह से ही वह विवाह सम्पन्न होता है ॥१७। जैसा भी विवाह होता है वैसी ही सन्तति होती है—यह मानी हुई बात है। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त आठ प्रकार के विवाहों का प्रभाव आगे होने वाली सन्तान पर भी होता है ॥१८॥

अथाप्युदाहरन्ति ।१९। क्रीता द्रव्येण या नारी सा न पत्नी विधीयते। सा न दैवे न सा पित्र्ये दासीं तां काश्यपोऽब्रवीत् ।२०। शुल्केन ये प्रयच्छन्ति स्वसुतां लोभमोहिताः। आत्मविक्रयिणः पापा महाकिल्विषकारकाः ।२१। पतन्ति नरके घोरे घ्नन्ति चाऽऽसप्तमं कुलम्। गमनागमनं चैव सर्वं शुल्को विधीयते ।२२।

इसी विषय में खुलासा उदाहरण देकर समझाया जाता है—जो स्त्री धन देकर खरीदी जाती है वह नारी पत्नी का पद प्राप्त नहीं किया करती है क्योंकि वह दैव तथा पैत्र्य कर्म के करने में धार्मिक सिद्धान्त के अनुसार कोई भी अधिकार नहीं रखा करती है। कश्यप ऋषि ने पत्नी न कहकर ऐसी नारी को दासी ही कहा है ॥१९-२०॥ लालच के मोह में फँसे हुए शुल्क अर्थात् धन लेकर जो लोग अपनी पुत्री को दिया करते है वे आत्म विक्रय करने वाले पापी महान् किल्विष के करने वाले

होते हैं और अन्त में घोर नरक में पड़ते हैं तथा अपने सात पूर्व पुरुषों को भी नरक में डाल देते हैं। गमन और आगमन सब शुल्क होता है ।।२१-२२।।

।। अथ दायविभाग वर्णनम् ।।

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी वृषलान्नवर्जी। ऋतौ च गच्छन्विधिवच्च जुह्वन्न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ।१। मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यभजदिति श्रुतिः ।२। समशः सर्वेषामविशेषात् ।३। वरं वा रूपमुद्धरेज्ज्येष्ठः ।४। तस्माज्ज्येष्ठं पुत्रं धनेन निरवसाययन्तीति श्रुतिः ।५। दशानां वैकमुद्धरेज्ज्येष्ठः ।६। सममितरे विभजेरन् ।७। पितुरनुमत्या दायविभागः सति पितरि ।८। चतुर्णां वर्णानां गोश्वाजावयो ज्येष्ठांशः। ।नानावर्णस्त्रीपुत्रसमवाये दायं दशांशान्कृत्वा चतुरस्त्रीन्द्वावेकमिति यथाक्रमं विभजेरन् ।१०।

नित्य जल से स्नान करने वाला, नित्य यज्ञोपवीत धारण करने वाला, नित्य ही वेद का स्वाध्याय करने वाला, वृषल अर्थात् शूद्र के अन्न को कभी भी सेवन न करने वाला, ऋतु काल में ही गमन करने वाला ब्राह्मण और नित्य हवन करने वाला ब्राह्मण ब्रह्मलोक को प्राप्त किया करता है उससे उसकी च्युति नहीं होती है ।।१।। महर्षि मनु ने पुत्रों को दाय का विभाग दिया है—ऐसी श्रुति है ।।२।। सबको समान विभाजन करें क्योंकि उनमें कोई भी विशेषता नहीं होती है ।।३।। श्रेष्ठ एवं सुन्दर को सबसे बड़ा ग्रहण करे ।।४।। इस सिद्धान्त से ज्येष्ठ पुत्र को धन में निरवसायित करते हैं—यह भी श्रुति है ।।५।। दशों में से एक भाग को ज्येष्ठ (बड़ा पुत्र) ग्रहण करे। शेष पुत्र समान भाग ग्रहण करें। पिता के जीवित रहने पर पिता की अनुमति से दाय का विभाजन करना चाहिए ।।६-८।। चारों वर्णों का ज्येष्ठ अंश गो-अश्व अजादि होता है। अनेक वर्णों की स्त्री तथा पुत्रों के एकत्रित हो जाने पर

दाय के दश अंश करके क्रम से चार अंश-तीन-दो और एक विभाजित कर लेना चाहिए ॥९-१०॥

औरसे तूत्पन्ने सवर्णास्तृतीयांशहराः ।११। सवर्णापुत्रानन्तरायोरनन्तरापुत्रश्चेद्गुणवान्स ज्येष्ठांशं हरेत् ।१२। गुणावन्हि शेषाणां भर्ता भवति ।१३। सवर्णायां संस्कृतायां स्वयमुत्पादितमौरसं पुत्रं विद्यात् ।१४। अथाप्युदाहरन्ति—।१। अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधि जायसे । आत्मा वै पुत्रनामाऽसिस जीव शरदः शतमिति ।१६। अभ्यापगम्य दुहितरि जातं पुत्रिकापुत्रमन्यं दौहित्रम् ।१७। अथाप्युदाहरन्ति ।१८। आदिशेत्प्रथमे पिण्डे मातरं पुत्रिकासुतः । द्वितीये पितर तस्यास्तृतीये च पितामहमिति ।१९।

औरस पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर अन्य सवर्णा तृतीय अंश ग्रहण करें ॥११॥ सवर्णा पुत्र और अनन्तरा पुत्रों में यदि अनन्तरा पुत्र हों तो जो उनमें गुणवान् हो वही ज्येष्ठांश को ग्रहण करे । जो गुणवान् होता हैं वही शेष अंशों का स्वामी होता है ॥११-१३॥ अब पुत्रों का प्रसङ्ग आने पर पुत्रों के भेद एवं उनके लक्षण आदि बतलाते हैं—जो पत्नी सवर्णा अर्थात् अपने हो वर्ण की हो और विवाह संस्कार से युक्त हो उसमें जो स्वयं ही पुत्र उत्पादित किया हो उसे 'औरस' पुत्र समझना चाहिए ॥१४॥ इस विषय में कहते हैं—पुत्र के प्रति ही सम्बोधित करके कहा गया है कि तुम अङ्ग से हो । दो बार अङ्ग का तात्पर्य है कि पति-पत्नि दोनों के अङ्ग से, उत्पन्न होते हो और हृदय से जन्म लेते हो । हमारी आत्मा ही पुत्र नाम से अर्थात् पुत्र के स्वरूप में आविर्भूत हुए हो, वह तुम सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहो ॥१५-१६॥ औरस पुत्र के स्वरूप में पिता ही की आत्मा उत्पन्न होती है श्रुति में भी कहा है—'आत्मा वै जायते पुत्रः" । दौहित्र (धेवता) जो कि अभ्युपगम करके पुत्री में उत्पन्न पुत्रिका पुत्र में 'दूसरा पुत्र' रूप में होता है । तात्पर्य यह है कि औरस पुत्र के बाद में दूसरे नम्बर का पुत्र दौहित्र होता है ॥ १७ ॥ इस विषय में भी उदाहरण देते हैं—पुत्री के पुत्र को प्रथम पिण्ड में माता का आदेशन करना चाहिए ।

दूसरे पिण्ड में पिता का और तीसरे में पितामह का करना चाहिए ॥१८-१६॥

मृतस्य प्रसूतो यः क्लीवव्याधितयोर्वाऽन्येनानुमते स्वे क्षेत्रे स क्षेत्रजः ।२०। स एष द्विपिता द्विगोत्रश्च द्वयोरपि स्वधारिक्थ-भाग्भवति ।२१। अथाप्युदाहरन्ति ।२२। द्विपितुः पिण्डदानं स्यात्पिण्डे पिण्डे च नामनी । त्रयश्च पिण्डाः षण्णां स्युरेवं कुर्वन्न मुह्यतीति ।२३। मातापितृभ्यां दत्तोऽन्यतरेण वा योऽपत्यार्थे परिगृह्यते स दत्तः ।२४। सदृशं यं सकामं स्वयं कुर्यात्स कृत्रिमः ।२५। गृहे गूढ़ोत्पन्नोऽन्ते ज्ञातो गूढजः ।२६।

पिता के मृत हो जाने पर जो पुत्र प्रसूत हो अथवा पिता क्लवी तथा व्याधि ग्रस्त होने के कारण दूसरे के द्वारा अनुमति दिये हुए अपने क्षेत्र (पत्नी) में उत्पन्न किया पुत्र हो, वह तीसरा "क्षेत्रज" पुत्र कहा जाता है । ऐसा पुत्र का क्षेत्र तो उचित है । किन्तु बीज का वपन करने वाला पिता न होकर कोई अन्य ही व्यक्ति होता है । २०॥ ऐसे क्षेत्र की प्रधानता रखने वाला क्षेत्रज पुत्र दो पिता वाला—दो गोत्र वाला होता है और दोनों का स्वधा प्रयुक्त पित्र्य कर्म करने का तथा दोनों की रिक्त (उत्तर सम्पत्ति) का भोग करने का अधिकारी होता है ॥२१॥ इस विषय में उदाहरण देते हैं —दो पिताओं का पिण्ड दान होता है और पिण्ड-पिण्ड पर नाम भी दो होते हैं तथा छओं के तीन पिण्ड होते हैं । इस प्रकार से पित्र्य कर्म करता हुआ मोह को प्राप्त होता है । यह विवेचना क्षेत्रज पुत्र के विषय में ही की गई है ॥२२-२३॥ माता पिता के द्वारा दिया हुआ जो सन्तति के उद्देश्य-पूर्ति के लिए परिगृहीत होता है वह दत्त तथाच दत्तक पुत्र कहलाता है । यह दत्तक पुत्र की भाँति ही समस्त कार्य करने का अधिकारी होता है ।।२४ । कामना वाले और पुत्र के सदृश जिसको स्वयं ही पुत्र बनाले वह "कृत्रिम" नामक पुत्र होता है । घर में गुप्त रूप से जो किसी के उदर से उत्पन्न हुआ हो और आखीर में जाकर ज्ञात हो उसे गूढ़ज नामक पुत्र कहते हैं ॥२५-२६॥

मातापितृभ्यामुत्सृष्टोऽन्यतरेण वा योऽपत्यार्थे परिगृह्यते सोऽपविद्धः ।२७। असंस्कृतामनतिसृष्टां यामुपयच्छेत्तस्यां यो जातः स कानीनः ।२८। या गर्भिणी संस्क्रियते विज्ञाता वाऽविज्ञाता वा तस्य यो जातः स सहोढः ।२९। मातापित्रोर्हस्तात्क्रीतोऽन्यतरेण वा योऽपत्यार्थे परिगृह्यते स क्रीतः ।३०। क्लीवं त्यक्त्वा पतितं वा याऽन्यं पतिं विन्देत्तस्यां पुनर्भ्वां यो जातः स पौनर्भवः ।३१। मातापितृविहीनो यः स्वयमात्मानं दद्यात्स स्वयंदत्तः ।३२। द्विजातिप्रवराच्छूद्रायां जातो निषादः ।३३। कामात्पारशव इति पुत्राः ।३४। अथाप्युदाहरन्ति ।३५। औरसं पुत्रिकापुत्र क्षेत्रजं दत्त-कृत्रिमौ । गूढजं चापविद्धं च रिक्थभाजः प्रचक्षते ।३६। कानीनं च सहोढं च क्रीतं पौनर्भवं तथा । स्वयंदत्तं निषादं च गोत्रभाजः प्रचक्षते ।३७। तेषां प्रथम एवेत्याहौपजंघनिः ।३८।

माता पिता के द्वारा जिसका उत्सर्ग (त्याग) कर दिया गया हो और किसी अन्य अभिभाविक द्वारा ग्रहण किया हो जिसके दिए संरक्षण में वह रहता हो वह बालक अपत्य (सन्तति) के रूप में परिगृहीत हो तो वह 'अपविद्ध' पुत्र कहा जाता है ।।२७।।जो कन्या असंस्कृत हो अर्थात् जिसका विवाह संस्कार सम्पन्न नहीं हुआ हो किन्तु उसका अति सर्जन नहीं किया गया हो अर्थात् त्याग न किया हो ऐसी कन्या के गमन से जो पुत्र उत्पन्न हो वह "कानीन" नाम वाला पुत्र कहा जाता है ।२८।। जो कुमारी की दशा में ही गर्भिणी हो जावे और इसके अनन्तर उसका विवाह संस्कार किया जावे चाहे उसके गर्भिणी होने का ज्ञान हो या न भी हो, उससे जो पुत्र है वह "सहोढ़" पुत्र इस नाम से कहा जाता है ।।२९।। माता–पिता के हाथ से अथवा किसी अन्य के हाथ से जिसके पोषण एवं संरक्षण में वह रहता हो खरीद कर लिया गया और सन्तति के रूप में परिगृहीत हुआ। वह 'क्रीत' नामक पुत्र कहा जाता है ।।३०।। नपुंसक अर्थात् पुंस्त्वहीन तथा पतित हो जाने वाले पति का त्याग कर जो नारी किसी अन्य पुरुष को अपना पति बना लेती है उस पुनर्भू नारी

में जो उत्पन्न होता है वह पुत्र 'पौनर्भव' इस नाम से पुकारा जाता है ॥३१॥ माता और पिता दोनों से हीन होकर अर्थात् जिसके माता-पिता दोनों ही न रहें और अनाथ हो जावे ऐसा बालक जो स्वयं ही अपने आपको किसी को दे देवे "स्वयं दत्त" नाम से कहा जाता है ॥३२॥ किसी श्रेष्ठ द्विजाति से शूद्र वर्ण वाली नारी में उत्पन्न होने वाला निषाद होता है । काम से पारशव होते हैं । ये ही इतने प्रकार के पुत्र होते हैं । इस विषय में उदाहरण करते हैं—औरस पुत्रिका-पुत्र—क्षेत्रज—दत्तक—कृत्रिम—गूढज और अपविद्ध इतने पुत्र विरासत के भोगने वाले हैं अर्थात् मरने के बाद सम्पत्ति के हकदार हैं । कानीन—सहोढ़—क्रीत—पौनर्भव स्वयं दत्त और निषाद ये पुत्र गोत्र भागी होते हैं । इन सब में प्रथम (औरस) हो रिक्थ एवं गोत्रभाक् होता है—ऐसा औपजंघोन ने कहा है ॥३३-३८॥

॥ अथ स्नातक व्रतानि ॥

सायं प्रातर्यदशनीयं स्यात्तेनान्नेन वैश्वदेवं बलिमुपहृत्य ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रानभ्यागतान्यथाशक्ति पूजयेत् ।१। यदि बहूनां न शक्नुयादेकस्मै गुणवते दद्यात् ।२। यो वा प्रथममुपगतः स्यात् ।३। शूद्रश्चेदागतस्तं कर्माणि नियुञ्ज्यात् ४। श्रोत्रियाय वाऽग्र दद्यात् ।५। ये नित्या भाक्तिकाः स्युस्तेषामनुपरोधेन संविभागो विहितः ।६। न त्वेव कदाचिददत्वा भुञ्जीत ।७। अथाप्यत्रान्नागीतौ श्लोकावुदाहरन्ति ।८। यो मामदत्त्वा पितृदेवताभ्यो भृत्यातिथीनां च सुहृज्जनस्य।संपन्नमश्नन्विषमत्ति मोहात्तमद्म्यहं तस्य च मृत्युरस्मि ।९।

सायङ्काल और प्रातःकाल में जो भी भोजन करने के योग्य हो उस अन्न से वैश्वदेव बलि को देकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अतिथियों की यथाशक्ति पूजा करनी चाहिए ॥१॥ यदि बहुत-से अभ्यागतों का सत्कार न कर सके तो उन उपस्थित अतिथियों में से किसी एक गुणवान् को पूजा अर्पित कर सत्कार देना चाहिए । अथवा जो सबसे पहिले आवे उसका ही आतिथ्य करना चाहिए ॥२-४॥ यदि शूद्र आजावे तो उसे

कर्म में नियुक्त कर देना चाहिए । अथवा श्रोत्रिय ब्राह्मण को आगे देना चाहिए । जो नित्य ही भाक्तिक हों उनका अनुपरोध से अर्थात् उपरोध न करते हुए संविभाग करने का विधान कहा गया है ॥५-७॥ कभी भी कुछ न देकर भोजन नहीं करना चाहिए । इस अन्न दान की प्रशंसा के के विषय में दो श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—अन्न कहता है जो मुझको न देकर अर्थात् मेरा (अन्न का) दान पितृगण, देववृन्द, भृत्य-वर्ग, अतिथि और सुहृज्जनों को न करके ही सम्पन्न को मोह से खा लेता है वह विष खाता है, उसको मैं खाता हूँ और उसकी मैं ही मृत्यु हूँ अर्थात् ऐसे व्यक्ति का मैं पोषक न होकर मारक बन जाता हूँ ।।८-९॥

हुताग्नि होत्रः कृतवैश्वदेवः पूज्यातिथीन्भृत्यजनावशिष्टम् । तुष्टः शुचिः श्रद्दधदत्ति यो मां तस्यामृतं स्या स च मां भुनक्ति ।१०। पालाश- मासनं पादुके दन्तधावनमिति वर्जयेत् ।११ नोत्सङ्गेऽन्नं भक्षयेत् ।१२। आसन्द्यां न भुञ्जीत ।१३। वैणवं दण्डं धारयेत् ।१४। रुक्मकुण्डल च । ।१५। पदा पादस्य प्रक्षालनमधिष्ठानं च वजयेत् ।१६। न बर्हिनमालां धारयेत् ।१६। सूर्यमुदयास्तमये न निरीक्षेत ।१८। नेन्द्रधनुरिति परस्मै ब्रूयात् ।१९। यदिब्रूयान्मणिनुरित्येव ब्रूयात् ।२०। पुरुद्वारीन्द्रकील-परिधावन्तरेण नातियात् ।२१। प्लेङ्खयोरन्तरेण न गच्छेत् ।२२। वत्सतन्ति नोपरि गच्छेत ।२३। भस्मास्थिरोमतुषकपालावस्थानानि नाधिष्ठितेत् ।२५। गां धयन्तीं परस्मै न प्रब्रूयात् ।२५। नाधेनुमधेनुरिति ब्रूयात् ।२६।यदि ब्रूयाद्धनुर्भव्येत्येव ब्रूयात्।२७।शुक्ता रुक्षाः परुषा वाचो न ब्रूयात् ।२८।नैको ऽध्वानं व्रजेत् ।२९। न पतितैर्न स्त्रिया न शूद्रेण ।२०।

जो व्यक्ति अग्निहोत्र करने वाला, बलिवैश्वदेव किया हुआ, अतिथियों का पूजन एवं आतिथ्य करके भृत्य वर्ग को खिलाने के पश्चात् अवशिष्ट मुझको तुष्ट होकर श्रद्धापूर्वक खाता है उसके लिये अमृत जैसे गुण

वाला हो जाता है और मुझे वही ठीक रूप में खाता भी है ॥१०॥ स्नातक को पलाश (ढाक) का आसन, पादुकाऐं और पलाश की ही दाँतुन का त्याग करना चाहिये । गोद में रखकर कभी अन्न का भोजन नहीं करे चौकी पर बैठकर कभी भोजन नहीं करना चाहिए । स्नातक को बाँस का दण्ड धारण करना चाहिए तथा सुवर्ण के निर्मित कुण्डल पहिनने चाहिए ॥११-१५॥ पैर से पैर का धोना तथा अधिष्ठान को वर्जित रखना चाहिये । वह्निमाला को धारण न करे । उदय और अस्त के समय में सूर्य को नहीं देखना चाहिये । इन्द्र धनुष को कभी नहीं देखे और न उस के विषय में किसी से भी कुछ कहे । यदि बोले भी तो 'इन्द्र धनुष'— ऐसा न कहकर 'मणि धनु' है ऐसा ही बोले ॥१६-२०॥ पुर के द्वार में इन्द्र कील परिधि में अन्तर से अतीयान नहीं करना चाहिए । प्लेङ्खों के अन्तर से नहीं जाना चाहिए । वत्सप्तन्ति के ऊपर से भी गमन नहीं करना चाहिए । भस्म (राख), अस्थि (हड्डी), रोम, तुष्ट, कपाल और अवस्थान के ऊपर कभी अधिष्ठान नहीं करना चाहिए । ध्यान करने वाली अर्थात् अपने वत्स को दूध पिलाती हुई गाय को देख लेने पर भी कभी दूसरे को नहीं बोलना या बताना चाहिए ॥२१-२५॥ अधेनु को अधेनु है—ऐसा नही बोले । यदि बोले भी तो धेनु बहुत भव्य (उत्तम) है—ऐसा ही बोलना चाहिए । शुक्त, रुक्ष और परुष (कठोर) बचन नहीं बोलने चाहिए । कभी अकेला अर्थात् एक ही मार्ग में नहीं जावे । पतितों, स्त्री और शूद्र के साथ भी मार्ग में नहीं जाना चाहिए ॥२६-३०॥

न प्रतिसायं व्रजेत् ।३१। न नग्नः स्नायात् ।३२। न नक्तं स्नायात् ।३३। न नदीं बाहुकस्तरेत् ।३४। न कूपमवेक्षेत् ।३५। न गर्तमवेक्षेत् ।३६। न तत्रोपविशेद्यत एनमन्य उत्थापयेत् ।३७। पन्था देयो ब्राह्मणाय गवे राज्ञे ह्यचक्षुषे । वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च ।३८। प्रभूतैधोदकयवससमित्कुशमाल्योपनिष्क्रमणमष्ठ्यजनाकुलमनलससमृद्धमार्यजनभूयिष्ठम् दस्युप्रवेश्यं ग्राम-

मावसितुं यतेत् धार्मिकः ।३९। उदपानोदके ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः । उषित्वा द्वादश समाः शूद्रपा धर्म्यमृच्छति ।४०। पुररेणुकुण्ठितशरीरस्तत्परिपूर्णनेत्रवदनश्च । नगरे वसन्सुनियतात्मा सिद्धमवाप्स्यतीति न तदस्ति ।४१। रथाश्वगज धान्यानां गवां चैव रजः शुभम् । अप्रशस्तं समूहन्याः श्वाजाविखरवाससाम् ।४२।

सायंकाल में प्रतिदिन कभी नहीं जाना चाहिए । बिल्कुल नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिए । रात्रि के समय में किसी विशेष कारण होने के बिना स्नान नहीं करना चाहिए । किसी नदी को बाहुओं से तैर कर पार नहीं करे । कुए को झुक कर कभी नहीं देखना चाहिए । किसी गर्त्त को भी (गहरे गढ्ढे को) झुककर नहीं देखे । ऐसे स्थान पर कभी नहीं बैठना चाहिए जहाँ से कोई उसको उठा देवे ।।३१-३७।। मार्ग में चलते हुए यदि कोई ब्राह्मण, गौ, राजा और नेत्रहीन (अन्धा) हो तो स्वयं हटकर इनको रास्ता दे देना चाहिए । अर्थात् इनके लिए मार्ग निकल कर जाने को छोड़ देना चाहिए । इसी प्रकार भार (बोझ) से तपे हुए अर्थात् जिस के माथे पर बोझा रक्खा हो उसके लिये—गर्भवती स्त्री के लिये और किसी दुर्बल (कमजोर) रोगी आदि के लिये भी मार्ग दे देना चाहिए । तात्पर्य यह है कि इन उपर्युक्त लोगों को मार्ग में निकल कर जाने के लिये रोक नहीं करनी चाहिए ।।३८।। धार्मिक पुरुष को ऐसे ही ग्राम में आवास करने के लिये यत्न करना चाहिए जहाँ पर पर्याप्त ईंधन, जल, यव, समिधा, कुश, माल्य और उपनिष्क्रमण हो तथा धनी मनुष्यों से पापपूर्ण अनल से समृद्ध और आर्य पुरुषों का बाहुल्य हो तथा जिसमें दस्युओं (चोर, डाकू) का प्रवेश न हो सके इस प्रकार से सर्वसमृद्धि सम्पन्न एवं सुरक्षा युक्त ग्राम में निवास करने का प्रयत्न करे ।।३९। उदपानोदक ग्राम अर्थात् जिस ग्राम में केवल कुए का ही पानी प्राप्त हो, ऐसे गाँव में वृषली (शूद्रा) का पति होकर ब्राह्मण बारह वर्ष तक निवास कर लेता है तो वह शूद्र के ही समान हो जाता है ।।४०।। नगर की रेणु (धूल) से कुण्ठित शरीर वाला और उस धूलि से परिपूर्ण (भरे हुए) नेत्र

तथा मुख वाला नगर में वास करते हुए भी सुनियत आत्मा वाला सिद्धि प्राप्त कर लेगा, ऐसा नहीं है। रथ, अश्व, हाथी, धान्त और गौओं के द्वारा उठी हुई रज तो प्रशस्त होती है और इसे शुभ माना गया गया है। समूहनी (सेना), कुत्ता, बकरी, भेड़, गधा, आदि के निवास स्थानों की रज अप्रशस्त एभं अशुभ होती है ।।४१-४२।।

पूजन्यान्पूजयेत् ।४। ऋषिविद्वन्नृपवरमातुलश्वशुर्र्त्विजः। एतेर्घ्याः शास्त्रविहिताः स्मृताः कालविभागशः ।४४। ऋषिविद्वन् नृपाः प्राप्ताः क्रियारम्भे वरर्त्विजौ ।पूज्यौ संवत्सरगतागता विति ।४५। अग्न्यागारे गवां मध्ये ब्राह्मणानां च संनिधौ। स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं बाहुमुद्धरेत् ।४५। उत्तरं वासः कर्तव्यं पंचस्वेतेषु कर्मसु ।४६। स्वाध्यायोत्सर्गदानेषु भोजनाचमनयोस्तथा ।४७ हवनं भोजनं दानमुपहारः प्रतिग्रहः। बहिर्जानु न कार्याणि तद्वद्वाचमनं स्मृतम् ।४८। अन्ने श्रितानि भूतानि अन्नं प्राणमिति श्रुतिः। तस्मादन्नं प्रदातव्यमन्नं हि परमं हविः ।४९। हुतेन शाम्यते पापं हुतमन्नेन शाम्यति। अन्नं दक्षिणया शान्तिमुपयातीति नः श्रुतिरिति ।५०।

पूजा एवं सत्कार के योग्य जो पुरुष हों उनको पूजा एवं सत्कार अवश्य करना चाहिए। ऋषि अर्थात् ऋषियों के तुल्य जिनकी जीवनचर्या हो ऐसे पुरुष, विद्वान् नृप, श्रेष्ठ, मातुल (मामा), श्वसुर और ऋत्विज ये लोग अर्घ्य देने के योग्य अर्थात् पूजा एवं सत्कृति करने के योग्य होते हैं और इनकी अर्घ्यता शास्त्र में विहित बतलाई गई है, किन्तु इस में काल का विभाग किया गया है ।।४३।। ऋषि, विद्वान् और राजा ये जिस समय भी प्राप्त हों अर्थात् जब भी मिलें इनकी पूजा एवं सत्कृति करनी चाहिए। वर और ऋत्विज की पूजा क्रिया के आरम्भ में करे, मातुल और श्वसुर की पूजा वर्ष के जाने तथा आने पर एक बार अवश्य ही करनी चाहिए ।।४४।। अग्न्यागार में अर्थात् अग्नि के रहने के स्थान में, गौओं के मध्य में, ब्राह्मणों की सन्निधि में स्वाध्याय अर्थात् वेद के

अध्ययन के समय में और भोजन में अपने दाहिने हाथ को ही उठाना चाहिये अर्थात् दाहिने हाथ से ही कार्य करना चाहिए ।।४५।। निम्न लिखित कार्यों में एक अधोवस्त्र के अतिरिक्त उत्तर वास (वस्त्र) अवश्य ही पाँच कर्मों के करने के समय में होना चाहिए । वे पाँच कर्म ये हैं— स्वाध्याय मलोत्सर्ग, दान, भोजन और आचमन ।।४६।। हवन, भोजन, दान, उपहार और प्रतिग्रह अर्थात् दान लेना एवं आचमन करना ये उपर्युक्त समस्त कार्य जानुओं (घुटनों) को बाहिर रखकर नहीं करने चाहिए ।।४७।। अन्न के आश्रय में ही समस्त प्राणी जीवित रहा करते हैं अर्थात् प्राणी मात्र को जीवन देने वाला अन्न ही होता है । श्रुति भी "अन्नं वै प्राणाः" इसके द्वारा अन्न को ही प्राणियों का प्राण बतलाती है । अन्न का बहुत बड़ा महत्व है अतएव अन्न का दान करना चाहिए, अन्न सबसे श्रेष्ठ हवि है ।।४८।। हुत अर्थात् हवन करने से पाप का शमन हो जाता है और अन्न से हुत का शमन होता है तथा दक्षिणा से अन्न शान्ति को प्राप्त होता है—ऐसी हमारे यहाँ श्रुति है ।।४९।।

॥ अथ सत्पुत्र प्रशंसा वर्णनम् ॥

प्रजाकामस्योपदेशः ।।१ प्रजननिमित्ता समाख्येति ।।२
अश्विनावूचतुः ।।३
आयुषा तपसा युक्तः स्वाध्यायेज्यापरायणः ।
प्रजामुत्पादयेद्युक्तः स्वे स्वे वर्णे जितेन्द्रियः ।।४
ब्राह्मणस्यर्णसयोगस्त्रिभिर्भवति जन्मतः ।
तानि मुच्यात्मवान्भवति विमुक्तो धर्मसंशयात् ।।५
स्वाध्यायेन ऋषीन्पूज्य सोमेन च पुरंदरम् ।
प्रजया च पितृन्पूर्वाननृणो दिवि मोदते ।।६
पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणाऽऽनन्त्यमश्नुते ।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण नाकमेवाधिरोहतीति ।।७
विज्ञायते ।।८

प्रजा की कामना रखने को उपदेश है ॥१॥ प्रजनन अर्थात् उत्पत्ति के निमित्त वाली समाख्या अर्थात् भली भाँति व्याख्या की जाती है ॥२॥ अश्विनी कुमार बोले ॥३॥ आयुष्य, तप से युक्त तथा स्वाध्याय और इज्या (यजन में तत्पर रहने वाले और इन्द्रियों को जीतकर वश में रखने वाले योग्य पुरुष को अपने-अपने वर्ण में स्थित होकर प्रजा का उत्पादन करना चाहिए ॥४॥ ब्राह्मण को जन्म से ही तीन प्रकार के ऋणों का संयोग होता है। उन तीनों ऋणों से युक्त होकर धर्म संशय से छुटकारा पाते हुए आत्मवान् होता हैं ॥५॥ वेद का स्वाध्याय कर इसके द्वारा ऋषियों का पूजन करके, सोम के द्वारा पुरन्दर (इन्द्र) अर्चन करके तथा प्रजा के प्रजनन के द्वारा पूर्वज पितृगण का यजन करके ब्राह्मण ऋण से मुक्त होता है और फिर वह स्वर्ग में आनन्द का लाभ लेता है ॥६। पुत्र के उत्पन्न होने से ब्राह्मण लोकों में जय प्राप्त कर लेता है, पौत्र के समुत्पन्न हो जाने पर वह अनन्तता को प्राप्त करता है। इसके अनन्तर पुत्र के पौत्र अर्थात् अपना प्रपौत्र जन्म ले लेने पर तो वह फिर स्वर्ग का अधिरोहन कर लेता है ॥७॥ और जाना जाता है ॥८॥

जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो
यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति ॥९
एवमृणसयोगं वेदो दर्शयति ॥१०
सत्पुत्रमुत्पाद्याऽऽत्मानं तारयति ॥११
सप्तावरान्सप्त पूर्वान्षडन्यानासप्तमान् ।
सत्पुत्रमधिगच्छानस्तारयत्येनसो भयात् ॥१२
तस्मात्प्रजासंतानमुत्पाद्य फलमवाप्नोति ॥१३
तस्माद्यत्नवानप्रजामुत्पादयेदौषधमन्त्रसंयोगेन ॥१४
तस्योपदेशः श्रुतिसामान्येनोपदिश्यते ॥१५
सर्ववर्णेभ्यः फलवत्त्वादिति फलवत्त्वादिति ॥१६

जायमान अर्थात् जन्म ग्रहण करने वाला ब्राह्मण तीन तरह के ऋणों से युक्त ऋणवान् होता है। वे तीन ऋण—देवऋण, ऋषि ऋण और

पितृऋण होते हैं ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से ऋषियों के ऋण से, यज्ञादि कर्मों के करने से देवताओं के ऋण से और सन्तान का समुत्पादन करने से पितृगण के ऋण से मुक्ति होती है ॥९॥ इस प्रकार के इन तीनों ऋणों का ब्राह्मण के साथ संयोग वेद दिखलाता है अर्थात् वेद में भी इसका प्रतिपादन किया गया है ॥१०॥ ब्राह्मण एक सत्पुत्र का उत्पादनकर अपने आपका उद्धार कर लिया करता है ॥११॥ सत्पुत्र का बड़ा महत्त्व है इसके उत्पादन होने से सात पुरुष (पीढ़ी) पहिले और अपने साथ आगे होने वाले पुरुषों को एक सत्पुत्र को प्राप्त करने वाला ब्राह्मण पाप के भय से तार देता है ॥ १२ ॥ इससे प्रजा-सन्तति का उत्पादन कर ब्राह्मण फल को प्राप्त किया करता है। सुसन्तति ही से सुख और उद्धार होता है इसलिये मन्त्र तथा औषध के संयोग से पूर्ण यत्न वाला होकर श्रेष्ठ प्रजा का उत्पादन करना चाहिए ॥१३-१४॥ उसका उपदेश सामान्य श्रुति के द्वारा ही दिया जाता है ॥१५॥ सुसन्तति का समुत्पादन करने में पूर्ण प्रयत्न और मन्त्र प्रयोग तथा औषध का उपयोग करे। यह सभी वर्णों को फल प्रदान करने वाली होती है ॥१६॥

॥ प्रायश्चित्तविधिवर्णनम् ॥

प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामो विख्यातानि विशेषतः। समाहितानां युक्तानां प्रमादेषु कथं भवेत् ।१। ऋतं च सत्यं चेत्येतदघमषणं त्रिरन्तर्जले पठन्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते ।२। आऽय गौः पृश्निरक्रमीदित्येतामृचं त्रिरन्तर्जले पठन्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते। ३। द्रुपदादिवन्मुमुचान इत्येतामृचं त्रिरन्तर्जले पठन्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते ।४। हंसः शुचिषदित्येतामृचं त्रिरन्तर्जले पठन्सर्वस्मात् ।५। अपि वा सावित्रीं गायत्रीं पच्छोऽर्धर्चशस्ततः समस्तामित्येतामृचं त्रिरन्तर्जले पठन्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते ।६। तदेतद्धर्मशास्त्रं नापुत्राय नाशिष्याय नासंवत्सरोषिताय दद्यात् ।९। सहस्रं दक्षिणा ऋषभैकादशं गुरुप्रसादो वा गुरुप्रसादो वा ।१०।

विशेष रूप से विख्यात प्रायश्चित्तों के विषय में व्याख्या करते हैं। जो समाहित और युक्त हैं उनका प्रमादों में किस प्रकार से प्रायश्चित किये जा सकते हैं-यह बतलाते हैं ।।१।।'ऋतं च सत्यं च' इत्यादि अघमर्षण मन्त्र को तीन बार जलाशय के जल के अन्दर पढ़ने से समस्त प्रकार के पाप से छुटकारा पा जाता है ।।२।। "आऽयं गौः पृश्निरक्रमीद" इत्यादि ऋचा को तीन बार जलाशय के जल के भीतर होकर पढ़ने से समस्त प्रकार के पाप से प्रमुक्त हो जाता है ।। ३ ।। "द्रुपदादिवन्नमुमुचान" ऋचा को तीन बार जल के अन्दर रहकर पढ़ने से समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है ।।४।। और सावित्री, गायत्री—"पच्छोऽर्धर्चशस्ततः सम समाम्" इत्यादि ऋचा को भी तीन बार जल के अन्दर पढ़ने से समस्त पाप से छुटकारा पा जाता है ।। ६ ।। और व्याहृतियाँ व्यस्त (अलग-अलग) हों या सब तीनों (ओं भूर्भुवः स्वः) मिली हुई हों, इनका भी तीन बार जल के अन्दर रहकर जप करते हुए समस्त प्रकार के पापों से मुक्ति हो जाती है। व्याहृतियों में सबको मिलाकर पढ़ने अथवा अलग एक-एक को ही पढ़ने से पाप मुक्ति निश्चय ही हो जाती है ।।८।। अथवा केवल प्रणव (ओम्) को ही तीन बार जल के अन्दर होकर जप करने से सब प्रकार के पाप से मुक्ति हो जाती है ।।८।। यह धर्म शास्त्र के श्रेष्ठतम वचन हैं इनका उपदेश उन व्यक्तियों को नहीं देना चाहिए जो पुत्र न हो, शिष्य न हो और एक वर्ष पर्यन्त समीप में न रहा हो ।।९।। सहस्र दक्षिणा, एकादश ऋषभ अथवा गुरु प्रसाद देवे ।।१०।।

।। अथ चक्षुःश्रोत्रत्वग्घ्राणमनोव्यतिक्रमादिषु प्रायश्चित्तम् ।

प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामो नानार्थानि पृथक्पृथक् ।
तेषु तेषु च दोषेषु गरीयांसि लघूनि च ।।१

यद्यत्र हि भवेच्छुक्तं तद्धि तत्रैव निर्दिशेत् ।
भूयो भूयो गरीयः सु लघुष्वल्पीयसस्तथा (?) ।।२

विधिना शास्त्रदृष्टेन प्राणायामान्समाचरेत् ।
यद्युपस्थकृतं पाप पद्भ्यां वा यत्कृतं भवेत् ॥३
बाहुभ्यां मनसा वाचा श्रोत्रत्वग्घ्राणचक्षुषा ॥४
अपि वा चक्षुःश्रोत्रत्वग्घ्राणमनोव्यतिक्रमेषु त्रिभिः
प्राणायामैः शुध्यति ॥५
शूद्रान्नस्त्रीगमनभोजनेषु केवलेषु पृथक्पृथक्सप्ताहं सप्त सप्त
प्राणायामान्धारयेत् ॥६
अभक्ष्याभोज्यापेयान्नाद्यप्राशनेषु तथाऽपण्यविक्रयेषु
मधुमांसघृततैलक्षारलवणावरान्नवर्जेषु यच्चान्यदप्येवं
युक्तं द्वादशाहं द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत् ॥७
पातकपतनीयोपपातकवर्जेषु यच्चान्यदप्येवं युक्तमर्धमासं
द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत् ॥८

अब नाना प्रकार के प्रायश्चितों को पृथक्-पृथक् बतलाते हैं जो कि उन दोषों के होने पर छोटे और बड़े प्रायश्चित होते हैं ॥१। जो जहां पर युक्त हो उसे वहां पर ही निर्दिष्ट करना चाहिए । पुनः पुनः बड़े और छोटे दोषों में बड़े और छोटे प्रायश्चित कराने चाहिए ॥२॥ शास्त्र में बताई हुई विधि से प्राणायामों को करना चाहिए । जो पाप उपस्थ के द्वारा किया गया हो अथवा पैरों के द्वारा किया हो बाहु, मन, वाणी, श्रोत्र, त्वग्, घ्राण, चक्षु के द्वारा या चक्षु, श्रोत, त्वक्, घ्राण, और मन के द्वारा व्यतिक्रम से पाप किया हो उसकी शुद्धि के लिए तीन बार प्राणायाम शास्त्रोक्त विधिपूर्वक करना चाहिए ॥३-५॥ शूद्र का अन्न, स्त्री गमन और शूद्र के भोजन केवल करने पर जो पाप होता है उसकी शुद्धि के लिए अलग-अलग एक सप्ताह तक सात-सात बार प्राणायाम करना चाहिए—यही प्रायश्चित होता है ॥ ६ । अभक्ष्य, अभोज्य और अपेय अन्न आदि के प्राशन (खालेना) कर लेने पर तथा जो अपण्य (बिक्री करने के अयोग्य) वस्तु ही उनके विक्रय करने पर एवं वर्जित मधु, मांस, घृत, तेल, क्षार, लवण और अवरान्न के ग्रहण करने पर और अन्य भी इसी प्रकार के पाप कर्म से युक्त होने पर बारह दिन

तक बारह-बारह प्राणायाम प्रति दिन करने चाहिए। तब इस प्राय-श्चित से शुद्धि हो जाती है ॥८॥

पातकपतनीयवर्जेषु यच्चान्यदप्येवं युक्तं द्वादश द्वादशा-हान्द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत् ॥९

पातकवर्जेषु यच्चान्यदप्येव युक्तं द्वादशार्धमासान्द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत् । १०

अथ पातकेषु संवत्सरं द्वादश प्राणायामान्धारयेत् ॥११

दद्याद्गुणवते कन्यां नग्निकां ब्रह्मचारिणे ।
अपि वा गुणहीनाय नोपरुध्याद्रजस्वलाम् ॥१२

त्रीणि वर्षाण्यृतुमती यः कन्यां न प्रयच्छति ।
स तुल्यं भ्रूणहत्याय दोषमृच्छत्यसंशयम् ॥१३

न याचते चेदेवं स्याद्याचते चेत्पृथक्पृथक् ।
एकैकस्मिन्नृतौ दोषं पातकमनुरब्रवीत् ॥१४

त्रीणि वर्षाण्यृतुमती कांक्षेत पितृशासनम् ।
ततश्चतुर्थे वर्षे तु विन्देत सदृश पतिम् ।
अविद्यमाने सदृश गुणहीनमपि श्रयेत् ॥१५

पातक, पतनीय एवं उपपातकों के अतिरिक्त जो भी कोई अन्य इस प्रकार के पाप हों और उनसे कोई युक्त हो तो उसे शुद्धि के लिये आधे मास पर्यन्त द्वादश २ प्राणायाम प्रतिदिन करने चाहिए ।९। पातकों को छोड़कर यदि अन्य किसी प्रकार के ऐसे पापों से युक्त व्यक्ति को छै मास तक प्रतिदिन बारह-बारह प्राणायाम करने चाहिए ॥१०॥ यदि और कोई पातक हों तो उनकी शुद्धि के लिए एक वर्ष पर्यन्त नित्य ही बारह-बारह प्राणायाम करने चाहिए ॥११॥ नग्निका कन्या को किसी गुण वाले ब्रह्मचारी को दे देना चाहिए। यदि कोई गुण युक्त वर न मिले और कन्या रजस्वला होगई हो तो किसी गुणहीन पुरुष को ही उसका दान कर देना चाहिए और रजोधर्म से युक्त कन्या का उपरोध नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसी कन्या को पिता के घर में ही उपरुद्ध

रहने का बड़ा भारी दोष होता है ॥१२॥ तीन वर्ष तक अपनी ऋतुमती कन्या को जो नहीं देता है वह भ्रूण हत्या के मान दोष को अर्थात् पाप को बिना किसी संशय के प्राप्त होता है ॥१३॥ यदि इस प्रकार याचना नहीं करता है तो होता है अगर याचना करता है तो एक-एक ऋतु काल में पृथक-पृथक पातक-दोष होता है—ऐसा महर्षि मनु ने कहा है ॥१४॥ ऐसी कन्या जो पिता के घर में ऋतुमती होकर बिना विवाह संस्कार हुए रहती हो उसे तीन वर्ष तक पिता के शासन की आकाँक्षा रखनी चाहिये। जब चौथे वर्ष की आरम्भ हो जावे तो फिर उसे अपने सदृश पति स्वय प्राप्त कर लेना चाहिए, यदि स्वयं कन्या कोई अपने सदृश पति प्राप्त न कर सके तो उसे गुणहीन ही किसी पति का वरण कर आश्रय ले लेना चहिए और गार्हस्थ्य-आश्रम के सुखोपभोग करना चाहिए ॥१५॥

बलाच्चेत्प्रहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता।
अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा ॥१७
निसृष्टायाँ हुते वाऽपि यस्यं भर्ता म्रियते सः।
स चेदक्षतियोनिः स्याद्गतप्रत्यागता सती ॥१७
पौनर्भवेन विधिना पुनः सस्कारमर्हति ॥१८
त्रीणि वर्षाण्यृतुमतीं यो भार्यां नाधिगच्छति।
स तुल्यं भ्रुणहत्यायं दोषमृच्छत्यसंशयम् ॥१९
ऋतुस्नातां तु यो भार्या सन्निधौ नोपगच्छति।
पितरस्तस्य तन्मासं तस्मिन्रजसि शेरते ॥२०
ऋतौ नोपैति यो भार्यामनृतौ यश्च गच्छति।
तुल्यमाहुस्तयोर्दोषमयोनौ यश्च सिञ्चति ॥२१

कोई कन्या बलपूर्वक प्रहृत करली जावे और मन्त्रों के द्वारा शास्त्रोक्त विधि से उसका विवाह-सस्कार नहीं किया गया हो तो उसे प्राप्त कर विधि-विधान के साथ किसी अन्य वर को उसका दान कर देना चाहिए क्योंकि बिना मन्त्रों के द्वारा संस्कार के हुए वह जैसी कन्या

बलात् हत होने के पूर्व में थी वैसी ही बाद में भी रहती है अर्थात् उसके कन्यात्व का नाश नहीं होता है ॥१५-१६॥ हवन करके विधिपूर्वक जो कन्या निसृष्ट करदी गई हो और उसका पति फिर मर जावे तथा वह जब तक अक्षतयोनि रही हो अर्थात् पति के साथ उसका ऐन्द्रियक संग नहीं विधि से, पुनः संस्कार कर देवे क्योंकि वह पुनर्विवाह के संस्कार कर देने के ही योग्य होती है ॥१७-१८॥ तीन वर्ष से ऋतु धर्म में रहती हुई अपनी भार्या का जो पुरुष गमन नहीं करता है वह भ्रूण हत्या के पाप का दोष निश्चय ही प्राप्त करता है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१९॥ ऋतुकाल के पश्चात् शुद्धि स्नान की हुई अपनी भार्या का जो गमन नहीं करता है तथा सन्निधि में नहीं पहुँचकर अलग-अलग ही रहा करता है उसके पितर उस मास में उसकी भार्या के रज में शयन किया करते हैं—ऐसी यातना पुत्र के दोष के कारण उन्हें भोगनी पड़ती है ॥२०॥ जो पुरुष ऋतुकाल में तो गमन नहीं करता है विना ऋतुकाल के समय में गमन किया करता है। इन दोनों का दोष बराबर ही होता है और जो अयोनि में शुक्रपात करता है उसका भी वैसा ही दोष होता है ॥२१॥

भर्तुः प्रतिनिवेशेन या भार्या स्कन्दयेदृतुम्।
तां ग्राममध्ये विख्याप्य भ्रूणघ्नीं निर्धमेद् गृहात् ॥२२
ऋतु स्नातां न चेत् गच्छेन्नियतां धर्म चारिणीम्।
नियमातिक्रमे तस्य प्राणायामशतं स्मृतम् ॥२३
प्राणायामान्पवित्राणि व्याहृतीः प्रणवं तथा।
पवित्रपाणिरासीनो ब्रह्म नैत्यकमभ्यसेत् ॥२४
आवर्तयेत्सदा युक्तः प्राणायामान्पुनः पुनः।
आ केशान्तान्नखाग्राच्च तपस्तप्यत उत्तमम् ॥२५
निरोधाज्जायते वायुर्वायोरग्निश्च जायते।
तापेनाऽऽपोऽधि जायन्ते ततोऽन्तः शुध्यते त्रिभिः ॥२६
योगेनावाप्यते ज्ञानं योगो धर्मस्य लक्षणम्।
योगमूला गुणा सर्वे तस्माद्युक्तः सदा भवेत् ॥२७

स्वामी के प्रति निवेश से जो भार्या ऋतु का स्कन्दन करे उस भार्या को ग्राम के मध्य में त्रिख्यापित कर ऐसी भ्रूण के हनन करने वाली भार्या को घर से निष्कासित कर देना चाहिए ।।२२।। जो नियत रूप से रहने वाली और धर्म का ठीक का आचरण करने वाली भार्या हो और ऋतुकाल के पश्चात् शुद्धि स्थान कर चुके उसका यदि गमन न किया जा सके तो शास्त्रोक्त नियम के अतिक्रमण करने के दोष होने पर शुद्धि के लिये सो बार प्राणायाम करना चाहिए ।।२३।। प्राणायाम, पवित्र ग्रन्थ, व्याहृति और प्रणव इनसे हाथों को पवित्र कर बैठकर ब्रह्म का अभ्यास करे ।।२४।। सर्वदा युक्त होकर प्राणायाम का बार-बार आवर्तन करना चाहिए। नख के अग्रभाग से केशों के अन्त पर्यन्त उत्तम तप करे ।।२५।। निरोध करने से वायु उत्पन्न होती है, वायु से अग्नि की उत्पत्ति होती है, अग्नि से जल समुत्पन्न होता है फिर इन तीनों से अन्तःकरण शुद्ध होता है ।।२६। योग से ज्ञान को प्राप्ति की जाती है और योग ही धर्म का लक्षण है। योग ही जिनका मूल है ऐसे समस्त गुण होते हैं। इसलिये योगयुक्त होना ही चाहिए ।।२७।।

प्रणवाद्यास्तथा वेदाः प्रणवे पर्यवस्थिताः ।
प्रणवा व्याहृतयश्चैव तित्यं ब्रह्म सनातनम् ।।२८
प्रणवे नित्ययुक्तस्य व्याहृतीषु च सप्तसु ।
त्रिपदायां च गायत्र्यां न भयं विद्यते क्वचित् ।।२९
सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
त्रिः पठेदायत प्राणः प्राणायामः स उच्यते ।।३०
सव्याहृतिकाः सप्रणवाः प्राणायामस्तु षोडश ।
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहर्धृताः ।।३१
एतदाद्यं तपः श्रेष्ठमेतद्धर्मस्य लक्षणम् ।
सर्वदोषापघातार्थमेतदेव विशिष्यत एतदेव विशिष्यतइति।।३२

वेदों का आद्य प्रणव ही होता है क्योंकि प्रणव में ही सब पर्यवस्थित होते हैं। और व्याहृतियाँ ही नित्य सनातन ब्रह्म है। जो प्रणव में और

सातों व्याहृतियों में नित्य युक्त रहता है तथा त्रिपदा (तीन पदों वाली) गायत्री में योगयुक्त रहा करता है उसे कहीं भी भय नहीं होता है ।।२८-२६।। व्याहृतियों (सात व्याहृतियों) के सहित और प्रणव के साथ एवं शिर के सहित आयत प्राण होकर तीन बार गायत्री को जो जपा जाता है वही प्राणायाम कहा गया है । प्रणव और व्याहृतियों के सहित सोलह प्राणायाम रात दिन अर्थात् प्रति दिन रोज धारण करने पर एक मास में भ्रूण हनन के पाप से भी शुद्ध पवित्र कर दिया करते हैं । यही आद्य एवं श्रेष्ठ तप है और यही धर्म का लक्षण भी है । अतः समस्त प्रकार के पापों के दोषों का शमन या घात करने के लिये यही विशेषता रखने वाला होता है ।।३०-३२।।

———

लघ्वाश्वलायन स्मृतिः

॥ अथ पत्नीकुमारोपवेशनप्रकरणम् ॥

संस्कार्यः पुरुषो वाऽपि स्त्री वा दक्षिणतो भवेत् ।
सरकारस्तु सर्वत्र तिष्ठेदुत्तरतः सदा ॥ १
धर्मकार्येषु सर्वेषु व्रतोद्यापनशान्तिषु ।
वामे स्त्री दक्षिणे कर्ता स्थालीपाके तथैव च ॥ २
मार्जने चाभिषेके च कन्यापुत्रविवाहके ।
आशीर्वचनकाले च पत्नीः स्यादुत्तरे सदा ॥ ३
विच्छिन्नवह्निसंधाने कन्यादाने वरार्चने ।
नवोढाप्रवेशे पत्नी दक्षिणे स्वयमुत्तरे ॥ ४
आरभ्याऽऽधानकं कर्म यावन्मौञ्जीनिबन्धनम् ।
कर्त्ता स्यादुत्तरे तावत्पत्नीं पुत्रस्य दक्षिणे ॥ ५
पत्नी विना न तत्कुर्यात्संस्कारं कर्म यच्छिशो ।
पत्न्यां चैव तु जीवन्त्यां विधिरेष उदाहृतः ॥ ६

संस्कार के योग्य अर्थात् जिसका भी संस्कार करना चाहिए वह चाहे पुरुष हो अथवा स्त्री हो, उसे दक्षिण दिशा में रहना चाहिए । जो संस्कार कराने वाला हो उसे सर्वदा उत्तर की ओर ही रहना चाहिए, तात्पर्य यह है कि संस्कार्य व्यक्ति और संस्कार कराने वाले दोनों के उपवेशन की दिशा क्रमशः दक्षिण तथा उत्तर होनी चाहिए ॥१॥ समस्त धर्म सम्बन्धी कार्यों में, व्रत-उद्यापन और शान्ति कर्मों में और स्थालीपाक में वाम भाग में स्त्री और दक्षिण में कर्ता को बैठना चाहिए ॥२॥ मार्जन में—अभिषेक में कन्या तथा पुत्र के विवाह में और आशीर्वाद

के समय में पत्नी को सर्वदा उत्तर में ही रहना चाहिए ॥३॥ विच्छिन्न वह्नि के सन्धान के समय में—कन्या दान करने के अवसर पर तथा वर के अर्चन के काल में और नवोढ़ा (नव विवाहित) के प्रवेश के समय में पत्नी को सदा दक्षिण भाग में और स्वयं पति को उत्तर भाग में संस्थिति करनी चाहिए ।।४।। आधानक कर्म को आरम्भ करके जब तक मौञ्जी निबन्धन कर्म हो तब तक कर्त्ता को उत्तर में और पत्नी को पुत्र के दक्षिण भाग में स्थित रहना चाहिए ।।५।। शिशु का जो कोई कर्म हो उसे कभी भी पत्नी के बिना स्वयं अकेले नहीं करना चाहिए अर्थात् शिशु के सभी कर्म पत्नी को साथ में रख कर करना आवश्यक है । यह विधि तभी है जब कि अपनी पत्नी जीवित हो । तात्पर्य यह है कि पत्नी की जीवित दशा में पुरुष को कोई शिशु के संस्कारदि से सम्बन्धित कर्म एकाकी नहीं करने चाहिए । यदि पत्नी जीवित ही न रहे उस समय के लिए यह विधि नहीं है । जीवित पत्नी की किसी भी कर्म में विशेष कर शिशु सम्बन्धी कर्मों में पुरुष को उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, ऐसा शास्त्र का विधान है ।।६।।

॥ अथ निष्क्रमणप्रकरणम् ॥

मासे चैव चतुर्थे तु कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोः ।
कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धमादायाङ्कं शिशुं पिता ।।१
स्वस्ति नो मिमीतां सूक्तं जपन्देवादिकं नयेत् ।
आशुः शिशान इत्येतत्पठेत्तं श्वशुरालयम् ।।२
नीत्वाऽन्यस्य गृहं वापि प्राङ्गणे वाऽर्कमीक्षयेत् ।
तच्चक्षुरिति मन्त्रेण दृष्ट्वार्कं प्रविशेद्गृहम् ।।३

शिशु अर्थात् नवजात छोटा बालक जब चौथे मास में प्रवेश करे तब उसका निष्क्रमण करना चाहिए अर्थात् चौथे महीने में बालक को घर से बाहिर निकाले । आभ्युदिक अर्थात् अभ्युदय देने वाला नान्दी मुखादि श्राद्ध पहिले करके शिशु का पिता उसे अपनी गोद में लेकर "स्व-

स्ति नो मिमीतां" इत्यादि सूक्त का पाठ करते हुए किसी देवालय में सर्व प्रथम ले जावे। इसके पश्चात् "आशुः शिशानः" इत्यादि को पढ़ते हुए उस शिशु को अपने श्वसुर के घर ले जाना चाहिए ।।१-२।। इसके अनन्तर अन्य किसी अपने शुभचिन्तक व्यक्ति के घर में ले जावे अथवा प्रांगण में जाकर उसे सूर्य के दर्शन कराना चाहिए। सूर्य दर्शन कराने के के समय में "तच्चक्षु" इत्यादि मन्त्र को पढ़े। भगवान भास्कर के दर्शन कराने के पश्चात् अपने घर में प्रवेश करे ।।३।।

।।अथान्नप्राशनप्रकरणम्।।

षष्ठेऽन्नप्राशनं कुर्यान्मासे पुंस्यष्टमेऽथ वा।
दशमे द्वादशे मासि केचिदेवं वदन्ति हि ।।१
कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं शुभे चैव दिने पिता।
सौवर्णे राजते पात्रे कांस्ये वाऽथ नवे शुभे ।।२
क्षीराज्यमधुदयन्नं विधाय प्राशयेच्छिशून्।
मन्त्रेणान्नपतेऽस्य हिरण्येन स्रुवेण च ।।३
पाणिना सपवित्रेण जलं चापि हि पाययेत्।
दत्वा विप्राय तत्पात्रं तूष्णीमेव च योषितः ।।४
ततो विभवसारेण ब्राह्मणांस्चपि भोजयेत्।
स्वयं चैव तु भुञ्जीयात्समाहितमना भवेत् ।।५

नवजात शिशु को अन्न खिलाने का संस्कार छठवें मास में करे। लड़के का अन्नप्राशन आठवें—दशमें अथवा बारहवे मास में किया जाना चाहिए—ऐसा कुछ मनीषियों का मत है ।।१।। सर्वप्रथम अन्न प्राशन संस्कार के पूर्व बालक के पिता को अभ्युदय अर्थात् अभिवृद्धि करने वाला श्राद्ध करना चाहिए जैसे नान्दीमुख आदि श्राद्ध होते हैं। और यह करने के लिए कोई शुभ दिन निश्चित करना चाहिए। अन्नप्राशन के लिए जो पात्र हो वह सोने का हो—चाँदी का हो अथवा कोई शुभ एवं

नवीन कांसे का पात्र हो ॥२॥ उस पात्र में क्षीर—घृत—मधु और दधि एवं अन्न रखकर शिशु को खिलाना चाहिए। "अन्न पते अन्नस्य" इस मन्त्र से प्राशन कराना चाहिए। इस के पश्चात् उस पात्र को ब्राह्मण को देकर स्त्रियों को मौन ही रहना चाहिए ॥३-४॥ इसके अनन्तर अपने वैभव की शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। तात्पर्य यह है कि यथाशक्ति जितने भी ब्राह्मण-भोजन करा सके, करावे। इसके पश्चात् स्वयं भोजन करे और समाहित मन वाला रहे ॥५॥

॥अथ चौल (चूड़ाकरण) कर्मप्रकरणम्॥

तृतीये वत्सरे चौलं बालकस्य विधीयते।
शुभे चैव दिने मासि विहितं चोत्तरायणे ॥१
कृत्वाऽभ्युदयिकं श्राद्धं पूर्वेद्यु रपरेऽहनि।
प्रातःसंध्यादिकं कृत्वा नान्दिश्राद्धं परेऽहनि ॥२
प्राणानायम्य संकल्प्य कर्वीत स्थण्डिलादिकम्।
पात्रासादनपर्यन्तं कृत्वा धान्यानि पूरयेत् ॥३
उदगग्नेः शरावेषु प्राक्संस्थेषु नवेषु च।
तेषु वै क्रमतो व्रीहियवमाषांतिलांश्च हि ॥४
पुरतःस्थे शरावे च विन्यसेद् वृषगोमयम्।
तदुत्तरे नवेऽन्यस्मिञ्छमीपर्णानि पूरयेत् ॥५
आघारान्तं ततः कुर्यात्कृत्वोत्तानानि पूरयेत्।
ततश्च जुहुयादाज्यमग्निश्चेति चतसृभिः ॥६
अग्न आयूंषि पवस इत्येका च प्रजापतेः।
एताएवोपनयने गोदाने च विवाहिके ॥७

बालक का चौल कर्म तीसरे वर्ष में किया जाना चाहिए। जब उत्तरायण सूर्य हो तब किसी शुभ मास और दिन में चौल कर्म करना

चाहिए। जिस दिन चौल कर्म करे उसके पहिले दिन में अभ्युदय होने वाला श्राद्ध करे। यहाँ यह सब आभ्युदयिक श्राद्ध आदि कर्म सम्पन्न कर दूसरे दिन प्रातःकाल में प्रातःकालीन सन्ध्या आदि करके नान्दीमुख श्राद्ध करे ॥१२॥ उसके अनन्तर प्राणायाम करे और सङ्कल्प करे फिर स्थाण्डिल आदि की रचना करनी चाहिए। पात्रासादन तक समस्त कर्म करके धान्यों को पूरण करे। उदग्गत के शरावों में और पूर्व की ओर से स्थित नव शरावों में क्रम से व्रीहि–यव–माष (उर्द) और तिल पूरित करे। आगे में स्थित शराव में वृष का गोमय (गोबर) रखे। उसके उत्तर में अन्य में शमी के पत्ते पूरित करे ॥३-४-५॥ इसके अनन्तर आघारान्त करे और उत्तान करके पूरित करे। इसके पश्चात् 'अग्निश्च' इत्यादि से चार आहुतियाँ घृत की अग्नि देवे। "अग्न आयूंषि पवस" इससे एक प्रजापति को आहुति देवे। ये ही उपनयन-और वैवाहिक गोदान में देनी चाहिए ॥६-७॥

मातुरङ्को पविष्टस्य कुमारस्य तु चैव हि।
पश्चात्स्थित्वा पिता जलमादायपाणिना ॥८
दक्षिणेनाथ सव्येन पाणिनोष्णं जलं तथा।
दक्षिणोत्तरयोस्तत्र निनयेत्केशपक्षयोः ॥९
उष्णेन वायमन्त्रेण जलधारे तयोश्च ते।
अनामिकाया चाऽऽदाय नवनीतं तथादधि ॥१०
प्रदक्षिणप्रकारेण वामकर्णप्रदेशतः।
सकेशान्धारयेद् ब्रह्मा त्रीस्त्रीन्प्रागग्रकान्कुशान्। ११
आचार्यश्छेदयेदेतानोषधे मन्त्रमुच्चरेत्।
क्लेदयेद्वामकर्णान्तंत्रिश्चै वादितिरुच्चरेश्च ॥१२
क्षुरेणेति च तीक्ष्णेन ताम्रयुक्तेन चैव हि।
छेदितान्सुत आदाय मातुहस्ते निवेदयेत् ॥१३
विन्यसेत्ताञ्छ गोपणैः सहाऽऽनडुहगोमये।
येनावपत्प्रथम स्याद्यन धाता द्वितीयकः ॥१४

तृतीये येन भूयश्च सर्वैरेव चतुर्थकम् ।
एवं चदक्षिणे कृत्वा त्रिवार तूत्तरे तथा ॥१५

इसके अनन्तर अपनी माता की गोद में बैठे हुए कुमार के पीछे पिता स्थित होकर दाहिने हाथ से ठण्डा जल लाकर तथा बाँये हाथ से उष्ण जल लाकर वहाँ दक्षिणोत्तर वाले केश–पक्षों का निनयन करना चाहिये ॥८-९॥ उन दोनों के वे उष्ण वायमंत्र से जलधार में अनामिका अगुलि से नवनीत और दधि लेकर हाथ से बाँये कान के भाग से ब्रह्मा केशों सहित पूर्व की ओर अग्र भाग वाले तीन २ कुशाग्रों को धारण करे। ॥१०-११॥ फिर आचार्य को औषध में मन्त्र का उच्चारण करते हुए इनका छेदन करना चाहिए बांये कान तक छेदन करे और तीन बार "अदिति" इसका उच्चारण करे ॥१२॥ इसके अनन्तर ताम्रयुक्त तेज उस्तरे से उन्हें छेदित करे और पुत्र से लेकर माता के हाथ में निवेदन करना चाहिए ।१३। शमी के पत्तों के साथ वृष गोमयमें उनको विन्यस्त करे। "येनावपत्प्रथमं स्यात् येत धाता द्वितीयः । तृतीय येन भूयश्चा सर्वै रेव चतुर्थकम् ।" इससे इस प्रकार दक्षिण में करके उसी प्रकार उत्तर में तीन बार करना चाहिए ॥१४-१५॥

यत्क्षुरेणेति मन्त्रेण क्षुरधारां जलेन च ।
निमृज्येन्मर्म तत्कृत्वा नापिताय प्रदापयेत् ॥१६
यावन्तः प्रवरास्तस्य शिखामध्ये च पार्श्वयोः ।
हश्चात्पूर्वे तथा पञ्चप्रवराणाँ शिखाः स्मृताः ॥१७
अभ्यञ्जयेत्कुमार तमानयेदग्निसधौ ।
तत: स्विष्टकृत हुत्वा होमशेष समापयेत ॥१८
यदुक्तं च यथाकाले कुर्यात्संस्कारकम च ।
आसामर्थ्यात्कृत नो चेद्विधिस्तस्य कथ भवेत् । १९
प्रायश्चित्तं विधायाऽऽदात्रकंकस्य च कर्मणः ।
कृत्वाऽऽदौ कृच्छ्रकं लुप्तकर्माणि कारयेत् ॥२०

मन्त्रमेकं जपेत्तत्र तत्तत्कर्मणि एव हि।
विधिवच्चौलकर्मैवं कृत्वा स्यादुपनायनम् ॥२१
चौलकर्मादितश्चैवं यावद्वैवाहिकं भवेत्।
तावत्स्याल्लौकिको ह्यग्निरिति वेदविदो विदुः ॥२२

इसके पश्चात् "यत्क्षुरेण" इत्यादि मन्त्रों से क्षुर की (उस्तरे की) धार को जल से निर्मज्जित करे। उस कर्म को कर के नापित को दिला देवे ॥१६॥ शिखा के मध्य में और पार्श्व भागों में उस के जितने प्रवर हों पूर्व और पश्चिम में पाँच प्रवरों की शिखा बताई गई है ॥१७॥ इसके अनन्तर कुमार का आभ्यञ्जन करना चाहिए और उसे अग्नि की सन्निधि में लावे। फिर स्विष्टकृत होम करके शेष हवन को समाप्त करना चाहिए। यदि सामर्थ्य के अभाव के कारण संस्कार का कर्म समुचित समय पर न किया जा सके तो फिर उसके सम्पन्न करने की क्या विधि होती है ? प्रश्न के उत्पन्न होने पर आगे उत्तर दिया जाता है ॥१८-१९॥ यदि समुचित शास्त्रोक्त समय पर कोई एक संस्कार न किया गया हो तो उसके समय निकल जाने के पाप का सबसे पूर्व प्रायश्चित करना चाहिए। और एक-एक कर्म का पृथक्-पृथक् प्रायश्चित करे। आदि में एक- एक कृच्छ्र व्रत प्रायश्चित्त के रूप प्रत्येक लुप्त कर्म का करके फिर उस समस्त संस्कार के कर्मों को करना चाहिए। संस्कार सभी ठीक समय पर न भी हों तो भी प्रायश्चित से शुद्धि कर उन्हें करना परम आवश्यक है ॥ २० ॥ तत्तत् कर्म में एक मन्त्र का जप करना चाहिए। इस तरह विधि विधान के साथ चौल कर्म से लेकर जबतक वैवाहिक कर्म संस्कार होता है तबतक लौकिक अग्नि ही होती है—ऐसा वेद के ज्ञाता विद्वानों का मत है ॥ २१—२२ ॥

॥ परान्नत्यागिनामान्नदान, भोजनविधिः ॥

पादप्रक्षालनं कुर्याद्विप्राणां देवरूपिणाम्।
स्वयं चापि समाचम्य विप्रांस्तानुपवेशयेत् ॥१
मधुपर्कं विना रात्रौ द्विजपादाभिषेचनम्।
न कुर्यात्पूजयेद्विप्रान्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥२

ततो विप्रान्समभ्यर्च्य यथाविभवतारतः।
दद्यादन्नं यथाशक्ति भिक्षांऽतिथिभ्य एव च ॥३
अन्नामन्नं च वै भिक्षां दद्यादहरहर्द्विजः।
स सगवक्रद्युतः पाकात् त्राद्य पि च यद्भवेत् ॥४
रियं ददाति यः माधुरन्नं वेदविदो मुखे।
मुक्तः स्याद्‌दुरितात्पापात् ब्रह्मसायुज्यमश्नुते ॥५
परालत्यागिनामेव दद्यादामं विशेषतः।
अन्नाद्द्विगुणं पुण्यं लभेद्दाता न संशयः ॥६
भिक्षां ददाति विप्राय यतो ब्रह्मचारिणे।
स सर्वांल्लभते कामास्ततो याति परां गतिम् ॥७
दत्तं नैवपुनर्दद्यादपक्वं पक्वमेव वा।
पुनश्च दयिते मोहान्नरकं प्रतिपद्यते ॥८

देवताओं के स्वरूप के समान स्वरूप वाले ब्राह्मणों के पदार्पण करने पर सब से पहिले उनके चरणों को धोना चाहिए फिर स्वयं भी आचमन करके ब्राह्मणों को आसन पर बिठलाना चाहिए ॥१॥ रात्रि में मधु पर्क बिना अर्थात् मधुपर्क के न होने पर ब्राह्मणों के चरणो का अभिषेक नहीं करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि यदि रात्रि के समय में ब्राह्मण का घर पर आगमन हो तो उनके चरणों का प्रक्षालन करे और मधुपर्क भी भी अवश्य ही समर्पित करना चाहिए। गन्ध-अक्षत-पुष्प आदि उपचारों के द्वारा विप्रों का अर्चन अवश्य करना चाहिए ॥२॥ अपनी विभव-सम्पत्ति के अनुरूप ही ब्राह्मणों का अभ्यर्चन करे। तात्पर्य यह है कि सामान्य व्यक्ति तो साधारण रूप से भरसक उनका पूजन करते ही हैं किन्तु जो पूर्ण सम्पन्न धनी पुरुष हैं उन्हें भी अपनी सम्पन्नता के अनुकूल ही उपचारों से आदरपूर्वक विप्रार्चन करना आवश्यक है। इसके अनन्तर उन्हें यथाशक्ति अन्न समर्पित करना चाहिए और अतिथियों को भिक्षा देनी चाहिए ॥३॥ द्विज को प्रतिदिन कच्चा अन्न और भिक्षा देनी चाहिए। यज्ञ की भाँति हवन किये हुए द्विजाति को पाक के अन्न से भी

कुछ भी हो अवश्य ही देना चाहिए ।।४।। जो साधुवृत्ति वाला पुरुष किसी वेद के ज्ञाता ब्राह्मण को खाने के लिये नित्य हो नित्य कुछ न कुछ देता है वह दुरित (पाप) से छुटकारा पा जाता है और अन्त में ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्म के स्वरूप में जाकर मिल जाता है ।।५।। जो ब्राह्मण दूसरे के पाक किये अन्न का त्याग करने वाले होते हैं उनको कच्चा अन्न अर्थात् शुद्ध अपक्व अन्न का दान करना चाहिए अर्थात् ऐसे ब्राह्मणों को विशेष रूप से सीधा देवे। दान देने वाला अन्न से दशगुना पुण्य प्राप्त किया करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।६।। जो यति एवं ब्रह्मचारी विप्र के लिए भिक्षा देता है वह अपनी समस्त कामनाओं (मनोरथों) की प्राप्ति कर लेता है अर्थात् उसके हृदय में जितने भी मनोरथ उत्पन्न होते हैं वे सब पूरे हो जाते हैं। अन्त में वह परम गति (मोक्ष) को प्राप्त करता है ।।७।। जिनका एक बार दान कर दिया गया हो, वह चाहे पक्व या अपक्व कैसा भी क्यों न हो, दुबारा दान नहीं करना चाहिए अर्थात् दत्त की हुई वस्तु को दुबारा किसी को न दे क्योंकि उसका एक बार दान हो चुका है और उस पर अन्य का प्रभुत्व है। यदि मोहवश पुनः उस दी हुई वस्तु का दान किया जाता है तो वह दाता नरकगामी होता है ।।८।।

पोष्यवर्गसमोपेतो भुञ्जीयात्सह बन्धुभिः ।
भोजने परिविष्टान्नं गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ।।९
सत्यं त्वर्तेन मन्त्रेण जलेन परिषेचयेत् ।
ततो बलित्रयं कुर्यान्त्रेणापः पिबेदथ ।।१०
यमायाथ च चित्राय भूतेभ्यो नम उच्चरेत् ।
दत्त्वाऽमृतोपस्तरणमसीत्युक्त्वा पिबेदपः ।।११
गृह्णीयादाहुतीः पञ्च सपवित्रेण पाणिना ।
त्यक्त्वा पवित्रमश्नीदधृत्वा तत्पुनराचमेत् ।।१२
पुत्रवान्पितृमांश्चव भुक्त्वा श्राद्धीयभोजनम् ।
न कुर्याद्भोजने मौनं प्राणाहुतीर्विना ।।१३

पंक्तिभेदेन यो भुङ्क्ते ग्रासमात्रमपि द्विजः ।
अघं स केवलं भुङ्क्ते हतश्रीर्जायते ध्रुवम् ॥१४
उत्तराचमनं पीत्वा मुखं प्रक्षालयेच्छुचिः ।
भुञ्जद्भ्यस्ततो दद्यात्ताम्बूलं मुखशुद्धये ॥१५
भुक्त्वा चैव स्वयं विप्रः कुर्यात्ताम्बूलचर्वणम् ।
ततो नयेदहः शेषं श्रुत्यादिश्रवणादिभिः ॥१६

वेदवेत्ता को दान और भिक्षादि देने के पश्चात् जो भी अपने पोष्य-वर्ग हों अर्थात् जिनके पोषण करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर हो उन सबको साथ लेकर और अपने भाई बन्धुओं के साथ में भोजन करना चाहिए। भोजन के लिए जिस अन्न का परिवेषण किया गया हो अर्थात् जो भी परोसा गया हो उस गायत्री मन्त्र से पहिले अभिमंत्रित कर लेना चाहिए ॥६॥ इसके अनन्तर "सत्यं त्वर्त्तेन" इस मन्त्र के द्वारा जल से परिषञ्चन करना चाहिए। इसके पश्चात् मन्त्र द्वारा बलि देवे और जल का आचमन करे। "यमाय नमः-चित्रगुप्ताय नमः—भूतेभ्यो नम" ऐसा उच्चारण करते हुए बलि देकर "अमृतोपस्तरणमसि" इस मन्त्र को बोलकर जल पीवे ॥१०-११॥ इसके पश्चात् पाँच आहुतियाँ पवित्री के साथ हाथ से ग्रहण करना चाहिए। फिर पवित्री का त्याग कर भोजन करे। फिर धारण कर आचमन करना चाहिए ॥१२॥ जो पुत्रवान् हो और पितृमान् हो वह श्राद्ध का भोजन करके प्राणाहुति के बिना भोजन में मौन न करे ॥१३॥ पंक्ति के भेद से जो द्विज एक ग्रास मात्र भी खाता है वह केवल अघ अर्थात् पाप को ही खाता है और वह निश्चय ही हतश्री अर्थात् तेजोहीन (शोभारहित) हो जाता हैं ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् उत्तराचमन करके मुख का प्रक्षालन करे अर्थात् गण्डूषादि द्वारा मुख को साफ करके शुचि हो जावे। फिर जिनको भोजन कराया हैं उन्हें मुख शुद्धि के लिये ताम्बूल देवे ॥१५॥ ब्राह्मण को स्वयं भोजन करके ताम्बूल का चर्वण करना चाहिए। इसके अनन्तर दिन के शेष भाग को श्रुति आदि के श्रवण करने के कार्य में व्यतीत करना चाहिए ॥१६॥

गायत्र्या संस्कृतं चान्नं न त्यजेदभिमन्त्रितम् ।
गृहीतं चेत्पुनश्चाद्याद् गायत्रीं च शतं जपेत् ॥१७
अन्नं पर्युषितं स्नेहाक्तं चिरसंचितम् ।
अस्नेहा अपि गोधूमा यवगोरसविक्रियाः ॥१८
अपूपसक्तवो धानास्तक्रं दधि घृतं मधु ।
एतत्पण्येषु भोक्तव्यं भाण्डलेपोन न चेद्भवेत् ॥१९
अन्नाक्तभाजनस्थानि दूष्यन्ते तानि चेत्र हि ।
शुद्धभाण्डस्थितानीह ग्राह्याण्याहुर्मनीषिणः ॥२०
ग्राह्य क्षारविकारं स्यात्सर्वं चैवेक्षुसंभवम् ।
तैलक्षीराज्यपक्वं च जलसंमिश्रतं न हि ॥२१
परान्नं नैव भुञ्जीयात्स्वकीयं चान्ययाचितम् ।
संस्काररहितं चैव नाश्नीयाद् ब्राह्मणः क्वचित् ॥२२
ब्राह्मणो नैव भुञ्जीयाद्दुहित्रं कदाचन ।
अज्ञानाद्यदि भुञ्जीत रौरवं नरकं व्रजेत् ॥२३

जो अन्न गायत्री मंत्र के द्वारा संस्कार कर लिया हो उसका फिर त्याग कभी नहीं करना चाहिऐ । जो गायत्री से अभिमन्त्रित अन्न ग्रहण कर लिया है उसे फिर खालेना चाहिए और एक शत गायत्री का जप करना चाहिए ॥१७॥ स्नेह से अक्त चिरकाल का संचित पर्युषित भी अन्न भोजन करने के योग्य होता है। स्नेह से शून्य यव गोरस की विक्रिया वाले गोधूम (गेहूँ) भी खाने के योग्य नहीं होते हैं । यहाँ स्नेह का तात्पर्य घृतादि से है। इस का 'स्नेह' इस शब्द से । श्लिष्ट होने के कारण यह भी अर्थ ध्वनित होता है कि प्रेम से परिपूर्ण चाहे जैसा भी अन्न हो उसका भोजन कर लेना चाहिए और जहां प्रेम का अभाव है वहाँ गेहूँ के बने सुन्दर पदार्थ भी रुचिवर्द्धक भोज्य नहीं हैं ॥१८॥ यदि भाण्ड (पात्र) लेप न हो तो अपूप-(पूआ) शक्तु (सतुआ)- धान-तक्र (मट्ठा)-दही—मधु (शहद) इन को दूकान अर्थात् बाजार में भी खालेना चाहिए ॥१९॥ अन्न से अक्त पात्र (बरतन में रखे हुए

उक्त वस्तुऐं दूषित हो जाती हैं। यही उपर्युक्त 'भाण्ड लेप' इस पद का तात्पर्य है। अतः अन्न का इन वस्तुओं से स्पर्श पात्रादि के द्वारा होना चाहिए। जो उक्त वस्तुऐं किसी शुद्ध पात्र में रखी हुई हों तो उन्हें ग्रहण कर लेना चाहिए—ऐसा मनीषीगण कहते हैं ।।२०।। क्षार का विकार अर्थात् क्षार द्वारा बनी हुई तथा ईख से उत्पन्न हुआ पदार्थ और जिसमें जल का मिश्रण न हो ऐसा तेल—दूध एवं घृत में पका हुआ पदार्थ ग्राह्य अर्थात् ग्रहण एवं भोजन के योग्य होता है ।।२१।। पराया अन्न तो कभी खाना ही नहीं चाहिए और अपना भी अन्न यदि अन्न के द्वारा पाचित हो तथा संस्कार से रहित हो तो ब्राह्मण को वह भी नहीं खाना चाहिए। 'क्वचित्' इसका तात्पर्य यह है कि कहीं भी और किसी भी दशा में नहीं खावे ।२२।। ब्राह्मण को अपनी बेटी का अन्न कभी नहीं खाना चाहिए। यदि बेटी के घर का अन्न अज्ञान से भी भूल में खालेवे तो उसे रौरव नामक नरक मिलता है ।।२३।।

पत्नी स्नुषा स्वयं पुत्रः शिष्योऽथ वा गुरुः सुतः।
आचर्योर्वा पचेदन्न भुञ्जीया त्तत्र दुष्यति ।।२४
शाकपाकादिकं निन्द्ययो ऽन्नमद्यात्स्वकीयकम्।
क्वचिच्छिष्टान्नमश्नीयाद्वत्सराभ्यन्तरे द्विजः ।।२५
यद्यंकत्र पचेदाममात्मनश्चापरस्य च।
यस्तदन्नं द्विजो भुङ्क्ते प्राजापत्येन शुध्यति ।।२६
न चैकत्र पचेदामबहूनामथ वा द्वयो.।
निषेधोऽयं परेषां तु पुत्रादीनां नहि क्वचित् ।।२७
एवं भुक्त्वा द्विजश्चैवश्रुत्वा श्राद्धस्य वैकथाम्।
श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तमितिहासं पुरातनम् ।।२८
घटिकैकाऽवशिष्टा स्याद्रवेरस्तमितस्य च।
प्रक्षाल्य पाणिपादं च द्विराचान्तः शुचिर्भवेत् ।।२९

पत्नी—पुत्रवधू-स्वयं पुत्र—शिष्य-गुरु का पुत्र एवं गुरू-आचार्य यदि अन्न का पाचन करें तो उसे खा लेना चाहिए। वहाँ पर कोई भी

दोष नहीं होता है ।।२४।। जो स्वकीय अर्थात् अपना अन्न खाता है उसके लिये शाक पाकादिक निन्द्य अर्थात् बुरे होते हैं । किसी समय ब्राह्मण वर्ष के अन्दर शिष्टान्न खालेवे ।।२५।। यदि एक ही स्थान में अपना और दूसरे का कच्चा अन्न पकावे और उस अन्न को जो द्विज खा लेवे तो उस दोष का प्रायश्चित्त प्राजापत्यव्रत होता है और इससे उसकी शुद्धि होती है ।।२६।। एक ही स्थान में बहुतों का अथवा दो का कच्चा अन्न नहीं पकाना चाहिए । यह निषेध दूसरों के ही लिये होता है ।।२७।। इस प्रकार द्विज खाकर और श्राद्ध की कथा को सुन कर तथा श्रुति—स्मृति—पुराणों में कथित इतिहास और परम पुराना इतिहास सुनकर जब सूर्य के अस्ताचल गामी होने में एक घड़ी शेष रहे तब हाथ पैर धोकर दोबार आचमन करके शुद्ध हो जाता है ।।२८–२९

प्राङ्मुखासीनः समाचमाचम्य प्राणायामपुरःसरम् ।
पूर्वोक्त विधिना चैव सायसंध्यां समाचरेत् ।।३०
आदित्येऽस्तमिते यावत्तारकादर्शनं न हि ।
सायं होमं तदा कुर्यान्नो चेत्स्यु र्नव नाडिकाः ।।३१
वैश्वदेवं पुनः सायं कुर्याद्यज्ञत्रयं च हि ।
देवं भूतं तथा पैत्र्यं भुक्त्वा स्वाध्यायमभ्यसेत् ।।३२
ततः स्वपेद्यथाकामं न कदाचिदुदक्शिराः ।
एतावन्नैत्यकं कर्म प्रवदन्ति मनीषिणः ।।३३
अनेन विधिना यस्तु नैत्यनकं कुरुते द्विजः ।
स याति परमं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।३४
प्रत्यहं कर्मकोयोगः स्वाध्यायाभ्यसनं तथा ।
मनः स्वस्थतया योगः स एवाऽऽत्मप्रकाशकः । ३५
त्यक्त्वेन्द्रियसुखं लोके यस्तिष्ठेद्यत्र कुत्रचित् ।
स एव योगी मुक्तः स्यात्सर्वसङ्गविवर्जितः ।। ६
यः क्वचिन्मानवो लोके वारणस्यां त्यजेद्वपुः ।
स चाप्येको भवेन्मुक्तो नान्यथा मुनयो विदुः ।।३७
पूर्व की ओर बैठा हुआ भली भाँति आचमन करके प्राणायाम पूर्व

पूर्वोक्त विधि से सायङ्कालीन सन्ध्योपासन करनी चाहिए ।।३०।। भगवान् भास्कर के अस्तंगत होने पर जब तक तारागण का दर्शन न होने पावे उसी समय सांयकालीन होम करना चाहिए अन्यथा विधान निरर्थक हो जाता है। इसके अनन्तर सन्ध्याकालीन-बलि वैश्य देव करना चाहिए और तीनों यज्ञ करे। देव, भूत और पितृ सम्बन्धी कार्य को भोगकर वेद स्वाध्याय करना चाहिए ।।३२।। इसके अनन्तर इच्छा के अनुसार शयन करना चाहिए किन्तु उत्तर की ओर शिर करके कभी नहीं सोना चाहिए। इतना नित्य करने के योग्य कर्म होता है—ऐसा मनीषी लोग कहते हैं ।३३। इस प्रकार की बताई हुई विधि से जो ब्राह्मण नित्य का कर्म किया करता है और ठीक नियमपूर्वक भली भाँति करता रहता है वह अन्त में सर्वोपरि परम स्थान को प्राप्त होता है और फिर उसकी इस संसार—में पुनरावृत्ति नहीं होती हैं, अर्थात् मोक्ष का परम पद पाकर फिर वह कभी जन्म धारण नहीं किया करता है ।।३४।। प्रति दिन कर्त्तव्य कर्म के करने का योग और वेद के स्वाध्याय का अभ्यास तथा अपने मन की स्वस्थता के साथ सभी कुछ सम्पादन करने का योग ही आत्म—ज्ञान का प्रकाश करने वाला होता है ।।३५।। जो इस लोक में इन्द्रियों के सुख का त्याग कर जहाँ कहीं भी रहता है वही योगी है, वही इस संसार के आवागमन के बन्धन से छुटकारा पाता है,किन्तु उसे ससार मे समस्त प्रकार के सङ्ग (आसक्ति) से रहित होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों के अपने २ विषयों आसक्ति पूर्ण रति का रहना ही संसार के बन्धनों में बाँधने वाला प्रमुख कारण है। इस का त्याग करने हो पर योगी हो सकता है और आत्म कल्याण हो सकता है ।।३६।। जो कोई भी मनुष्य वाराणसी में अपने शरीर का त्याग करता हैं वह एक ही बार में मुक्त होता है अन्यथा नहीं—ऐसा मुनिगण कहते हैं ।।३७।।

॥अथ लोके निन्द्यप्रकरणम् ॥

क्रियाहीनस्य मूर्खस्य पराधीनस्य नित्यशः।
नीचसेवारतस्यैतस्तदाऽशौचं तदोच्यते ।।१
सदाचारपरिभ्रष्टो विप्रस्यैव भवेद्यदि।

कर्मभ्रष्टः स विज्ञेयो निन्द्यकर्मरतः सदा ॥२
माहिषेयश्च वैकुण्ठो वृषलेयश्च गोलकः।
निन्द्याश्च ते हि लोके च कुतयजातीस्तदोच्यते ॥३
महिषी सोच्यते भार्या भगेनार्जति या धनम्।
तस्यां यो जायते पुत्रो माहिषेयः सुतः स्मृतः ॥४
रजस्वला च या कन्या यदि स्यादविवाहिता।
वृषली वार्षलेयः स्याज्जातस्तस्यां स्य चैव हि ॥५
विवाहितामसंयोगां मोहाच्चेदुद्वहेद्द्विजः।
भूयन्तीमुद्वहन्तीं चाभिगोतयेनानुलेपयेत् (?) ॥६

जो मनुष्य क्रिया से हीन होता है अर्थात् अपने कर्तव्य कर्म से रहित रहता है, मूर्ख होता है, नित्य ही पराये अधीन बना रहता है और जो नीच की सेवा कार्य में अनुराग करने वाला होता है उसको सर्वदा अशौच रहा करता है। इस विषय में बताया जाता है ॥१॥ जो विप्र सद् आचार से गिरा हुआ हो, और सदा निन्दा के योग्य कर्मों में यदि रति होती हो तो वह विप्र कर्म से भ्रष्ट जाना जाता है। २॥ माहिषेय, वैकुण्ठ वृषलेय, गोलक ये लोक में निन्द्य अर्थात् निन्दा के योग्य बुरे समझे जाते है। इनकी जाति किस प्रकार कही जा सकती है ? तात्पर्य यह है कि ये लोग विप्र जाति के नहीं कहे जाते हैं ॥३॥ महिषी उस भार्या को कहते जो अपने गुह्याङ्ग (भग) के उपयोग द्वारा धन का अर्जन किया करती है। उस स्त्री में जो पुत्र हो अर्थात् पुत्र उत्पन्न होता है वह माहिषेय कहलाता है ॥ ४॥ जो कन्या रजस्वला हो गई है और अविवाहित है वह वृषली कही जाती है और उससे पुत्र उत्पन्न होता है वह वार्षलेय कहा जाता है। यहाँ तात्पर्य यह है कि रजस्वला धर्म होने के पूर्व ही कन्या का विवाह प्राचीन विधि सम्मत है ॥५॥ यदि कोई द्विज मोहवश किसी विवाहिता ऐसी स्त्री के साथ विवाह करे जिसका पुरुष से संयोग न हुआ हो तो उस दूसरा पुनः विवाह करती हुई उद्वहन वाली स्त्री का गोमय से लेपन करना चाहिए अर्थात् भली भाँति चारों ओर से गोमय से लिप्त करे ॥६॥

सूत्रमशंवरादीनि परिहृत्याभिषेचयेत् ।
पल्लवै पञ्चभिर्गव्यैः पावमानीभिरेव च (?) ॥७
प्रायश्चित्तं विधातव्यं कूष्माण्डहोममाचरेत् ।
पुनस्तामुद्वहेत्प्रोक्तां विधिवत्पूर्वजःपतिः ॥८
संभोगात्पूर्व एव स्यादुक्तोऽय मुनिभिर्विधिः ।
व्रात्यस्तोमं जपेदन्यः प्रायश्चित्तपुरःसरम् ॥९
ऊर्ध्वं चेत्पतिसयोगो जायते तां परित्यजेत् ।
संतानश्चेद्भवेत्तस्यां निन्द्य स्यात्पतितः पतिः ॥१०
अज्ञातश्च द्विजो यस्तु विधवामुद्वहद्यदि ।
परित्यज्य चवै तां च प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥११
अब्दमेकं विधायाऽदावव्कीर्णं व्रतं चरेत् ।
पुत्रश्चज्जायते तस्यामेको गोलक उच्यते ॥१२

पावमानी ऋचाओं से अर्थात् पवित्र करने वाले मन्त्रों द्वारा पञ्च पल्लवों से तथा पञ्चगव्यों से सूत्र शम्बरादि को त्याग कर अभिषेक करना चाहिए ॥७॥ प्रायश्चित करना चाहिए और कूष्माण्ड (पेठा) का होम करना चाहिए। इसके अनन्तर पूर्वज पति को विधि पूर्वक पूर्वोक्त स्त्री के साथ विवाह करना चाहिए ॥८॥ यह विधि मुनियों ने पुरुष के द्वारा सम्भोग से पूर्व ही बताई गई है। दूसरे को प्रायश्चित पूर्वक व्रात्य स्तोम का जप करना चाहिए। ६॥ इसके पहले यदि पति का संयोग स्त्री के साथ हो जावे तो उसका त्याग कर देना चाहिए। यदि उसमें सन्तान हो जावे तो वह पति पतित एवं निन्द्य हो जाता है ॥१०॥ यदि कोई अज्ञात द्विज विधवा के साथ विवाह कर लेवे तो ज्ञान हो जाने पर उसका त्याग कर उस द्विज को शुद्धि के लिये प्रायश्चित करना चाहिए ॥११॥ उसे एक वर्ष तक अवकीर्ण व्रत करना चाहिए। उसमें यदि पुत्र उत्पन्न हो जाता है तो वह एक पुत्र "गोलक" कहा जाता है अर्थात् पति के मृत होने पर अन्य पुरुष के संयोग से उत्पन्न होने वाला पुत्र 'गोलक' कहलाता है ॥१२॥

विधवायाः सुतस्यं व गोलकः कुण्ड इत्यथ ।
त्रयश्चैव हि निन्द्याः स्युः सर्वबहिष्कृता. । १३
संस्कार्यविधिवच्चोक्तं मुनिभिः कुण्डगोलकौ ।
युगान्रे समर्धः स्यात्कलौ निन्द्य इ तस्मृतः ।।१४
परिवात्त्यां सुत कुण्डो व्यभिचारसनुद्भवः ।
गोलकोविधवां च निषिद्धः स्यात्रलौ स्मृतः ।।१५
वाषलेयश्च वै कुण्डो गोलकः शूद्रयोनिजः ।
तज्जश्चापि हि निन्द्यः स्युर्माहिषेयश्चत्रिप्रजः ।।१६
एभिः सह वसेदेषां याजनं कुरुतेऽथ वा ।
वित्तमेषां द्विजो यस्तु भुङ्क्त सोऽपि हि तत्समः।।१७
एतेषां याजनं यस्तु ब्राह्मणः कुरुते यदि ।
स याति नरक घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।।१८
अद्विजानां चाध्ययनंयाजन च प्रतिग्रहहम् ।
ब्राह्मणो नैव गृह्णीयादिति प्राहुर्मुनीश्वराः ।।१६

विधवा का पुत्र, गोलक और कुण्ड ये तीनों निन्द्य होते हैं और समस्त धर्म के कार्यों में बहिष्कृत समझे जाते हैं ।।१३।। कुण्ड और गोलक इन दोनों का मुनियों के द्वारा विधि के साथ संस्कार करना चाहिए । युगान्तर अर्थात् अन्य युग में वह धर्म है किन्तु कलियुग में वह निन्द्य कहा गया है ।।१४।। परिविन्ना का सुत, व्यभिचार से समुत्पन्न कुण्ड और विधवा का गोलक ये सब कलियुग में निषिद्ध कहे गये हैं ।१५। वार्षलेय, कुण्ड और शूद्र योनि से पैदा हुआ गोलक तथा उससे भी पैदा हुआ एवं विप्र से जायमान माहियेय निन्द्य होते हैं ।।१६।। इन सबके साथ वास करे तथा इनका याजन करे और जो विप्र इनके धन का उपभोग करता है वह भी उन्हीं के समान हो जाता है ।।१७।। जो ब्राह्मण इनका याजन करता है तो वह जब तक चतुर्दश इन्द्र रहते हैं घोर नरक में जाकर निवास किया करता है ।।१८।। जो द्विजाति नहीं हैं अर्थात् अद्विज हैं उनका अध्ययन-याजन और प्रतिग्रह ब्राह्मण को कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए ऐसा श्रेष्ठ मुनियों ने कहा है ।।१६।।

।। अथ विवाहप्रकरणम् ।।

सर्वेषामाश्रमाणां च गृहस्थाश्रम उत्तमः ।
तमेवाऽऽश्रित्य जीवन्ति सर्वे चवाऽऽश्रमा इह ।।१
कुलजां सुमुखी स्वाङ्गीं सुवसां च मनोहरम् ।
सुनेत्रां सुभगां कन्यां निरीक्ष्य वरयेद्बुधः ।।२
स्नातकायसुशीलाय कुलोत्तमभवाय च ।
दद्याद्वेदविदे कन्यामुचिताय वराय च ।।३
आचार्य स्नातकादिनां मधुपर्कार्चनं चरेत् ।
स्वगृह्योक्तविधानेन विवाहे च महामखे ।।४
मधुनाऽऽज्येन वायुक्त मधुपर्काभिध दधि ।
दध्यलाभे पयो ग्राह्यं मध्वलभे तु वै गुडः ।।५
निदध्यात नवे कांस्ये तस्योपरि पिधानं च ।
वेष्टयेद्विष्टरेणात्र मधुपर्कंतदुच्यते ।।६

समस्त आश्रमों में गृहस्थ आश्रम सभी से परम श्रेष्ठ होता है क्योंकि इसी गार्हस्थ्य-आश्रम का आश्रय लेकर अन्य ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम इस लोक में जीवित रहा करते हैं। तात्पर्य यह कि अन्य समस्त आश्रमों के पालन करने वालों का उद्भव और पोषण गृहस्थ आश्रम से ही होता है अतः अन्य सबसे इसकी उत्तमता मान्य होती है ।।१।। बुद्धिमान् पुरुष जो गार्हस्थ्य आश्रम में प्रवेश करने के लिये उत्तम कुल में समुत्पन्न, सुन्दर मुखाकृति वाली, सुगठित सुन्दर शरीर के अवयवों वाली, सुन्दर अच्छे वस्त्र धारण करने वाली, अच्छे नेत्रों वाली, सुन्दर स्वरूप वाली तथा अच्छे भाग्य वाली कन्या को भली भाँति देखभाल कर उसके साथ विवाह करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि कार्यक्षम, सर्वाङ्ग से सम्पन्न और देखने में सुन्दर तथा अच्छे भाग्य और लक्षणों वाली कन्या को खूब देख व समझ कर ही अपनी गृहिणी बनाना चाहिए। यह कार्य शीघ्रावेश मे बिना समझे-बूझे नहीं करे ।।२।।

कन्या पक्ष में कन्या के पिता तथा उसके स्थानापन्न अन्य जो भी कन्या के दान का अधिकारी पुरुष हो उसे भी खूब देख-भाल कर वर की खोज करनी चाहिए। स्नातक (जिसने ब्रह्मचर्य के पालन के साथ गुरु-कुल में पूर्ण विद्या प्राप्त करली हो वह स्नातक होता है) सुन्दर शान्त स्वभाव वाला, उत्तम कुल में समुत्पन्न, वेद का ज्ञाता, ऐसे किसी कन्या के लिये सभी प्रकार से जो उचित हो, वर को कन्या देनी चाहिए ।।३।। जो भी आचार्य हो उसे स्नातक आदि को मधुपर्क द्वारा अर्चन करना चाहिए। विशेष रूप से जब विवाह का समय हो और कोई महान् मुख का काल उपस्थित हो तब अपने गृह्य सूत्र के आदिष्ट विधान के अनुसार मधुपर्कार्चन नितान्त आवश्यक है ।।४।। मधु (शहद) और आज्य अर्थात् घृत से युक्त जो दधि होता है उसे ही मधुपर्क नाम से कहा गया है। यदि समय पर दधि (दही) प्राप्त न हो सके तो दधि के अभाव में दूध का ग्रहण करना चाहिए। यदि समय पर प्राप्त न हो सके तो इसके अभाव में गुड़ का ग्रहण करना चाहिए ।।५।। इस मधुपर्क को किसी नवीन काँसे के पात्र में रखना चाहिए और उस पात्र को ढक देना चाहिए फिर विष्टर से उसका वेष्टन कर देना चाहिए तभी वह "मधुपर्क" इस नाम से कहा जाता है। इसके आगे वैवाहिक विधि का वर्णन होता है जो कि पद्धति प्रायः प्रसिद्ध है अतः उसके विषय में यहाँ न लिखकर कुछ विशेष ज्ञातव्य बातों का ही उल्लेख किया जाता है ।६।।

नान्दीश्राद्धद्विजः कुर्यात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।
गृहप्रवेशयारभ्य पितर्यपि च जीवति ।।७
स जीवत्पितृको नान्दिश्राद्धं चेत्कुरुते द्विजः ।
पितुश्चैव पितृणां तु प्रवदन्ति महर्षयः ।।८
प्रथमाद्वाहपर्यन्तं पुत्रस्यत्र क्रियासु च ।
नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादूर्ध्वं सुतः स्वयम्
चत्वारो ब्राह्मणा दक्षे पित्र्ये चाष्टादश स्मृताः ।
नान्दीश्राद्धं वदन्त्येके मुनयः पञ्च वाऽपि च ।।१०

विवाहे चोपनयने गर्भाधानादिके तथा ।
अन्वाधाने शतं विप्रान्भोजयेद्दक्षिणान्वितान् ॥११
विवाहोत्सवयज्ञेषु दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
प्रारब्धे सूतकं नास्ति प्रवदन्ति महर्षयः ॥१२
प्रारम्भकर्मणश्चैव क्रियाप्रारम्भकस्य च ।
क्रियावसानपर्यन्त न तस्याऽऽशौचमिष्यते ॥१३
प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतसत्रयोः ।
नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥१४

पिता के जीवित रहने पर भी गृह-प्रवेश से आरम्भ कर द्विज को स्वस्तिवाचनपूर्वक नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिए ॥७॥ यदि जिसका पिता जीवित हो ऐसा द्विज नान्दीमुख श्राद्ध करता है तो वह पिता के पितरों का भी कर लेता है—ऐसा महर्षिगण कहते हैं ॥८॥ पुत्र के प्रथम उद्वाह पर्यन्त समस्त क्रियाओं में पिता को ही नान्दी श्राद्ध करना चाहिए विवाह के अनन्तर जब बाकायदा गृही बन जाता है तो फिर इसके पश्चात् पुत्र को स्वयं ही नान्दी श्राद्ध आदि करना चाहिए ॥९॥ दैव कार्य में चार ब्राह्मण होने चाहिए और पित्र्य कर्म में अठारह ब्राह्मणों का विधान है। कुछ मुनियों का मत है कि नान्दी श्राद्ध में पांच ब्राह्मण ही होने चाहिए ॥१०॥ विवाह से—उपनयन संस्कार में तथा गर्भाधान आदि कार्य में और अन्वाधान में सौ ब्राह्मणों का भोजन कराना चाहिए और जिन ब्राह्मणों को भोजन करावे उन्हें दक्षिणा भी देनी चाहिए ॥११॥ विवाह का कार्य आरम्भ हो जाने के समय में—किसी उत्सव के समय में—यज्ञ के विधान का कार्य आरम्भ हो जाने पर तथा देव सम्बन्धी एवं पितृ सम्बन्धी कार्य में जब कि इन उक्त कार्यों का आरम्भ हो जावे तो कोई भी सूतक नहीं माना जाता है—ऐसा महर्षियों का कथन है ॥१२॥ जिसने कार्य का आरम्भ कर दिया है और जो क्रिया के आरम्भ करने वाला है जब तक आरब्ध क्रिया का अवसान नहीं हो जाता है, तब तक उक्त कार्यों में कर्म करने वालों को कोई भी अशौच नहीं होता है ॥१३॥

यज्ञ कर्म का प्रारम्भ वरण होने पर ही हो जाता है। व्रत और सत्र में संकल्प करने पर ही उसका प्रारम्भ माना जाता है। विवाह आदि कर्मों में नान्दीमुख श्राद्ध पर ही उसका प्रारम्भ हो जाता है और श्राद्ध का प्रारम्भ पाक क्रिया के होने पर ही उसका प्रारम्भ माना जाता है ॥१४॥

नान्दीश्राद्धे कृते चैव विवाह चौत्सवादिषु।
व कुर्यादुपवासं च छन्दसां वै तपोव्रतम् ॥१५
अपसव्यं स्वधान्नाद्धं नदीस्नानं शवेक्षणम्।
वर्जयेत्तर्पणं चैव देवकोत्थापनावधि ॥१६
नान्दीश्राद्धे कृह मोहाच्छ्राद्धं प्रत्याब्दिकादिकम्।
सपिण्डः कुरुते यश्चेदपमृत्पुं व्रजेद्ध्रुवम् ॥१७
रलाभे सुम्हूर्तस्य विघ्नं यः कुरुते यदि।
स्वधया तु विवाहस्य न स पश्येच्छुभं क्वचित् ॥१७
विघ्नतचरते यस्तु यज्ञस्योद्वाहकस्य च।
यात्रायाश्चैव धर्मस्यस यातिनकंध्रुवम् ॥१९
ऊढाया दुहितुश्चान्नं नाद्याद्विप्रः कथंचनः।
अज्ञानाद्यदि भुञ्जीत नरकं प्रतिपद्यते ॥२०

नान्दीमुख श्राद्ध के कर लेने के बाद विवाह और अन्य इसी प्रकार के उत्सव आदि में छान्दस तपोव्रत और उपवास नहीं करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि ऐसे उत्सवों में कर्त्तव्य उपवास आदि का भी त्याग कर देना चाहिए ॥१५॥ ऊपर में बताये हुए विवाह तथा उत्सव आदि के समय में अपव्यय, स्वधा श्राद्ध, नदी का स्नान, शव का देखना तथा शव-दाह क्रिया में सम्मिलित होना, तर्पण करना ये सभी काम जब तक देवों का उत्थापन अर्थात् देवता-विसर्जन न हों तब तक नहीं करना चाहिए जो देव उक्त कार्यों में स्थापित किये जाते हैं उनके विसर्जन की अवधि तक उक्त कार्य नहीं करने चाहिए ॥१६॥ नान्दी मुख श्राद्ध के कर लेने के पश्चात् आदि कोई मोह से प्रत्याब्दिक आदि श्राद्ध करता है और वह

यदि सपिण्ड व्यक्ति हो तो उसकी निश्चय ही अपमृत्यु होती है अतएव सपिण्ड को कभी भी ऐसा गलत कार्य नहीं करना चाहिए ।।१७।। किसी अच्छे मुहूर्त के लाभ न होने पर यदि कोई भी स्वधा के द्वारा विवाह के कार्य में विघ्न उपस्थित कर देता है तो कभी शुभ नहीं देखता है, अर्थात उसका मङ्गल कभी नहीं होता है । स्वधा से यहाँ पित्र्य कर्म का तात्पर्य होता है ।।१८।। जो व्यक्ति यज्ञ कर्म, उद्वाह (विवाह) तथा धर्म से सम्बन्धित यात्रा के कार्य में विघ्न-बाधाऐ कर देता है, वह पुरुष निश्चय ही नरकगामी होता है । अतः ऐसे कार्यों में कभी भी कोई रुकावट या विघ्न नहीं करना चाहिए ।।१९।। जो लड़की अर्थात् पुत्री विवाहित हो गई हो, उसका अन्य अर्थात विवाहित पुत्री के घर का अन्न जो कोई भी ब्राह्मण खा लेता है, चहे वह अज्ञानवश ही खा लिया होतो उसे नरक मिलता है । अत: कभी भी ब्राह्मण को विवाहित पुत्री के घर का अन्न नहीं खाना चाहिए । यहां इस विषय में इतना शास्त्र-बल देता है कि जान कर तो कभी खाना ही नहीं चाहिए किन्तु अज्ञान वश भी अगर खा लिया जावे तो नरक की यातना उसे भोगनी पड़ती है ।।२०।।

।। अथ नान्दीश्राद्धे पितृप्रकरणम् ।।

आधाने पुंसि सीमन्ते जातनामनि निष्क्रमे ।
अन्नप्राशनके चौले तथा चैवोपनायने ।।१

ततश्चैव महानाम्नि तथैव च महाव्रते ।
अथोपनिषद्गोदाने समावर्तनकेषु च ।।२

विवाहे नियतं नान्दीश्राद्धमेतेषु शस्यते ।
प्रवेशं च नवोढायाः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।।३

अन्यान्यत्र वदन्त्येके नान्दीश्राद्धं महर्षयः ।
यागे च प्रथमे वेदस्त्रीकारे च महामखे ।।४

मातृवर्गादितः कुर्यात्पितुर्मातामहस्य च ।
नवैते पितरो वृद्धिश्राद्ध सद्भिरुदीरितम् ।।५

कन्यादाने च वृद्धौ च प्रपितामहपूर्वकम् ।
नाम सङ्कीर्तयेद्विद्वांस्तच्चावरोहणं क्रमात् ॥६

आधान अर्थात् गर्भाधान संस्कारों में, पुंसवन संस्कार में, सीमन्तोत्सव में, जातक के नामकरण में, शिशु के निष्क्रमण में, अन्न-प्राशन संस्कार में, चौल अर्थात् चूड़ाकरण संस्कार में, उपनयन संस्कार में, महानाम में, महाव्रत में, उपनिषद गोदान के समय में, समापवर्त्तन आदि में और विवाह संस्कार में इन सब में नान्दीमुख श्राद्ध प्रशस्त माना जाता है। जब घर में किसी नवविवाहित दुल्हिन का प्रवेश हो तब स्वस्तिवाचन पूर्वक नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिए ॥१-३॥ अन्य-अन्य कर्मों में भी नान्दी श्राद्ध करना चाहिए—ऐसा कुछ महर्षिगण कहते हैं और याग में, प्रथम वेद के ग्रहण करने के समय में तथा महामख में भी नान्दी श्राद्ध करने के विषय में कुछ महर्षियों का कथन है ॥४॥ मातृ-वर्ग से पिता और मातामह का करना चाहिए। सत्पुरुषों ने वृद्धि श्राद्ध में ये नो पितर बताये हैं। कन्यादान के समय में और वृद्धि में प्रपितामह पूर्वक विद्वान को नामों का संकीर्तन करना चाहिए और उसका क्रम से अवरोहण करना चाहिए ॥५-६॥

॥ अथ प्रेतकर्मविधिप्रकरणम् ॥

प्रेतकर्मौरसः पुत्रः पित्रोः कुर्याद्यथाविधि ।
तदभावेऽधिकारी स्यात्सपिण्डोवाऽन्यगोत्रजः ॥१
याम्ये चैव तु विप्रस्यः शिरः कृत्वा मृतस्य च ।
प्राच्यां वाऽथ दहेदेष विधिः स्याद्बह्वृचस्य तु ॥२
दहनादिसपिण्डान्तं कुर्याज्ज्येष्ठोऽनुजैःसह ।
ज्येष्ठश्चेत्संनिधौ न स्यात्कुर्यात्तदनुजोऽपि वा ॥३
ईषद्वस्त्रावृतं प्रेतं शिखासूत्रं समन्वितम् ।
वहेन्मत्रविधानेन नैव नग्न कदाचन ॥४
प्रथमेऽहनि कर्ता स्याद्यो दद्यादग्निमौरसः ।
सर्वंकुर्यात्सपिण्डान्तं नान्योऽन्यं दहनंविना ॥५

औरस पुत्र को अपने माता-पिता का प्रेत कर्म शास्त्रोक्त विधि के अनुसार करना चाहिए । अपने वीर्य द्वारा अपनी पाणि-प्रणीता पत्नी में जो उत्पन्न होता है वह 'औरस' पुत्र होता है । दत्तक आदि अन्य सात तरह के पुत्र भी होते हैं । यदि कोई उस समय औरस पुत्र न हो तो जो कोई भी सपिण्ड व्यक्ति हो वही प्रेत-कर्म करने का अधिकारी होता है । यदि कोई भी वहाँ उस समय सपिण्ड भी न हो तो अन्य गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति करे ।।१।। मृत ब्राह्मण का शिर याम्य अथवा पूर्व दिशा की ओर करके दाह करना चाहिए । यहवह् वृच के लिये विधान होता है । दाह क्रिया से आरम्भ कर सपिण्डीकरण क्रिया पर्यन्त मृत व्यक्ति का समस्त कर्म सब में जो ज्येष्ठ (बड़ा) हो उसे अनुजों (छोटों) के साथ में करना चाहिए । यदि ज्येष्ठ समीप में उस समय उपस्थित न हो तो जो भी उससे छोटा हो उसे ही सब कर्म करना चाहिए ।।२-३।। दाह कर्म करने के समय में प्रेत के शव को थोड़े से वस्त्र से आच्छादित करे और शिखा तथा सूत्र (उपवीत) से युक्त ही उसे रक्खे । ऐसे रूप में प्रेत का मन्त्रोच्चारण पूर्वक विधिविधान से दाह करना चाहिए । नग्न शव का दाह कभी नहीं करे ।।४।। प्रेत कर्म की क्रिया जो भी व्यक्ति करने वाला हो अथवा औरस पुत्र जो अग्नि से दाह करे वही व्यक्ति सपिण्डी-कर्म पर्यन्त समस्त कर्म करे । ऐसा कभी नहीं करना चहिए कि दाह तो कोई दूसरा करदे और शेष कर्म कोई अन्य पुरुष करे । उचित व्यक्ति दाह के समय उपस्थित न हो और अन्य कोई दाह कर लेवे तो फिर चाहे वह औरस पुत्र ही क्यों न हो, अन्य कर्म नहीं करे—अन्त तक दाह करने वाला ही सब कर्म करे ।।५।।

स्वगोत्रो वाऽन्यगोत्रो वा यदि स्त्री वा पुमान् ।
प्रथमेऽहनि यो दद्यात्स दशाहं समापयेत् ।।६

अपुत्रश्चेन्मृतस्यैवविधिरुक्तो महर्षयः ।
दाह पुत्रवतः कुर्यात्पुत्रः स्यात्संनिधौ भवेत् ।।७

पुत्र विनाग्निदोऽन्यश्चेदसगोत्रो यदा भवेत् ।
कुर्याद्दशाहमाशौचं स चापि हि सपिण्डवत् ।।८

पुत्राभावेऽग्निदः कुर्यात्सकलं प्रेतकर्म च ।
तस्मात्पुत्रवतोऽन्यश्चेद्विना दाहाग्निसंचयम् ।।६
अस्थिसंचयनादर्वाग्ज्येष्ठश्चेदागतः सुतः ।
वासो धृत्वाऽऽदितं कर्म ज्येष्ठः कुर्याद्यथाविधि ।।१०
अस्थिचसंयनादूर्ध्वं ज्येष्ठश्चे वाऽऽगतोऽपि चेत् ।
कुर्यादग्निप्रदः पुत्रोदशाहान्तं स कर्म च ।।११
संस्कृतस्यानुमन्त्रेण येन केनापि चैव हि ।
संस्कुर्याच्च पुनः प्रेतं तिलाल्लाँजादिकं चरेत् ।।१२

अपने गोत्र का हो या कोई अन्य गोत्र का हो, चाहे स्त्री हो या पुरुष हो, प्रथम दिन में जो भी कोई अग्नि संस्कार प्रेत के शव का करे उसे ही दशाह कर्म को समाप्त करना चाहिए ।।६।। यदि कोई पुत्रहीन ही मृत हो जावे, उसी के विषय में यह विधिमहर्षियों ने बतलाई है । जो पुत्र वाला हो, उसका दाह तो जहाँ तक भी सम्भव हो पुत्र को ही करना चाहिए, यदि पुत्र समीप में उपस्थित हो । इसका तात्पर्य यह है कि यथा-सम्भव पिता का दाहसंस्कार पुत्र के द्वारा होना आवश्यक है । जब ऐसा किसी भी प्रकार सम्भव न हो तभी उसके अभाव में अन्य दाह कर्म करे ।।७।। पुत्र के बिना अर्थात् पुत्र के न रहने पर अग्नि देने वाला अन्य कोई हो और वह यदि सगोत्रव्यक्ति हो तो उसे दश दिन वाला आशौच करना चाहिए और वह भी सपिण्ड की तरह ही होता है ।।८।। पुत्र के अभाव में अग्नि देने वाले को समस्त प्रेय-कर्म करना चाहिए । यदि उस पुत्र वाले से अन्य कोई होतो दाहाग्नि संचय के बिना करे ।।६।। जब तक मृत पिता का अस्थि-संचय न हो और इसके पूर्व ही यदि ज्येष्ठ पुत्र आ जावे तो उसे वस्त्र धारण कर आदि से यथाविधि कर्म करना चाहिए ।।१०।। अस्थियों के संचय कर लेने के बाद में यदि ज्येष्ठ पुत्र भी आकर उपस्थित हो जावे तो फिर अग्नि संस्कार कराने वाले पुत्र को ही समस्त दशाहान्त कर्म करना चाहिए, चाहे वह पुत्र कोई भी छोटा या मध्यम हो ।।११।। जिस किसी के द्वारा अनुमन्त्र से संस्कार किये जायें पुनः प्रेत

का संस्कार उसी को करना चाहिए और तिल लाजाओं की अंजलि देनी चाहिए ॥१२॥

पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रः स्त्री भ्राता तज्जश्च दत्तकः ।
प्रेतकार्येऽधिकारी स्यात्पूर्वाभावेऽथ गोत्रजः ॥१३
कृत्वाऽऽदौ वपनं स्नानं शुद्धाम्बरधरः शुचिः ।
धृत्वा चैवाऽऽदिकं वासः प्रेतकार्यं समाचरेत ॥१४
प्रेतकर्म द्विजः कुर्याद्गोत्रनामपुरः सरम् ।
बहवृचो विधिनाऽनेन तत्तन्मंत्रेण चैव हि ॥१५
मौञ्जीबन्धनकाले च व्रताचरणकर्मसु ।
यज्ञे च मरणे पित्रोर्गयायां क्षौरमिष्यते ॥१६
सपिण्डमरणे चैव पुत्रजन्मनि वै तथा ।
स्नानं नैमित्तिकं शस्तं प्रवदन्ति महर्षयः ॥१७
सपिण्डमरणे स्नायादुदक्या च प्रसूतिकाम् ।
इत्युक्तो मुनिभिश्चैव सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥१८
कस्यापि मुक्तिः प्रेतत्वाद्वृषोत्सर्गं विना न हि ।
स्त्रीणां चैव वृषोत्सर्गं कुर्यादेकादशेऽहनि ॥१९
वृषोत्सर्गं विना प्रेतः पिशाचत्वान्न मुच्यते ।
पुमांश्चाप्यथ वा नारी विधवा सधवाऽपिवा ॥२०
एकोद्दिष्टविधानेन कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश ।
ततोरुद्रगणाख्यानि वस्वाख्यानि तथैव च ॥२१
धर्माख्यं चैव षट्त्रिंशच्छ्राद्धान्येकादशेऽहनि ।
कुर्याद्विधिवदेतानि द्वादशाहे सपिण्डनम् ॥२२

दशाहान्त समस्त प्रेतकर्म करके दूसरे दिन इसके पश्चात् षोडश श्राद्ध सपिण्डन कर्म करे ॥१३॥ पुत्र-पौत्र (नाती), प्रपौत्र (बेटा का नाती), स्त्री, भाई, भाई का पुत्र, दत्तक पुत्र (गोद लिया) ये सभी प्रेतकर्म करने के अधिकारी होते हैं। पूर्वोक्त व्यक्तियों में कोई भी न हो और सबका अभाव हो तो गोत्रज व्यक्ति हकदार होता है कि प्रेत कर्म करे ॥१४॥ सर्वप्रथम आदि में प्रेतकर्म करने वाले व्यक्ति को वपन करके स्नान करना

चाहिये फिर पवित्र होकर शुद्ध वस्त्र धारण करे और उसी आदि के धारण किये हुए वस्त्र को पहिन कर अन्त तक की समस्त प्रेत क्रिया करे ॥१५॥ अपने नाम और गोत्र के उच्चारणपूर्वक प्रेत कर्म को द्विज करे, जो वह वृद्ध ब्राह्मण हो उसी विधि से और तत्तन्मन्त्र के द्वारा प्रेत क्रिया करनी चाहिए ॥१६॥ मौञ्जी–बन्ध (यज्ञोपवीत संस्कार) के समय में, व्रतों के आचरण के कर्मों में, यज्ञ में, माता–पिता के मरण में और गया में क्षौर कर्म कराना परम इष्ट होता है ॥१७॥ किसी भी सपिण्ड व्यक्ति के मरण में तथा पुत्र के जन्म के समय में नैमित्तिक स्नान को महर्षियों के समूह परम प्रशस्त बताते हैं। सपिण्ड के मरण में, रजस्वला और प्रसूतिका को स्नान करना चाहिये—यह विधि मुनियों ने समस्त वर्णों में बताई है ॥१८॥ वृषोत्सर्ग के बिना प्रेतत्व से किसी की भी मुक्ति नहीं होती है। स्त्रियों का भी वृषोत्सर्ग ग्यारहवें दिन करना चाहिए। वृषोत्सर्ग के बिना प्रेत–पिशाचत्व से छुटकारा नहीं पाता है, चाहे वह प्रेत पुरुष हो, स्त्री हो, विधवा हो या सधवा हो, कोई भी हो, सबकी मुक्ति के लिये वृषोत्सर्ग करना आवश्यक है ॥१९-२०॥ एकोद्दिष्ट के विधान से सोलह श्राद्ध करने चाहिए। इसके अनन्तर रुद्रगण नामक तथा वसु नामक और धर्माख्य ऐसे छत्तीस ये श्राद्ध होते हैं इन्हें ग्यारहवें दिन करे और विधिवत् करना चाहिये। बारहवें दिन सपिण्डन करना चाहिये ॥२१-२२॥

यावन्न क्रियते पित्रोर्दाहादि प्रेतकर्म च।
सन्ध्यामात्रं विना कर्म नान्यत्कुर्यात्कदाचन ॥२३
ऊर्ध्वमेतद्दशाहाच्चेत्पितुः स्याद्दहनं यदि।
दहनाहस्तदारभ्य पुत्राणां दशरात्रकम् ॥२४
विना पुत्रवतोऽन्येषामाशौचं त्रिदिनं भवेत्।
प्रात्न्यादीनां तु नैव स्यात्कर्तुः स्याद्ग्राहिणोऽपि च ॥२५
पितृत्वं चप्रयातस्य श्रूयते मरणं पितुः।
श्रवणा दिदशाह स्यादाशौचं मुनयाविदुः ॥२६
सपिण्डीकरणं पित्रोर्भवेत्कालान्तरेऽपि चेत्।

अतीतान्यपि वै कुर्यान्मासिकानि यथाविधि ॥२७
कालप्राप्तानि चान्यानि कुर्यात्प्रथमवत्सरे ।
न कुर्याद्वत्सरादूर्ध्वं प्रवदन्ति महर्षयः ॥२८
प्रपितामहपर्यन्तं प्रेतस्यैव सुतादयः ।
सपिण्डीकरणं कुर्युस्तदूर्ध्वं न हि सर्वथा । २९

जब तक माता पिता का दाह से लेकर समस्त प्रेतकर्म न करले, तब तक सन्ध्या मात्र के बिना अन्य कोई भी कर्म कभी भी नहीं करना चाहिए ॥२३॥ यदि दशाह (दश दिन) से ऊर्ध्व में पिता का दहन हो तो दहन के दिन से आरम्भ करके पुत्रों को दश रात्रि तक अशौच होता है ॥२४। जिनके पुत्र न हो तो अन्य लोगों का तीन दिन का ही अशौच होता है । जो अग्नि आदि होते हैं, उनको वह भी नहीं होता है । केवल कर्त्ता और ग्राही को ही होता है ॥२५॥ पिता का देहावसान होकर वह प्रेत कोटि से सपिण्डीकरण होने के पश्चात् पितृत्व को प्राप्त हो जावे और फिर पिता की मृत्यु श्रवण हो तो जिस दिन श्रवण करे, उस दिन से दश दिन तक पुत्र को मृतकाशौच होता है— ऐसा मुनिगण कहते हैं ॥२६॥ माता-पिता का सपिण्डीकरण यदि कालान्तर में हो अर्थात् ठीक समय पर बारह दिन में न होकर अन्य समय में हो तो भी अतीत मासिक श्राद्धादि समस्त कर्म यथाविधि करने चाहिये ॥२७॥ प्रथम वर्ष में काल प्राप्त अन्य सब कर्म करना चाहिये । यदि एक वर्ष से भी ऊपर समय हो जावे तो फिर कुछ नहीं करना चाहिए—ऐसा महर्षिवृन्द कहते हैं ॥२८॥ पुत्र आदि को (यहाँ आदि शब्द से पौत्र और प्रपौत्र का भी ग्रहण होता है) मृत एवं प्रेत कोटि में पहुँचे हुए पिता-पितामह और प्रपितामह पर्यन्त ही सपिण्डीकरण का कर्म करना चाहिये अर्थात् चार पीढ़ी तक ही कर्म एवं श्राद्धादि के करने का अधिकार होता है । इससे ऊपर बिल्कुल नहीं करना चाहिये ॥२९॥

पितुः सपिण्डनं कुर्यात्त्रिभिः पितामहादिभिः ।
तदेव हि भवेच्छस्तं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥३०

पिता विपद्यते चैव विद्यमाने पितामहे ।
तत्र देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः ।।३१
पिण्डौ दत्त्वा तु द्वावेव पितुः पितामहस्य च ।
ततस्तु तत्पितुश्चैकं प्रेतस्यैकं विधीयते ।।३२
त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने ।
पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः ।।३३
पितामहस्तथा वाऽपि विद्यते प्रपितामहः ।
तृतीयस्यैव ते देयास्त्रयः पिण्डाः सपिण्डने ।।३४
प्रेतश्च पितरश्चैव विद्यन्तेऽपि त्रयो यदि ।
षोडशश्राद्धपर्यन्तं कुर्यात्सर्वं यथाविधि ।।३५
पितृणां मध्य एकश्चेन्म्रियते चेत्सपिण्डनम् (?) ।
सह कुर्यात्तदाऽनेन नान्यथा मुनयोः विदुः ।।३६
सपिण्डीकरणं न स्याद्यावन्नोपनयादिकम् ।
अब्दादूर्ध्वं न दुष्येत केचिदाहुर्ऋतुत्रयात् ।।३७
निषेधो मुनिभिः प्रोक्तः सपिण्डानयनं च हि ।
चौलोपनयनादौ चेन्नाधिकारः सुतस्य च ।।३८

पिता की सपिण्डीकरण तीन पुरुषों अर्थात् पितामहादि के साथ करनी चाहिए । वही प्रशस्त होता है और ऐसा ही मनीषी लोग कहते हैं ।।३०।। यदि पितामह (बाबा) के जीवित रहने पर पिता की मृत्यु हो जावे तो ऐसी दशा में प्रपितामह तक तीन ही पिण्ड देने चाहिए ।।३१।। पिता और पिता के पितामह को दो ही पिण्ड देकर इसके अनन्तर प्रेत अपने पिता के लिए एक पिण्ड देने का विधान होता है ।।३२।। तीनों पिण्डों का जब एकत्र सपिण्डीकरण हो जाता है तो वह प्रेत-श्रेणी से मृत पितृत्व श्रेणी में पहुँच जाते हैं—यह धार्मिक व्यवस्था होती है ।।३३।। यदि पितामह और प्रपितामह दोनों ही विद्यमान हों और पिता की मृत्यु हो जावे तो सपिण्डीकरण में तीनों पिण्ड तीसरे को ही दे देने चाहिए ।।३४।। प्रेत और पितर तीनों ही यदि विद्यमान होते हैं तो षोडश श्राद्ध पर्यन्त समस्त कर्म यथाविधि करना चाहिए ।।३५।।

पितृगण के मध्य में यदि कोई भी एक की मृत्यु हो जावे तो साथ ही सपिण्डन कर्म करना चाहिए अर्थात् तब इसके साथ सपिण्डीकरण करे अन्यथा नहीं करना चाहिए—ऐसा मुनि लोग कहते हैं ॥३६॥ जब तक उपनयनादि संस्कार न हो तब तक सपिण्डीकरण नहीं होता है। एक वर्ष से ऊपर दूषित नहीं होता है। कुछ विद्वानों का मत है—तीन ऋतुओं से ही ऊपर मानते हैं ॥३७॥ सपिण्डानयन के प्रति मुनियों ने निषेध कहा है। चौल और उपनयन आदि में सुत का अधिकार नहीं है ॥३८॥

यथा पितुस्तथा मातुः सपिण्डीकरणे विधिः ।
स यथा स्यादपुत्रायाः पत्या सह सपिण्डने ॥३९
पुत्रेषु विद्यमानेषु दूरतः प्रेतसत्क्रियाम् ।
असपिण्डः सपिण्डो वा न कुर्याद्दहनं विना ॥४०
जीवत्स्वेव हि पुत्रेषु प्रेतश्राद्धानि यानि च ।
स्नेहेन वाऽर्थलाभेन कुरुतेऽन्यो वृथा भवेत् ॥४१
येन केनापि पुत्रेण कृतं चेदौरसं न चेत् ।
सपिण्डीकरणे चैव शस्तं स्यान्मुनयो विदुः ॥४२
पितुः पुत्रेण चैकेन पिण्डसंयोजने कृते ।
पुनः संयोजनं तस्य न कुर्याद्दूरगः सुतः ॥४३
येन केन विना पुत्रं प्रेतकर्म कृतं यदि ।
पुत्रः कुर्यात्पुनः सर्वं विना दाहस्संचयम् ॥४४
चाण्डालेन हतो विप्रः षडब्देनैव शुध्यात ।
यदि तेन शवं स्पृष्टं तदर्धेनैव शुध्यात ॥४५

पिता के समान ही माता की सपिण्डी क्रिया में भी विधि होती है। यदि वह बिना पुत्र वाली हो तो उसका सपिण्डन पति के साथ ही होता है। दूर देश में पुत्रों के विद्यमान रहने पर दाह के बिना असपिण्ड हो या सपिण्ड हो उसे प्रेत का सत्क्रिया नहीं करनी चाहिए ॥३९-४०॥ पुत्रों के जीवित रहते हुए जो भी प्रेत के श्राद्ध होते हैं, उन्हें स्नेह के कारण या धन के लाभ के कारण यदि कोई अन्य करता है तो वह सब

व्यर्थ ही होता है ।।४१।। यदि कोई औरस पुत्र न हो तो जिस किसी पुत्र के द्वारा किया हुआ सपिण्डीकरण कर्म प्रशस्त होता है—ऐसा मुनियों ने कहा है ।।४२।। पिता के किसी भी एक पुत्र के द्वारा पिण्डी संयोजन किए जाने पर फिर दूर देशस्थ पुत्र के द्वारा दुबारा पिण्डो संयोजन नहीं करना चाहिये ।।४३।। पुत्र के बिना जिस किसी भी अन्य के द्वारा यदि प्रेत-कर्म किया गया हो तो पुत्र को पुनः वह कर्म करना चाहिए किन्तु दाह और अस्थि संचय नहीं करना चाहिए ।।४४।। किसी चाण्डाल के द्वारा मारा गया विप्र छः वर्ष में हो शुद्धि प्राप्त करता है। यदि चाण्डाल के द्वारा विप्र के शव का स्पर्श किया गया हो तो उसके आधे भाग अर्थात् तीन वर्ष में शुद्ध होता है ।।४५।।

महानदीषु सर्वासु पुण्यतीर्थासु चैव हि ।
श्राद्धं विधीयते तच्च नैमित्तिकमुदाहृतम् ।।४६
पुत्रवर्गादिकामेष्टिस्तत्तत्काले विधीयते ।
पञ्चभ्यां प्रोष्ठपद्यादि वर्षतौ चैव वार्षिकम् ।।४७
नित्य नैमित्तिकं काम्यं यत्र कामप्रचोदितम् ।
सूतके मृतके चैव नैव कुर्यात्कथंचन ।।४८
सूतकं मृतकं चैव पुत्रादीनां च सन्निधौ ।
त्रिदिनं पक्षिणीं चाथ सद्य इत्यनुवर्तते ।।४९

समस्त महानदियों में, परम पवित्र तीर्थों में जो श्राद्ध किया जाता है वह श्राद्ध भी नैमित्तिक श्राद्ध कहा जाता है। पुत्र के वर्ग आदि की इष्टि तत्तत् समय में की जाने का विधान बताया गया है। पञ्चमी में, प्रोष्ठपदी आदि में, वर्षा की ऋतु में जो श्राद्ध किया जाता है वह वार्षिक श्राद्ध कहा जाता है ।।४६-४७।। नित्य कर्म नैमित्तक कर्म कामना से युक्त काम्यकर्म और जो भी किसी विशेष कामना से प्रेरित होकर किये जाने वाला कर्म हो वह सभी सूरत एवं मृतकाशौच के समय में कभी भी नहीं करने चाहिए ।।४८।। सूतक जो दो प्रकार का होता है जातकसूतक और मृतक-सूतक। यह पुत्रादि की सन्निधि में तीन दिन, एक पक्ष और सद्यः अर्थात् तुरन्त ही छूटने वाला ऐसे प्रकार के होते हैं ।।४९।।

दशाहं तावदाशौचं सापिण्डचमनुवर्तते ।
भवेत्तदूर्ध्वमेकाहं तत्पश्चात्नानतः शुचिः ।।५०
पित्रादयस्त्रयश्चैवं तथा तत्पूर्वजास्त्रयः ।।५१
सप्तमः स्यात्स्वय चैव तत्सापिडचं बुधैः स्मृतम् ।
सापिण्डचं चोदकं चैव सगोत्रं तक्ष वैं क्रमात् । ५२

सपिण्ड का अशोच दश दिन तक रहता है ऐसा स्मृतिकार बतलाते हैं। माता के गोत्र की सपिण्डता सात पुरुष (पीढ़ी) तक रहती है और पिता के गोत्र की सर्वत्र रहा करती है ।।५०।। इसके ऊपर एक दिन का ही अशौच होता है। इसके पश्चात् स्नान कर लेने पर शुद्धि हो जाती है पिता आदि तीन अर्थात् पिता पितामह और प्रपितामह ये तीन और इनके भी पूर्वज तीन पुरुष (पीढ़ी) तक छै होते हैं ।।५१।। इसके साथ सातवां स्वयं, इस प्रकार सात पीढ़ी तक विद्वानों ने बतलाई हैं। सपिण्डक सोदक और सगोत्र ये तीनों क्रम से माने जाते हैं ।।५२।।

मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्षण्मास पक्षिणी भवेत् ।
अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुध्यति ।।५३
पर्वतश्च महानद्या व्यवधानं भवेद्यदि ।
अशद्योजनदूरं वासद्य। स्नानेन शुध्यति ।।५४
यत्र वाऽपि श्रुतपित्रोमरणं दूरतोऽथ ।
भवेद्दशाहमाशौच पुत्राणामेव निश्चितम् ।।५५
दीक्षितस्वाऽऽहिताग्निश्च स्वाध्यायनिरतस्य च ।
व्रतस्याऽऽमिन्वयस्येह नाशौच विद्यते क्वचित् ।।५६
संप्रक्षालितपादस्य श्राद्ध विप्रस्य चैव हि ।
गृहानुव्रजपर्यन्त न तस्याशौचमिष्यति ।।५७
बन्धगतस्य विप्रस्य नित्यशौच परस्य च ।
सत्रा चत्राऽत्मनिष्ठस्य नाशौच विद्यते क्वचित् ।।५८

तीन मास में तीन रात्रि का और छै मास के पश्चात् पक्षिणी एवं नौमास के ऊपर स्नान करने मात्र से अशोच दूर होकर शुद्धि हो जाया करती है ।।५३।। किसी विशाल पर्वत और किसी महानदी का यदि

निवास-स्थान में व्यवधान हो और तीस योजन की दूरी हो तो तुरन्त स्नान कर लेने पर शुद्धि हो जाती है ॥५४॥ माता और पिता की मृत्यु का समाचार जहाँ भी कहीं चाहे कितनी दूर हो जब भी सुना जावे तो पुत्रों को दश दिन का आशौच होता है। ऊपर लिखी हुई व्यवस्था अन्य सपिण्डों के विषय में बताई गई है। माता, पिता के सम्बन्ध में देश कालादि का व्यवधान नहीं माना जाता है। इनका आशौच तो पुत्रों को दश दिन का होता ही है ऐसा निश्चित है ॥५५॥ किसी दीक्षायुक्त पुरुष, आहित अग्नि वाला पुरुष और वेद के स्वाध्याय में निरत पुरुष, किसी व्रत अर्थात् नियम में स्थित पुरुष और आमन्त्रित पुरुष को किसी भी दशा में अशौच नहीं होता है ॥५६॥ जिस ब्राह्मण के पाद भली भाँति प्रक्षालित किये गए हैं जो कि श्राद्ध में आमन्त्रित हुआ हो उसे अपने घर पीछे जाने तक कोई भी आशौच नहीं लगता है ॥५७॥ जो किसी भी राजकीय बन्धन में गया हुआ हो और जो विप्र नित्य ही परम शौच परायण रहता हो तथा सर्वदा आत्मनिष्ठ बना रहता हो ऐसे व्यक्तियों को भी कोई अशौच होता ही नहीं है—ऐसी धर्मशास्त्र की व्यवस्था है ॥५८॥

— ——

पुलस्त्य स्मृतिः

॥ वर्णाश्रमधर्मवर्णनम् ॥

कुरुक्षेत्रे महात्मानं पुलस्त्यमृषयोऽब्रुवन् ।
तांश्च धर्मान्प्रकारांश्च नो वद स्मार्तमागमम् ॥१
एवं पृष्टः प्रत्युवाच सर्वांस्तान् पृच्छत ऋषीन् ।
पञ्चधा वास्थितं धर्मं शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥२
वर्णधर्मः स्मृतस्त्वेक आश्रमाणामतः परम् ।
वर्णाश्रमस्तृतीयस्तु गुणनैमित्तिकस्तथा ॥३
वर्णमेकं समाश्रित्य योऽधिकारः प्रवर्तते ।
वर्णधर्मः स विज्ञेयो यथोपनयनं त्रिषु ॥४
यस्त्वाश्रयं समाश्रित्य पदार्थः संविधीयते ।
उक्त आश्रमधर्मस्तु भिक्षापिण्डादकं तथा ॥५
उभयस्य निमित्तेन यो विधिः सम्प्रवर्तते ।
नैमित्तिकः स विज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्यथा ॥६
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्चथं भिक्षुकः ।
उक्त आश्रमधर्मस्तु राजधर्मस्तु पञ्चमः ॥७

कुरुक्षेत्र में ऋषिवृन्द ने महात्मा पुलस्त्य से कहा कि आप उन धर्मों धर्म के प्रकारों, तथा स्मृतियों से सम्बन्धित आगम को बतलाइये ॥१॥ इस तरह पूछने पर पुलस्त्य मुनि ने उत्तर दिया—हे श्रेष्ठ द्विजगणों ! पाँच प्रकार के अवस्थित धर्म को मुझ से सावधान होकर सुनो ॥२॥ उन पाँच प्रकार के धर्मों में एक तो वर्ण-धर्म कहा है । फिर आश्रमों का धर्म होता है । तीसरा वर्णाश्रम धर्म और एक गुण नैमित्तिक धर्म होता है ॥३॥ एक वर्ण का आश्रय लेकर जो अधिकार प्रवृत्त होता है वह

वर्ण धर्म जानना चाहिए, अर्थात् वही वर्ण-धर्म कहा जाता है जैसा कि तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों) में उपनयन होता है ।।४।। जो आश्रम के समाश्रत होकर पदार्थ का संविधान किया जाता है वह आश्रम का धर्म कहा है जैसे भिक्षा पिण्डादिक होते हैं ।।५।। वर्ण तथा आश्रम इन दोनों के निमित्त होने से जो विधि सम्प्रवर्तित होती है वह नैमित्तिक धर्म है, जिस तरह प्रायश्चित की विधि होती है । इस प्रायश्चित के विधान में वर्ण और आश्रम दोनों ही निमित्त होते हैं ।।६।। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक (संन्यासी) ये सब आश्रम धर्म युक्त कहे गये हैं और धर्म पाँचवाँ होता है ।।७।।

वर्णधर्मश्चतुर्णां य आश्रमाणां तथैव च ।
द्वयोः साधारणो धर्मो यश्चासौद्वयशेषभाक ।।८
इज्याध्ययनदानानि यथाशास्त्रं सनातनम् ।
ब्रह्म क्षत्रिय वैश्यानां सामान्यो धर्म उच्यते ।।९
याजनाध्ययने राज्ञो भूतानाञ्चाभिरक्षणम् ।
पाशूपाल्यं कृषिश्चैव वैश्यस्याजीवनं स्मृतम् ।।१०
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा द्विजानामनुपूर्वशः ।
शूद्रा च वृत्तिस्तत्सेवा कारु कर्म च ।।११
गुरौवासोऽग्निशुश्रूषा स्वाध्यायो व्रत धारणि ।
त्रिकालस्नापिता भृत्यं गुरौ प्राणांतिकी स्थितिः ।।१२
तदभावे गुरुसुते तथा सब्रह्मचारिण ।
कामतो वा समानत्वं स्वधर्मो ब्रह्मचारिणः ।।१३
समेखलो जटी दण्डी मुंडी गुरुगृहाश्रयः ।
अन्यथा ग्रहण गच्छेत्कामतो वाश्रमांतरम ।।१४

चारों आश्रमों और चारों वर्णों का जो धर्म है वह और वर्ण तथा आश्रम इन दोनों का जो एक सामान्य धर्म है, जो कि उक्त दोनों ही के लिये मान्य एवं कर्त्तव्य होता है वह परम धर्म होता है ।।८।। इज्या (यज्ञादि), का अध्ययन और दान देना जो कि शास्त्र की विधि के अनुसार सनातन है, वह ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य द्विजातियों का एक

सामान्य धर्म है तथा इन दोनों से शेष शूद्र का धर्म होता है ॥९॥ याजन, अध्ययन और प्राणियों की अभिरक्षा क्षत्रिय का धर्म है। पशुओं का पालन, कृषि का करना वैश्य को आजीवन बताया गया है ॥१०॥ द्विजातियों की सेवा करना शूद्र का धर्म होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों द्विजाति कहे जाते हैं। इनकी सेवा भी आनुपूर्वी के क्रम से ही करनी चाहिए। शूद्र-वृत्ति ही द्विजों की सेवा है तथा कारु कर्म भी होता है ॥११॥ गुरु के समीप निवास, अग्नि सेवा अर्थात् सविधि अग्नि का स्थापन तथा हवन आदि करना, वेद का स्वाध्याय निरन्तर करना, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना, तीनों कालों में स्नान एवं उपासना करना, और सेवा ही के लिये गुरु की सन्निधि में प्राणान्त पर्यन्त रहना यह ब्रह्मचारी का अपना धर्म होता है ॥१२॥ यदि गुरु न रहें तो उनके अभाव के समय में उक्त विधि से ही गुरु के पुत्र की सन्निधि में रहे। कामना से समानता होती है। यही ब्रह्मचर्य का धर्म है ॥१३॥ जब तक ब्रह्मचर्य के धर्म का पालन किया जाता है, तब तक ब्रह्मचारी मेखला जटा धारण करे, मुण्डन युक्त रहे, दण्ड धारण करे और गुरु के निकट उनके घर का आश्रय रखे। जीवन में आगे अन्त तक ब्रह्मचर्यावस्था में नहीं रहना हो तो फिर गार्हस्थ्य में प्रवेश करे या इच्छानुसार अन्य आश्रम का पालन करे ॥१४॥

अग्निहोत्रोपचरणं जीवनञ्च स्वकर्मभिः।
धर्मदानेषु काम्येषु सर्वत्रजन विक्रयाः ॥१५
देवापित्र्यतिथिभ्यश्च भूतानामानुकम्पिता।
श्रुतिस्मृत्युक्तसंस्कारो धर्मोऽयं गृहमेधिनः ॥१६
जटित्वमग्निहोत्रित्वं भूशय्याजिनधारणम्।
वनेवासः पयोमूलनीवारकणवृत्तिता ॥१७
प्रतिग्रहनिवृत्तश्च त्रिःस्नानं मौनधारणम्।
देवतातिथिपूजा च धर्मोऽयं वनवासिनाम् ॥१८
सर्वारंभपरित्यागो भैक्षान्नं वृक्षमूलता।
निष्परिग्रहता द्रोहः समतासर्वजन्तुषु ॥१९

प्रियाप्रियपरिष्वङ्गः सुखदुःखःविकारिता ।
स बाह्यभ्यन्तराशौचं नियमो व्रतकारिता ॥२०
सर्वेन्द्रियसमाहारो धारणाध्याननित्यता ।
भावशुद्धिस्तथेस्येवं परिव्राड् धर्म उच्यते ॥२१

अब गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले के धर्म के विषय में बतलाया जाता है—नित्य अग्निहोत्र का उपचरण अपने शास्त्र विहित कर्मों के द्वारा जीवन निर्वाह करना, सर्वत्र प्राणियों के कल्याण के लिये काम्य कर्म तथा दान करना, देवता, पितृगण और अतिथियों का याजन-सत्कार एवं प्राणिमात्र पर दया करना यह श्रुति, तथा स्मृति में कहा गया संस्कार वाला एक गृहस्थ का धर्म होता है ॥१५-१६॥ अब वन में निवास करने वालों का धर्म बताते हैं—जटाऐं धारण करके रहना, अग्निहोत्र करना, भूमि में शयन , मृग चर्म आदि को धारण करना, एकान्त वन में निवास, यव मूल और नीवार के कणों के द्वारा अपनी जीवनवृत्ति को धारण करना अर्थात् उक्त कन्द मूलादि खाकर रहना, प्रतिग्रह अर्थात् अन्य के द्वारा दिये हुए दान को स्वीकार न करना, तीन बार स्नान करना, मौन धारण करना तथा देवता और समागत अतिथियों का पूजन, सत्कार करना यह वन--वासियों का धर्म होता है ॥१७-१८॥ अब परिव्राड् के धर्म के विषय में बतलाया जाता है—लोक में जो कुछ भी कर्त्तव्य कर्मों का विधान है उस सबका त्याग, भिक्षा द्वारा यथा-विधि प्राप्त अन्न से जीवन यात्रा, वृत्तमूलता, अपने पास कुछ भी संग्रह न रखना अर्थात् संसार के अन्दर जो भी शारीरिक सुख-सुविधा हैं उन सबसे द्रोह करना, सब जीवों में समान भाव रखना, प्रिय और अप्रिय होने के मन के भाव का सर्वथा त्याग करना, सुख में प्रसन्नता और दुःख में विषाद के विकारों को एक दम छोड़ देना, बाहिरी और अन्द-रूणी दोनों प्रकार की शुद्धि रखना, व्रतों एव नियमों का दृढ़ता से पालन करना, समस्त इन्द्रियों का समाहरण करना, धारणा और ध्यान में नित्य मग्न रहना और अपनी भावना की पूर्णतया शुद्धि रखना यही परिव्राड् का धर्म होता है ॥१९-२१॥

अहिंसा सत्यवादश्च सत्यं शौचं दया क्षमा।
वर्णिनां लिङ्गिनाञ्चैव सामान्यो धर्म उच्यते ।।२२
स्वज्ञानं हृदि सर्वेषां धर्मोऽयं वर्णिलिङ्गिनाम्।
अदृष्टार्थो द्विविधः प्रोक्तो दृष्टार्थश्चद्वितीयकः ।।२३
उभयार्थस्तृतीयश्च न्यायमूलश्चतुर्थकः।
उभयाव्यवहारश्च दंडधारणमेवच ।।२४
तुल्यार्थानां विकल्पस्यान्यायमूलः प्रकीर्त्तितः ।
वेदे तु विदितो धर्मः स्मृतौ तादृश एव तु ।।२५
अनुवाकः श्रुतिसूक्तं कार्यार्थमिति मानवाः।
तदर्थश्च प्रयासोऽयं सच सेव्यः फलार्थिना ।।२६
उक्तः पञ्च विधोःधर्मः श्रयोऽभ्युदयहेतुकः।
पुरुषाणां यथायोगं सच सेव्यः फलार्थिना ।।२७

अब समस्त वर्ण वाले तथा समस्त आश्रमों के चिह्नधारियों का जो एक सर्व साधारण धर्म होता है उसे बतलाते हैं—प्राणिमात्र की हिंसा न करना अर्थात् जीवों में किसी को भी कुछ भी किसी भी प्रकार का आघात न पहुचाना अहिंसा कही जाती है। सर्वदा सत्य भाषण करना चाहे किसी भी प्रकार का हानि-लाभ क्यों न हो तथा अत्यन्त दुःखावसर क्यों न उपस्थित हो फिर भी सत्यवाद से तनिक भी विचलित न होना, सत्य का पालन करना अर्थात सत्य स्वरूप रहना, शौच रखना अर्थात् सर्वदा पवित्रता रखना, सबके ऊपर दया रखना, क्षमा रखना अर्थात् किसी के अपराध करने पर भी क्षमा कर देने का भाव रखना ये समस्त वर्णो ओर लिङ्गधारियों के सामान्य धर्म हैं जोकि सभी को पालना चाहिए ।।२२।। समस्त वर्णो वाले ओर ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के समस्त लिङ्गों (चिह्नों) के धारण करने वाले सबका अपने हृदय में अपने स्वरूप का ज्ञान रखना ही परम धर्म है। ब्राह्मण को ब्राह्मण होने का तथा इसी प्रकार क्षत्रियादि को अपने वर्ण का एवं ब्रह्मचारी आदि को अपने आश्रम के स्वरूप का ज्ञान रखकर उसका पूरा पूरा निर्वाह करना यही धर्म होता है। अदृष्टार्थ और दृष्टार्थ ये दोनों दो-दो तरह के बताये गये हैं ।।२३।। तीसरा उभ-

यार्थं होता है तथा चतुर्थ न्याय के मुख वाला होता है। उभय का अव्यवहार दण्ड धारण ही होता है ॥२४॥ जो तुल्यार्थं अर्थात् समान अर्थं वाले होते हैं उनमें विकल्प जो होता है वह न्याय के मूल से युक्त हुआ करता है। वेद में जो धर्म विहित है अर्थात् वेद ने जिसको धर्म कहकर प्रतिपादन किया है वैसा ही अर्थात् उसी को स्मृति में कहा गया है। तात्पर्य यह है कि स्मृतियाँ वेदार्थ का ही प्रतिपादन किया करती हैं अर्थात् स्मृतियों में जो भी आदेश दिया गया है उसे वेद का आदेश मानना चाहिए ॥२५॥ अनुवाक और श्रुति सूक्त कार्य सम्पादन के लिये होते हैं ऐसा मानव मानते हैं उसका जो कुछ भी अर्थं होता है वहीं यह प्रयास है अर्थात् उनके अर्थ को ही स्मृतियों ने स्पष्ट बताने के लिये प्रयास किया है अतः जो फलार्थी पुरुष है उन्हें इस स्मृति प्रतिपादक अर्थं का अवश्य ही सेवन करना तथा मानकर पालन करना चाहिए ॥२६॥ इस तरह पाँच प्रकार का धर्म बताया गया हैं जो मानवों के कल्याण और अभ्युदय का हेतु होता है अर्थात् इस पांचों प्रकार के धर्म के पालन करने से ही मानवों का श्रेय एवं अभ्युदय होता है। जैसा भी जिसका योग होता है वैसा यह पञ्चविधि धर्म पुरुषों का कल्याणकारक है अतः जो फल प्राप्ति के इच्छुक हैं उन्हें इसका अवश्य ही सेवन करना चाहिए ॥२७॥

॥ समाप्त ॥